पिय को खोजन मैं चली

प्रवचन-क्रम

1. मंदिर नहीं--मधुशाला..2
2. मेरे मयकदे का प्रवेश-पत्र: संन्यास..23
3. सूर्योदय की संभावना...42
4. जीवन का सार-सूत्र: ध्यान..65
5. ध्यान कुंजी है...86
6. मैं निमंत्रण हूं--खुले आकाश का..106
7. सत्य और सूली..127
8. धर्म है कला जीवन की...149
9. प्रेम सरिता है--सरोवर नहीं..172 10..संन्यास यानी परम स्वास्थ्य 196

पिय को खोजन मैं चली
पहला प्रवचन

मंदिर नहीं--मधुशाला

पहला प्रश्नः ओशो! नयी प्रवचनमाला का शीर्षक हैः पिय को खोजन मैं चली। हमें इसका आशय समझाने की अनुकंपा करें!

आनंद प्रतिभा!
पलटू का प्रसिद्ध वचन हैः
पलटू दिवाल कहकहा, मत कोई झांकन जाय।
पिय को खोजन मैं चली, आपुई गई हिराय।।
यह कहानी तुमने सुनी होगी कि चीन की दीवाल के एक खास स्थल पर एक चमत्कारपूर्ण घटना घटती है। कहानी ही है, लेकिन अर्थपूर्ण है। दीवाल के उस खास स्थल पर जो भी चढ़ कर दूसरी तरफ झांकता है, जोर से हंसता है और कूद पड़ता है, फिर लौटता नहीं। बहुत लोग उस दीवाल पर यह कस्त करके झांकने गए कि न तो हम हंसेंगे, न हम कूदेंगे। मगर कोई भी अपवाद सिद्ध नहीं हुआ। जो भी गया, हंसा भी, कूदा भी, खो भी गया। कोई भी लौट कर बता नहीं पाता--क्या देखा, क्यों हंसे, क्यों कूदे, कहां खो गए!
यह तो कहानी ही है, लेकिन यह कहानी बड़ी प्रतीकात्मक है। परमात्मा की खोज में जो जाते हैं, उनकी भी दशा ऐसी ही है। झांक कर जिन्होंने देखा वे हंसे, खिलखिला कर हंसे। बेबूझ उनकी हंसी है। रहस्यपूर्ण उनकी हंसी है। उलटबांसी जैसी उनकी हंसी है। अनिर्वचनीय उनकी हंसी है। न हो सकती है उसकी व्याख्या, न कभी हुई है, न कभी होगी। मगर उनके जीवन में एक अदभुत आनंद, एक अदभुत हास्य, एक मुस्कुराहट जरूर लोगों ने देखी है। जब कि जीवन इतने दुख से भरा है, तब भी बुद्ध की आंखों में एक आनंद है! जब कि जीवन इतनी पीड़ा से भरा है, तब भी महावीर के चारों तरफ एक मस्ती है! जब कि जीवन में सिवाय कांटों ही कांटों के और कुछ दिखाई नहीं पड़ता, तब भी कृष्ण के जीवन में बांसुरी बज रही है!
इसी हंसी की ओर इंगित है--इसी मस्ती की ओर, इसी मदहोशी की ओर। जैसे जो दुनिया में हो रहा है, सब स्वप्नवत है। जैसे यह कुछ ध्यान देने योग्य नहीं। ये सारे दुख, ये सारी पीड़ाएं जैसे बस कल्पित हैं, लोगों के मन के ही जाल हैं।
जिसने परमात्मा को देखा है, वह दुनिया पर हंसने लगा है। इसलिए हंसने लगा है कि यह दुनिया सिवाय एक नाटक के मंच के और कुछ भी नहीं है। न यहां परेशान होने जैसा कुछ है, न पीड़ित होने जैसा कुछ है। पीड़ित हो तो तुम अपनी मूर्च्छा के कारण और परेशान हो तो तुम अपनी नासमझी के कारण। जागो तो सब अभिनय है, सब खेल है। जागोगे तो हंसोगे। जागोगे तो हंसोगे अपने पर कि मैं भी कैसा पागल था, कितना व्यथित था! जागोगे अपने सारे अतीत पर, वह लंबा-लंबा इतिहास व्यथा का, कितना रोया, कितना गिड़गिड़ाया, कितने आंसू गिराए, खिलौनों के लिए रो रहा था, मृग-मरीचिकाओं के पीछे दौड़ रहा था! और जानता भी था कि कुछ न मिलता है, न कभी मिला है, न मिल सकता है। ऐसा भी न था कि भीतर इसके गहरे में कोई प्रतीति न रही हो, लेकिन छायाएं बड़ी आकर्षक लगी थीं, क्योंकि छायाएं बड़ी सत्य मालूम हुई थीं।
जागोगे तो हंसोगे अपने अतीत पर। और जागोगे तो हंसोगे सारे जगत पर कि लोग अब भी उसी नाटक को सत्य समझ रहे हैं जिसको तुम सत्य समझे थे।
यह दीवाल इस जगत का प्रतीक है। इस दीवाल के पार झांकना परमात्मा में झांकने का प्रतीक है। और जो भी झांका, वह हंसा। और जो भी झांका, फिर लौटा नहीं।
इसलिए एक दफा जो व्यक्ति प्रबुद्धता को उपलब्ध हो जाता है वह फिर संसार में लौट कर नहीं आता। आने का कारण ही नहीं रह जाता।
आते हैं हम अपनी वासनाओं के कारण। आते हैं उन वासनाओं के कारण जो अभी अपूर्ण रह गईं, जो पूरी नहीं हो पाईं। उन्हीं वासनाओं में बंधे हम फिर चले

आते हैं। वे वासनाएं रज्जुओं की भांति, रस्सियों की भांति हमें फिर खींच लेती हैं। हम वासनाओं के जब तक गुलाम हैं, तब तक लौट-लौट कर आना होगा। लेकिन जिसने परमात्मा को देख लिया, उसकी वासनाएं तत्क्षण मिट जाती हैं। जैसे प्रकाश में अंधकार समाप्त हो जाता है, ऐसे ही परमात्मा के अनुभव में, प्रार्थना के अनुभव में वासना तिरोहित हो जाती है। फिर कोई लौटना नहीं है। फिर तो कूद जाना है अनंत में, अज्ञात में, अज्ञेय में।
और जो दिखाई पड़ता है व्यक्ति को उस शाश्वत में, उस सनातन में, उसे कहने
का भी कोई उपाय नहीं। आदमी के शब्द बड़े छोटे हैं, बड़े ओछे हैं। नहीं कि कहने की चेष्टा नहीं की गई है, लेकिन सब चेष्टाएं असफल हो गई हैं। वेद हैं, बाइबिल है, कुरान है, गीता है, धम्मपद है, जिन-सूत्र है--पर कोई भी कह नहीं पाया। जिन्होंने भी जाना है, उन सबने कहने की चेष्टा की है, कहना चाहा है, मगर यह भी कहा है कि हम लाख कहें तो भी कह न पाएंगे।
लाओत्सु ने तो जीवन भर प्रार्थनाएं ठुकराईं। क्योंकि लोग कहते थेः लिखो कुछ, कहो कुछ। लाओत्सु हंसता, बात टाल जाता, इधर-उधर की बातें करता। जब बूढ़ा हो गया... बहुत बूढ़ा हो गया होगा। क्योंकि लाओत्सु के संबंध में जो अदभुत कथा है वह यह है कि जब वह पैदा हुआ तभी अस्सी वर्ष का पैदा हुआ, बूढ़ा ही पैदा हुआ, इस बात की सूचना देने के लिए कि लाओत्सु पैदा होते से ही होश से भरा था, जाग्रत था। जैसे पिछले जन्म में निन्यानबे प्रतिशत घटना घट चुकी थी, बस एक प्रतिशत कहीं कुछ थोड़ा सा अटकाव रह गया था, बस थोड़ी सी ही बात रह गई थी बाल के बराबर, वह भी घट गई। तो लाओत्सु पैदा ही प्रबुद्ध की तरह हुआ।
तो अस्सी वर्ष का तो पैदा ही हुआ था। और जब अस्सी वर्ष का पैदा हुआ तो बूढ़ा जब हुआ तो होगा करीब एक सौ अस्सी वर्ष का--अगर सौ वर्ष और रहा होगा। उस वृद्धावस्था में वह चल पड़ा हिमालय की तरफ। उसके शिष्यों ने पूछा, कहां जाते हो? उसने कहा, जाता हूं दूर पर्वतों में! अंतिम विश्राम के लिए कोई ऐसी जगह खोजनी है कि जहां न किसी को पता चले कि मैं कहां मरा, कहां मेरी समाधि बनी। जहां मिट्टी मिट्टी में मिल जाए, पानी पानी में मिल जाए, हवा हवा में खो जाए। जहां आत्मा परमात्मा में लीन हो जाए। कोई निशान न छूटे। क्योंकि निशान छूट जाते हैं तो लोग उन्हीं पद-चिह्नों की नकल करते रहते हैं। लोग नकलची हैं। इसलिए अपने को बिल्कुल तिरोहित करने जा रहा हूं। बहुत समझाया, नहीं माना, तिरोहित करने चल पड़ा। लेकिन सम्राट ने सारे राज्य की सीमाओं पर जो पहरेदार थे, चौकियां थीं, वहां खबर कर दी कि लाओत्सु कहीं से भी निकले, निकलने मत देना। उसे रोक रखना। और उससे कहना कि पहले अपना अनुभव लिख दो, फिर जाओ।
पकड़ लिया गया लाओत्सु एक चौकी पर। जाना-माना आदमी था। और चौकीदार ने कहा, जाने न दूंगा। हम असमर्थ हैं, सम्राट की आज्ञा है। आप रुक जाएं यहां, मेरे झोपड़े पर ठहर जाएं, लेकिन सार-सूत्र में, जो जीवन का अनुभव है, लिख दें। लाओत्सु ने कहा, अगर लिख सकता होता तो कभी का लिख दिया होता। मगर पहरेदार तो पहरेदार, नियम तो नियम। उसने कहा, मैं फिर निकलने न दूंगा। जाना हो तो लिखें। मैं कोई बहुत बुद्धिमान आदमी नहीं हूं। मुझे समझाने की चेष्टा न करें। मुझे तो लिखा हुआ चाहिए ताकि मैं सम्राट के सामने पेश कर सकूं।
मजबूरी में लाओत्सु को लिखना पड़ा। ऐसे लाओत्सु की अदभुत सूत्रों की पुस्तक ताओ तेह किंग का जन्म हुआ। इस तरह कोई किताब दुनिया में जन्मी नहीं है। लेकिन पहला सूत्र मालूम है लाओत्सु ने क्या लिखा? यही कि सत्य को कहा नहीं जा सकता। सत्य को कहा कि कहते ही असत्य हो जाता है। पढ़ना मेरे सूत्र, मगर इस बात को भूल मत जाना।
सत्य को कहा नहीं जा सकता, कहा कि सत्य कहते ही असत्य हो जाता है। क्यों? इसलिए सत्य असत्य हो जाता है कि सत्य का अनुभव तो होता है शून्य में और अभिव्यक्ति होती है शब्दों में। सत्य को जाना तो जाता है मौन में और जब बोलते हो, तब तुम मौन में नहीं बोल सकते। सत्य को जाना तो जाता है मनातीत अवस्था में, जहां मन नहीं होता और जब बोलना होता है तो मन का उपयोग करना होता है, माध्यम बदल जाते हैं।

यूं समझो कि जैसे कोई अंधा आदमी प्रकाश के संबंध में कुछ कहना चाहे। क्या कहे? या अंधे को तुम प्रकाश के संबंध में समझाना चाहो। क्या समझाओ? कबीर कहते हैंः गूंगे केरी सरकरा! जैसे गूंगा चख भी ले, मीठे से मीठा स्वाद ले ले, फिर भी कहे तो कैसे कहे? कहे तो क्या कहे?
इसलिए कहने की चेष्टा तो हुई है--चेष्टा हुई यह शुभ हुआ, यह जिन्होंने जाना उनकी करुणा के कारण हुआ--लेकिन अब तक बात कही नहीं जा सकी है।
यह कहानी प्रीतिकर है। पलटू कहते हैंः "पलटू दिवाल कहकहा।"
यह परमात्मा वही कहकहा वाली दीवाल है, जिस पर खड़े होकर लोग हंसे तो हैं, नाचे तो हैं, गुनगुनाए तो हैं, मस्त तो हुए हैं, जैसे पी गए हों शराब, डोले हैं, खूब डोले हैं, जैसे पैरों में घूंघर बांधे हों और बांसुरी हाथ पड़ गई हो या वीणा छेड़ी हो, लेकिन कुछ कह नहीं पाए।
"पलटू दिवाल कहकहा, मत कोई झांकन जाय।"
पलटू कहते हैंः तुम मेरी मानो तो खोजने जाना मत। क्यों? क्योंकि यह केवल दुस्साहसियों का काम है, दुकानदारों का नहीं। पलटू कहते हैंः अगर तुम खोजने जाना चाहो तो जरा सोच-विचार कर लेना। अपने हृदय को परख लेना। इतना साहस है? छलांग लगा सकोगे अज्ञात में? डुबकी मार सकोगे अथाह में? फिर लौटना नहीं है, याद रहे। गल जाओगे, मिट जाओगे।
परमात्मा को पाता ही वही है जो मिटने को राजी है। इसलिए तो थोड़े से ही लोग परमात्मा को पा सके, यद्यपि परमात्मा की बात अनेक-अनेक लोग करते हैं। बस बात ही करते हैं। बात करने में क्या हर्ज है! बात बड़ी प्रीतिकर है। बात बड़ी सुंदर है। बात करने में अहंकार को तृप्ति भी मिलती है। ऐसा लगता है बड़ी दार्शनिक, बड़ी गहन चर्चा हो रही है। जगह-जगह लोग ब्रह्मचर्चा में छिड़े हुए हैं। ब्रह्मचर्चा चलती है। लेकिन उस ब्रह्मचर्चा से कोई लेना-देना नहीं है। ये जानने वाले लोग नहीं हैं। ये सिर्फ दूसरों को भ्रांति दे रहे हैं और खुद को भ्रांति दे रहे हैं।
जानने वाला तो यही कहेगाः मत कोई खोजन जाय। कि भई सोच लो, यह खतरे का रास्ता है। यह मार्ग खतरनाक है। यह खड्ग की धार पर चलना है। जरा चूके कि बुरे गिरोगे। और चढ़े तो उतरना नहीं हो सकता। चढ़ने के पहले ही समझ लेना बात।
इसलिए मैं संन्यासियों से निरंतर कहता हूं, रोज-रोज कहता हूं कि यह मार्ग साहस का है। साहस का ही नहीं--दुस्साहस का। इससे बड़ा कोई दुस्साहस नहीं है जगत में। गौरीशंकर पर चढ़ जाना कोई बहुत बड़ा दुस्साहस नहीं है। कोई भी चढ़ सकता है।
मैंने तो सुना है कि जब एडमंड हिलेरी से किसी ने पूछा कि तुम भलीभांति जानते हो कि पिछले पचास वर्षों में न मालूम कितने लोग गौरीशंकर पर चढ़ने की असफल चेष्टा कर चुके हैं, अपना जीवन, अपने प्राण भी गंवा चुके हैं, फिर भी तुम क्यों गौरीशंकर पर चढ़ने गए?
और तुम्हें पता है एडमंड हिलेरी ने क्या कहा? हिलेरी ने कहा, मालूम होता है तुम विवाहित नहीं हो। अरे पत्नी से भागने के लिए आदमी कहीं भी चढ़ सकता है।
पत्नी से भागने के लिए लोग चांद पर पहुंच गए, तारों पर जाने की कोशिश
कर रहे हैं। पत्नी से भागने के लिए लोग कब से, सदियों से हिमालय जाते रहे हैं। गुफाओं में जीते रहे हैं। जंगली जानवरों से नहीं डरते। जंगली जानवरों से घबड़ा कर बाजार में नहीं आ जाते कि हमने जंगल का त्याग कर दिया। जंगल का किसी ने आज तक त्याग किया ही नहीं। लेकिन घर-द्वार का लोग त्याग कर देते हैं।
मुल्ला नसरुद्दीन शिकार को गया था। पत्नी भी नहीं मानी। और पत्नी न माने तो क्या करो। पत्नी ने कहा, मैं भी आती हूं। जरा देखूं भी तो कि तुम कैसे शिकारी हो! मुल्ला ने अपने मित्र चंदूलाल को कहा कि अब शिकार करना मुश्किल है। इसे देख कर ही मेरे हाथ-पैर कंपते हैं। लगाऊंगा निशाना कहीं, लग जाएगा कहीं।
लेकिन जब मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी जा रही थी तो चंदूलाल की पत्नी
भी पीछे नहीं रह सकती थी। चंदूलाल की पत्नी भी साथ हो ली। एक से एक घटनाएं घटीं उस शिकार की यात्रा पर।

पहली घटना तो यह घटी कि मुल्ला नसरुद्दीन ने गोली मारी, उड़ रहे पक्षियों को तो नहीं लगी, चंदूलाल की बैठी पत्नी को लगी। चंदूलाल ने कहा, हद कर दी भाई! यह क्या किया? मेरी पत्नी मार डाली! मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, अरे इसमें क्या नाराज होने की बात है! यह तुम बंदूक लो और मेरी पत्नी को मार लो। बराबर हो गया। मगर चंदूलाल भी एक पहुंचा हुआ पुरुष है। उसने कहा कि इतना सुख मैं तुम्हें नहीं दे सकता। दोस्त तो वही जो दुख में काम आए। दुख में काम आ सकता हूं, सुख तुम्हें दे सकता नहीं। अब जो हुआ सो हुआ। मगर दूसरे दिन दूसरी घटना घटी। चंदूलाल एकदम भागा हुआ आया और नसरुद्दीन से कहा, क्या कर रहे हो? नसरुद्दीन अपनी बंदूक में गोलियां भर रहा था। कहा कि तुम तो गोलियां भर रहे हो मचान पर बैठे हुए और हमने जो तंबू लगाया है, तुम्हारी पत्नी वहां अकेली है, और एक चीता अंदर घुस गया है। मुल्ला फिर भी अपनी गोलियां भरता रहा। चंदूलाल ने कहा, तुम समझे कि नहीं? उसने कहा, सब समझ गया। लेकिन इसमें मेरा क्या कसूर? अब चीता घुसा है, खुद भूल की है, खुद भोगे। हमने भूल की, हमने भोगा। और चीतों से मुझे ऐसे भी कोई बड़ा लगाव नहीं है। जाए भाड़ में।
यूं दोनों पत्नियों से छुटकारा हुआ। पहले पत्नियों के डर के कारण निशाना नहीं लग रहा था, तीसरे दिन खुशी के कारण निशाना चूक गया। उड़ रहे थे हंस, पंक्ति उड़ रही थी हंसों की, होगी कोई पच्चीस-तीस हंसों की कतार। और मुल्ला नसरुद्दीन ने चलाई गोली। कोई सिक्खड़ भी मारता पच्चीस-तीस हंसों में तो एकाध को चोट लग जाती। गोली चल गई, कोई हंस गिरा नहीं। मुल्ला एक क्षण चुप रहा और फिर चंदूलाल से बोला, चंदूलाल, समझे कुछ? चंदूलाल ने कहा, क्या खाक समझें? अरे--मुल्ला ने कहा--समझो, चमत्कार देख रहे हो! हंस मर गए और उड़ रहे हैं। इसको कहते चमत्कार!
हिमालय की गुफाओं में, चांद-तारों पर भी आदमी पहुंच जाए तो भी कोई बड़ा खतरा नहीं है। यहां जिंदगी इतनी कष्टपूर्ण है कि आदमी कहीं भी भाग जाना चाहता है। सदियों से आदमी भागता रहा है। लेकिन परमात्मा की खोज बहुत थोड़े से लोगों ने की है। क्योंकि संसार से भागता है अपने को बचाने के लिए, लेकिन परमात्मा की खोज करने के लिए साहस चाहिए अपने को खोने का। वह बचाने की बात नहीं है, खोने की बात है। वह धंधा बड़ा उलटा है।
"पलटू दिवाल कहकहा, मत कोई झांकन जाय।"
कहते हैंः पहले ही चेता देता हूं भाई। मत कोई खोजने जाए, झांकने जाना मत। मेरी मानो तो इस झंझट में पड़ना मत। यह केवल कुछ हिम्मतवर लोगों की बात है। यह थोड़े से चुनिंदा लोगों की बात है।
मुझसे लोग पूछते हैं कि कितने लोगों को आप संन्यासी बनाएंगे? मैंने कहा, मेरा सवाल बनाने का नहीं है। सवाल यह है कि कितने लोग बन सकते हैं? थोड़े से ही लोग बन सकते हैं। मैं तो किसी को रोकूंगा नहीं। लेकिन सावधान तो करना ही पड़ेगा, क्योंकि रास्ता खतरनाक है। एक कदम आगे बढ़ा दिया तो लौटना मुश्किल होता चला जाता है, रोज-रोज मुश्किल होता चला जाता है। और सावधान पहले कर देना जरूरी है। सावचेत कर देना जरूरी है। कोई पीछे फिर यह न कहे कि हमें पहले बताया नहीं।
इसलिए पलटू कहते हैंः "मत कोई झांकन जाय।"
कि मेरी मानो तो घर लौट जाओ। कि मेरी मानो तो अपनी दुकानदारी करो। कि मेरी मानो तो धन कमाओ, चुनाव लड़ो, पद पर पहुंचो। मेरी मानो तो कुछ सस्ता काम करो। मेरी मानो तो चार दिन की जिंदगी है, क्यों गंवाने को आतुर हो रहे हो, कुछ कमा लो।
पलटू बड़ा व्यंग्य कर रहे हैं। संतों की वाणी में बड़ी चोट होती है, बड़े गहरे व्यंग्य होते हैं।
वे यह कह रहे हैं कि अगर कायर हो तो अच्छा है पहले से झंझट में न पड़ो। पूजो--मंदिर में मूर्तियां हैं। ईश्वर की खोज वगैरह में मत पड़ो, वे मूर्तियां भली हैं। वे कुछ गड़बड़ नहीं कर सकती हैं। वे तुम्हारी क्या गड़बड़ करेंगी? तुम्हारा क्या बिगाड़ लेंगी? उन मूर्तियों पर चूहे चढ़ जाते हैं, जीवन जल छिड़क जाते हैं, और मूर्तियां कुछ नहीं कर सकतीं। हनुमान जी झाड़ के नीचे बैठे हैं और कुत्ता टांग उठाए खड़ा हुआ है, और हनुमान जी कुछ नहीं कर रहे। इन्हीं से निपटो। यही सस्ता काम है। ईश्वर को खोजने वगैरह की झंझट

में न पड़ो। शास्त्र उपलब्ध हैं, अब सत्य को तुम्हें खोज कर क्या करना है! मोहम्मद कर गए, महावीर कर गए, मूसा कर गए, अब तुम्हें क्या करना है खोज कर और! कोई हरेक व्यक्ति को खोजना जरूरी है? अरे अब तो तुम रट लो, कंठस्थ कर लो। तोते कर लेते हैं कंठस्थ, तुम्हें क्या अड़चन! तुम तो आदमी हो, तोतों से तो ज्यादा ही तुम में समझ है। याद कर लो। जरा सी स्मृति चाहिए। घोखते रहोगे गीता तो याद हो ही जाएगी। घोखते-घोखते याद हो ही जाएगी। और गीता याद हो गई तो अब कृष्ण में और तुम में भेद क्या रहा? अरे यही तो कृष्ण बोलते थे, वही तुम बोलने लगे। और अर्जुनों की कोई कमी नहीं है, बुद्धुओं की कोई कमी नहीं है, कहीं भी कोई मिल जाएगा।
मैं एक गांव में ठहरा। एक सज्जन को मेरे पास लाया गया और कहा गया कि आप बड़े महात्मा हैं, जगतगुरु हैं। मैंने कहा, भई, मैं भी जगत में रहता हूं, मैंने कभी सुना भी नहीं इनके बाबत। ये जगतगुरु कैसे? जगतगुरु भी थोड़े हैरान हुए। यहां तो गांव-गांव जगतगुरु हैं, मुहल्ले-मुहल्ले। जगतगुरु होना तो बिल्कुल ही आसान मामला है। मैंने कहा, कितने आपके शिष्य हैं? जो उनको लाए थे, वे कहने लगे, अब आप क्या पूछते हैं शिष्यों की, मैं ही अकेला इनका एकमात्र शिष्य हूं। तो मैंने कहा, इतने चिंतित न होओ, एक काम करो। जगतगुरु को मैंने कहा कि आप ऐसा काम करो, इस शिष्य का नाम जगत रख लो, झंझट खत्म हो गई। तुम जगतगुरु, यह जगत--तुम जगत के गुरु। फिर तुम पर कोई एतराज नहीं उठा सकता। कानूनन कोई एतराज नहीं उठा सकता। तर्कपूर्ण बात हो जाएगी। तर्कशुद्ध हो जाएगी बात।
मंदिर हैं, मस्जिद हैं, गिरजे हैं, गुरुद्वारे हैं, ग्रंथ हैं, जगतगुरु हैं, शंकराचार्य जगह-जगह हैं--तुम्हें करना क्या है खोज कर! किसी की भी शरण गह लो। खोज खतरनाक मामला है।
पलटू यही कह रहे हैं कि हिम्मत हो तो इधर आना। मिटने का साहस हो तो इधर आना। अहंकार को गलाने की क्षमता हो तो इधर आना।
"पलटू दिवाल कहकहा, मत कोई झांकन जाय।
पिय को खोजन मैं चली, आपुई गई हिराय।।"
पलटू कहते हैं, मेरे अनुभव से कुछ सीखो। मैं भी उस प्यारे को खोजने निकली थी। और वह प्यारा मिला, जरूर मिला, मगर कब मिला? तब मिला जब मैं खो गई।
इसमें दो बातें ख्याल करना। ये तुम्हें बहुत बार मौके आएंगे कि संत अचानक स्त्रैण भाषा में बोलने लगते हैं। कब अचानक स्त्रैण भाषा में बोलने लगेंगे, इसे तय करना मुश्किल है। लेकिन जब भी वे सत्य के करीब पहुंचते हैं, जब भी वे सत्य की कोई बात कहना चाहते हैं, तो तत्क्षण स्त्रैण भाषा में बोलते हैं। उसका कारण है। क्योंकि यह स्त्री की ही क्षमता है कि गल जाए, कि पिघल जाए। यह स्त्री की ही क्षमता है कि प्रेम में लीन हो जाए। पुरुष की अकड़ आखिरी दम तक जाती नहीं। पुरुष अहंकार को बचाता है, सम्हालता है। पुरुष जैसे अहंकार का प्रतीक है। जल भी जाए तो भी... जैसे रस्सी जल भी जाए तो भी उसकी अकड़ नहीं जाती। मरते-मरते तक पुरुष की अकड़ नहीं जाती।
परमात्मा को पाने के लिए स्त्रैण होना जरूरी है। स्त्रैण होने का मतलब यह नहीं है कि तुम्हें वस्तुतः स्त्री होना पड़ेगा। स्त्रैण होने का अर्थ हैः एक स्त्रैण मनोविज्ञान की जरूरत है। स्त्रैण होने का अर्थ हैः ग्राहक होने की जरूरत है, आक्रामक होने की नहीं।
पुरुष आक्रामक है। वह हमलावर है। उसे आसानी पड़ती है अगर धन पाना हो, क्योंकि धन में आक्रामक होना पड़ेगा। यूं तुम बैठ रहो अपने घर में तो धन आ नहीं जाएगा। चाहे तुम लाख कहो कि जब उसे देना होता है तो छप्पर फाड़ कर देता है। मैंने तो नहीं देखा कभी कि उसने किसी को दिया हो और छप्पर फाड़ कर दिया हो। तुम्हीं को किसी का छप्पर फाड़ कर घुसना पड़ता है। फिर अपने को बचाने के लिए भला तुम कहने लगो कि जब उसको देना होता है, छप्पर फाड़ कर देता है। कि हम क्या करें, हम तो अपने घर में बैठे थे, वह एकदम आया और छप्पर फाड़ कर गिरा दिया।
ये तुम्हारी बचाने की तरकीबें हैं अपने को। लेकिन तुम्हीं को छप्पर फाड़ना पड़ता है। कोई ऐसा नहीं होता कि आए एकदम परमात्मा और तुम्हें मनाए कि भैया, राष्ट्रपति हो जाओ। तुम्हीं को घर-घर, द्वार-द्वार भीख मांगते फिरना

पड़ता है। एक-एक वोट के लिए, एक-एक मत के लिए गिड़गिड़ाओ, दांत निपोरो, उलटी- सीधी बातें करो, मक्खन लगाओ, हर आदमी के सामने झुको, जो भी बन सकता हो खुशामद में लोगों की करो, क्योंकि सत्ता पानी है।
लेकिन कुछ चीजें हैं जो खोजने से नहीं मिलतीं, खोजने से और दूर हो जाती हैं; जिन्हें आक्रामक होकर पाया ही नहीं जा सकता। क्योंकि उनको पाने की पहली शर्त है कि तुम्हारे भीतर से आक्रामकपन, तुम्हारे भीतर से हिंसात्मकता, तुम्हारे भीतर से यह विजय का जो भाव है यह विदा हो जाए; तुम्हारे भीतर से अहंकार जड़ से कट जाए--यह उनके पाने की पहली शर्त है। और परमात्मा उनको ही मिलता है जो शून्य हो जाते हैं, जो न हो जाते हैं, मिट जाते हैं।
इसलिए अचानक अनेक बार संतों की वाणी में तुम्हें यह मिलेगा कि पुरुष
की भाषा बोलते वक्त वे कभी भी स्त्री भाषा में बोलने लगते हैं। तुम चौंकते भी नहीं। तुम धीरे-धीरे इसके आदी हो गए हो कि यह संतों की आदत है। यह आदत की बात नहीं है, इसके पीछे राज है--गहरा राज है।
"पिय को खोजन मैं चली, आपुई गई हिराय।"
जैसे ही उस परमात्मा का नाम आता है, परमात्मा के आते ही संत एकदम स्त्रैण हो जाता है। कबीर कहते हैंः मैं राम की दुल्हनिया। फिर वह दूल्हा नहीं रह जाता, दुल्हनिया हो जाता है। फिर राम आ गया तो अब राम दूल्हा, अब वह राम की दुल्हनिया।
स्त्री की कुछ खूबियां हैं। वह प्रतीक्षा करती है, आक्रामक नहीं होती। प्रेम भी हो उसे तो अपनी तरफ से निवेदन नहीं करती, राह देखती है। पुरुष को ही निवेदन करना पड़ता है। अगर कोई स्त्री किसी पुरुष के पीछे पड़ जाए तो पुरुष घबड़ा जाएगा, पहले ही से भाग जाएगा, पहले ही से डर जाएगा। स्त्री कभी किसी के पीछे नहीं पड़ती। भीतर कितना ही उसके लिए आग्रह उठ रहा हो, प्रेम जग रहा हो, मगर वह प्रतीक्षा करेगी।
वह उसका गुणधर्म है। वह उसका प्रसाद है। वह राह देखेगी। और तुम जब उससे प्रार्थना करोगे प्रेम की, तब भी वह एकदम से हां नहीं भर देगी। हां भी भरेगी, लेकिन कहेगी "नहीं"। इस ढंग से कहेगी नहीं, इस प्यारे ढंग से कहेगी कि तुम समझ जाओगे कि नहीं का अर्थ हां है। यूं रस-भरे ढंग से, यूं प्रीतिकर ढंग से नहीं का उच्चार करेगी, इतने मदमाते ढंग से, इतनी मस्ती से, इतने आह्लाद से कि उसमें कहीं भी नकार नहीं होगा, लेकिन कहेगी "नहीं"।
"नहीं" कह-कह कर वह सिर्फ घोषणा कर रही है कि इतना भी आक्रामक भाव नहीं
है उसमें कि एकदम से हां भर दे। तुम निवेदन करो और स्त्री एकदम से हां भर दे, तो भी तुम थोड़े चौंक जाओगे। क्योंकि उसका मतलब यह हुआ कि वह राह ही देख रही थी कि कब तुम कहो और कब वह हां भरे। वह "नहीं" करती रहेगी। वह शर्माती रहेगी। वह लजाती रहेगी। घूंघट पुरुषों ने नहीं खोजा; घूंघट स्त्रियों की अपनी खोज है। वह घूंघट डाल लेगी। वह यूं छिप-छिप कर देखेगी। वह अपने को छिपाएगी। वह यूं छाया में खड़ी हो जाएगी और अंधेरे में। उसके प्राण आतुर होंगे और प्रार्थनापूर्ण होंगे। वह तत्पर होगी। मगर तत्परता की कोई घोषणा नहीं की जाएगी, क्योंकि घोषणा में भी आक्रमण आ जाता है। वह राजी भी होगी तो यूं कि जैसे तुम्हीं पीछे पड़ गए तो वह करे भी तो क्या करे। राजी भी होगी तो यूं जैसे कि तुमने उसे राजी कर लिया। तुमने इतना आग्रह किया, इतना आग्रह किया कि अब और इनकार करना अशोभन मालूम पड़ने लगा।
परमात्मा के साथ व्यक्ति को इतना ही अनाक्रामक होना होता है।
महात्मा गांधी एक शब्द का उपयोग करते थे--सत्याग्रह। वह शब्द बिल्कुल गलत है। वैसा शब्द बनाना नहीं चाहिए। वैसा शब्द मौलिक रूप से भ्रांतिपूर्ण है। सत्य का कोई आग्रह नहीं होता। और जैसे ही सत्य का आग्रह होता है, सत्य असत्य हो जाता है। सब आग्रह असत्य के होते हैं। आग्रह में ही असत्य है। आग्रह का अर्थ हैः ऐसा होना चाहिए। सत्य तो अनाग्रही होता है। चुपचाप, मौन, प्रतीक्षातुर, प्रार्थना से भरा हुआ, गहन आकांक्षा से, अभीप्सा से भरा हुआ, प्यास से आतुर, मगर आग्रह-शून्य।
इसलिए संत तत्क्षण, जब भी परमात्मा की बात करेंगे, स्त्रियों जैसी भाषा बोलने लगेंगे। तब वे एकदम मजनू नहीं रह जाएंगे, एकदम लैला हो जाएंगे।
"पिय को खोजन मैं चली, आपुई गई हिराय।"

मैं चली थी प्यारे को खोजने, पलटू कहते हैं, लेकिन तुम्हें सच-सच कह दूं कि पीछे तुम मुझे दोष न देना, कि तुम पीछे मुझे उत्तरदायी न ठहराना--गई थी खोजने, खो गई लेकिन। और जब अपने को खोया, तभी उसे पाया। उसे पाने की शर्त ही अपने को खोना है।
दूसरी बात ध्यान में रखने जैसी जरूरी है कि सत्य की खोज कोई रूखी-सूखी तर्क की खोज नहीं है। एक तो तार्किक खोज होती है जो बिल्कुल रूखी-सूखी और गणित की होती है। दो और दो चार जैसी। जिसमें कोई रसधार नहीं बहती। अब दो और दो पांच हों कि दो और दो चार हों कि दो और दो तीन हों--किसको क्या लेना-देना है? किसी के हृदय पर छुरी न चल जाएगी अगर दो और दो पांच होते हों। होते हों तो होते हों; इससे किसी के प्राणों में कोई आघात नहीं लग जाएगा। तर्क की खोज रूखी-सूखी है, मरुस्थलीय है। वहां न कोई हरियाली है, न कोई पौधे लगते, न कोई झरने बहते, न झरनों का कलकल नाद है, न फूल खिलते, न फूलों की गंध उड़ती; दूर-दूर तक रेगिस्तान, दूर-दूर तक जहां तक आंखें जाएं, सब सूखा-सूखा है। इसलिए तार्किक निपट सूखा होता है। और तार्किक आस्तिक नहीं हो सकता। इसीलिए नहीं हो सकता क्योंकि आस्तिकता रसभरी घटना है। रसो वै सः! परमात्मा की परिभाषा अगर कोई भी कभी करीब से करीब पहुंची है तो वह यह है कि वह रस-रूप है।
इसलिए मैं कहता हूंः काव्य उसके ज्यादा निकट है दर्शनशास्त्र की बजाय। संगीत उसके ज्यादा निकट है गणित की बजाय। नृत्य उसके ज्यादा निकट है विज्ञान की बजाय। स्त्रियां उसके ज्यादा निकट हैं पुरुषों की बजाय। हृदय उसके ज्यादा निकट है मस्तिष्क की बजाय।
इसलिए दूसरी बातः संत जब भी उसकी बात करेंगे तो उसकी बात यूं करेंगे जैसे प्यारे की बात की जाती है, प्रीतम की बात की जाती है।
अब प्रेम में तर्क नहीं होता। प्रेम अतर्क्य है। इसलिए तो हम प्रेम
को अंधा कहते हैं। प्रेम को अंधा कौन कहता है? तर्क से भरे हुए लोग प्रेम को अंधा कहते हैं। जिन्होंने यह मान रखा है कि तर्क आंख है, वे लोग प्रेम को अंधा कहते हैं।
लेकिन जिन्होंने प्रेम को जाना है, वे इस पर हंसेंगे; क्योंकि उनका जानना बिल्कुल भिन्न है। उनका जानना तो यह है कि प्रेम में ही आंख है। प्रेम ही एकमात्र आंख है। क्योंकि प्रेम से ही हृदय खुलता है। और हृदय के द्वार खुले तो दृष्टि निखरती है, साफ होती है; तो ही वस्तुतः दर्शन उपलब्ध होता है, साक्षात्कार होता है। यह हृदय की सेज पर ही मिलन होता है। भक्त की और भगवान की सुहागरात हृदय की सेज पर होती है। यह मिलन खोपड़ी में कभी नहीं हुआ--अब तक नहीं हुआ और आगे भी हो नहीं सकता।
लेकिन जो लोग सिर्फ खोपड़ी में जीते हैं, जिनका सारा प्राण सिकुड़ कर खोपड़ी में समा गया है, जो भूल ही गए हैं कि हृदय जैसी कोई चीज भी होती है, जिनके लिए हृदय सिर्फ फेफड़े का नाम है, फुफ्फस का नाम है, जिनके लिए हृदय का अर्थ होता है खून को शुद्ध करने का यंत्र और कुछ भी नहीं--उनका परमात्मा से कोई संबंध नहीं बन सकता।
तर्क व्यक्ति को नास्तिक बना सकता है, आस्तिक नहीं। और मजे की बात तो
यह है कि तर्क भी व्यक्ति को नास्तिक तभी बना सकता है जब व्यक्ति एक सीमा पर जाकर रुक जाए। अगर वह तर्क भी करता ही चला जाए तो एक सीमा पर जाकर तर्क आत्मघात कर लेता है, अपने को ही काट लेता है। पहले औरों को काटता है... जैसे तुम सांझ को दीया जलाओ तो पहले दीया तेल का जलाता है, फिर बाती को जला डालता है; जब तेल भी जल गया और बाती भी जल गई तो फिर दीया थोड़े ही जलता है, फिर दीया बुझ जाता है। वही दशा तर्क की है। पहले तर्क तेल को जलाएगा, जब तेल चुक जाएगा तो बाती को जलाएगा, और जब बाती भी चुक जाएगी तो तर्क आत्मघात कर लेगा, खुद भी मर जाएगा। इसलिए जो वस्तुतः तार्किक हैं, अगर वे तर्क करते ही चले जाएं, रुकें न... ।
जिनको तुम आमतौर से कहते हो निष्कर्ष, वे निष्कर्ष नहीं होते, वे सिर्फ तुम्हारे आलस्य के सबूत होते हैं। निष्कर्ष जिनको तुम कहते हो, वे निष्पत्तियां नहीं होते, वे सिर्फ इस बात की खबर होते हैं कि तुम थक गए अब। अब तुम कहते हो कि अब बस ठीक है, यहीं तक ठीक है, अब जो जान लिया यहीं तक मान लेते हैं। अब कब तक चलते रहें! अब कब तक सोचते रहें! अगर तार्किक भी तर्क

करता ही चला जाए, करता ही चला जाए, करता ही चला जाए, तो वह सीमा आ जाती है जहां तर्क अपना आत्मघात कर लेता है। और तब आस्तिकता का जन्म हो सकता है। मगर तर्क के जाने पर ही होता है। तर्क रूखी-सूखी बात है। उसमें प्रेम की कोई गुंजाइश नहीं है।
इसलिए जब भी संत परमात्मा की बात करें, सत्य की बात करें, तो तत्क्षण प्रेम की बात करते हैं!
"पिय को खोजन मैं चली!"
अब तुम जरा दोनों का भेद समझो। जब तुम कहते हो मुझे सत्य खोजना है, तब तुम्हारी जिज्ञासा बौद्धिक है। जब तुम कहते हो मुझे प्यारे को खोजना है, तब तुम्हारी जिज्ञासा हार्दिक हो जाती है। छोटा सा भेद, मगर बड़ा भेद है, जमीन-आसमान का फर्क है।
मैं भी तुमसे कहूंगाः सत्य को खोजने की बात बौद्धिक ऊहापोह है। उससे कभी कुछ हाथ नहीं लगा। हजारों लोग सोचते रहे हैं, सदियां बीत गई हैं और दर्शन-शास्त्र किसी नतीजे पर नहीं पहुंचा है। दर्शन-शास्त्र एकमात्र शास्त्र है जिसमें निष्कर्ष हैं ही नहीं, बस जिसमें सोच-विचार, सोच-विचार, सोच-विचार। हां, जो लोग थक जाते हैं सोच-विचार में, जहां थक गए उसी को निष्कर्ष मान लेते हैं। वह उनकी थकान की खबर देता है।
मैं दर्शन-शास्त्र का विद्यार्थी रहा हूं। मैंने जितने अध्यापक दर्शन-शास्त्र के पाए, सब थके हुए लोग थे। क्योंकि उन सबने निष्कर्ष ले लिए थे। और मेरा उनसे कहना यही था कि आपके निष्कर्ष या तो आप कहें कि हृदय से आए हैं, तब मुझे कुछ विवाद नहीं है। क्योंकि हृदय से क्या विवाद! विवाद के बाहर बात हो गई। फिर मैं आपकी बात चुपचाप सुनने को राजी हूं। क्योंकि हृदय तो गीत गाता है। गीत में कोई तर्क थोड़े ही होते हैं।
तुम किसी गायक से विवाद थोड़े ही करते हो कि तुम्हारा गीत गलत कि सही। गीत सुंदर होता है, असुंदर होता है; लेकिन गलत और सही नहीं होता। गीत में क्या गलत और क्या सही! गीत में राग हो सकता है, रागिनी हो सकती है, संगीत हो सकता है या न हो, मगर गलत और सही गीत में कुछ नहीं होता। गलत और सही गीत की कसौटी नहीं है। वह तो वैसा ही पागलपन होगा जैसे कोई सोने को कसने का जो पत्थर होता है सुनार के पास, उस पर फूलों को कसे, और जो फूल उस पर सही न उतरें उनको फेंकता जाए और कहे कि ये गलत। कोई फूल सही नहीं उतरेगा, क्योंकि सोने को कसने का पत्थर फूलों को कैसे कस सकता है! वह फूलों के लिए मापदंड नहीं है, कसौटी नहीं है। वह सोने के लिए ठीक है।
तो मैं उनसे कहता था कि अगर आप कह दें मुझसे यह कि आपका नतीजा हार्दिक
है, मैं विवाद छोड़ देता हूं। मगर दर्शन-शास्त्र के प्रोफेसर स्वभावतः ऐसी कमजोरी की बात नहीं कह सकते। इसको वे कमजोरी की बात समझते हैं--हृदय की बात। नहीं, वे कहेंगे कि हमने तर्क से यह नतीजा लिया है। तो फिर मैं कहता कि फिर बात छिड़ेगी। क्योंकि मेरी दृष्टि यह है कि तर्क कोई नतीजा ले ही नहीं सकता।
एक अध्यापक से मैं आठ महीने तक उलझता रहा। धीरे-धीरे हालत यह आ गई कि विद्यार्थी और भी थे, उन्होंने आना ही बंद कर दिया; क्योंकि कोई सार ही नहीं। पढ़ाई-लिखाई तो वहां हो ही नहीं सकती थी। मैं पहुंचता और अध्यापक पहुंचते। आखिर वे भी घबड़ा गए, क्योंकि परीक्षा करीब आ गई, विद्यार्थियों का क्या होगा! और उनकी नौकरी का क्या होगा! वे मुझसे कहने लगे कि अब परीक्षा करीब आ गई, तुम इंच भर आगे बढ़ने देते नहीं।
मैंने कहा, एक छोटी सी बात तुम कह दो और मैं चुप हो जाऊंगा। तुम यह कहो
कि तुम्हारे नतीजे हार्दिक हैं, फिर मुझे कोई एतराज नहीं है। क्योंकि प्रेम से क्या एतराज हो सकता है! अब किसी व्यक्ति को गुलाब के फूल प्यारे लगते हैं, इससे हम विवाद नहीं करते। हम कहते हैं यह उसकी पसंद। और किसी को जूही के फूल अच्छे लगते हैं तो इसमें कुछ झगड़ा थोड़े ही है। कोई जूही के फूल और गुलाब के फूलों को मानने वाले लोग तलवारें तो नहीं खींच लेते।
इसलिए मैं कहता हूं कि जो धार्मिक लोग एक-दूसरे से विवाद करते हैं, वे बड़े मूढ़तापूर्ण कृत्य में लगे हुए हैं। क्योंकि धर्म का संबंध हृदय से है। किसी को महावीर प्यारे लगते हैं, बिल्कुल ठीक। और किसी को बुद्ध प्यारे लगते हैं, बिल्कुल ठीक। चलो इतना ही क्या कम है कि कोई प्यारा तो

लगता है। किसी के बहाने प्रेम तो उमगेगा। किसी के बहाने प्रेम में अंकुर तो आएंगे। किसी के बहाने प्रेम हिलोरें तो लेगा। फिर किसके बहाने लेता है, इससे क्या लेना-देना है! तुम्हें आम गिनने हैं कि आम खाने हैं? तुम्हें आम खाने हैं कि गुठलियां गिननी हैं? फिर किस वृक्ष के आम किसको प्रीतिकर लगते हैं, इसमें कोई विवाद नहीं है।
मैंने उनसे कहा, आप साफ-साफ कह दें कि आपके हार्दिक निष्कर्ष हैं, कि
आप ईश्वर को हृदय से मानते हैं श्रद्धापूर्वक, फिर मुझे कोई झंझट नहीं है। लेकिन अगर आप यह कहें कि मेरा तार्किक निष्कर्ष है, तो फिर यह बात समाप्त होने वाली नहीं है।
और आखिर मामला यहां तक पहुंचा कि उन्होंने इस्तीफा दे दिया। उन्होंने लिख कर दे दिया कि या तो मैं पढ़ाऊंगा या यह विद्यार्थी पढ़ेगा, हम दोनों एक साथ नहीं चल सकते।
मुझे बुलाया प्राचार्य ने और उन्होंने कहा कि मामला क्या है? हमारे पुराने अध्यापक हैं, अनुभवी हैं। अब तक ऐसा उन्होंने कभी कहा नहीं किसी विद्यार्थी के संबंध में। आदृत हैं।
मैंने कहा कि वे होंगे आदृत। इससे सिर्फ इतना ही सिद्ध होता है कि अभी
तक उनका किसी विद्यार्थी से मुकाबला नहीं हुआ था। अब उनका मुकाबला हो गया है। उनको भी सामने बुला लें, ताकि बात आपके आमने-सामने हो जाए। बात सीधी- साफ है। इशारे में हल हो जाएगी। वे इतना कह दें कि उनके नतीजे हार्दिक हैं, मुझे फिर कोई विवाद नहीं, मैं चुप हो जाऊंगा। मगर अगर वे यह जिद करते हों कि उनके नतीजे बौद्धिक हैं, तो फिर मैं छोड़ने वाला नहीं हूं। परीक्षा हो, न हो। यह साल बीते, दो साल बीतें। मेरी जिंदगी जाए, उनकी जिंदगी जाए। उन्होंने कहा कि वे तो कालेज ही आने को तैयार नहीं हैं। वे तो नौकरी
ही छोड़ने को बैठे हुए हैं। वे तीन दिन से आए भी नहीं हैं।
मैंने कहा, वे न आएं, यह उनकी मर्जी।
प्राचार्य ने कहा, मुझे तुम्हारी बात समझ में आती है। तुम्हारी बात सही है। लेकिन हमारी मजबूरी भी समझो। इस कालेज को नुकसान होगा। अच्छा हो तुम स्वयं हट जाओ।
मैंने कहा, वह भी मैं कर सकता हूं कि मैं हट जाऊं। लेकिन मैं यूं ही नहीं हट जाऊंगा। आपको मुझे कालेज से निष्कासित करना होगा।
कहा, पागल हो! हम किसी को निष्कासित करते हैं तो वह कहता है कि आप निष्कासित न करें, मैं स्वयं हट जाता हूं। तुमको हम कह रहे हैं कि तुम चुपचाप हट जाओ, दूसरे कालेज में भर्ती हो जाओ। मैं इंतजाम कर देता हूं दूसरे कालेज में तुम्हारे भर्ती होने का। लेकिन तुम कहते हो निष्कासित करो!
मैंने कहा, बिना निष्कासित किए मैं नहीं जाऊंगा। निष्कासित, मेरे लिए प्रमाणपत्र होगा-- एक कालेज मुझसे हारा, अब दूसरे से निपटेंगे। और आपकी सिफारिश से मैं किसी कालेज में नहीं जाऊंगा, क्योंकि आपको क्यों झंझट में डालूं, क्योंकि कहानी यह वहां भी दुहरने वाली है। आप कहां मेरा साथ दोगे? अपने कालेज में साथ नहीं दे पा रहे तो दूसरे कालेज में आप क्या साथ दोगे! अपने बलबूते पर जाऊंगा। और यूं मुझे कुछ रस नहीं है आपकी उपाधियों में, मिलती हैं कि नहीं। मैं तो उपाधियों को व्याधियां मानता हूं। सर्टिफिकेट लेकर मुझे सिर्फ फाड़ने हैं, और कुछ करना नहीं है। और वही मैंने किया। सर्टिफिकेट लेकर फाड़े ही। करता भी क्या, उनको रख कर भी क्या करता! पर मैंने कहा, मेरी मौज है कि जरा देख लूं, टटोल लूं चारों तरफ कि जिनको बुद्धिमान कहा जा रहा है, उनमें कितनी बुद्धिमत्ता है।
तर्क से कोई निष्कर्ष नहीं लिया जा सकता। इसलिए संत सदा प्रेम की बात करते हैं, तर्क की बात नहीं करते। संतों से जो विवाद करे वह नासमझ है। वे विवाद की बात ही नहीं कर रहे हैं। उन्होंने तो पहले ही कह दिया कि विवाद का सवाल नहीं है।
"पिय को खोजन मैं चली!"
मैं प्यारे को खोजने चली थी। और हुआ यूं कि--
"आपुई गई हिराय!"

पलटू कहते हैंः मैं खुद खो गई। फिर चुप हैं। फिर यह भी नहीं कहा कि फिर क्या हुआ। तुम जानना चाहोगे कि फिर क्या हुआ। लेकिन पलटू चुप हैं; अब बोले तो कौन बोले! जब खो ही गए तो अब बोले तो कौन बोले। अब समझ लो। अब बात समझने की है, कहने की नहीं। खो लेने से ही वह मिलता है। जैसे नदी सागर में खो जाती है तो सागर हो जाती है, ऐसे ही जब भक्त भगवान में खो जाता है तो भगवान हो जाता है।
आनंद प्रतिभा, प्रेम पर चर्चा के लिए यहशृंखला होगी। निश्चित ही प्रेम पर चर्चा का अर्थ होगा कि तर्क पर भी चर्चा करनी होगी। तर्क की पृष्ठभूमि में ही प्रेम समझ में आ सकेगा। क्योंकि जब तक हम विपरीत को सामने खड़ा न करें तब तक बात साफ नहीं होती। जैसे अंधेरे में रात तारे चमक आते हैं, ऐसे ही तर्क के अंधेरे में प्रेम के तारे चमक आते हैं।
तर्क में मुझे आनंद है, रस है। तर्क से मेरी कोई दुश्मनी नहीं। तर्क मेरे लिए खेल है, खिलवाड़ है। बस खेल ही लेकिन। जो उसी को जिंदगी समझ लेते हैं, वे अंधे हैं, वे नासमझ हैं। जो खिलौनों में ही अटक गए, वे पागल हैं। बचपन में ठीक, लेकिन जैसे-जैसे तुम प्रौढ़ होते हो वैसे-वैसे एक बात स्पष्ट होती जानी चाहिए कि जीवन तर्क से ज्यादा है। जीवन तर्कातीत भी है। और मरने के पहले उस तर्कातीत को जान लेना है, पहचान लेना है। उसको जानते ही अमृत का अनुभव हो जाता है।
तर्क की भी चर्चा और प्रेम की भी चर्चा। तर्क की चर्चा इस तरह जैसे ब्लैकबोर्ड और प्रेम की चर्चा ऐसे जैसे सफेद खड़िया से हम ब्लैकबोर्ड पर लिखें। चाहता तो हूं कि तुम सबको प्रेम की तरफ ले चलूं, मगर तुम सब कहीं न कहीं तर्क में अटके हो--कहो या न कहो, जानते होओ, न जानते होओ। आखिर तुम्हारा हिंदू होना, मुसलमान होना, ईसाई होना, जैन होना क्या है? सिवाय तर्क के और क्या है? यह तुम्हारा प्रेम तो नहीं।
अब जो आदमी जैन है, उसने महावीर को कब प्रेम किया? संयोगवशात जैन घर में पैदा हो गया है। एक जैन बच्चे को उठा कर मुसलमान घर में रख दो, फिर बड़ा होकर वह महावीर को प्रेम करे तो समझ में आएगा कि महावीर के प्रति प्रेम कोई स्वाभाविक घटना थी। नहीं, वह मोहम्मद को प्रेम करेगा। ईसाई घर में रख दो, वह जीसस को प्रेम करेगा। ईसाई कभी सोचता भी नहीं कि महावीर में कुछ प्रेम करने जैसा है। ईसाई तो बहुत दूर है, हिंदू नहीं सोचता!
तुम जिस घर में पैदा होते हो, जो संस्कार तुम्हें दिए जाते हैं, उन्हीं संस्कारों को तुम जीवन भर दोहराते रहते हो। यह सिर्फ बौद्धिक बात है, क्योंकि संस्कार बुद्धि में अटक जाते हैं। हृदय तक कोई संस्कार नहीं जाता। यही हृदय की अदभुत कीमिया है, खूबी है कि हृदय को कोई भी नष्ट नहीं कर सकता। बुद्धि की यही खराबी है। बुद्धि के साथ व्यभिचार हो सकता है। और व्यभिचार किया जा रहा है।
हर बच्चे की बुद्धि के साथ तुम व्यभिचार करते हो। बच्चे तो बड़े प्रतिभाशाली पैदा होते हैं। न कोई बच्चा हिंदू की तरह पैदा होता, न मुसलमान की तरह, न ईसाई की तरह, न जैन की तरह। लेकिन तुम जल्दी से उनकी गर्दनें पकड़ लेते हो। बच्चे तो बड़े ताजे होते हैं, मगर तुम मार डालते हो उनको। तुम उनकी हत्या कर देते हो। तुम उन्हें जहर पिलाना शुरू कर देते हो। तुम उन्हें वैमनस्य पिलाना शुरू कर देते हो। तुम उन्हें ईर्ष्या, शत्रुता, द्वेष, क्या-क्या नहीं पिलाते हो! दूध के साथ ही जहर मिलाया हुआ है!
तुम्हारे इस जहर से बहुत कम सौभाग्यशाली लोग छूट पाते हैं। मेरी सारी चेष्टा यहां यही है कि तुम्हें इस जहर से छुड़ा लूं। तुम जोर से पकड़े हो, क्योंकि तुम उसे जहर समझते नहीं। लेकिन बस तुम्हारे मस्तिष्क तक ही वह जहर जाता है, उससे गहरे नहीं जाता। इसी में तुम्हारे लिए आशा है, भविष्य है तुम्हारा, कि हृदय को कोई भी तुम्हारा नष्ट नहीं कर पाता। हृदय के साथ व्यभिचार असंभव है। बस बुद्धि के साथ व्यभिचार हो सकता है।
और बुद्धि के साथ काफी व्यभिचार तुम्हारे किया गया है। तुम्हारी बुद्धि को मैं चाहता हूं कि उस सीमा तक खींच कर ले चलूं, जहां वह खुद ही तुम्हारा साथ छा.ेड़ दे। उस सीमा तक खींच कर ले चलूं--पलटू दिवाल कहकहा--उस

दीवाल तक खींच कर ले चलूं तुम्हारी बुद्धि को जहां तुम खुद ही उस पार देख सको।
इसलिए मैं सीधी-सीधी श्रद्धा की शिक्षा नहीं देता। मेरी शिक्षा एक अर्थ में अनूठी है, मौलिक है। अगर तुम साधारण धार्मिक लोगों के पास जाओगे तो वे कहते हैं, भाई श्रद्धा रखो, आस्था रखो। मैं नहीं कहता। मैं तो कहता हूं, पहले जी भर कर तर्क कर लो। ताकि झंझट ही मिटे, कुछ बचे ही न तर्क करने को। पहले उससे सुलझ ही लो, निपट ही लो। बुद्धि जो-जो खेल दिखा सकती हो, उन्हें देख ही लो। वह तमाशा जी भर कर देख लो। उससे ऊब जाओ। उसको उसकी अतिशयोक्ति तक खींच कर ले चलो।
इसलिए तुम मेरे वचनों में एक तरफ तर्क की धार देखोगे। आस्तिक आ जाते हैं तो वे मेरी तर्क की धार से घबड़ा जाते हैं। वे दुखी होकर जाते हैं कि अरे, यह किस तरह का धर्म है! यह किस तरह की धार्मिकता है! क्योंकि वे तो बेचारे लचर-पचर आस्तिकता में मानते हैं।
मैं लचर-पचर, नपुंसक आस्तिकता में नहीं मानता। मैं मानता हूं ऐसी आस्तिकता में जो नास्तिकता के पार गई है। नास्तिकता को बाद नहीं दिया जिसने, नास्तिकता से बच कर नहीं गुजरी जो, नास्तिकता की आग से गुजरी है जो। तुम्हें उस सीमा तक ले चलना चाहता हूं जहां दीवाल पर तुम खुद चढ़ जाओ। तुम्हें सचेत भी कर देना चाहता हूं कि आ गई दीवाल। मत कोई झांकन जाय। अब सम्हल जाना। अब झांकना मत। अभी भी लौटना हो तो अभी लौटने का उपाय है। लेकिन जब तक दीवाल न आ जाए तब तक क्या कहना! तब तक तो ले चलता हूं दीवाल तक। तब तक तो पलटू भी ले गए। दीवाल पर चल कर तुमसे कह दूंगा कि अब तुम सोच लो एकबारगी। यह आ गई दीवाल। अब अगर झांका तो गए काम से। अब इस पार या उस पार का निर्णय है। अगर इधर रहना हो तो रह ही जाओ। फिर लौट कर पीछे मत देखना। मगर मैंने देखा यह है, मेरा अनुभव यह हैः जो लोग मेरे तर्क के साथ दीवाल तक चल सकते हैं, वे बिना झांके नहीं लौटते। उस दीवाल से कोई झांके बिना कैसे लौट सकता है? लाख पलटू कहें, लाख मैं कहूं कि मत झांकन कोई जाय। क्या होता है? उस दीवाल का आकर्षण ऐसा है। और जब तुम दीवाल से लोगों को झांकते और कूदते देखते हो और उनके कहकहे सुनते हो, तो तुम्हारे प्राण भी आतुर हो उठते हैं। तुम भी सोचते हो--एक बार बाजी लगा लें। एक बार दांव लगा लें। जिंदगी फिर मिले न मिले। यह दीवाल फिर मिले न मिले। फिर यहां तक आना हो या न हो। कौन जाने!
मगर मैं तुम्हें सचेत जरूर कर देना चाहता हूं, क्योंकि पीछे तुम यह न कहो कि आपने बताया नहीं और हम भूले से दीवाल पर चढ़ गए। भूले से किसी को दीवाल पर मैं चढ़ाना नहीं चाहता। तुम्हारे अज्ञान में तुम्हें दीवाल पर चढ़ाना नहीं चाहता। तुम पूरे बोधपूर्वक दीवाल पर चढ़ो तो ही दीवाल पर चढ़ोगे; तो ही उस पार झांक सकोगे।
और जिसने झांका है, वह मस्त हुआ है। वह मधुशाला में प्रविष्ट हो गया। इसलिए तो मैं इस अपने तीर्थ को मधुशाला कहता हूं। इसे मंदिर नहीं कहता, मयकदा कहता हूं। मंदिर तो मर गए मयकदे हैं। वहां कभी शराब बिकती थी। वहां कभी पियक्कड़ भी बैठे थे। कभी रिंदों की वहां महफिल थी। जब बुद्ध रहे होंगे तो वहां मयकदा था। पिलाने वाला ही न रहा, साकी ही न रहा, पंडित-पुरोहित रह गए, खाली बोतलें रह गईं, खाली बोतलों की पूजा चल रही है, या खाली बोतलों में गंगाजल पीया जा रहा है! अब गंगाजल से कहीं नशा आने वाला है? उसके लिए खालिस अंगूर की शराब चाहिए। उसके लिए सुर्ख शराब चाहिए। उसके लिए कोई जादूगर चाहिए जो छू दे जल को भी तो शराब हो जाए।
जीसस के जीवन में यह कहानी है कि उन्होंने सागर को देखा और उनके देखते
ही सागर शराब हो गया। ईसाई सोचते हैं यह चमत्कार है। यह चमत्कार नहीं है। यह तो सभी बुद्धों के जीवन की घटना है। बुद्ध जहां देखेंगे वहां शराब बरस जाएगी। सागर को देखेंगे तो सागर शराब हो जाएगा। तुम्हारी आंखों में आंखें डाल देंगे तो तुम्हारे भीतर शराब ही शराब दौड़ जाएगी, तुम्हारा रोआं-रोआं पुलकित हो जाएगा। तुम्हारा हाथ हाथ में ले लेंगे कि बस पलटू दिवाल कहकहा। चढ़ गए दीवाल। फिर छूट कर भागना मुश्किल है। यह अकेला प्रेम-विवाह है जिसमें तलाक नहीं हो सकता।

मगर सावधान जरूर गुरु कर देते हैं। सावधान कर देना बिल्कुल ही योग्य है, उचित है। क्योंकि यह बड़े खतरे का सौदा है। सब कुछ दांव पर लगा देना है। "पिय को खोजन मैं चली, आपुई गई हिराय।"
उन सबको निमंत्रण है जो अपने को खोने को राजी हों। इसलिए तर्क की बात करूंगा दीवाल तक ले चलने के लिए। तर्क की खूबी है कि दीवाल तक ले चल सकता है। फिर प्रेम की बात करूंगा, क्योंकि प्रेम की खूबी है कि वह दीवाल के पार ले चल सकता है।
मैं जीवन में सब स्वीकार करता हूं--तर्क भी और प्रेम भी; विज्ञान भी और धर्म भी। और मैं उसी व्यक्ति को समझदार मानता हूं जो जीवन की हर चीज का उपयोग कर ले। जो जहर का भी उपयोग करके औषधि बना ले। जो हर चीज को सीढ़ी बना ले। जीवन में कुछ भी त्याज्य नहीं है। हां, प्रत्येक चीज का रूपांतरण जरूर करना है।
योग प्रीतम ने एक गीत मुझे लिख कर भेजा है--
एक किरन काफी है सूरज तक जाने को
एक डगर काफी है मंजिल तक आने को
जीवन तो उत्सव है, नृत्य और गीत भरा
इसको हम स्वीकारें, जीकर तो देखें हम
माना हैं कांटे, पर फूल भी नहीं हैं कम थोड़ा तो हर्ष के झरोखे से लेखें हम एक गंध काफी है बगिया तक जाने को
एक ऋचा काफी है ब्रह्म में समाने को
एक किरन काफी है सूरज तक जाने को
एक डगर काफी है मंजिल तक आने को
माना है आंधी-तूफानों का शोर, मगर
जीवन का सागर संगीत भी सुनाता है
लहरों की क्रीड़ा में शिशु सा किल्लोलित है बड़वानल रखता, पर कमल भी खिलाता है
एक प्यास काफी है सागर तक जाने को
एक महर काफी है प्रभु-दर्शन पाने को
एक किरन काफी है सूरज तक जाने को
एक डगर काफी है मंजिल तक आने को
जीवन तो अवसर है, जीने पर निर्भर सब शब्दों को गाली में बदलें या गीत कहें शाप नहीं जीवन, वरदान है विधाता का
इसके रस में डूबें, इसमें सप्रीत रहें
एक अगन काफी है क्रांतियां उठाने को
एक लगन काफी है मुक्ति मधुर पाने को
एक किरन काफी है सूरज तक जाने को
एक डगर काफी है मंजिल तक आने को
बस तुम्हारे भीतर प्यास हो--जरा सी प्यास हो--तो मैं खींच कर ले चलूं तुम्हें दीवाल कहकहे तक। और ऐसा कौन आदमी होगा जिसके भीतर बिल्कुल ही प्यास न हो! ऐसा आदमी ही कैसे होगा जिसके भीतर परमात्मा को अनुभव करने की किन्हीं क्षणों में अभीप्सा न उठती हो! दबा देता हो, नकार देता हो, वह बात और, मगर ऐसा कौन आदमी होगा जिसके हृदय में कभी न कभी इस साधारण जीवन की व्यर्थता न दिखाई पड़ती हो और जिसके जीवन में यह प्रश्न न उठता हो कि क्या बस इतना ही है या और भी कुछ है!
एक भी आदमी ऐसा नहीं है जिसके जीवन में एकाध किरण न हो। अगर साहस हो तो
उस एक किरण के सहारे ही सूरज तक पहुंचा जा सकता है।
एक किरन काफी है सूरज तक जाने कोएक डगर काफी है मंजिल तक आने को
और तुम जो यहां तक आ गए हो, मेरे पास तक आ गए हो, नहीं चाहूंगा खाली लौट जाओ। तुम्हारी झोली भर देना चाहता हूं--ऐसे आनंद से कि तुम कितना ही बांटो तो चुके नहीं; ऐसे गीतों से कि तुम कितने ही गाओ तो मिटें नहीं, और-और जन्में, और-और बढ़ें; ऐसे प्रेम से कि तुम जितना उलीचो उतना ही गहन होता चला जाए।

एक गंध काफी है बगिया तक जाने कोएक ऋचा काफी है ब्रह्म में समाने को
और मैं देखता हूंः तुम्हारे भीतर इतना है। एक ऋचा तो प्रत्येक के भीतर है। जरा उसे जगाना है। जरा उसे सुगबुगाना है। जरा उस पर राख जम गई है, उसे झाड़ देना है।
सदगुरु सत्य नहीं दे सकता, लेकिन सदगुरु तुम्हारे भीतर सत्य पर जम गई राख को जरूर झाड़ दे सकता है; हवा दे सकता है; तुम्हारा अंगार फिर दमका दे सकता है।
एक प्यास काफी है सागर तक जाने कोएक महर काफी है प्रभु-दर्शन पाने कोएक अगन काफी है क्रांतियां उठाने कोएक लगन काफी है मुक्ति मधुर पाने को तुम यहां आए हो तो सबूत देते हो--एक किरण है, एक डगर भी तुमने भरी। अब चलो मेरे साथ दीवाल कहकहे तक। वहां तक जो गया है, बिना चढ़े लौटा नहीं।
और इसीलिए तो पलटू मजे से कह देते हैं कि भई, लौट सको तो लौट जाओ। जानते हैं कोई लौटा ही नहीं कभी। इसीलिए तो इतनी सरलता से कह देते हैं कि मत कोई खोजन जाय, मत कोई झांकन जाय। बच जाओ अभी भी बच सको तो। इतनी मौज से जो कह रहे हैं वह इसी कारण कि जब दीवाल तक आ गए तो अब दीवाल से बचना मुश्किल है। और उस तरफ की खबर दे रहे हैं कि वहां जो घटेगा वह भी बता देना चाहता हूं। तुम मिटोगे। परमात्मा तुम्हें नहीं मिलने वाला है। तुम जब तक हो तब तक परमात्मा नहीं, तुम मिटे कि परमात्मा है।
लोग चाहते हैं, परमात्मा का प्रमाण मिल जाए और हम भी बने रहें! यह असंभव है। यह जीवन के नियम के विपरीत है। ऐसा जीवन का धर्म नहीं है। बूंद चाहे कि मैं सागर को भी जान लूं और सागर से दूर भी रह जाऊं; बूंद चाहे कि मैं सागर का स्वाद भी ले लूं, सागर होने का अनुभव भी कर लूं और सागर से दूर बची भी रह जाऊं--यह कैसे हो? यह नहीं हो सकता है। बूंद को तो खोना ही पड़ेगा। मगर बूंद क्या कुछ नुकसान में पड़ती है? कुछ गंवाती है? यूं दिखता है ऊपर से कि बूंद खो गई, यह एक तरफ से देखना है। दूसरी तरफ से देखो तो बूंद सागर हो गई है। खोया कुछ भी नहीं है, पाया ही पाया है।

दूसरा प्रश्नः ओशो! मैं जिंदा हूं या नहीं, कुछ समझ में नहीं आता है!

नरेश!
ऐसी ही अवस्था है प्रत्येक की। तुम कम से कम सौभाग्यशाली हो, इतना तो समझ में आया, इतना तो प्रश्न उठा तुम्हारे भीतर, इतनी तो जिज्ञासा जगी कि मैं जिंदा हूं या नहीं! लोग तो माने ही बैठे हुए हैं कि जिंदा हैं। कब्रों में हैं और माने बैठे हैं कि जिंदा हैं!
जीवन जैसा कुछ भी नहीं है। हां, सांस लेते हैं, भोजन करते हैं। सो वृक्ष भी सांस लेते हैं और भोजन करते हैं। सो पशु भी सांस लेते हैं और भोजन करते हैं। इतना भर जीवन अगर है तो फिर तुममें और गोभी के फूल में कुछ बहुत फर्क नहीं। गोभी के फूल ही हुए।
इतना ही जीवन नहीं है। जीवन और है। जीवन बहुत है। जीवन अपरंपार है। जीवन असीम है। जन्म के भी पहले है, मृत्यु के भी बाद है।
मगर उस जीवन की तलाश तभी शुरू होती है, जब यह प्रश्नवाचक चिह्न तुम्हारे भीतर तीर की तरह खटकने लगता है। ऐसे तीर की तरह जो पार भी नहीं होता--पार भी हो जाए तो खटकन बंद हो जाए--जो चुभा रह जाता है, जो आधा चुभा रह जाता है।
अच्छा है नरेश, तुम पूछते होः "मैं जिंदा हूं या नहीं?"
यह बहुत बुद्धिमानी का प्रश्न है। जिसके जीवन में यह प्रश्न उठ आया,
वह ज्यादा देर तक मुर्दा नहीं रह सकता। दुनिया में दो तरह के मुर्दे हैं-- एक तो जो कब्रों में सो गए हैं और एक अभी जो कब्रों में चल रहे हैं। कब्रों में जो सो गए हैं, हो सकता है उनको भी भ्रांति हो कि वे जिंदा हैं। वे सपना देख रहे हों जिंदा होने का। रात तुम जब सो जाते हो तब तुम सपना देखते हो। क्या-क्या सपना नहीं देखते! कब्रों में पड़ा आदमी क्या-क्या सपने नहीं देख रहा हो, क्या पता!

एक बात पक्की है कि जो जिंदगी भर कूड़ा-करकट में जीया और उसको ही जिंदगी समझता रहा, कब्र में उसको राहत ही मिलेगी। शायद वह यही सोचेगाः अब मिली मंजिल। अब आ गए अपने घर। अब विश्राम ही विश्राम है।
मगर तुम्हारे भीतर बेचैनी की पहली चोट पड़ी, यह अच्छी खबर है। यह शुभ लक्षण है। यहीं से धर्म की शुरुआत होती है। यहीं से यात्रा का पहला कदम उठता है--वह पहली डगर जो बिल्कुल जरूरी है; वह पहली किरण जिसके बिना कोई सूरज तक नहीं पहुंच सकता; जो बिल्कुल अनिवार्य है।
महावीर के जीवन में ऐसा उल्लेख है कि महावीर वैशाली में ठहरे हुए थे। वैशाली में एक महाचोर था। जैसे महावीर की ख्याति थी ऐसे ही उस चोर की भी ख्याति थी। वह कभी पकड़ा नहीं गया था जीवन में, यद्यपि प्रत्येक जानता था कि वह बड़े से बड़ा चोर है। ऐसा कोई सम्राट नहीं था उन दिनों जिसके खजाने पर उसने हमला न बोला हो। और खजाने पर हमला भी कर जाता था और अपना चिह्न भी छोड़ जाता था, खबर भी दे जाता था कि किसने चोरी की। मगर फिर भी पकड़ा नहीं जा सका था। कभी रंगे हाथों नहीं पकड़ा जा सका था।
जब महावीर गांव में वैशाली के आए तो उस चोर ने अपने बेटे से कहा कि सुन, इस आदमी से बचना। यह अपने धर्म का दुश्मन। यह अपने व्यवसाय का दुश्मन। इसकी बातें सुनने मत जाना। सम्राट हमें नहीं पकड़ सकते, मगर यह आदमी पकड़ लेगा। पुलिस हमें नहीं पकड़ सकती, मगर इससे बचना मुश्किल है। मैं जीवन भर के अनुभव से कहता हूं कि इस तरह के लोग खतरनाक हैं; अपने धंधे को इन्होंने बरबाद ही कर दिया। तुझे अगर लाज रखनी हो अपने वंश-परंपरा की तो इसकी बात सुनने मत जाना। कई लोग तुझसे कहेंगे कि आओ, चलो सुनो, क्या गजब की बात है, मगर तू बिल्कुल बहरा हो जाना। उस तरफ ही मत जाना जिस तरफ महावीर गांव में ठहरे हों। और कभी भूल-चूक से अगर रास्ते पर यह आदमी दिख भी जाए तो किसी भी गली-कूचे से निकल भागना। इसको देखना भी मत। ऐसे आदमी को देखना भी खतरनाक है, क्योंकि ऐसे आदमी को देख कर भी रोग लग जाता है। ऐसे लोग संक्रामक होते हैं। अगर उस रास्ते से तू गुजरता हो और यह आदमी बोल रहा हो, तो इसके शब्द कान में नहीं पड़ना, अंगुलियां लगा लेना अपने कान में और भाग खड़े होना।
जब बाप ने इतना समझाया तो बेटे की उत्सुकता भी जगी। मगर बाप कह रहा था
तो बाप अनुभवी था और बेटा भी चाहता था कि बाप की कला को वह भी सीखे--सीख रहा था--और निष्णात होना चाहता था। वह भी चाहता था कि अपने बाप को भी मात कर दे, इसलिए एकदम धंधा छोड़ना भी नहीं चाहता था। सो महावीर से बचने की भी कोशिश करता था, मगर कहीं भीतर गहरे में, अचेतन में एक आकांक्षा भी थी कि देख तो ले एक दफे, यह आदमी कैसा है, जिससे मेरा बाप भी डरता है! जो किसी से नहीं डरता, जिसने डर जाना नहीं, इस नंगे आदमी से, जिसके पास कुछ भी नहीं है, इससे क्यों भय खाता है? और इसकी बात में ऐसा क्या होगा कि सुनने से ही बिगड़ जाए आदमी! कि देखने से ही बिगड़ जाए आदमी!
एक दिन गुजर रहा था और महावीर बोल रहे थे। उनकी आवाज रास्ते तक गूंज रही थी। कान में अंगुलियां तो डालीं उसने, बाप ने कहा था सो। मगर जरा देर से डालीं, जरा, कि एकाध वाक्य तो कान में पड़ जाए कि यह आदमी कह क्या रहा है! महावीर समझा रहे थे कि जब व्यक्ति मरता है, अगर उसने पुण्य किए हों तो स्वर्ग में प्रवेश पाता है, अगर पाप किए हों तो नर्क में। किसी ने पूछा, लेकिन मर गया इसका सबूत क्या है? तो महावीर ने कहा, इसका सबूत है कि जो भी लोग वहां मौजूद होंगे, उनके पैर उलटे होंगे। वे देवता हों या भूत-प्रेत हों, नर्क हो या स्वर्ग, मगर उनके पैर उलटे होंगे।
इतनी बात उसने सुन ली, फिर उसने जल्दी से कान में अंगुलियां डालीं और भाग खड़ा हुआ। उसने भी सोचा, इसमें ऐसी कौन सी बात थी जिसमें घबड़ाने की बात थी। क्यों मेरा बाप इतना डरा हुआ है!
मगर संयोग की बात, सम्राट जाल फैला रहा था अपना। किसी तरह पकड़ना चाहता था। बाप को तो पकड़ना मुश्किल था, अभी बेटा सिक्खड़ था। मगर बेटा भी अभ्यास कर रहा था चोरी का। तो उसने सोचा कि पहले बेटे को पकड़ा जाए। एक पूरी की पूरी साजिश की गई। रंगे हाथ तो चोरी में पकड़ना उसे भी मुश्किल था, लेकिन उसे जबरदस्ती पकड़ कर शराब पिला दी। इतनी पिला दी कि वह बिल्कुल बेहोश हो गया। यह साजिश थी। यह पूरा का पूरा शड्यंत्र था। और फिर उसे राजमहल के

सबसे सुंदर कक्ष में, सुंदरतम सुंदरियों के बीच, जो पंखा झल रही थीं और जिन्होंने पंखे के साथ-साथ अपने हाथों के साथ पंख भी लगाए हुए थे, ऐसा लगे कि अप्सराएं हैं। मेनका, उर्वशी इत्यादि उसको पंखा झल रही हैं और सुंदर सोने से सजा हुआ कक्ष है, रत्नों से मंडित।
जब वह आदमी थोड़ा-थोड़ा होश में आया तो उसे शक हुआ कि लगता है मैं मर गया। यह मैं कहां हूं! यह मेरा घर तो नहीं है। जेलखाना भी नहीं। जेलखाने ऐसे नहीं होते। ऐसी सुंदर जगह उसने देखी नहीं थीं। इतनी सुंदर स्त्रियां उसने नहीं देखी थीं। और इनके पंख भी हैं! जरूर ये अप्सराएं हैं। और क्या सुगंध उड़ रही थी! फूलों की सेज पर लेटा हुआ था। आधा होश, आधा बेहोश, उसने समझा कि मैं स्वर्ग आ गया। मैं मर गया।
तभी एक अप्सरा ने कहा कि अभी तुम स्वर्ग में नहीं पहुंचे हो, स्वर्ग
के बाहर प्रतीक्षालय में हो। पहले यहां व्यक्ति को अपने सब पाप-पुण्यों का लेखा-जोखा देना पड़ता है। जो सब सच-सच बता देता है, उसे स्वर्ग में जगह मिल जाती है। जो जरा भी झूठ बोलता है--परमात्मा से क्या छिपा है--जो जरा भी झूठ बोला, वह नरक भेज दिया जाता है। तो तुम्हें अगर स्वर्ग जाना हो, सब सच-सच बोल दो! तब वह जरा चौंका--सब सच-सच बोल दो! चोर था, तत्क्षण उसे महावीर का वचन याद आया। उसने कहा इनके पैर तो देख लो कि ये अप्सराएं हैं भी या नहीं? पैर देखे तो जैसे आदमियों के पैर होते हैं वैसे पैर थे। समझ गया कि कोई साजिश है। फिर तो उसने अपने पुण्यों की क्या चर्चा की, और अपने पिता के पुण्यों की, और पिता के पिता के पुण्यों की, और अपनी पीढ़ियों के पुण्यों की चर्चा की।
सारी साजिश बेकार हो गई। छोड़ देना पड़ा उसे। आशा यह थी कि स्वर्ग जाने
के लोभ में वह सब पाप बता देगा--अपने भी, अपने बाप के भी। और तब मामला फंस जाएगा।
वह घर पहुंचा, बाप के चरण छुए और कहा कि अब मैं जा रहा हूं महावीर के पास। एक वचन सुना तो मेरा जीवन बचा। अब आपकी बात नहीं सुन सकता। जिसका एक वचन, जो बिल्कुल व्यर्थ मालूम पड़ता था, सुनते वक्त जिसमें कोई सार्थकता नहीं दिखाई पड़ी थी, उसने ही मुझे आज बचाया है। तुम्हारी सब कलाएं मेरे काम नहीं आतीं आज। आज मारा गया था। मैं ही नहीं, तुम भी मारे गए होते। सारी कथा सुनाई कि ऐसी-ऐसी घटना घटी। यह राजा की जालसाजी थी। मगर मैं चला उस आदमी के पास। जिसके एक वचन ने बचा लिया है, अब यह जीवन उसका है। अब जीवन उसके साथ है। और अब मैं जानता हूं कि अब तक जो मैं जी रहा था, वह झूठ ही है। आज नहीं कल वह झूठ पकड़ में आएगा। आदमियों से बचा लेंगे तो क्या होगा, परलोक में पकड़ में आएगा। कहीं न कहीं पकड़ में आएगा। झूठ कब तक चल सकता है? झूठ को कितना चलाओगे? मैं चला।
न केवल वह खुद गया, उसके बाप ने भी सोचा कि बात तो सच है, बाप भी गया। महावीर ने उसे दीक्षा दी और कहा कि देख, एक वचन ने, जो मैंने तेरे लिए ही बोला था। आमतौर से मैं स्वर्ग-नरकों की चर्चा नहीं करता। प्रयोजन नहीं है। मगर तू राह से गुजर रहा था, तेरे लिए ही बोला था। क्योंकि मुझे साजिश का पता था, यह साजिश चल रही है, तू फंसेगा। तेरे लिए ही वचन बोला था। एक वचन ने तेरे जीवन में क्रांति ला दी। अब तेरा असली जीवन शुरू होता है।
तुम पूछ रहे हो, नरेशः "मैं जिंदा हूं या नहीं?"
मैं तुमसे कहना चाहूंगा, तुम यह पूछ सके, यह भी सुंदर है, शुभ है। इससे तुम्हारा असली जीवन शुरू होता है। अब तक तुम जिंदा नहीं थे, मुर्दा ही थे। अब तुमने पहली बार सांस ली है। पहली बार विचार का जन्म हुआ है। पहली बार विवेक जन्मा है।
एक अत्यंत मोटा आदमी अपने मकान की चौथी मंजिल से टपक पड़ा। जब अस्पताल में उसे होश आया तो पहला सवाल उसने पूछा, डाक्टर साहब, मैं पृथ्वी पर हूं या स्वर्ग में? मुझे समझ नहीं आता कि मैं जिंदा हूं या मर चुका हूं? डाक्टर ने कहा, महाशय जी, आप तो भलीभांति जिंदा हैं, और पृथ्वी पर ही हैं, पूना के ससून हास्पिटल में, मगर जिनके ऊपर आप गिरे थे वे चारों के चारों बेचारे असमय ही स्वर्गीय हो गए हैं।
तुम अब तक मुर्दा थे नरेश, और न मालूम कितनों पर गिरे होओगे, और न मालूम कितनों को स्वर्गीय कर चुके होओगे। अब गिरना बंद करो। जो खुद गिरता

है वह अकेले थोड़े ही गिरता है; यहां हम सब एक-दूसरे से जुड़े खड़े हैं,शृंखलाओं में बंधे खड़े हैं। एक गिरता है तो चार को गिरा देता है। तुम जो करते हो उसका परिणाम, दुष्परिणाम, सब दूर-दूर तक फैल जाता है। उसकी प्रतिध्वनियां दूर-दूर तक सुनी जाती हैं।
अच्छा हुआ तुम्हें होश आना शुरू हो रहा है। चलो अब मेरे साथ दीवाल कहकहे तक। ठीक जगह आ गए। यहां तुम्हारा पुनर्जन्म हो सकता है। यहां तुम द्विज हो सकते हो। यहां मैं तुम्हें ब्राह्मण बना सकता हूं।
कोई ब्राह्मण पैदा नहीं होता, याद रखना, ब्राह्मण तो बनना होता है। सब शूद्र पैदा होते हैं। दुनिया में दो ही वर्ण हैं--शूद्र और ब्राह्मण। सब पैदा होते हैं शूद्र की तरह; फिर कुछ लोग, जो ब्रह्म को जान लेते हैं, वे ब्राह्मण हो जाते हैं। और ब्रह्म को जान लेना जीवन को जान लेना है। द्विज हो जाओगे तुम अगर जीवन को जान लो।
मगर बहुत सी बातों से छुटकारा पाना होगा। जिन बातों ने तुम्हें मार रखा है, उनसे छुटकारा पाना होगा। तुम्हारा सारा ज्ञान जो तुम्हारे सिर पर हावी है, वही तुम्हारी मृत्यु का कारण है; वह चट्टान की तरह तुम्हारी चेतना को दबाए हुए है। तुम्हारे सारे शास्त्र तुम्हारी चेतना की हत्या कर रहे हैं। तुम्हें उनसे मुक्त होना होगा।
और ध्यान रहे कि शास्त्रों में जो सत्य है, उसकी खोज के लिए ही तुम्हें शास्त्रों से मुक्त होना पड़ेगा। अगर तुम शास्त्रों से मुक्त न हुए, तुम सत्य से वंचित रह जाओगे। अभी तो शास्त्रों का तुम वही अर्थ लगाओगे जो तुम लगा सकते हो। अभी तुम्हारी मूर्च्छा में तुम क्या गीता समझोगे! क्या कुरान समझोगे! क्या बाइबिल समझोगे!
मुल्ला नसरुद्दीन मुझसे मिलने आने वाला था। कह गया इस समय आ जाऊंगा
और दो घंटे बाद आया। मैंने पूछा, नसरुद्दीन, इतनी देर कैसे लगाई? नसरुद्दीन ने कहा, क्या करता, रास्ते पर एक जगह बोर्ड लगा हुआ था जिस पर लिखा था--धीरे चलिए!
सो वे धीरे चल-चल कर आ रहे थे। धीरे चलना होगा, रास्ते पर लिखा बोर्ड
तो बहाना बन गया, खूंटी बन गया।
नसरुद्दीन शराब पी रहा था। मैंने पूछा, नसरुद्दीन, तुम तो कुरान के बड़े पाठी हो, और तुम तो कहते मैं कुरान में बड़ी श्रद्धा करता हूं, और कुरान में तो साफ कहा हुआ है कि जो शराब पीएगा वह नर्क में सड़ेगा! नसरुद्दीन ने कहा, मुझे मालूम है। अरे रोज ही पढ़ता हूं। फिर मैंने कहा, कैसे तुम शराब पीए चले जाते हो? उसने कहा, अभी पूरा वचन मानने की मेरी सामर्थ्य नहीं है। पहले तो इतना ही आता है न--जो शराब पीएगा। अभी उतना ही मान सकता हूं। क्षमता-क्षमता की बात है, पात्रता-पात्रता की बात है। अभी मेरी योग्यता इतनी ज्यादा नहीं कि पूरा ही वचन मान सकूं। जितना बनता है, उतना करता हूं। जितनी औकात, उससे ज्यादा नहीं जा सकता।
व्याख्या कौन करेगा?
दो विद्यार्थी देर से स्कूल पहुंचे। अध्यापक ने पूछा, मोहन, इतनी देर कैसे हुई? मोहन ने कहा, जी, मेरी अठन्नी खो गई थी। अध्यापक ने कहा, और तुम क्यों देर से पहुंचे, गोपाल? गोपाल बोला, जी, मैं उस अठन्नी पर पैर रख कर खड़ा था। जब तक यह न हटे, मैं न हटूं; जब यह हटा तब मैं हटा। और इस दुष्ट ने इतनी देर लगाई, ढूंढता ही रहा, ढूंढता ही रहा; मैं भी खड़ा ही रहा, खड़ा ही रहा। संकल्प की होड़ लग गई थी।
मुल्ला नसरुद्दीन एक महिला को प्रेम करता है। उस महिला ने कहा कि ऐसा करो, मेरे पति को पता न चले, मैं दूसरी मंजिल पर रहती हूं, रस्सी लटका दूंगी और ऊपर से अठन्नी गिरा दूंगी। खन्न से आवाज होगी नीचे, तुम समझ जाना इशारा कि बस अब रस्सी पर चढ़ आना है। अर्थात पतिदेव सो गए हैं और घुर्राटे ले रहे हैं। मुल्ला ने कहा, ठीक।
पूर्णिमा की रात, खड़ा हो गया खिड़की के नीचे। आधी रात रस्सी लटकी, अठन्नी गिरी, खन्न से आवाज हुई। महिला राह देखते-देखते थक गई। जब एक घंटा हो गया, उसने नीचे झांक कर कहा कि नसरुद्दीन, अठन्नी की आवाज सुनाई नहीं पड़ी?

नसरुद्दीन ने कहा, सुनाई पड़ी, उसी को तो खोज रहा हूं। मिल जाए तो ऊपर आऊं। उसे छोड़ कर आऊं तो मेरा चित्त ऊपर लगेगा ही नहीं, मेरा चित्त अठन्नी में लगा रहेगा।
तुम्हारा चित्त, तुम्हारी मूर्च्छा, तुम्हारा आत्म-अज्ञान--तुम जो भी पढ़ोगे, जो भी सुनोगे, उस सबको विकृत करता रहा है, करता रहेगा। इसलिए नरेश, अगर जीना है, अगर जीवित होना है, तो पहला काम करो--ज्ञान से मुक्त हो जाओ, पांडित्य से मुक्त हो जाओ, शास्त्रीयता से मुक्त हो जाओ। फिर से एक छोटे बच्चे की तरह जगत को देखो।
छोटे बच्चों में जीवन होता है। छोटे बच्चों में सामर्थ्य होती है आश्चर्य की। और वह बड़ी से बड़ी सामर्थ्य है। वही जीवन का लक्षण है। अवाक होने की... छोटी से छोटी बात उन्हें मुग्ध कर लेती है। एक कंकड़, एक पत्थर, एक तितली, एक फूल, आकाश में डोलती हुई एक बदली, पानी की बूंदाबांदी--और वे विस्मय-विमुग्ध हो जाते हैं। आकाश में खिला इंद्रधनुष और उनके प्राण आतुर हो उठते हैं, पंख होते तो उड़ जाते!
जब तक तुम पुनः छोटे बच्चों की भांति न हो जाओ--सारे ज्ञान से मुक्त, सारे थोथे पांडित्य से मुक्त, सारे व्यर्थ के तर्कजाल से मुक्त--तब तक तुम जीवित न हो सकोगे।
जीसस ने कहा हैः जब तक तुम छोटे बच्चों की भांति न हो जाओ, तब तक तुम मेरे प्रभु के राज्य में प्रवेश न कर सकोगे।
मैं जीसस की बात से सौ प्रतिशत राजी हूं।
दुबले-पतले चंदूलाल तर्कशास्त्र के अध्यापक थे। फिर चुनाव लड़े। और भाग्य की बात कि जीत भी गए। कुछ पत्रकार इंटरव्यू लेने आए हुए थे। बैठकखाने में गपशप चल रही थी कि तभी श्रीमती चंदूलाल ने वहां प्रवेश किया। एक प्रश्नकर्ता ने पूछा कि क्या यही आपकी अर्धांगिनी हैं? चंदूलाल बोले, नहीं-नहीं, ये मेरी अर्धांगिनी नहीं हैं। फिर दूसरी बातें चल पड़ीं। कुछ देर बाद एक पत्रकार बोला, कितना अच्छा होता यदि हमें आपकी श्रीमती जी का इंटरव्यू भी लेने का सौभाग्य मिल जाता। चंदूलाल बोले, अवश्य-अवश्य, ये बैठी हैं हमारी धर्मपत्नी, पूछिए आप उनसे जो भी पूछना हो। पत्रकारों ने आश्चर्य से कहा, अभी-अभी तो आपने इनकारा था कि ये आपकी अर्धांगिनी नहीं हैं और अब आप बता रहे हैं कि यही आपकी धर्मपत्नी हैं! यह कैसा विरोधाभास? चंदूलाल ने जवाब दिया, विरोधाभास कहां है भाई! आप लोगों को क्या मेरी पत्नी का भीमकाय शरीर दिखाई नहीं देता जो ऐसे प्रश्न पूछते हैं? हे सज्जनो, वे मेरी अर्धांगिनी नहीं हैं, मैं ही उनका अर्धांग हूं। और सच पूछो तो अर्धांग भी नहीं, मात्र अष्टांग हूं। और इसीलिए तो भाई, महर्षि पतंजलि ने अपने योग को अष्टांग योग कहा है अर्थात वह पुरुषों के करने के लिए है, स्त्रियों के करने के लिए नहीं है।
अब यह तर्कशास्त्र का पंडित अष्टांग का अर्थ कहां खींच ले गया-- अष्टांग योग तक! इसने पतंजलि तक को घसीट लिया।
तुम्हें सारे तर्क छोड़ने पड़ेंगे जो तुमने अब तक सीख लिए हैं, जो उधार हैं और बासे हैं। तुम्हें अपनी प्रतिभा पर निर्भर रहना पड़ेगा। और तुम्हारी प्रतिभा ही तुम्हें मुक्ति दे सकती है। किसी और का सत्य तुम्हें मुक्त नहीं कर सकता। तुम्हारी प्रतिभा ही तुम्हें जीवन दे सकती है। और इस भीड़ में जो चारों तरफ लोग हैं, ये सब मुर्दा हैं। यह मुर्दों की भीड़ है। इनको देख कर तुम यह मत समझ लेना कि आखिर इतने लोग हैं, ये भी तो जिंदा हैं मेरे ही जैसे, तो मैं भी जिंदा हूं। वह तर्क ही होगा सिर्फ, कोरा तर्क होगा, उसका कोई मूल्य नहीं है।
जीसस के जीवन में उल्लेख है कि एक सुबह-सुबह उन्होंने झील पर आकर एक मछुए के कंधे पर हाथ रखा। उसने अपना जाल फेंका ही था। लौट कर देखा, सुबह का ऊगता हुआ सूरज और ऊगते हुए सूरज में चमकती हुई जीसस की प्यारी आंखें--झील से भी ज्यादा गहरी और झील से भी ज्यादा नीली। मछुआ सीधा-सादा आदमी, अवाक रह गया। जीसस ने कहा, कब तक मछलियां ही मारता रहेगा? जिंदगी छोटी है, यूं हाथ से समय बहा जा रहा है। मेरे पीछे आ! मैं तुझे परमात्मा के ऊपर जाल फेंकने का राज बताऊं। क्या मछलियां पकड़ रहा है! परमात्मा नहीं पकड़ना?

वह मछुआ अगर तर्क-शास्त्री होता तो तर्क में लग जाता। शास्त्र का ज्ञानी होता तो विवाद करता। मछुआ था, सीधा-सादा आदमी था। उसने जाल फेंक दिया। वह जीसस के पीछे हो लिया। उसने दोबारा यह भी न कहा कि तुम कहां जा रहे हो? कहां मुझे ले चले?
गांव के बाहर निकलता था तब एक आदमी भागा हुआ आया और उसने कहा, पागल, तू कहां जा रहा है? तेरे पिता जो बहुत दिन से बीमार थे उनकी मृत्यु हो गई, अभी- अभी मृत्यु हो गई, घर चल। उनका अंतिम संस्कार करना है। उस मछुए ने जीसस से कहा, क्षमा करें। मुझे तीन दिन की छुट्टी दे दें, मैं जाकर पिता का अंतिम संस्कार कर आऊं।
और तुम्हें पता है जीसस ने उस मछुए से क्या कहा? जीसस ने कहा, पागल है तू? गांव में बहुत मुर्दे हैं, वे उस मुर्दे को दफना देंगे, तू मेरे पीछे आ।
और वह मछुआ जीसस के पीछे ही चलता रहा।
बात जो जीसस ने कही, ख्याल में आई? गांव में बहुत मुर्दे हैं, वे मुर्दे को दफना देंगे। तुझे जाने की क्या पड़ी है? तू आ। तू जीवन को तलाश। नरेश, चलो मेरे साथ। जिंदगी को पकड़ने का राज बता सकता हूं। लेकिन कूड़ा-कर्कट बहुत कुछ तुम्हारे सिर में होगा, वह छोड़ना पड़ेगा। तुम्हारे सारे सिद्धांत, शास्त्र जला कर आओ, तब यात्रा बड़ी सुगम और सरल हो जाती है। अपनी प्रतिभा से पहुंचना बड़ी ही आसान बात है। उधार प्रतिभाएं प्रतिभाएं नहीं होतीं। उधार जीवन जीवन नहीं होते।
और हम सब उधार जी रहे हैं। कोई कृष्ण को जी रहा है, कोई राम को जी रहा है, कोई बुद्ध को जी रहा है, कोई किसी और को जी रहा है--कोई स्वयं में नहीं जी रहा है। अप्प दीपो भव! अपने दीये खुद बनो। सब और दीये बुझा दो! बेहतर है अपना अंधेरा दूसरे की रोशनी की बजाय, ताकि हम अपनी रोशनी खोज सकें। तब जीवन की शुरुआत है।
जीवन तुम्हारा जन्मसिद्ध अधिकार है। मगर श्रम करना होगा, साधना करनी होगी। जरूर पा सकोगे। स्वयं को खोना होगा तब पा सकोगे। ज्ञान को खोने से शुरू करो, वह अहंकार को खोने की तरफ पहला कदम है। और पहला कदम आधी मंजिल है।
आज इतना ही।

पिय को खोजन मैं चली
दूसरा प्रवचन

मेरे मयकदे का प्रवेश-पत्र: संन्यास

पहला प्रश्नः ओशो! आह कितना आनंद! आह कितनी पीड़ा!

विनोद भारती! जीवन की झाड़ी में जहां गुलाब के फूल खिलते हैं, वहां कांटे भी खिलते हैं। लेकिन फूल खिलें तो कांटे भी प्रीतिकर हैं, पीड़ा भी मधुर है। कांटे दुखदायी हो जाते हैं जब फूल नहीं खिलते, कांटे ही कांटे बचते हैं। कांटों में दुख नहीं है, फूलों के अभाव में दुख है। फूलों के साथ खिलें--जी भर कर खिलें--तो फूलों के सौंदर्य को बढ़ाते हैं, फूलों को पृष्ठभूमि देते हैं।
गुलाब की झाड़ी अधूरी होगी बिना कांटों के। दिन अधूरा होगा बिना रात के। लेकिन रात ही रात रह जाए तो नरक हो जाएगा। अधिक लोगों के जीवन में यही हुआ है। बस रात ही रात रह गई है। कंकड़-पत्थर ही कंकड़-पत्थर। व्यर्थ के बोझ से दबे हैं। अर्थ की कोई गरिमा नहीं है।
यह अनूठा अनुभव होता है। जब आनंद के फूल खिलते हैं तब पहली बार यह पता चलता है कि आनंद अपने से विपरीत को भी नये अर्थ दे देता है; अपने से विपरीत को भी नया रस दे देता है। आनंद घटता है तो हीरे-मोती ही नहीं बरसते, अचानक कंकड़-पत्थर भी हीरे-मोती हो जाते हैं। यही आनंद का जादू है। यही उसकी दिव्यता है। यही उसकी भगवत्ता है।
रिंझाई ने कहा है कि जब से जाना है, तब से जीवन में कुछ भी साधारण नहीं बचा। जब नहीं जानता था, तब जीवन में कुछ भी असाधारण नहीं था। जीवन वही का वही है, कहीं कुछ बदला नहीं है--वे ही वृक्ष हैं, वे ही लोग हैं, वे ही रास्ते हैं, वही काम है--सब वही है, वैसा का वैसा। लेकिन जब नहीं जानता था, तो सब साधारण मालूम होता था; और जब से जाना है, जब से जागा हूं, तो साधारण कहीं दिखाई नहीं पड़ता। सभी कुछ आभामंडित हो गया असाधारण से।
लेकिन सामान्यतया सोच-विचार करने वाले लोग, जो अनुभव से वंचित हैं, उनकी यह धारणा होती है कि जब आनंद होगा तो फिर वहां कैसी पीड़ा!
यह सिर्फ सोचने-विचारने वालों की बात हुई। जिनका अनुभव है, उनकी बात
और है। वे कहेंगे कि जहां आनंद है, वहां पीड़ा भी है। लेकिन पीड़ा भी मधुर है, मीठी है, स्वादिष्ट है। विपरीत विलीन नहीं हो जाता, लेकिन नयी भाव-भंगिमा में प्रकट होता है। रात खो नहीं जाती, लेकिन सुंदर हो आती है। अंधेरा नष्ट नहीं हो जाता, लेकिन अंधेरा भी अब मखमली हो जाता है; अब अंधेरे को भी आलिंगन कर लेने की क्षमता आ जाती है।
जीवन का द्वंद्व तभी तक द्वंद्व मालूम होता है, जब तक हम आत्म-अज्ञान में जीते हैं; जैसे ही आत्म-ज्ञान की किरणें उतरनी शुरू हुईं कि जीवन में जो-जो द्वंद्वात्मक है, जो-जो विपरीत है, वह विपरीत नहीं मालूम पड़ता, परिपूरक हो जाता है। तब यह बोध होता है कि बिना विपरीत के इस जगत में कुछ हो ही नहीं सकता। पदार्थ मिट नहीं जाता, परमात्ममय हो जाता है। माया समाप्त नहीं हो जाती, ब्रह्म से आविष्ट हो जाती है। संसार तिरोहित नहीं हो जाता, कि ज्ञानी के लिए संसार नहीं बचता, लेकिन संसार की तरह नहीं बचता। सारी अर्थवत्ता बदल जाती है। क्योंकि ज्ञानी के देखने की दृष्टि, उसकी आंख बदल जाती है। दृष्टि बदली कि सृष्टि बदली। नजर बदली कि सब बदला। सब खेल नजर का है। वही काम फिर भी तुम करोगे।
यहां संन्यासियों से लोग आकर पूछते हैं कि तुम दूर देश से आए हो, सब छोड़ कर आ गए हो, लेकिन वहां काम करते थे, यहां भी काम कर रहे हो, तो फर्क कहां है?
और संन्यासी उत्तर भी दें तो क्या दें! कुछ बातें हैं जिनके उत्तर उन्हीं को दिए जा सकते हैं जिन्हें उत्तर पता हों। मगर तब उत्तर देने की जरूरत नहीं रह जाती, क्योंकि प्रश्न ही नहीं पूछा जाता। और जिन्हें उत्तर पता नहीं हैं उन्हें उत्तर दिए नहीं जा सकते, मुस्कुरा कर चुप रह जाते हैं।

काम तो वही होगा। काम तो कहीं भी वही होगा।
एक मित्र इंग्लैंड से आए हैं। वहां उनका बड़ा बगीचा था। लाखों रुपये
का विस्तार था बगीचे का। यहां भी आकर बगीचे का ही काम कर रहे हैं। स्वभावतः इंग्लैंड से आए एक पत्रकार ने पूछा कि तुम्हें हुआ क्या है? बड़ा बगीचा था, नौकर-चाकर थे, सारी सुविधाएं थीं, उस सबको छोड़ कर... आखिर यहां भी तो तुम बगीचे के ही काम में लगे हुए हो!
संन्यासी ने कहा, फर्क नहीं भी है और फर्क है भी। वहां काम एक बोझ था, यहां काम एक आनंद है। वहां काम करना पड़ रहा था, यहां कर रहा हूं। वहां मजबूरी थी, यहां सहज-स्फूर्त है। वहां धन के लिए था, यहां स्वांतः सुखाय। इससे कुछ मिलने वाला नहीं--न धन मिलने वाला है, न पद मिलने वाला है। स्वांतः सुखाय। कृत्य ही अपने में अपना साध्य हो गया है।
विनोद भारती, पहले तो चौंकना होता है, जब ऐसा लगता हैः कितना आनंद, कितनी पीड़ा, साथ-साथ!
साथ-साथ ही घटते हैं। साथ-साथ ही घट सकते हैं। बराबर अनुपात में घटते हैं। लेकिन आनंद की महिमा यही है, उसकी जादुई छड़ी यही है कि वह पीड़ा को भी एक नये माधुर्य से भर देता है। पीड़ा भी पीड़ा नहीं रह जाती।
एक संन्यासी वर्षों तक पश्चिम की यात्रा करके भारत वापस आया। प्रसिद्ध संन्यासी था, भवानी दयाल। उसने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि मैं हिमालय की यात्रा पर गया। पहाड़ की चढ़ाई, बड़ी चढ़ाई, भरी दोपहर, सूरज जैसे आग उगलता, सीधा पहाड़, एक-एक कदम चढ़ना मुश्किल, पसीने से लथपथ। और मेरे सामने ही एक पहाड़ी लड़की, नहीं थी ज्यादा उम्र उसकी, होगी कोई ग्यारह-बारह साल की, अपने भाई को कंधे पर बिठाए चढ़ रही थी पहाड़। और भाई यूं तो छोटा था, होगा ज्यादा से ज्यादा तीन-चार साल का, लेकिन काफी मोटा और तगड़ा। पहाड़ी बच्चा, वजनी। लड़की लथपथ थी। भवानी दयाल ने लड़की के पास जाकर कहा, बेटी, बहुत बोझ लगता होगा।
उस लड़की ने संन्यासी की तरफ गौर से देखा, चौंक कर देखा, विश्वास न आए ऐसी आंखों से देखा और कहा, स्वामी जी, बोझ आप लिए हुए हैं।... हालांकि संन्यासी के पास कोई खास बोझ न था। बस एक छोटी सी पोटली थी। ज्यादा कपड़े- लत्ते भी संन्यासी के पास नहीं थे। उसी पोटली में भिक्षापात्र था, एक-दो वस्त्र थे, कुछ भोजन की सामग्री थी।... उस लड़की ने कहा, बोझ आप लिए हुए हैं। यह मेरा छोटा भाई है, बोझ नहीं।
और भवानी दयाल ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि मुझे शर्म से आंखें नीचे झुका लेनी पड़ीं। उसकी बात सच थी। मैं बोझ लिए था। वह मेरे लिए बोझ था। मैं ढो रहा था। कई बार सोच चुका था रास्ते में कि ये भी कपड़े न लाता तो अच्छा था। यहां तो लंगोटी से ही काम चल जाता। इतनी धूप, वस्त्रों की जरूरत क्या थी! कोई रास्ते पर मिलता भी तो नहीं है। नंगा भी चढ़ता तो भी चल जाता। यह भिक्षापात्र की भी जरूरत न थी; हाथ में ही लेकर भोजन कर लेता। आखिर करपात्री भी तो होते ही हैं। हाथ में ही पानी लेकर पी लेता। यह मैं काहे को बोझ ले आया! फेंक भी नहीं सकता था; आसक्ति भी बहुत थी।
छोटे से भी बहुत, छोटी सी चीजों से भी, थोड़ी सी चीजों से भी बहुत आसक्ति हो सकती है। आसक्ति होने के लिए कोई बहुत बड़ा साम्राज्य नहीं चाहिए। एक भिक्षापात्र भी पर्याप्त है आसक्ति के लिए। मगर आसक्ति होगी तो बोझ हो जाएगा और प्रेम होगा तो सब निर्भार हो जाएगा।
उस लड़की ने ठीक कहा, यह मेरा छोटा भाई है।
तराजू पर तौलोगे तो छोटे भाई में भी वजन निकलेगा। तराजू को क्या लेना- देना--कौन छोटा भाई है या कौन बिस्तर है या कौन पत्थर है! तराजू तो तौल देगा वजन को। लेकिन हृदय के तराजू पर फर्क पड़ जाता है। हृदय का तराजू गणित को नहीं मानता। किसी और लोक में हृदय के तराजू की प्रतिष्ठा है। वहां के मापदंड और, वहां की कसौटियां और।
विनोद भारती, आनंद भी होगा, आनंद भी बढ़ेगा और साथ ही साथ पीड़ा भी गहन होगी। दिन भी प्रखर होगा और रात भी गहरी होगी। दोनों साथ-साथ चलेंगे। ये दोनों पैर हैं जीवन के, ये दोनों पंख हैं। मगर इतना फर्क हो जाएगा--और वह फर्क थोड़ा नहीं है, फर्क बड़ा है, फर्क अपूर्व है--अब पीड़ा भी पीड़ा जैसी नहीं होगी।

अभी तो साधारणतः तुम जिसे सुख समझते हो, वह भी सुख जैसा नहीं है। उस पर
भी दुख छाया हुआ है। उसको भी दुख दबोचे हुए है। अभी तो तुम जिनको समझदारियां समझते हो, वे भी समझदारियां नहीं हैं। वे भी नासमझियां ही सिद्ध होती हैं। अभी तो तुम्हारा ज्ञान भी सिर्फ अज्ञान को भुला रखने का एक ढांचा है, एक ढंग है। फिर बात उलटी हो जाती है। सब उलट-पुलट हो जाता है। फिर सारा ज्ञान छूट जाता है। चित्त ऐसे हो जाता है, ऐसा निर्मल, ऐसा निर्दोष, ऐसा निर्भार जैसे छोटे बच्चे का। ज्ञान तो उसे नहीं कहा जा सकता; ज्ञान-मुक्ति जरूर कही जा सकती है। मगर उस न जानने की अवस्था में जानने की घटना घटती है। ऐसा जीवन का अदभुत, विस्मयजनक, रहस्यपूर्ण विस्तार है। जो ऊपर ही ऊपर तैरते रहते हैं सागर पर, लहरों ही लहरों में, उन्हें कभी इन मोतियों का पता नहीं चलता; इनके लिए तो डुबकियां मारनी होंगी।
अभी तो सुख भी बस दुख को भुलाने से ज्यादा नहीं है। किन चीजों को हम सुख कहते हैं? बस किसी तरह दुख को भुला रखने को। और फिर दुख भी दुख नहीं होते, सुख ही होकर आते हैं।
यह शुभ हो रहा है। अगर कोई कहे कि बस आनंद ही आनंद हो रहा है, कहीं कोई पीड़ा नहीं है, तो समझना कि आनंद काल्पनिक है। मनोवैज्ञानिक रूप से वह आदमी अपने को सिर्फ सम्मोहित कर रहा है। यह आनंद का सपना टूट जाएगा। यह टिकने वाला नहीं है। उसे भ्रांति हो रही है। वह कुछ देख रहा है जो वहां नहीं है। और यह मत समझना कि तुम्हीं इस भ्रांति में होते हो, तुम्हारे तथाकथित मनोवैज्ञानिक, जो कि मन के विज्ञान को समझते हैं, वे भी ऐसी ही भ्रांतियों में होते हैं।
एक आदमी एक मनोवैज्ञानिक के पास गया। उसकी मुसीबत यह थी कि उसे हर चीजें दो दिखाई पड़ती थीं। मुश्किल पड़ गई थी, अड़चन होने लगी थी। और एक दिन तो अड़चन बहुत बढ़ गई, क्योंकि जब उसने अपनी पत्नी से यह कहा... यूं तो छिपाए रहा, छिपाए रहा, मगर कब तक छिपाता! पत्नी भी पूछने लगी कि बात क्या है? तुम्हारा चलना, उठना, बैठना कुछ बेढंगा हो गया है!
अब जिस आदमी को दो कुर्सी दिखाई पड़ रही हों, वह पहले टटोल कर देखे कि कौन सी असली है। बिना टटोले उसको पता न चले। फिर तो धीरे-धीरे उसे अपने हाथ भी दो दिखाई पड़ने लगे। फिर तो वह टटोले तो भी उसको अनुभव हो कि वह दो को टटोल रहा है। बात बिगड़ती चली गई। वह अपनी पत्नी को भी गले लगाए तो पहले टटोले, देखे कि कौन असली है।
आखिर एक दिन उसने पत्नी से कहा कि अब तू मानती नहीं, पूछती है, तो मैं बताए देता हूं--मुझे तू दो दिखाई पड़ने लगी है। तो उसने कहा, फिर ठीक है, एक को तुम रखो और मैं चली तुम्हारे मित्र के साथ। अब जब दो ही दिखाई पड़ रही हूं, तो एक को तुम सम्हालो, तुम्हारी तुम सम्हालो, मैं चली, क्योंकि मैंने बहुत सह लिया। उसने कहा, तू ठहर। अब बात बिगड़ी जाती है। मैं जाता हूं चिकित्सक के पास।
वह मनोवैज्ञानिक के पास गया। उसने जाकर मनोवैज्ञानिक को कहा कि मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया हूं और मामला अब जरा झंझट का है। मेरी पत्नी धमकी दे रही है छोड़ कर जाने की। अब कुछ करना ही होगा। मुझे हर चीजें दो दिखाई पड़ती हैं। मनोवैज्ञानिक ने उसे देखा। उसे क्या देखा, ऐसे पूरे कमरे पर नजर डाली, फिर पूछा कि तुम चारों को ही दो दिखाई पड़ते हैं?
उस आदमी ने अपनी खोपड़ी पीट ली। इस मनोवैज्ञानिक को चार दिखाई पड़ते हैं!
तुम रुग्ण हो और तुम जिससे पूछने जाते हो वह शायद और भी महारुग्ण है। तुम्हारे महात्मा, तुम्हारे साधु, तुम्हारे संत--न उन्होंने आनंद जाना है, न तुमने जाना है। तुम दुख में जी रहे हो। तुमने अपने दुख को भुलाने के लिए सुख की ओट बना रखी है, परदे डाल रखे हैं, बुरके ओढ़ा रखे हैं।
बुरके की यह खूबी है कि उसके भीतर कुरूप से कुरूप स्त्री भी सुंदर हो जाती है। तुमने देखा, बुरका ओढ़ कर कोई स्त्री निकल जाए, स्त्री की फिक्र छोड़ो आदमी निकल जाए, पुरुष निकल जाए, तो भी लोग काम बंद कर देंगे, झांक-झांक कर देखने लगेंगे। पता नहीं बुरके के भीतर कौन छिपी है! नूरजहां कि मुमताजमहल कि पता नहीं कौन! बुरका भ्रांति दे देता है।

ऐसे ही बुरके हमने ओढ़ रखे हैं। साधारणतः सुख हमारा बुरका है। दूसरों
को धोखा हो जाता है, मगर तुमको कैसे धोखा होगा? तुम तो जानते ही रहोगे कि हालत क्या है। तुम्हारी मुस्कुराहट औरों को धोखा दे दे, मगर तुम्हें कैसे धोखा देगी? और तुमने जो लाली चेहरे पर लगा रखी है, वह दूसरों को धोखा दे दे, मगर तुम्हें कैसे धोखा देगी?
एक व्यक्ति एक स्त्री के प्रेम में पड़ गया। चौपाटी पर हुआ होगा यह प्रेम। चौपाटी पर जो चौपट न हो... मुश्किल है। पता नहीं किन ऋषि-मुनियों ने इस स्थान का नाम चौपाटी रखा! बिल्कुल चौपट कर देती है। चारों खाने चौपट कर देती है। विवाह कर लिया। सुहागरात के लिए महाबलेश्वर पहुंच गए। मगर एक बात उसे पत्नी को कहनी थी। उसने कहा कि छिपाने में कोई सार नहीं। स्त्रियों से ज्यादा देर छिपाया भी नहीं जा सकता। और इसके पहले कि खुद खोजे, खुद ही कह देना अच्छा है। उसने कहा कि एक बात तुझे बता दूं, पहले ही बता दूं ताकि आगे इस पर कभी झंझट न हो, मेरे दांत नकली हैं। और इसलिए और भी कह देना जरूरी है कि तू बार-बार कहती थी कि बलिहारी तुम्हारे मोती जैसे दांतों पर। सो तुझे साफ-साफ कह दूं कि ये दांत नकली हैं। ये मोती जैसे इसलिए लगते हैं।
असली दांत तो मोती जैसे नहीं होते। कुछ इरछे-तिरछे भी होते हैं, कुछ छोटे-बड़े भी होते हैं। मगर नकली दांतों को तो क्यों छोटे-बड़े होना, क्यों इरछे-तिरछे होना! जब नकली ही हैं तो वे तो बिल्कुल पंक्तिबद्ध होते हैं, एक जैसे होते हैं, समान आकार के होते हैं, चमकदार होते हैं। अब जो नकली ही हैं तो चमक में क्यों कमी होगी!
तो इतनी बात तुझे कह देना है।
स्त्री ने कहा, तुमने अच्छा किया कि यह कह दिया, क्योंकि कुछ बातें मैं भी तुमसे छिपाए हुए हूं, अब वे भी मैं तुमसे कह दूं। क्योंकि जब तुम सत्य बोले तो मुझे भी साहस दिया कि अब मैं सत्य बोलूं। और अब सचाई हो ही जानी चाहिए साफ, क्योंकि बात खुलेगी ही।
पुरुष थोड़ा घबड़ाया। उसने कहा कि क्या मामला है?
तो उसने कहा, तुम देख ही रहे हो, देखो। उसने बाल उतार कर रख दिए। बड़ी अद्वितीय स्त्री थी। गंजी स्त्रियां खोजना बहुत मुश्किल है। वह गंजी स्त्री थी। कभी लाखों में एकाध स्त्री गंजी होती है। मैं लाखों स्त्रियों को जानता हूं, सिर्फ एक स्त्री मेरी पहचान में है जो गंजी है। सबको भूल जाऊं, मगर उसको नहीं भूल सकता। गंजी स्त्री को कैसे भूलोगे?
आदमी की तो छाती पर सांप लोट गए। और उसने कहा, और क्या है बाई, आगे भी कुछ?
उसने एक टांग भी निकाल कर रख दी। वह भी नकली थी। और जब उसने अपने स्तन
भी उतार कर रख दिए तो उसने पूछा, बाई, तू बाई है कि भैया? यह तो और बता दे। अब जो है बात सच्ची ही हो जाए।
दूसरों को धोखा दे लोगे, लेकिन अपने को? और दूसरों को भी कितनी देर? जब
तक दूरी होगी। जैसे ही करीब आते हो, धोखे टूट जाते हैं। इसलिए पति-पत्नी के बीच इतनी कलह है। धोखे टूट जाते हैं, बुरके उठ जाते हैं, हंसियां उखड़ जाती हैं। सब नकली दिखाई पड़ने लगता है। सब थोथा जाहिर हो जाता है। दूर के ढोल सुहावने होते हैं। दूरी सुहावनापन पैदा करती है।
तो हमारा तो सुख क्या है? बस दुख को छिपा रखने का उपाय है। और आदमी बेचारा करे भी क्या! और तुम्हारे महात्मा आनंद की सिर्फ बातें कर रहे हैं। और बातों की इतनी गुहार मचा रहे हैं वे आनंद की, वह भी एक बुरका है। वह एक नये तरह का बुरका है। वह शब्दों का बुरका है। तुम कम से कम घटनाओं के बुरके ओढ़ते हो। तुम्हारे बुरकों में कुछ थोड़ा-बहुत सच भी होता है, यथार्थ भी होता है, ताने-बाने भी होते हैं। कम से कम कपड़े के तो बने होते हैं तुम्हारे बुरके, उतना तथ्य तो होता है। महात्माओं के बुरके तो सिर्फ शब्दों के हैं--उपनिषद, वेद, बाइबिल, कुरान। वे आनंद की बातें कर रहे हैं, सच्चिदानंद की बातें कर रहे हैं। बस बातों का इतना शोरगुल मचाते हैं, इतना धुआं उठाते हैं बातों का, इतनी धूल उड़ाते हैं बातों की, कि उन बातों की धूल में न केवल वे तुम्हारी आंखों को धोखा दे जाते हैं बल्कि खुद को भी धोखा दे लेते हैं। वे तुमसे भी बड़े धोखे में पड़ जाते हैं।

मैं तुम्हारे बहुत से महात्माओं को जानता हूं। करीब-करीब सारे तुम्हारे खास महात्माओं को जानता हूं। और जब भी निकट से उनसे मेरा मिलना हुआ है, तो मैं चकित ही हुआ हूं। पहले तो बहुत चकित होता था, फिर धीरे-धीरे चकित होना बंद हो गया, क्योंकि मैंने पाया कि वह तो करीब-करीब सभी की स्थिति थी।
एक जैन मुनि प्रवचन दे रहे थे। प्रसिद्ध मुनि हैं। नग्न हैं, दिगंबर मुनि हैं--देशभूषण जी महाराज। आनंद की बात कर रहे थे, परमानंद की बात कर रहे थे। न तो चेहरे पर कोई आनंद है, न कोई परमानंद है, न जीवन में कहीं कोई आनंद की बांसुरी बजती दिखाई पड़ती है। कहीं कुछ नहीं है। सब थोथा है। फिर जब मुझे एकांत में मिले तो पूछने लगे, आनंद की प्राप्ति कैसे हो? तो मैंने कहा कि आप तो आनंद की इतनी बातें कर रहे थे, इतने उद्धरण दे रहे थे, उमास्वाति और कुंदकुंद, कैसे-कैसे प्यारे उद्धरण आप दे रहे थे। उन्होंने कहा, हटाओ उद्धरणों को। मैं पूछता हूं कि ध्यान कैसे करूं? कैसे मुझे आनंद उपलब्ध हो? वे तो आनंद की बातें हैं। वे तो मैं करता हूं क्योंकि लोग सुनने आते हैं। लोग समझने आते हैं तो लोगों को मार्गदर्शन देता हूं। मार्गदर्शन कैसे दोगे? अभी खुद की दृष्टि नहीं है, खुद की आंख नहीं खुली है, किसको मार्गदर्शन दे रहे हो? और तुम जो भी मार्गदर्शन दोगे, वह भटकावा होगा, भूलभुलैया होगा। वह लोगों को और उलझाएगा। वे ऐसे ही उलझनों में पड़े हैं, और शब्दों के जाल उन्हें पकड़ लेंगे। किसी दिन अगर वे संसार की झंझटों से अपने को बचाए, तो तुम्हारे शब्दों की झंझटों में पड़ जाएंगे। मगर झंझटें जारी रहेंगी।
मैं यहां एक तीर्थ निर्मित कर रहा हूं विनोद भारती, जहां आनंद शब्द नहीं है, जहां आनंद अनुभव है; जहां आनंद के लिए परिस्थिति पैदा की जा रही है, जहां आनंद का वातावरण पैदा किया जा रहा है, जहां आनंद की भूमि पैदा की जा रही है। और इसलिए मैं तुमसे यह कहना चाहता हूंः तुम्हें जो प्रतीति हो रही है, वह बिल्कुल सम्यक है। सिर्फ आनंद-आनंद की बात करो तो समझना कि उपनिषद कंठस्थ हो गए हैं। लेकिन जब आनंद के साथ पीड़ा भी आए और जैसा आनंद बढ़े वैसे ही पीड़ा भी बढ़े, तो समझना कि तुम अब शब्द के पार जा रहे हो, अनुभव में उतर रहे हो। द्वार खुला मंदिर का। तुमने डुबकी मारनी शुरू की।
हां, पीड़ा भिन्न होगी, बिल्कुल भिन्न होगी, क्योंकि इसका स्वाद और होगा। यह तिक्त और कड़वी नहीं होगी, यह मीठी होगी, अति मधुर होगी। यह पीड़ा भी आनंद का ही रूप होगी। इस पीड़ा में भी आनंद ही नर्तन करता हुआ मालूम होगा। यह पीड़ा भी आनंद की सहयोगी होगी। यह पीड़ा आनंद का विनाश नहीं करेगी, विध्वंस नहीं करेगी--उसे सहारा देगी, उसे बल देगी, उसे मजबूती देगी।
और तब तुम इस पीड़ा से भी मुक्त नहीं होना चाहोगे। यह पीड़ा प्रेम की पीड़ा है। यह पीड़ा प्रसव की पीड़ा है। यह पीड़ा केवल कुछ धन्यभागियों को मिलती है।

दूसरा प्रश्नः ओशो! आप कहते हैं कि दुखी व्यक्ति ज्यादा भोजन करते हैं, इसलिए मोटे हो जाते हैं। फिर महात्मागण मोटे क्यों होते हैं?

सागर! महात्मागण भी बेचारे बहुत दुखी व्यक्ति हैं। कोई आनंद की बात करने से थोड़े ही आनंदित हो जाता है। आनंद की लफ्फाजी में मत खो जाना।
सच तो यह है कि तुम्हारे महात्मागण जितने मोटे, जितने भद्दे और बेहूदे हो जाते हैं, उतने सांसारिक भी नहीं होते दिखाई पड़ते। और कारण साफ है। सांसारिक को और भी काम हैं, महात्मा को तो कुछ काम बचता ही नहीं, उसको तो दो ही काम बचते हैं--लोगों को मार्गदर्शन दे और भोजन करे। वह भोजनभट्ट हो जाता है। और उसके जीवन में बिल्कुल खालीपन होता है। पत्नी छोड़ आया, जगह खाली हुई।
तुम जरा ख्याल करना, तुम्हारी पत्नी मर जाए, तुम्हें पीड़ा इस बात की थोड़े ही होती है कि पत्नी मर गई। शायद इस बात का तो थोड़ा तुम्हें आनंद ही आ रहा होगा कि चलो अच्छा हुआ मर गई, झंझट मिटी। मगर फिर भी एक पीड़ा होगी, एक दुख होगा। और वह दुख इस बात का होगा कि पत्नी ने तुम्हारे जीवन में एक जगह बना रखी थी, उसने तुम्हारे भीतर स्थान भर रखा था, वह स्थान खाली हो गया।

तुम्हारे भीतर एक रिक्तता अनुभव होगी। पति मर जाए तो और भी ज्यादा रिक्तता अनुभव होगी। क्योंकि हमने स्त्रियों को बिल्कुल अपाहिज कर दिया है। पतियों के ऊपर इतना निर्भर कर दिया है कि पति मर जाए तो पत्नी मरने तक को राजी हो जाती है। सतियां इसीलिए तो हुईं। सता नहीं हुए। पुरुष नहीं मरे स्त्रियों के साथ। वे क्यों मरें? थोड़ी सी जगह खाली होती है। निन्यानबे प्रतिशत तो भरी रहती है, एक प्रतिशत खाली होती है, सो किसी और स्त्री को बिठा लेंगे। कोई खास अड़चन नहीं हो जाने वाली।
इधर पत्नी मरती नहीं, मरघट से लोग घर आते नहीं, कि विवाह की चर्चा शुरू
हो जाती है। मरघट पर ही शुरू हो जाती है। मैंने मरघट पर ही चर्चा सुनी है। अभी पत्नी जल रही है और लोग सोच रहे हैं कि अब इस बेचारे का विवाह कहां करवा दिया जाए। अभी तो जवान है। अभी तो उम्र ज्यादा नहीं। अभी तो अच्छी लड़की मिल जाएगी। अभी पत्नी जल ही रही है और विवाह की चर्चा शुरू हो गई! पुरुष के जीवन में पत्नी का स्थान थोड़ा सा है; उसके पास और हजार काम हैं। उसको चुनाव भी लड़ना है, धन भी कमाना है, पद भी, प्रतिष्ठा भी, यश भी, और-और हजार काम उसकी दुनिया में हैं, उन सबसे वह अपने को भरे हुए है। पत्नी भी एक उन हजार कामों में काम है। मगर स्त्री के लिए तो पुरुष पूरी जगह भर लेता है। करीब-करीब उसकी पूरी आत्मा बन जाता है!
यह अच्छा नहीं है, क्योंकि इसका परिणाम यह होता है कि पुरुष अगर मर जाए तो स्त्री अपने को इतने खालीपन में पाती है कि बजाय जीने के मरना ही पसंद करेगी। जीना मरने से बदतर मालूम होगा। और जो जगह खाली हो गई, उसको भरने भी हम नहीं देते। पुरुष तो दोबारा विवाह कर ले, लेकिन स्त्री को हम कहते हैं कि वह विधवा हो गई, अब उसका विवाह नहीं हो सकता। अब विधवा से कौन विवाह करेगा? लोग कहते हैं, एक पुरुष को खा गई, इससे कौन विवाह करेगा? यह दूसरी को खा जाए। पुरुष के बाबत कोई ऐसा नहीं सोचता।
मुल्ला नसरुद्दीन ने चौथी शादी की। मैंने पूछा कि तेरी पत्नियां इतनी जल्दी-जल्दी कैसे मर जाती हैं? उसने कहा, क्या करूं, मेरे घर में बगीचे में एक जहरीली घास पैदा होती है, उसको खाने से मर जाती हैं। मैंने कहा, पहली भी उसी से मरी? उसने कहा, पहली भी उसी से मरी, दूसरी भी और तीसरी भी। मैंने कहा, चौथी? उसने कहा कि चौथी घास खाने को राजी नहीं थी, मैंने उसकी खोपड़ी खोल दी। वह ऐसे मरी। अब वह पांचवीं की तलाश में है।
पुरुष से कोई नहीं कहता कि अगर उसकी पत्नियां मर गईं तो इसमें कुछ पुरुष का भाग्य कलुषित है, अभागा है। नहीं, लेकिन स्त्री का पति मर जाए तो वह खा गई। स्त्रियों के साथ हमने इस तरह के अमानवीय व्यवहार किए हैं जिसका जिस दिन भी हिसाब लगाया जाएगा, जिस दिन भी पुरुष को अदालत के कटघरे में खड़ा किया जाएगा, उस दिन कोई भी सजा कम पड़ेगी। उसके अपराध बहुत भयंकर हैं। फिर उसने स्त्री को इतना ज्यादा दीन-हीन कर दिया है--न उसे पैसा कमाने देता, न उसे कोई दूसरा काम करने देता, न उसे बाजार में जाने देता--तो स्वभावतः सब कुछ सिकुड़ कर पति पर ही टिक जाता है।
अब इसमें एक विरोधाभास है। पुरुष ही अपने हाथ से स्त्री को पंगु कर देता है ताकि वह उस पर निर्भर हो जाए; और जब वह उस पर निर्भर हो जाती है तो वह उसे सताती है। वह सताएगी ही, क्योंकि उसके पास कुछ और बचा नहीं, जो कुछ है वही है। तो वह बैठी है, रास्ता देख रही है कि तुम घंटा भर लेट पहुंचे, क्यों लेट पहुंचे? कहां रहे? क्योंकि तुम्हें अंदाज नहीं कि घंटे भर... तुम्हारे लिए घंटा है। शायद घंटा भी न हो। तुम गपशप में मित्रों के साथ बैठे होओ कि ताश खेल रहे होओ। लेकिन तुम्हारी पत्नी के लिए तो जीवन में कुछ भी नहीं है। तुम ही हो एकमात्र। तुम्हीं उसके भराव हो। तुम नहीं हो तो वह खाली है। उसके लिए घंटा यूं बीतता है जैसे कि वर्षों बीत गए। उसकी पीड़ा का तुम्हें अंदाज नहीं। तो तुम कहते हो, एक घंटे में क्या बिगड़ गया तेरा? तुम्हें घंटा है, लेकिन तुम सापेक्षता को नहीं समझते। उसे घंटा नहीं है। तुम दोनों की स्थिति बिल्कुल भिन्न है।
तो वह फिर तुम्हें परेशान करती है। तुमने उसे सब तरफ से पंगु कर दिया,
सब तरफ से तुमने उसे दीवालें बंद कर दीं, एक ही दरवाजा छोड़ा। वह दरवाजा तुम हो। तो फिर वह दरवाजे को पकड़ कर रहती है कि दरवाजे को कोई ले न जाए, कोई उड़ा न ले जाए, कोई दूसरा इसको न कब्जा कर ले। तो वह ध्यान रखती है। घर आते हो तो

सब कपड़े-लत्ते देखती है कि कहीं कोई बड़ा बाल वगैरह तो नहीं कपड़े पर पड़ा हुआ है।
चंदूलाल की पत्नी रोज पहला काम यह करती है कि उनके कपड़े की जांच-पड़ताल करती है। और झगड़ा शुरू, क्योंकि बाल मिल ही जाते हैं। चंदूलाल गंजे हैं तो यह भी नहीं कह सकते कि ये मेरे बाल हैं। तो ये इतने बड़े बाल कहां से आए? अब स्त्रियों के गले मिलते होंगे तो बाल वगैरह छूट ही जाते होंगे। झूम-झटक होती होगी, बाल छूट जाते होंगे।
एक दिन वह एकदम छाती पीट कर रोने लगी। चंदूलाल ने पूछा, आज क्या हुआ? क्योंकि चंदूलाल उस दिन घर पहुंचने के पहले ही लांड्री में गए और लांड्री वाले से कहा कि निकाल ब्रश, सब कपड़े बिल्कुल ब्रश से साफ कर दे। एक दफे तो घर ऐसा पहुंचूं कि ये बालों के पीछे झगड़ा न हो। सो उस दिन एक-एक बाल सफा करवा कर आए थे। कोई भूल-चूक न छोड़ी थी। अब यह किसलिए छाती पीट रही है? चंदूलाल बोले, हद हो गई। अब किसलिए छाती पीट रही है? अब किसलिए रो रही है? वह कहने लगी, तुमने हद कर दी! तो अब तुम गंजी स्त्रियों के साथ भी जाने लगे! जाहिर है। एक सीमा होती है। बाल वाली स्त्रियों के साथ जाते थे, यह भी ठीक था। मतलब मैं गंजी स्त्रियों से भी गई-बीती हो गई! मेरे साथ तो घड़ी भर बैठने में तुम्हें बेचैनी होती है और यहां-वहां हर कहीं तुम पता नहीं कहां-कहां मुंह मारते फिरते हो।
तो स्त्रियां फिर इतनी ज्यादा जासूसी में लग जाती हैं। पूरे वक्त जांच रखती हैं। स्वभावतः। कसूर पुरुष का है। तुमने उनकी जिंदगी को सब तरफ से पंगु कर दिया। अब तुम्हीं उनके सब कुछ हो। तुम पर से नजर नहीं हटाई जा सकती। तुम गए कि सब गया। अगर उनके जीवन में कुछ और भी होता तो तुम पर इतनी नजर नहीं टिकती। तुम घंटे भर देर से आते तो कौन फिक्र करता था। शायद तुम घर आते तो पत्नी खुद ही वहां नहीं होती। उसके भी क्लब हैं, उसके भी मित्र हैं। पश्चिम में हालत बदल गई है।
एक आदमी युद्ध के मैदान से लौटा। डेढ़ साल बाद घर आया। देख कर हैरान हुआ कि पत्नी एक दो महीने के बच्चे को गोद में लिए बैठी है। उसने पूछा, यह मामला क्या है? डेढ़ साल से मैं घर में नहीं था, यह बच्चा कैसे पैदा हुआ? जरूर यह रोनाल्ड का बच्चा होना चाहिए। पत्नी ने कहा कि नहीं, रोनाल्ड का नहीं है। तो उसने कहा, फिर जॉनसन का होना चाहिए। पत्नी ने कहा, नहीं, यह जॉनसन का भी नहीं है। तो उसने कहा, यह मरफी का तो होना ही चाहिए! पत्नी ने कहा, तुम्हारा होश ठिकाने है कि नहीं? अपने-अपने ही दोस्तों के नाम गिना रहे हो, जैसे मेरे कोई दोस्त ही न हों!
पश्चिम में हालत बदल गई है। तुमने कोई ठेका ले रखा है? तुम्हारे ही तुम्हारे दोस्त--रोनाल्ड, जॉनसन, मरफी। अरे मेरे भी दोस्त हैं!
पश्चिम में अब पति देर से आता है, पत्नी उससे भी देर से आती है। अक्सर
तो पति बैठा राह देखता है। अब उसको समझ में आता है कि सदियों से जो पत्नी कलह कर रही थी, वह किसलिए कर रही थी। अब जब उसको राह देखनी पड़ती है घर बैठ कर, चिंतित होना पड़ता है कि पता नहीं कहां गई, किसके साथ गई, क्या कर रही होगी, क्या नहीं कर रही होगी--हजार कल्पनाओं में डूब जाता है--कहीं भाग ही तो नहीं गई, भाग गई तो ये बच्चों का क्या होगा!
स्त्री को कुछ और नहीं है, सिर्फ पुरुष बचा। और जब सिर्फ पुरुष बचा और जीवन में कोई और आयाम न रहा... न तुम उसे संगीत सीखने दो, क्योंकि तुम्हें डर कि संगीत मास्टर से ही कहीं प्रेम बन जाए! और संगीत मास्टर कोई ढंग के आदमी तो होते नहीं। बेढंगे आदमी खोजने हों, संगीत मास्टर खोज लो। जमाने भर के लफंगे, नहीं तो वे संगीत मास्टर किसलिए होते! जब कुछ नहीं हो सके तो संगीत मास्टर हो गए। नहीं तो कोई तबला-पेटी बजाता है! जिनमें अकल है वे कोई तबला-पेटी बजाते हैं! कुछ और काम करते। यह क्या रा-रूं, रा-रूं! मतलब खुद तो बिगड़े हैं, अब पत्नी को बिगाड़ेंगे। और ये आदमी कुछ ढंग के हो ही नहीं सकते-- शराब पीएंगे, सिगरेट पीएंगे, सब तरह की हरकतें इनमें पाई जाएंगी और गाना फिल्मी गाएंगे। और फिल्मी गाने गाओगे तो पत्नी पर भी जोश चढ़ेगा।
तो संगीत सीखने नहीं दे सकते। पेंटिंग करने नहीं दे सकते, क्योंकि पेंटिंग करने कहीं सीखने जाना पड़ेगा। और पेंटर्स भी भरोसे के आदमी नहीं। एक तो पहली बात, ये कोई विवाहित नहीं होते। विवाहित आदमी भरोसे का होता है,

क्योंकि पत्नी उसके चरित्र की रक्षा करती है। अविवाहित आदमी का कोई रक्षक नहीं। न घर है, न कोई ठिकाना है--इनका क्या भरोसा! कहीं कोई लंगर ही नहीं है। जहां दिल आया चल पड़े--आज यहां, कल वहां।
चित्रकारी तुम सीखने नहीं दोगे। कविता तुम सीखने नहीं दोगे, क्योंकि कवि तो सबसे गए-बीते। ये जो न करें सो थोड़ा--गांजा पीएं, अफीम खाएं, शराब पीएं। असल में जब तक ये शराब न पीएं तब तक ये कहते हैं कविता ही नहीं उठती। तो तुम पत्नी को कोई आयाम दूसरा तो दे नहीं सकते। तुम पत्नी को नौकरी
भी नहीं करने दे सकते कहीं। क्योंकि तुम्हें खुद का अनुभव है कि तुम दफ्तर में जहां मालिक हो, वहां जो-जो स्त्रियां नौकरी करती हैं उनके साथ तुम क्या करते हो। तो आदमी अपने अनुभव से ही चलता है। एक टाइपिस्ट हो तो पूरा दफ्तर उसके पीछे पड़ा है। टाइपिस्ट को टाइपिंग करने का मौका ही नहीं मिलता, अवसर ही नहीं मिलता, फुरसत कहां उसको!
तो तुम जानते हो कि पत्नी टाइपिस्ट कहीं हो जाए वह भी ठीक नहीं। स्कूल में मास्टरनी नहीं होने दे सकते उसको तुम, क्योंकि मास्टर हैं और हेड मास्टर हैं और एजूकेशन बोर्ड के डायरेक्टर हैं, और एक से एक पहुंचे हुए पुरुष वहां मौजूद हैं। तुम अपने अनुभव से जानते हो कि तुम जहां मौजूद हो, तुम जो कर रहे हो, वही दूसरे पुरुष भी करेंगे। सो पत्नी को सब तरफ से बंद करके घर में रखो। ताला डाल कर कुंजी अपने पास रखो।
तो पत्नी करे क्या? उसके पास कुछ नहीं बचता। इसलिए अक्सर यह होता है
कि विवाह के बाद स्त्रियां मोटी होनी शुरू होती हैं, विवाह के पहले नहीं। तुम जरा गौर करना इस बात पर। विवाह के पहले जो स्त्रियां बिल्कुल छरहरे बदन की थीं, सुंदर थीं, अनुपात में जिनका शरीर था, विवाह के बाद एकदम बेडौल और बेढंगी होने लगती हैं। अब कोई काम बचा ही नहीं उनको। फिर चलीं फ्रिज खोला। चौका है, फ्रिज है, घर के भीतर ही भीतर यहां से वहां होना है, कोई और दूसरा काम है नहीं। अब फ्रिज बार-बार खोलोगे, तो आखिर आदमी आदमी है, आदमी का मन आदमी का मन है, और वहां एक से एक चीजें सजी हुई रखी हैं, तो वे दिन भर खा-पी रही हैं। और जीवन उनका दुख से भरा हुआ है। तो जिस व्यक्ति का जीवन दुख से भरा हुआ होता है, उसके भीतर एक इतनी रिक्तता है कि उसको भर लेने की चेष्टा चलती है, तो वह भोजन से अपने जीवन को भरता रहता है।
यहां मेरा अनुभव है। यहां दीक्षा है। दीक्षा जब पहली दफा आई थी तो यहां कोई संन्यासी उसका मुकाबला नहीं कर सकता था। वह आई ही मेरे पास इसीलिए थी इटली से कि दुबला उसे होना था। क्योंकि इतनी मोटी लड़की को कोई प्रेमी न मिले, कोई दोस्त न बने। उसने जो पहली समस्या मेरे सामने रखी थी वह यही थी कि जिससे भी दोस्ती बनती है, वही मुझको बहन मानने लगता है। यही मेरे जीवन का दुख है। जो देखो वही भाई हो जाता है। तो मैं क्या करूं? जब तक मेरे शरीर की यह हालत है... ।
शरीर सच में उसका गजब का था। लेकिन अब शरीर उसका एक चौथाई हो गया। और कुछ करना नहीं पड़ा। कुछ न व्यायाम करवाना पड़ा है... वह तो सब कर चुकी थी इटली में, वह जो-जो चिकित्सक सलाह दिए थे। दवाइयां ले चुकी थी, व्यायाम कर चुकी थी, डाइटिंग कर चुकी थी--कोई परिणाम नहीं हुआ था। यहां कुछ भी नहीं करना पड़ा। लेकिन यहां वह आनंदित है, प्रफुल्लित है। प्रफुल्लित है इसलिए अब अपने को भरने की कोई जरूरत नहीं रह गई।
यहां आकर सारे संन्यासी धीरे-धीरे जो उनका व्यर्थ वजन है वह खो देते हैं, अपने आप खो देते हैं।
दुख आदमियों को मोटा बना देता है। सुख में एक सौंदर्य है, दुख में एक कुरूपता है। क्यों ऐसा होता है कि दुख आदमी को मोटा बना देता है? बचपन से ही उसका मनोविज्ञान समझना जरूरी है। जिस बच्चे को मां हर समय दूध देने को तैयार है, वह ज्यादा दूध नहीं पीता। पीएगा ही नहीं। कोई कारण नहीं है। भविष्य सुरक्षित है। जब भूख लगेगी, तब मां दूध देने को राजी है। लेकिन जो मां दूध देने में कृपण है, और लाख ना-नुच करती है, इनकार करती है, बचने की कोशिश करती है, जहां तक बने बच्चे को हटाने की कोशिश करती है, वहां तक बच्चे को जब भी स्तन मिल जाएगा मां का तो वह छोड़ेगा नहीं। जितना दूध पी सकता है पी लेगा, क्योंकि भविष्य असुरक्षित है।

तुमने अगर देखा हो, गरीब बच्चों के पेट एकदम बड़े हो जाएंगे! सारा शरीर सूख जाएगा और पेट बड़े हो जाएंगे। तुमने तस्वीरें देखी होंगी, अखबारों में छपती हैं। जहां अकाल पड़ जाता है, वहां लोगों की तस्वीरें देखो--सारा शरीर दुबला हो जाता है और पेट एकदम बड़े हो जाते हैं। यह बड़ी अजीब बात है। पेट दुबले होने चाहिए, क्योंकि अकाल पड़ा हुआ है। लेकिन पेट बड़े हो गए हैं, क्योंकि जो मिल जाता है उसको भर लो, कल का क्या पता!
कल असुरक्षित हो तो आदमी अपने शरीर में भोजन इकट्ठा कर लेना चाहता है। शरीर में एक व्यवस्था है भोजन को सुरक्षित करने की, उससे ही आदमी मोटा होता है। प्रत्येक आदमी के भीतर शारीरिक व्यवस्था है कि तीन महीने के लिए भोजन इकट्ठा किया जा सकता है। इसलिए कोई भी व्यक्ति अगर ठीक स्वस्थ हो तो तीन महीने तक उपवास कर सकता है। मरेगा नहीं, दुबला होता जाएगा, हड्डी- हड्डी हो जाएगा, लेकिन मरेगा नहीं। तीन महीने तक, नब्बे दिन तक कोई मौत नहीं होने वाली। सामान्य स्वस्थ आदमी तीन महीने तक मजे से जी सकता है बिना कुछ खाए। क्योंकि तीन महीने लायक तक चर्बी आदमी इकट्ठी कर लेता है। स्त्रियां और भी ज्यादा चर्बी इकट्ठी कर लेती हैं। वह इस कारण कि उनको गर्भ धारण करना है। और जब बच्चा पेट में होगा तो वे ज्यादा भोजन नहीं कर सकेंगी, क्योंकि बच्चा स्थान ले लेगा, भोजन मुश्किल हो जाएगा। गर्भवती स्त्रियों को वमन हो जाएगा, भोजन करना मुश्किल हो जाएगा, भूख मर जाएगी, खाना भी चाहेंगी तो खा नहीं सकेंगी। तो उस तैयारी के लिए उनके शरीर का इंतजाम अलग है। इसलिए स्त्रियों को मसल नहीं होतीं, चर्बी होती है। इसलिए स्त्रियों के शरीर में एक गोलाई होती है जो पुरुषों के शरीर में नहीं होती। चर्बी गोलाई देती है।
इसलिए तुमने यह बात देखी होगी मजे की कि स्त्रियां सर्दी से सर्दी के दिन हों तो भी बिना बांह के ब्लाउज पहने हुए मजे से चल सकती हैं, कोई अड़चन नहीं उनको। जरा पुरुष को बिना बांह की कमीज पहना कर सर्दी में चलाओ--उनके दांत किटकिटाने लगेंगे। माजरा क्या है? पुरुष तो बलशाली है। इसको दांत नहीं किटकिटाने चाहिए। शर्म नहीं आती! पुरुष होकर, मर्द बच्चा होकर दांत किटकिटा रहा है! और स्त्रियां मजे से चली जा रही हैं।
स्त्रियों के कपड़े कम से कम होते जाते हैं। जैसे सभ्यता विकसित होती
है किसी देश में, कपड़े कम होते जाते हैं। कपड़े के कम होने से तुम समझ लो कि सभ्यता विकसित हो रही है। स्त्रियां बिना कपड़े के मजे से रह सकती हैं, कोई अड़चन नहीं मालूम होती। उसका कुल कारण इतना है कि सारे शरीर पर चर्बी की पर्त जम जाती है। चर्बी की पर्त ऐसा काम करती है जैसे ऊन के मोटे वस्त्र। उस चर्बी की पर्त को पार करके सर्दी भीतर प्रवेश नहीं कर सकती।
इसलिए ठंडे मुल्कों में भी, गर्म मुल्कों की तो बात छोड़ दो... और गर्म मुल्कों की स्त्रियों में अभी इतनी अकल भी नहीं आई है। गरम मुल्कों की स्त्रियां तो कपड़े पहने रहती हैं, ब्लाउज पहने रहती हैं, जम्पर पहने रहती हैं, कसे हुए, बांहों वाले! ठंडे मुल्कों की स्त्रियां, जहां कि बर्फ पड़ रही है, मगर उनके हाथ उघाड़े हैं। और होटलों में तो सेवा करने वाली जो परिचारिकाएं हैं, वे टॉपलेस। ऊपर का कपड़ा ही नहीं पहनतीं। सर्द मुल्कों में, जहां बर्फ पड़ रही है, ऊपर का कपड़ा नदारद है! और नीचे का कपड़ा भी कुछ खास नहीं है, साधु-संन्यासियों जैसा है--लंगोटी इत्यादि; पुरानी भाषा में कहो तो लंगोटी।
कारण है चर्बी का काफी मात्रा में इकट्ठा हो जाना। इसलिए स्त्रियां जितनी मोटी हो सकती हैं उतने पुरुष नहीं हो सकते। उनके पास काफी सुविधा है। बच्चे के लिए नौ महीने उनको भोजन से करीब-करीब वंचित रहना पड़ेगा या कम से कम भोजन करना पड़ेगा, तो नौ महीने के लिए उनको शरीर में चर्बी इकट्ठी करनी पड़ती है।
इसलिए स्त्रियां उपवास आसानी से कर सकती हैं। यह जिनके परिवारों में उपवास होता है, वे लोग भलीभांति जानते हैं। पुरुष की जान निकलती है, स्त्रियां मजे से कर लेती हैं।
मैं सोहन के घर जब पहली दफा ठहरा तो सोहन दस-दस दिन के उपवास कर लेती थी। पर्युषण के दिन दस दिन उपवास। माणिक बाबू से कोई करवाए दस दिन के

उपवास। होश-हवास खो देंगे। दस दिन में तो आत्मा परमात्मा से मिलने लगेगी। मगर सोहन दस दिन के मजे से उपवास करती थी, कोई अड़चन नहीं।
जैन स्त्रियां जिस तरह उपवास करती हैं, पुरुषों को बिल्कुल मात कर देती हैं। पुरुषों को सिद्ध कर देती हैं--तुम काहे के धार्मिक हो! जैन साध्वियां जैसी उपवास में कुशल होती हैं, जैन मुनि नहीं होते। जैन मुनि हो नहीं सकते। उसका कारण कुछ और नहीं है, कारण सिर्फ यह है कि स्त्रियां चर्बी इकट्ठी करने में कुशल हैं, पुरुष चर्बी उतनी इकट्ठी कर नहीं सकता। वह उसकी शारीरिक क्षमता नहीं है।
मगर अगर स्त्रियां दुखी हों तो फिर बहुत मोटी हो जाएंगी। पुरुष दुख में भी इतना मोटा नहीं होता। मगर दुख में लोग ज्यादा भोजन करते हैं--यह सुनिश्चित बात है। सुख में लोग कम भोजन करते हैं। मेरी दृष्टि यही है कि महावीर ने उपवास नहीं किए जैसा जैन मुनि करते हैं। वे तो आनंद की अवस्था में ऐसे तल्लीन थे कि भोजन नहीं किया। भोजन करने का ख्याल नहीं आया, बात ही नहीं उठी, भूल ही गए। ऐसी मस्ती में थे, ऐसी मदमस्ती! वह अनशन नहीं था, वह उपवास ही था। उपवास का अर्थ होता हैः अपने पास होना। अपनी आत्मा के इतने निकट थे, वहां ऐसी रसधार बह रही थी आनंद की, ऐसा अमृत बरस रहा था कि कौन फिक्र करे! कौन जाए भीख मांगने, किसको पड़ी! कब दिन निकला, कब दिन गुजरा, पता ही न चले।
यहां मेरे न मालूम कितने संन्यासी मुझे आकर कहते हैं कि बड़ी हैरानी
की बात है कि जब से यहां आए हैं, समय कैसे गुजर जाता है, पता नहीं चलता! दिन निकल जाते हैं, महीने निकल जाते हैं, वर्ष निकल जाता है--यूं जैसे अभी आया, अभी गया।
जब तुम मस्ती में हो तो समय शीघ्रता से भागता है; जब तुम दुख में हो, समय ठिठक-ठिठक कर चलता है, चलता ही नहीं जैसे। जैसे घड़ी जंग खा जाती है, कांटे सरकते ही नहीं। और जब तुम आनंद में होते हो तो कांटे भागते हैं। दुखी आदमी क्या करे? उसके भीतर एक रिक्तता मालूम होती है, एक गड्ढा मालूम होता है। इसलिए सागर, मैं कहता हूं कि भोजन ज्यादा करना दुखी आदमी का लक्षण है।
मैं तुमसे नहीं कहता उपवास करो। मेरी तुम बात को समझना। मेरी बात हर जगह पुरानी तथाकथित रूढ़ियों से बिल्कुल विपरीत है। मैं उपवास का आनंद समझता हूं, लेकिन मैं यह नहीं कहता कि तुम उपवास करो। मैं कहता हूं, तुम आनंदित हो जाओ; फिर अगर उपवास घट जाए, वह बात और। तब उपवास का मजा और। लेकिन उपवास मत करना। उपवास से आनंद नहीं घटेगा।
तुम्हें समझाया गया है सदियों से कि उपवास करोगे तो आत्मानंद मिलेगा।
यह बात झूठ है। हां, इससे उलटी बात सच है--आत्मानंद मिले तो उपवास घट सकता है। मगर अपरिहार्यता नहीं है कि घटना ही चाहिए। अनिवार्यता नहीं है। यह प्रत्येक व्यक्ति की अलग-अलग शारीरिक जरूरतों पर निर्भर होगा। और प्रत्येक व्यक्ति की शारीरिक जरूरतें बिल्कुल अलग-अलग हैं, बिल्कुल भिन्न-भिन्न हैं।
पर तुमने पूछा है कि फिर महात्मागण क्यों मोटे होते हैं?
उसका भी कारण वही है। वे भी दुखी लोग हैं। उनका दुख तुमसे ज्यादा है। तुम्हें तो कम से कम थोड़ी आशा है कि संसार में हो तो आज नहीं कल कुछ न कुछ पा लोगे, कभी न कभी सुख मिल जाएगा; दौड़ रहे हो, लड़ रहे हो, संघर्ष कर रहे हो। महात्मागण ने तो संसार छोड़ दिया, अब उनको एक और दोहरी चिंता हो गई है कि पता नहीं उन्होंने ठीक किया या नहीं।
न मालूम मुझसे कितने महात्माओं ने कहा है कि कई बार यह शंका मन में उठती है, यह संदेह मन को पकड़ लेता है कि हमने ठीक किया! अगर हम ठीक हैं तो संसार के ये करोड़ों-करोड़ों लोग गलत हैं। क्या इतने लोग गलत हो सकते हैं? और फिर सब छोड़ कर भी हमको कोई आनंद तो मिल नहीं रहा है। तो कहीं ऐसा तो नहीं हुआ कि हमने भ्रांति कर ली है अपने साथ, अपने को धोखा दे लिया है।
तो महात्मागण क्या करें? न काम है, न धंधा है, न ताश खेल सकते हैं, न क्लब जा सकते हैं, न सिनेमा देख सकते हैं। कोई और दूसरी तो संभावना बची नहीं, सिर्फ एक ही बचा है सुख उनके लिए--स्वाद का सुख। सो तुम देख सकते हो तुम्हारे अखंडानंद, पाखंडानंद और न मालूम... नाम तो उनके सबके आनंद में

हैं, आनंद ही आनंद मालूम होता है नाम से तो--अखंडानंद। मगर अगर उनके ढंग देखो तो साफ जाहिर होता है कि आदमी दुखी है, परेशान है, इनका कुल रस खाने- पीने में है।
मटकानाथ ब्रह्मचारी पंद्रह-बीस आदमियों का भोजन हजम कर चुकने के बाद बोले, यजमान, पानी लाओ। यह सुन कर यजमान के प्राणों में प्राण आए। उसने पानी का लोटा दिया, तब मटकानाथ ने कहा, वत्स, मेरी यह खानदानी आदत है कि जब तक आधा खाना न हो जाए, तब तक पानी न पीया जाए। यजमान पर जो गुजरी वह तो तुम समझ ही गए होओगे। खैर पानी पीने के बाद उन्होंने फिर उतना ही खाना खाया, तब अपनी घड़े जैसी तोंद पर हाथ फेर कर वे बोले, अब इस बस में सवारियां ठसाठस भर चुकी हैं, अब कुछ नहीं खाऊंगा।
यजमान ने औपचारिकतावश कहा, नहीं-नहीं महाराज--अब यजमान को डर भी नहीं था--यह एक रसगुल्ला तो और ले लीजिए। अब यजमान ने सोचा कि अब थोड़ी उदारता ही दिखा दो। जब महात्मा ने इतनी उदारता बरती है तो अब अपनी तरफ से भी क्या कंजूसी दिखानी! अब बरबाद तो कर ही चुका है यह। कहा कि यह तो रसगुल्ला लेना ही होगा। पक्का भरोसा था कि वे नहीं लेंगे। कहा, यह तो खास आपके लिए ही बनाया गया है। नहीं, आपको लेना ही होगा।
ब्रह्मचारी ने झट से उसे लिया और गपक गए। बोले, लाओ-लाओ, अभी बस में कंडक्टर की सीट खाली है। मगर अब बिल्कुल भी जगह नहीं बची--पांव रखने की भी नहीं।
रसगुल्ले के बाद यजमान ने एक मिश्री का बड़ा सा लड्डू देते हुए कहा, महाराज, यह और ग्रहण कीजिए। सोचा कि अब तो असंभव है। अब तो कंडक्टर की जगह भी भर चुकी। इतनी कृपा तो--उसने कहा--आपको मुझ पर करनी ही होगी, वरना मेरी आत्मा को बड़ा क्लेश पहुंचेगा। हमारे परिवार में परंपरा है कि मेहमान को अंत में मिश्री का लड्डू अवश्य परोसा जाए।
मटकानाथ के मुंह में फिर पानी आ गया। वे बोले, ठीक है, लाओ उसे भी ठिकाने लगा दूं। ऐसा कह वे उसे भी हजम कर गए।
यजमान ने पूछा, महाराज, एक शंका उठ आई है, समाधान करिए। आपने तो कहा था
कि बस में जरा सी भी जगह नहीं है, फिर यह लड्डू कहां समा गया?
ब्रह्मचारी ने उत्तर दिया, वत्स, यदि बस में तिल रखने की भी जगह नहीं
है और देश का प्रधानमंत्री आ जाए, तो उसके लिए जगह मिलेगी कि नहीं? बस यही समझो कि मिश्री का यह लड्डू प्रधानमंत्री है।
फिर यजमान ने हिम्मत भी नहीं की कि अब कुछ और आगे औपचारिकता दिखाए।
तुम अपने महात्माओं पर जरा ध्यान दो। और ये वे ही लोग हैं जो चौबीस घंटे तुम्हें समझा रहे हैं कि यह जगत तो माया है। इस देह में क्या रखा है, यह तो मिट्टी है, यह तो सब सपना है, स्वप्नवत। और इनके शरीर देखो और इनका भोजन देखो, तब तुम समझ जाओगे कि इनकी बातों में कितनी सचाई है, कितना अर्थ है।
तुम्हारे महात्माओं में और तुम्हारी स्त्रियों में बहुत भेद नहीं है। इसलिए दोनों में तालमेल भी बैठता है। तुम्हारे महात्मा तुम्हारी स्त्रियों के सहारे ही जी रहे हैं। और तुम्हारी स्त्रियों के लिए और कहीं कोई जगह नहीं है जाने की, क्योंकि और जगह तो तुम्हें शक-संदेह है, एक महात्माओं पर भर नहीं तुम्हें शक-संदेह होता। महात्मा तो महात्मा हैं। सो वहां तुम स्त्रियों को जाने देते हो। संगीतज्ञों के पास जाने नहीं दोगे, नर्तकों के पास जाने नहीं दोगे, कवियों के पास जाने नहीं दोगे; बस एक जगह तुमने छोड़ रखी है--मंदिर, महात्मा। क्योंकि तुम सोचते हो कि महात्मा तो पहुंचे हुए व्यक्ति हैं, संसार को माया कह रहे हैं। तो तुम्हारी स्त्रियों में और तुम्हारे महात्माओं में एक तालमेल है, एक शड्यंत्र है। स्त्रियां ही तुम्हारे तथाकथित महात्माओं को जिलाए हैं, चला रही हैं। और तुम्हारे महात्मा भी दुखी हैं और तुम्हारी स्त्रियां भी दुखी हैं। और दुखियों में सहानुभूति पैदा हो जाती है। दुखी एक-दूसरे के कंधे पर सिर रख कर रोने लगते हैं।
तीन मित्र अपनी-अपनी मोटी पत्नियों के बारे में चर्चा कर रहे थे। एक बोला, मेरी बीबी इतनी मोटी है कि रिक्शे वाले उसे बिठाने से मना कर देते

हैं। और तांगे वाले कहते हैं--माफ करिए, एक बार में तो हम नहीं ले जा सकते, यदि दो फेरी में ले जाएं तो क्या आपको कोई एतराज है?
दूसरा मित्र बोला, मेरी बीबी इतनी मोटी है कि पिछली बार जब हम लोग स्टेशन से घर आने के लिए टैक्सी में बैठने लगे, तो टैक्सी ड्राइवर का झगड़ा हो गया पास में ही खड़े एक ट्रक ड्राइवर से। कुछ मामला यह था कि ट्रक ड्राइवर कहता था कि भाई, तू हमारा धंधा चौपट किए दे रहा है। ट्रक की सवारी टैक्सी में ले जा रहा है।
तीसरा मित्र बोला, यह भी कुछ नहीं। तुम मेरी बीबी के किस्से सुनोगे तो सुन कर गश खा जाओगे। परसों शाम की ही बात है, मैं उसका पेटीकोट धुलवाने के लिए धोबी के यहां गया, तो धोबी ने कहा--क्षमा कीजिए श्रीमान जी, हमारे यहां टेंट-तंबू वगैरह धोने का काम नहीं किया जाता।
दोनों दुखी हैं। स्त्रियां महात्माओं का सत्संग करती हैं, महात्माओं
की सेवा करके उनको सांत्वना देती हैं। और महात्मा पौराणिक कथाएं, व्यर्थ की झूठी कपोल-कल्पित कहानियां सुना-सुना कर स्त्रियों को सांत्वना देते हैं।

तीसरा प्रश्नः ओशो! मैं आपका संन्यास लेने से बहुत ही डरता हूं। कृपया अपनी शराब कुछ ऐसी पिलाएं कि मैं साहस कर सकूं!

देवराज मेहता! मेरा संन्यास है तो खतरनाक। डर तो स्वाभाविक है। शराब
भी मैं पिला सकता हूं। वही मेरा धंधा है। लेकिन शराब के जोश में तुमने अगर संन्यास ले लिया, तो वह उचित न होगा। वह तुमने अपनी सूझ-बूझ, अपने होश-हवास में न लिया होगा--बेहोशी में लिया होगा।
और शराब जब उतर जाएगी, फिर क्या करोगे? यहां से जब घर जाओगे, गांव के लोग मिलेंगे, पत्नी के दर्शन करोगे, बाल-बच्चे पूछेंगे कि डैडी, तुम्हें क्या हो गया? भले-चंगे घर से गए थे! उन सबको देख कर नशा तिरोहित हो जाएगा। नशे में लिया गया संन्यास नशे के तिरोहित होते ही गिर भी जाएगा। उसका कोई मूल्य नहीं है। होश-हवास में लो।
फिर एक खतरा और भी है। नशे के साहस का कोई भी मूल्य नहीं है। नशे के साहस में तुम कुछ ऐसा काम भी कर सकते हो जो करके तुम पीछे पछताओ--बहुत पछताओ।
नशा तो मैं पिलाता हूं और ऐसा पिलाता हूं कि जनम-जनम न उतरे। मगर संन्यासी हो जाओ तभी पिलाता हूं, उसके पहले नहीं। संन्यासी होना मेरे मयकदे का प्रवेश-पत्र है। उसके पहले सुनो मेरी बात, समझो मेरी बात, होश-हवास से, सजग होकर, सोए-सोए नहीं।
संन्यास लेने तक तो तुम्हारा होश-हवास मैं चाहता हूं पूरा कायम रहे। क्योंकि तुम कुछ ऐसा काम न कर गुजरो जिसके लिए तुम्हें पछताना पड़े।
एक शराबघर में एक बिल्ली थी। एक दिन वह एक चूहे के पीछे दौड़ी। चूहा भी भागा और भागते हुए एक शराब से भरे हुए बर्तन में जा गिरा। बिल्ली काफी देर इंतजार करती रही, तलाशती रही, मगर चूहा न मिला सो न मिला। दूसरे दिन शराबघर के मालिक ने चूहे को बाहर निकाला। चूहा गरज कर बोला, कहां है वह हरामजादी बिल्ली? क्या समझ रखा है अपने को? लाओ मेरे सामने, कर दूं चारों खाने चित्त।
नशे में कुछ उलटा-सीधा काम न कर बैठना।
फिर नशे का भरोसा क्या? मैं तो पिला दूं, संन्यास ही निकले नशे से, यह कोई जरूरी नहीं है। हिम्मत आ जाए तो पता नहीं हिम्मत का क्या परिणाम हो! हिम्मत आ जाए और तेजी से भाग खड़े होओ। हिम्मत भागने की आ जाए, यह भी तो खतरा है, यह भी डर है। नशे की हिम्मत क्या करवाएगी, इसके लिए कोई पहले से निर्णय कर नहीं सकता।
सज्जन आदमी को नशा करवा दो, गालियां बकने लगता है। कोई सोचा भी नहीं
था कि यह गीता-पाठी एकदम गालियां बकने लगेगा। सोचा तो हमने यह था कि नशा करवा देंगे तो गीता का उदघोष होगा, और यह बकने लगा मां-बहन की गालियां।
गालियां भीतर भरी थीं, गीता तो ऊपर-ऊपर थी। वह तो होश रहता तो चलती।

होश में हो तब तक तुम्हें ख्याल भी आ रहा है संन्यास लेने का, बेहोश होकर क्या ख्याल आएगा, पता नहीं। भीतर क्या-क्या पड़ा हो, क्या न पड़ा हो! जन्मों-जन्मों का कचरा इकट्ठा है।
इसलिए जब तक तुम संन्यासी न हो जाओ तब तक मेरी शराब के तुम पात्र नहीं होते। हां, संन्यासी तुम हो जाओ, फिर मैं राजी हूं पिलाने को। फिर कोई मेरी तरफ से कमी नहीं होती। मगर जब तक तुम संन्यासी नहीं हो, तब तक मैं तुम्हें बिल्कुल मुक्त छोड़ रखना चाहता हूं।
सुनो, समझो, विचारो, विश्लेषण करो, तर्क की कसौटी पर कसो, जल्दी मत करो, धीरज से, आहिस्ता से। क्योंकि मैं जो कह रहा हूं वह खतरनाक तो है ही। वह सारी परंपराओं का विरोध है, उनका अतिक्रमण है। हां, तुम निर्णय कर लोगे अपनी तरफ से, अपनी बुद्धि से समर्पण का, फिर ठीक है। उसके बाद तुम मेरे हाथ में हो। नहीं तो खतरा है।
मुल्ला नसरुद्दीन के दांत में बहुत पीड़ा थी, लेकिन दांत निकलवाने में नसरुद्दीन को बड़ा डर लगता था। दांत के डाक्टर ने उसे बहुत तरह से समझाया कि नसरुद्दीन, दर्द बिल्कुल नहीं होगा। बस दो मिनट की बात है। लेकिन नसरुद्दीन बड़ा घबड़ाए। आखिर नसरुद्दीन जब तैयार न हुआ तो डाक्टर थोड़ी सी व्हिस्की लेकर आया और मुल्ला को देते हुए बोला, लो नसरुद्दीन, शायद इसे पीकर तुम्हें थोड़ी हिम्मत आए।
व्हिस्की पीने के दो-चार मिनट बाद तो नसरुद्दीन एकदम खड़ा हो गया और गरज कर बोला, अब आई साली हिम्मत। अब जरा कोई हाथ तो लगा कर देखे मेरे दांत को। अरे हाथ-पैर तोड़ दूंगा जिसने जरा सा छुआ मेरे दांत को।
अब कैसी हिम्मत आ जाए तुममें पी लेने के बाद कि तुम मुझसे ही कहने लगो
कि अब देखूं कौन देता है मुझे संन्यास! या नशे में ऐसे भागो कि फिर कभी लौट कर ही न आओ। अभी कम से कम आ तो जाते हो।
आते रहो, जाते रहो, देवराज मेहता। आते रहे, जाते रहे, बात होने वाली है, देर-अबेर। मगर जब समय पक जाए तभी होनी चाहिए। कच्ची बात नहीं होनी चाहिए। कच्ची बात ठीक भी नहीं। कच्चा फल गिरे वृक्ष से तो सड़ जाएगा, किसी के काम न आएगा। पक जाए तो ही सार्थक है।
दो शराबी एक झाड़ पर बैठे हुए थे। डट कर पीए हुए थे। झूल रहे थे, झूम रहे थे, गीत गुनगुना रहे थे। एक उनमें से झाड़ से टपक पड़ा। उसके गिरने से जो धड़ाम की आवाज हुई तो दूसरा जो अभी भी झाड़ पर बैठा था, उसे जरा होश आया। उसने नीचे झांक कर देखा और कहा, भाई, मुझे बड़ी पीड़ा हो रही है कि तुम झाड़ से नीचे गिर गए। चोट वगैरह तो नहीं आई? उसने कहा, तू फिक्र मत कर। अरे तू गिरता तो हमें दुख होता। तुझे दुख करने की क्या जरूरत है? पहले ने पूछा, तुम्हारा मतलब? उसने कहा कि अरे हम तो पक चुके हैं, तू कच्चा है। अरे मूरख, जो पक जाएगा वह गिरेगा ही। अभी तू कच्चा है, लटका रह। जल्दी मत करना। जब पकेगा तब तू भी गिरेगा।
देवराज मेहता, थोड़े पक जाओ। अभी डंडा मार कर गिराया जा सकता है तुम्हें; मगर कच्चे गिर गए, क्या काम आओगे? किसी उपयोग के नहीं होओगे। आते रहो, जाते रहो, जल्दी न करो।
मामला तो यह खतरनाक है ही। और शराब भी जरूर पिलाऊंगा। यह शराब ऐसी है
जो बेहोशी नहीं देती, होश देती है। मगर इस शराब की पहली शर्त है, वह तुम्हें पूरी करनी पड़े! वही संन्यास है। वही शिष्यत्व है। जब तक तुम वह शर्त पूरी नहीं करते, तब तक तुम पात्र ही नहीं हो कि मैं तुम्हारे पात्र को भरूं। तब तक तुम दर्शक हो, तब तक तुम इस तीर्थ के अंग नहीं हो।
मगर भाव उठ रहा है तो लगता है धीरे-धीरे पक रहे हो। गिरोगे, समय आ जाएगा। और जो समय पर बात होती है वही ठीक है। और हर चीज का अपना समय है। जल्दबाजी कभी भी शुभ नहीं है।

आखिरी प्रश्नः ओशो! क्या धर्मगुरु सच ही बुद्धू होते हैं?

दीपक! पता नहीं धर्मगुरु से तुम्हारा क्या प्रयोजन है। अगर महावीर, बुद्ध, जरथुस्त्र, लाओत्सु को तुम धर्मगुरु समझते हो, तो वे बुद्ध हैं,

बुद्धू नहीं। लेकिन वे धर्मगुरु नहीं हैं। वे स्वयं धर्म हैं। वे धर्म के साकार रूप हैं।
धर्मगुरु तो हैं पंडित, पुरोहित, मौलवी, अयातुल्ला खोमैनी, पोप पाल, पुरी के शंकराचार्य, ये सब धर्मगुरु हैं। और ये धर्मगुरु निश्चित ही बुद्धू हैं। इसमें मैं जरा भी संकोच नहीं करता हूं। मैं सत्य को बिल्कुल नग्न ही कह देना पसंद करता हूं। ये अगर बुद्धू न होते तो धर्मगुरु न होते। आदि शंकराचार्य धर्म हैं, मगर ये नकलची हैं। ये कोई शंकराचार्य हैं?
ये कार्बन कापियां हैं। और इस जगत में इससे बड़ा कोई अपमान नहीं है आदमी का कि वह कार्बन कापी हो जाए। प्रत्येक व्यक्ति मौलिक है। और मौलिक होने में ही उसका अपना गौरव है। और अपने गौरव में ही परमात्मा का गौरव है। जो कार्बन कापी होकर रह जाता है, वह दो कौड़ी का हो जाता है।
यहूदी फकीर झुसिया मृत्यु-शय्या पर पड़ा था। विद्रोही था, बगावती था। मैं जिन थोड़े से लोगों को प्रेम करता हूं, उनमें से एक झुसिया भी है। एक वृद्ध यहूदी धर्मगुरु ने आकर झुसिया को कहा, झुसिया, अब आखिरी समय आ गया, अब परमात्मा से सुलह कर लो।
झुसिया ने आंख खोली और कहा, उससे तो कभी झगड़ा ही नहीं हुआ, तो सुलह कैसी करनी? झगड़ा तुमसे था। और तुमसे झगड़ा जारी रहेगा। झूठ से कोई सुलह नहीं हो सकती, सत्य से कोई झगड़ा नहीं है।
धर्मगुरु ने कहा कि देख, मान, जिंदगी भर तू बगावत में गुजार दिया है,
अब झुक जा। अब तो तू मूसा का स्मरण कर। क्योंकि वही काम पड़ेंगे। आखिरी क्षणों में भी अगर मूसा के चरण गह ले तो बच जाएगा, नहीं तो डूबेगा, भटकेगा। मान ले मेरी।
झुसिया हंसने लगा। उसने कहा, देखो, मैं तुम्हें फिर कहता हूं, यह मेरी आखिरी सांस है और यह मेरी आखिरी बात भी कि परमात्मा से जब मेरा मिलना होगा, तो मैं भलीभांति जानता हूं कि परमात्मा मुझसे यह नहीं पूछेगा कि तुम मूसा क्यों नहीं हो। वह मुझसे पूछेगा--झुसिया, तुम झुसिया क्यों नहीं हो? अगर उसे मुझे मूसा बनाना था तो मूसा बनाया होता। उसने मुझे झुसिया बनाया तो मैं झुसिया ही बनने की कोशिश में लगा रहा हूं। मैं बिल्कुल आश्वस्त हूं कि परमात्मा मुझसे प्रसन्न है। मूसा से मुझे क्या लेना-देना! मूसा प्यारे आदमी थे, सो ठीक है। लेकिन मैं कोई मूसा बनने की चेष्टा में नहीं हूं, न मुझे किसी के चरण गहने हैं। परमात्मा के सामने मुझे अपना झुसिया होना प्रकट करना पड़ेगा--कि उसने मुझे जो बनाया था मैं वही हूं, मैं नकल नहीं हूं।
मगर धर्मगुरु यूं हार जाने वाले नहीं होते। फिर भी उसे बुद्धि न आई कि
यह आदमी जो मरते वक्त इस साहस की, गजब की बात कर रहा है, इससे अब और कुछ कहना ठीक नहीं। उसने फिर भी उससे कहा कि देख, तू मेरी सुन, कम से कम प्रार्थना कर ले। क्योंकि मुझे जहां तक याद पड़ता है, तूने जिंदगी में कभी यहूदी धर्म की जो स्वीकृत प्रार्थना है, वह तूने कभी नहीं की।
झुसिया ने कहा कि तुम क्या व्यर्थ की बकवास इस आखिरी समय में ले आए हो। मैं कोई बंधी-बंधाई प्रार्थनाएं नहीं करता, और न करूंगा। प्रार्थना भी कहीं बंधी-बंधाई हो सकती है? सहज स्फूर्त होती है। रही परमात्मा से प्रार्थना करने की बात, तो अब क्या प्रार्थना करनी! अब जा ही रहा हूं, आमना ही सामना हो जाएगा। तैयारी मैंने कर रखी है। और मेरी तैयारी अपने ढंग की है। मैंने कुछ प्यारे चुटकुले चुन रखे हैं जो परमात्मा को सुनाऊंगा। क्योंकि थक गया होगा बेचारा तुम जैसे धर्मगुरुओं की बकवास सुनते-सुनते। कुछ चुटकुले, कुछ लतीफे, कि दिल खोल कर हंस लेगा, तो बस प्रार्थना स्वीकृत हो गई।
धर्मगुरु धर्म का शोषण करते हैं। यह धर्म नहीं है, यह अधर्म है। और ये निश्चित बुद्धू होते हैं। इनके पास अगर प्रतिभा हो तो ये बुद्ध हो जाएं, ये बौद्ध न हों। अगर इनके पास प्रतिभा हो तो ये क्राइस्ट हो जाएं, क्रिश्चियन न हों। अगर इनके पास प्रतिभा हो तो ये जिन हो जाएं, जैन न हों। और यही मेरा तुमसे कहना है कि जिन बनो तो ठीक। जिन यानी जिसने अपने को जीता। जैन मत बनना। जैन का अर्थ होता हैः जिन्होंने अपने को जीता उनके पीछे चलना। किसी के पीछे चलने का कोई सवाल नहीं है।

मेरा संन्यासी मेरे पीछे नहीं चलता है, मेरे साथ चल रहा है। साथ चलने में और पीछे चलने में जमीन-आसमान का भेद है। पीछे अनुयायी चलता है, साथ मित्र चलते हैं। यह एक भाईचारा है। यह एक दोस्ती है, एक मैत्री है। मैं तुम्हारा अगुआ नहीं हूं।
एक धर्मगुरु रेल के एक डिब्बे में बैठे हर समय रह-रह कर दो घड़ी निकाल
कर देखते। इससे एक दूसरा मुसाफिर बोला, महाराज, आप दो घड़ियां क्यों रखते हैं? धर्मगुरु ने कहा, एक में घंटे की सुई नहीं है और दूसरे में मिनट की सुई नहीं है।
देखी प्रतिभा!
नसरुद्दीन का बैल मस्जिद में घुस गया। मस्जिद के इमाम ने बड़ी लानत-मलामत की। उलटा-सीधा कहा। कहा, शर्म नहीं आती? मुसलमान होकर और तुम्हारा बैल मस्जिद में घुसे! नसरुद्दीन ने उत्तर दिया, मियां, जानवर है, घुस गया। अरे कभी मुझे देखा मस्जिद में!
एक दिन शहर का धर्मगुरु अपने खूबसूरत घोड़े पर बैठ कर नसरुद्दीन के गांव आया था। वह अपने मित्र के घर के बाहर घोड़ा बांध भीतर चला गया।
थोड़ी देर बाद मुल्ला उधर से निकला तो उसने देखा कि प्यारा घोड़ा है। तो जाकर उस पर हाथ फिराने लगा, उसकी पीठ सहलाने लगा। राह से गुजरते एक व्यक्ति ने यह देखा तो बोला कि क्या मियां, घोड़ा बेचोगे?
मुल्ला ने कहा कि अब क्या करना चाहिए! बोला कि बेचना तो है, मगर पूरे पांच हजार लगेंगे। मुल्ला ने सोचा कि शायद कीमत सुन कर घबड़ा जाए, और वैसे भी घोड़ा तो अपना है नहीं।
लेकिन व्यापारी ने फौरन पांच हजार रुपये निकाले और नसरुद्दीन को थमा दिए। और व्यापारी तो घोड़ा लेकर चलता बना। अब नसरुद्दीन घबड़ाया। इतने में धर्मगुरु मकान के बाहर निकला। धर्मगुरु को बाहर निकलते देख नसरुद्दीन जल्दी से घोड़े की रस्सी को अपने गले में पहनने लगा।
धर्मगुरु तो घोड़े की जगह आदमी को देख चौंक गया। उसने कहा, क्या बात है भई, घोड़े की जगह तुम कैसे?
नसरुद्दीन बोला, बात यह है जनाब कि आज से दस साल पहले मुझे स्वामी अखंडानंद ने श्राप दिया और कहा कि जा, घोड़ा हो जा! तब से मैं घोड़े का जीवन बिता रहा था। आज मेरा आखिरी दिन था। आज श्राप पूरा हुआ। और आज मैं पुनः आदमी बन गया।
धर्मगुरु ने कहा, अच्छा जाओ, तुम्हें मैं मुक्त करता हूं।
जब धर्मगुरु गांव से शहर आया, तो देखा कि वही घोड़ा व्यापारी के यहां खड़ा है। धर्मगुरु घोड़े के पास पहुंचा और बोला, मित्र, फिर इतनी जल्दी घोड़े के रूप में! अरे अब क्या हुआ?
जिनको तुम धर्मगुरु समझते हो, पंडित समझते हो, ये सिर्फ तोते हैं। ये रटे-रटाए वचन उद्धरण कर रहे हैं। इनके पास अपना कुछ भी नहीं है। इनके पास न तो प्रतिभा है, न मेधा है, न जीवन के सत्य की कोई अनुभूति है। ये व्यवसायी हैं। ये धंधा कर रहे हैं। और उन्होंने अच्छा धंधा पकड़ रखा है। सस्ता धंधा है। कुछ लगता भी नहीं। अदृश्य का धंधा है। और मूढ़ों से दुनिया भरी है, जिनका शोषण किया जा सकता है। इतने पागलों से दुनिया भरी है कि जरूर यहां कोई न कोई उनका शोषण करेगा। और जब भी कोई व्यक्ति तुम्हें जगाएगा इनके शोषण से, स्वभावतः ये सब नाराज हो जाएंगे।
अगर तुम्हारे सारे धर्मगुरु मुझसे रुष्ट हैं और नाराज हैं, तो कुछ आश्चर्य नहीं। यह बिल्कुल स्वाभाविक है। क्योंकि मैं उनके मूल पर ही आघात कर रहा हूं, उनकी जड़ें काट रहा हूं। अगर मेरी बात में कुछ भी सत्य है, तो धर्मगुरुओं का भविष्य अंधकारपूर्ण हो सकता है।
कल ही जर्मनी से एक पुस्तिका मेरे पास आई है। जर्मनी के प्रोटेस्टेंट चर्च ने छापी है मेरे खिलाफ। और उसमें यह सूचना दी है सारे चर्चों को जर्मनी के कि जो भी व्यक्ति रजनीशी हो गया है, वह व्यक्ति न तो ईसाई रहा, न प्रोटेस्टेंट रहा, उसे चर्च में प्रवेश न करने दिया जाए। किसी प्रोटेस्टेंट संस्था में उसे नौकरी पर न रखा जाए। नौकरी पर हो तो अलग कर दिया जाए। प्रोटेस्टेंट स्कूल, प्रोटेस्टेंट अस्पताल, प्रोटेस्टेंट कालेज या और भी किसी तरह की प्रोटेस्टेंट संस्थाएं किसी रजनीशी संन्यासी

को प्रवेश न दें। और अगर कोई व्यक्ति पहले से वहां है और संन्यासी हो गया है, तो उसे तत्क्षण अलग कर दिया जाए; क्योंकि न अब वह ईसाई है, न अब वह प्रोटेस्टेंट है। उसके बच्चों को कोई चर्च बपतिस्मा न दे।
जिसने लिखी है, वह धर्मगुरु है और प्रोटेस्टेंट चर्च का जर्मनी का बड़ा अधिकारी है। इस तरह की घटनाएं करीब-करीब दुनिया के सारे देशों में घटने वाली हैं। सारे धर्मगुरु मेरे विपरीत तरह-तरह के उपद्रव खड़े करेंगे। यह सुनिश्चित है। और उसका सीधा कारण यह है कि मैं किसी धर्म की स्थापना नहीं कर रहा हूं। क्योंकि मैं कोई धर्मगुरु नहीं हूं। मैं तुम्हें सारे धर्मों से मुक्त करना चाहता हूं ताकि तुम धार्मिक हो सको। धर्मों ने तुम्हारी धार्मिकता मार डाली है। मैं धर्मशून्य धार्मिकता का पक्षपाती हूं। मैं एक दुनिया देखना चाहता हूं जहां न ईसाई हों, न हिंदू हों, न जैन हों, न बौद्ध हों, न पारसी हों। जहां धार्मिक लोग हों। ऐसे लोग हों जो प्रेम से परिपूर्ण हैं। ऐसे लोग हों जिनके हृदय में प्रार्थना के फूल खिले हैं। ऐसे लोग हों जिनके जीवन में समाधि की सुगंध उठ रही है। स्वभावतः सभी दिशाओं से मेरा विरोध होगा।
मेरा संन्यासी होना इसीलिए खतरे से खाली नहीं है। मेरे संन्यासी होने
का अर्थ हैः तुमने सारी परंपराओं, सारी रूढ़ियों से बगावत कर दी। यह दुस्साहस का काम है। मगर इसी दुस्साहस से तुम्हारी आत्मा पैदा होगी, तुम्हारा पुनर्जन्म होगा; तुम्हारे भीतर एक नयी लपट, एक नयी ज्योति पैदा होगी। वही ज्योति तुम्हारे जीवन को अर्थवत्ता देगी, गरिमा देगी, गौरव देगी, महिमा देगी। वही ज्योति तुम्हारे जीवन को चांद-सितारों से भर देगी। उसी ज्योति के साथ तुम्हारे जीवन में सूर्योदय है। नहीं तो अभी तो अमावस की रात है।
इस अमावस की रात को तोड़ना है। और इस अमावस की रात को तोड़ने में चाहे कितनी ही मुसीबत झेलनी पड़े, झेलने योग्य है। क्यों? क्योंकि सत्य के रास्ते पर मुसीबतें भी प्रीतिकर हो जाती हैं, और असत्य के रास्ते पर सुविधाएं भी अप्रीतिकर हैं। सत्य के रास्ते पर जहर भी अमृत हो जाता है, और असत्य के रास्ते पर अमृत भी जहर है।
आज इतना ही।

पिय को खोजन मैं चली
तीसरा प्रवचन

सूर्योदय की संभावना

पहला प्रश्नः ओशो! बाईस मई को सुबह प्रवचन में एक युवक ने छुरा फेंक
कर आपकी हत्या करने का प्रयास किया, जो निष्फल रहा। आश्चर्य की बात है कि इस घटना की आलोचना किसी भी अखबार वाले ने नहीं की, न ही किसी उच्च दर्जे के व्यक्ति ने इसके बारे में कुछ वक्तव्य दिया! आश्रमवासियों ने उस व्यक्ति के साथ जो प्रेमपूर्ण व्यवहार किया, उसकी प्रशंसा भी किसी अखबार या पत्रिका में नहीं छपी।
बुद्धिजीवी और साधारणजन, सबके सब उपेक्षा से क्यों भरे हैं?
ओशो, ऐसे मुर्दा देश में आपका प्रमुख आश्रम है, जब कि यहां तो शाखा होना भी बेकाम दिखता है।

कैलाश गोस्वामी! मैं जो कह रहा हूं, मैं जो कर रहा हूं, वह किसी देश में किया जाए, किसी जाति में किया जाए, सभी जगह यही व्यवहार होगा। भारत की इसमें कोई विशिष्टता नहीं है। व्यवहार ऐसा न होता, तो विशिष्टता होती। सुकरात तो भारत में पैदा नहीं हुआ था, दूर यूनान में पैदा हुआ था, और
आज भी नहीं, पच्चीस सौ वर्ष पहले--पर व्यवहार क्या हुआ? यही उपेक्षा। यही विरोध। अलहिल्लाज मंसूर तो भारत में पैदा नहीं हुआ था। जीसस क्राइस्ट तो भारत में पैदा नहीं हुए थे।
लेकिन प्रश्न देशों का नहीं है; प्रश्न है मनुष्य के मन का। और वह एक जैसा है। उसमें जितने भेद हैं, सब ऊपरी-ऊपरी हैं। मनुष्य का मन है पुरातनपंथी। मनुष्य का मन ही होता है अतीत-उन्मुख। मन का अर्थ ही होता है-- जो बीत गया उसका संग्रह। मन जीता ही मरे हुए पर है, मुर्दा पर है। स्वभावतः जो देश जितना प्राचीन होगा, उतना ही मुर्दा उसका मन होगा; उतनी ही लंबी उसकी परंपरा होगी; उसकी उतनी ही बंधी हुई लीकें होंगी; उसकी रूढ़िग्रस्तता भी उतनी ही गहरी होगी। और जब भी सत्य की कोई बात कही जाए, तो वह अनिवार्यरूपेण परंपरा के विपरीत पड़ेगी। क्योंकि सत्य की कोई परंपरा नहीं होती। सत्य की परंपरा नहीं हो सकती है। सत्य सदा वैयक्तिक होता है; क्योंकि सत्य अनुभूति है। जब भी सत्य की उदघोषणा होगी, परंपरा से उसका विरोध होगा।
और परंपरा स्वभावतः बलशाली है। अधिक लोग तो परंपरा से बंध कर जीते हैं। उसमें सुविधा है; उसमें सम्मान है; उसमें सुरक्षा है। सत्य में न सुविधा है, न सम्मान है, न सुरक्षा है। सत्य में तो खतरा ही खतरा है। सुकरात का कसूर क्या था? इतना ही तो कसूर था कि उसने परंपरा से भिन्न कुछ बातें कहीं। बुद्ध का कसूर क्या था? इतना ही तो कसूर था कि उन्होंने लीक को छोड़ कर चलने का प्रयास किया; उन्होंने भीड़ से हट कर अपनी निजता की घोषणा की। वही भीड़ को अखर जाता है।
भीड़ यह बरदाश्त नहीं कर पाती कि कोई व्यक्ति इतना साहस करे कि हम सबको भेड़ समझे! हम जो कि इतने हैं, हम जो कि इतने पुराने हैं, हम जिनके हाथों में सदियों के शास्त्र हैं, हम जिनके पास प्राचीन धरोहर है--हमें ना-कुछ समझे, ऐसे व्यक्ति को बरदाश्त नहीं किया जा सकता! ऐसे व्यक्ति की उपेक्षा की जाएगी। ऐसे व्यक्ति को लोक-मानस पर छाप न डालने दी जाए, इसकी सब चेष्टा की जाएगी। ऐसे व्यक्ति को लोक-मानस से तोड़ दिया जाए, इसके सब उपाय किए जाएंगे। ऐसे व्यक्ति के प्रति जितने झूठे प्रचार हो सकते हैं, असत्य प्रचार हो सकते हैं, वे किए जाएंगे। क्योंकि सत्य तो उसके पक्ष में है, अब असत्य ही बचता है भीड़ के हाथ में। मगर असत्य काफी धूल उड़ा सकता है, और काफी लोगों की आंखों में धूल झोंक सकता है। फिर लोग असत्य को जब सदियों तक सुनते रहे हैं, तो वे मान लेते हैं कि यही सत्य है।
अडोल्फ हिटलर ने अपनी आत्मकथा मेनकैम्फ में लिखा है कि मैं तो इतना
ही फर्क मानता हूं सत्य और असत्य में, कि असत्य नया-नया जब बोला जाता है तो असत्य मालूम होता है; और जब वही पुराना हो जाता है तो सत्य हो जाता है, जब

वही प्रचारित हो जाता है तो सत्य हो जाता है। और कोई सत्य नहीं है दुनिया में।
अडोल्फ हिटलर की बात में कुछ बात है। अगर असत्य को भी सदियों तक प्रचारित किया जाए, लोगों के मन संस्कारित किए जाएं, तो वह सत्य मालूम होने लगता है।
तुम अपने ही मन को देखो। तुमने कितनी बातों को सत्य मान रखा है! ऐसी बातों को, जिनको तुम एक बार भी सोचोगे तो चकित होओगे। और तुम ही नहीं, जिनको तुम बड़े-बड़े विचारक कहो... अरस्तू को तो बड़ा विचारक कहोगे न? पश्चिम में उसे तर्कशास्त्र का पिता कहा जाता है। लेकिन यूनान में अरस्तू के समय हजारों साल से यह धारणा थी कि स्त्रियों के दांत पुरुषों से कम होते हैं। होने ही चाहिए। स्त्रियों की हर चीज पुरुषों से कम होनी चाहिए। उनकी बुद्धि कम, उनकी शक्ति कम, उनकी प्रतिभा कम। यह पुरुष का अहंकार स्त्री को जितना छोटा कर सकता है, करता है; और अपने को जितना फुला सकता है, फुलाता है। तो अरस्तू ने कभी यह कोशिश ही नहीं की, अब यह तो छोटी सी बात थी, इसमें कोई बहुत बड़े वैज्ञानिक होने की जरूरत न थी। और अरस्तू की दो-दो पत्नियां थीं, एक भी नहीं। दोनों श्रीमतियों को बिठाल लेता और वह दांत गिन लेता। यह पांच मिनट की बात थी। लेकिन यह उसने नहीं किया। अपनी किताबों में उसने बार-बार यही लिखा है कि स्त्रियों के दांत पुरुषों से कम होते हैं। जो प्रचलित बात थी, वह मान ली।
गैलीलियो तक सारी दुनिया यही मानती रही कि सूरज पृथ्वी का चक्कर लगाता है। सारी दुनिया में शब्द जो हैं, वे इस बात की घोषणा करते हैं-- सूर्योदय, सूर्यास्त। सचाई कुछ और है। न तो सूर्य का कोई उदय होता है, न कोई अस्त होता है। जब गैलीलियो ने पहली दफा यह कहा तो उसको पोप की अदालत में मौजूद किया गया। सत्तर साल का बूढ़ा आदमी, उसको घुटनों के बल खड़ा करके कहा गयाः तुम क्षमा मांगो! क्योंकि बाइबिल में लिखा है कि सूर्य पृथ्वी का चक्कर लगाता है, पृथ्वी सूर्य का चक्कर नहीं लगाती। और तुमने अपनी किताब में लिखा है कि पृथ्वी सूर्य का चक्कर लगाती है। तो तुम बाइबिल से ज्यादा ज्ञानी हो? बाइबिल, जो कि ईश्वरीय ग्रंथ है! जो कि ऊपर से अवतरित हुआ है! गैलीलियो बड़ा अदभुत आदमी था। वह मुस्कुराया और उसने कहा, आप कहते हैं
तो मैं क्षमा मांग लेता हूं। मुझे क्षमा मांगने में कोई अड़चन नहीं है। आप अगर कहें तो मैं अपनी किताब में सुधार भी कर दूं। मैं यह भी लिख सकता हूं कि सूरज ही पृथ्वी के चक्कर लगाता है, पृथ्वी नहीं। लेकिन एक बात आपसे निवेदन करूं--मैं प्रार्थना आपसे कर लूं, माफी मांग लूं, किताब में बदलाहट कर दूं, मगर सचाई यही है कि चक्कर तो पृथ्वी ही सूरज के लगाती है। सचाई नहीं बदलेगी। मेरे माफी मांग लेने से सूरज फिक्र नहीं करेगा, न पृथ्वी फिक्र करेगी। मेरी किताब में बदलाहट कर देने से सिर्फ मेरी किताब गलत हो जाएगी। मगर आपकी मर्जी हो तो यह कर दूं।
सुनने को कोई राजी नहीं है। जब पहली दफा कोपरनिकस ने कुछ नये तारों का आविष्कार किया--आविष्कार किया, थे तो वे पहले से, लेकिन खाली नंगी आंखों से दिखाई नहीं पड़ते। उनको देखने के लिए उसने पहली दफा दूरदर्शक यंत्र खोजा। तो उसने बड़े-बड़े लोगों को आमंत्रित किया कि तुम आकर मेरे दूरदर्शक यंत्र से देखो! अगर तुम्हें न दिखाई पड़ें, तो तुम मुझसे कहना कि नहीं हैं। मगर उन्होंने कहा कि हम तुम्हारे दूरदर्शक यंत्र से देखें ही क्यों? जो चीज है ही नहीं, उसको हम देखने के लिए भी झंझट में क्यों पड़ें? और अगर तुम्हारे दूरदर्शक यंत्र से दिखाई पड़ती है, तो उससे सिर्फ इतना ही सिद्ध होता है कि तुम्हारा दूरदर्शक यंत्र कुछ जालसाजी है। है नहीं, लेकिन दिखाई पड़ता है। मतलब दूरदर्शक यंत्र कुछ हरकत कर रहा है हमारी आंखों के साथ, हमें कुछ धोखा दे रहा है। तुम एक तरह का इंद्रजाल पैदा कर रहे हो, एक तरह का जादू। उसके दूरदर्शक यंत्र से कोई देखने को राजी नहीं था। कोई राजी नहीं हुआ--प्रोफेसर्स, वैज्ञानिक, गणितज्ञ, ज्योतिषी--उन्होंने इनकार कर दिया। और कोपरनिकस को जितनी गालियां पड़ सकती थीं, उतनी पड़ीं। और यह सिद्ध करने की कोशिश की गई कि यह आदमी भूत-प्रेतों को वश में किए हुए है। और उन्हीं भूत-प्रेतों के सहारे यह अपनी तरकीबें बिठा रहा है। और ऐसी चीजें लोगों को दिखा रहा है, जो हैं नहीं। क्योंकि अगर ये तारे होते, तो बाइबिल में वर्णन

होना चाहिए। क्योंकि सब लिखा है कि ईश्वर ने छह दिन में क्या-क्या बनाया। उसमें इन तारों का कोई वर्णन तो है नहीं। जब ईश्वर ने बनाए ही नहीं, तो ये हो कैसे सकते हैं?
हम अतीत के अंधे अनुयायी हैं। इसलिए कैलाश गोस्वामी, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि मैं कहां होता। जहां भी होता, यही होने वाला था। थोड़ा सा फर्क पड़ता है। कहीं और होता तो थोड़ा व्यवस्थित ढंग से होता। जैसे उस आदमी ने छुरा मारा, वह चूकता नहीं अगर जर्मनी में होता। भारत में था, चूक गया। ऐसा लाभ, इतना लाभ भारत में होने का है। एक तो छुरा भी बाबा आदम के जमाने का था, लग भी जाता तो भी मर जाना आसान नहीं था, मरना ही हो तो बात अलग। लेकिन छुरे की जो तस्वीर मैंने अखबारों में देखी, उसे देख कर ऐसा नहीं लगता कि उसके लग जाने से कोई मर जाता। उसे तुम घर में सब्जी काटने के काम में भी शायद ही लाओ। जंग खाया हुआ मालूम पड़ता है। जर्मनी में अगर यह बात होती तो ऐसा नहीं हो सकता था।
मेरे एक मित्र कह रहे थे कि जर्मनी में एक लतीफा प्रचलित है। वे जर्मनी ही रहते हैं और चूंकि भारतीय हैं, किसी ने उनको कहा कि तुम तैयारी रखो, क्योंकि जब तुम मरोगे तो तुमसे नर्क के द्वार पर पूछा जाएगा। पहले भी एक भारतीय इस तरह जर्मनी में रहा, उससे पूछा गया था। नर्क के द्वार पर उस भारतीय से पूछा गया था कि चूंकि तुम जन्म से भारतीय हो और रहे जीवन भर जर्मनी में हो, तो तुम किस नर्क जाना चाहते हो--जर्मनी वाले हिस्से में या भारतीय हिस्से में?
तो वह बहुत चौंका था। उसने कहा कि क्या नर्क भी अलग-अलग देशों के अलग-अलग हैं? तो द्वारपाल ने कहा, निश्चित ही। तो उसने पूछा कि फर्क क्या है दोनों में? यह मुझे जाहिर हो जाए तो चुनाव करने में आसानी हो। तो उसने कहा, फर्क भी कुछ नहीं है। वही कष्ट तुम्हें भारतीय नर्क में झेलने पड़ेंगे, वही कष्ट तुम्हें जर्मन नर्क में झेलने पड़ेंगे। वही कड़ाहियां, वही तेल, वही भट्टियां, वही कोड़े, वही पिटाई--सब वही होगा। फिर वह भारतीय बोला कि फिर पूछते क्या हो चुनाव करने के लिए, अगर सब वही होना है?
द्वारपाल हंसा और उसने कहा कि थोड़ा सा फर्क है। फर्क यह है कि भारतीय नर्क में जो भी होता है भारतीय ढंग से होता है। मतलब कभी चूल्हा जलता है, कभी नहीं भी जलता। कभी लकड़ी गीली, कभी तेल नहीं मिलता। तेल मिल जाए, लकड़ी भी गीली न हो, तो जिस आदमी को चूल्हा जलाना है वह दफ्तर ही नहीं आता, वह छुट्टी पर। छह महीने तो छुट्टी, क्योंकि इतने धार्मिक त्यौहार--कभी गणेश-उत्सव, कभी मुहर्रम, कभी पर्युषण। छुट्टियां ही छुट्टियां हैं। दूसरी बात यह है कि आधुनिक यंत्रों का भी उपयोग भारतीयों ने शुरू किया है, मगर कई दफे दिन में बिजली चली जाती है। कई दफे दिन-दिन भर नहीं आती। गर्मियों के दिनों में कटौती हो जाती है। भारतीय ढंग से होगा वहां व्यवहार। जर्मन नर्क में जर्मन ढंग से होगा। वहां कभी बिजली नहीं चूकती। वहां कभी ऐसा नहीं होता कि व्यक्ति अपने काम पर मौजूद न हो। ठीक समय पर काम शुरू होता है, और कुशलता से काम किया जाता है--जर्मन कुशलता से काम किया जाता है। सब आधुनिक यंत्र हैं वहां। पुराने ढंग के चूल्हे नहीं हैं अब वहां, बिजली की भट्टियां हैं। और जब से अडोल्फ हिटलर आ गया है, वह सारी की सारी आधुनिकतम बिजली की भट्टियों की जानकारी ले आया है। वहां भूल-चूक नहीं है। छुट्टी नहीं है।
तो उस भारतीय ने कहा कि मुझे तो भारतीय नर्क ही भेजो। फिर उसने पूछा द्वारपाल से, वहां रिश्वत वगैरह भी चलती होगी?
उसने कहा, वह तो चलने ही वाली है। वह जर्मन नर्क में नहीं चल सकती।
कैलाश गोस्वामी, इतने फर्क तो पड़ते। जैसे कि जर्मनी में कोई मारता तो कुछ दिन निशाने का अभ्यास करता। अब यह आदमी छुरा मुझे मारता है, यहां पंद्रह सौ लोग मौजूद थे, अगर कोई अंधा भी छुरा फेंके तो किसी को लगना चाहिए। इस आदमी ने भी गजब का अभ्यास किया हुआ था, पंद्रह सौ आदमियों में से किसी को नहीं लगा। मुझे तो लगा ही नहीं, किसी को नहीं लगा। खरोंच भी नहीं आई। छुरा भी गजब का भारतीय था! इतनी भीड़-भाड़ में भी--लोगों के सिरों पर से गुजरा--और गिरा दो व्यक्तियों के बीच में सीमेंट पर। अहिंसात्मक था। गांधीवादी था।

यहां होने के फायदे हैं। इन फायदों को तुम नजरअंदाज न करो।
तुम पूछते हो कि "बुद्धिजीवी और साधारणजन, सबके सब उपेक्षा से क्यों भरे हैं?"
यह बिल्कुल स्वाभाविक है। इसमें कुछ भी अस्वाभाविक नहीं है। बुद्धिजीवी क्या हैं बेचारे? वही लकीर के फकीर। भारत में बुद्धिजीवी का काम क्या है? गीता-ज्ञान-मर्मज्ञ होना, वेदपाठी होना।
एक सज्जन मुझे पत्र लिखते थे; त्रिवेदी थे। डाक्टर थे, एक विश्वविद्यालय में अध्यापक थे। मैं भूल से उनको उत्तर लिखा तो द्विवेदी लिख दिया। अब ऐसी कोई बड़ी भूल नहीं हो गई थी, लेकिन उनको सदमा पहुंचा। त्रिवेदी को और द्विवेदी कहो! त्रिवेदी का मतलब तीन वेदों को जानने वाला और द्विवेदी का मतलब दो वेदों को जानने वाला। भारी नुकसान हो गया। हालांकि न वे तीन जानते, न दो जानते, कभी कोई बाप-दादों में पहले जानता रहा होगा। मगर इससे भी क्या फर्क पड़ता है! कुल के गौरव की बात है। उन्होंने तत्क्षण मुझे गुस्से में पत्र लिखा कि और सब ठीक है, कम से कम आप पता तो, नाम तो कम से कम ध्यानपूर्वक लिखा करें। नाम ही मेरा गलत लिख दिया है। मैं द्विवेदी नहीं हूं, त्रिवेदी हूं। तो मैंने उन्हें उत्तर लिखा, उसमें चतुर्वेदी लिख दिया। उनका तो और भी गुस्से से भरा पत्र आया कि आप आदमी कैसे हैं? आपने त्रिवेदी न लिखने की कसम खाई है क्या? पहले द्विवेदी लिख दिया, अब चतुर्वेदी लिख दिया। मैंने कहा कि मैं तो सिर्फ हिसाब पूरा कर रहा हूं कि एक दफा भूल हो गई, त्रिवेदी को द्विवेदी लिख दिया, चतुर्वेदी करके उसको पूरा कर रहा हूं। एक वेद बढ़ा दिया। आगे से त्रिवेदी ही लिखूंगा; मगर पुराना हिसाब भी तो पूरा कर लेना उचित है।
इस देश के बुद्धिजीवियों का क्या मूल्य है? क्या अर्थ है? उनका काम है--करते रहें परंपरा का पोषण। परंपरा का पोषण करते हैं तो लोग उनको पंडित कहते हैं, सम्मान करते हैं, ज्ञानी मानते हैं। वस्तुतः बुद्धिमत्ता शुरू होती है बगावत से। कितने बगावती हैं यहां? और मुझसे तो उनकी नाराजगी और भी ज्यादा है। क्योंकि वे सोचते थे कि मैं भी बुद्धिजीवी हूं, उन्हीं जैसा। क्योंकि मैं भी विश्वविद्यालय में प्रोफेसर था, तो उनकी आशा थी कि उन्हीं जैसा चलूंगा, उसी लीक पर चलूंगा। डीन हो जाऊंगा, उपकुलपति हो जाऊंगा और अगर राजनेताओं को खुश रख सका तो कुलपति हो जाऊंगा। उस सबसे मैं बगावत कर गया। उनके द्वारा दिए गए सारे के सारे सर्टिफिकेट मैंने जाकर आग लगा दिए। मैंने इनकार ही कर दिया, कि तुम्हारे सर्टिफिकेट्स का कोई मूल्य नहीं है, दो कौड़ी भी मूल्य नहीं है। और मुझे ऐसे पांडित्य में कोई रस नहीं है। तो मुझसे उनकी नाराजगी का कारण भी है। वे कैसे मेरे संबंध में कुछ कहें! मैं तो यही बहुत धन्यवाद मानता हूं कि कम से कम, जिसने हत्या करने का प्रयास किया है, उसकी प्रशंसा में उन्होंने कुछ नहीं कहा। मैं तो इसको ही उनकी बड़ी दया भावना मानता हूं, बड़ी करुणा मानता हूं।
इस तरह देखो कैलाश गोस्वामी। क्यों देखते हो निराशा के पहलू से? आशा
के पहलू से देखो। क्यों गिनते हो दो रातें और उनके बीच में एक छोटा सा दिन? क्यों न गिनो दो दिन और उनके बीच में एक छोटी सी रात! क्यों गिनते हो कांटे और कहते हो उनमें खिला एकाध फूल? गिनो कांटे, मगर यूं नहीं। फूलों को गिनो पहले और फिर कहो कि इतने फूल और इसमें अगर थोड़े से कांटे भी हुए तो क्या हर्ज! फिर कांटे फूलों के पहरेदार मालूम होते हैं।
तुमने डायोजनीज के संबंध में सुना होगा--यूनान का एक बहुत बड़ा अदभुत विद्रोही, बगावती विचारक। और विचारक हो और बगावती न हो, यह हो ही नहीं सकता। विचारक हो और विद्रोही न हो, यह हो ही नहीं सकता। ये दोनों बात साथ घटती हैं। बुद्धिजीवी अगर सच में बुद्धिजीवी है, तो बगावती होगा; क्योंकि वह बुद्धि का आत्यंतिक लक्षण है। वह प्रतिभा की घोषणा है।
डायोजनीज बगावती था। वह नंगा रहता था। अब नंगा रहना भारी बगावत है।
और भारत में नंगा रहना उतनी बगावत नहीं है, क्योंकि भारत में सदियों से अनेक लोग नंगे रहे हैं। यूं भी लोग अधनंगे हैं। यूं भी आधे से ज्यादा लोग नंगे से भी बदतर हालत में हैं। वैसे ही लंगोटी है। जैनों की परंपरा है नग्न रहने की, हिंदुओं की परंपरा में नग्न साधुओं की लंबी यात्रा है। लेकिन यूनान में तो नग्न साधुओं की कोई परंपरा न थी, साधुओं की ही कोई

परंपरा नहीं थी। जब सिकंदर भारत आया तो उसके गुरु अरस्तू ने कहा था कि भारत से जब आओ तो एक संन्यासी को लेते आना, क्योंकि मैंने संन्यासी नहीं देखा है। संन्यासी कैसा होता है? यह संन्यास क्या है?
यह बात ही पता नहीं थी, वहां डायोजनीज का नग्न हो जाना! और जब लोगों का पूछना उससे कि यह तुम क्या कर रहे हो? तो उसका कहना कि जब ईश्वर ने मुझे नग्न बनाया है तो मैं क्यों ढांकूं? जब उसने उघाड़ा बनाया है तो मैं उघाड़ा रहूंगा। हिम्मतवर आदमी रहा होगा। नग्न तो था, लेकिन हाथ में एक लालटेन लिए रहता था दिन-रात--जलती हुई लालटेन--दिन में भी, भरी दोपहरी में भी। और जो आदमी मिलता उसी के चेहरे के ऊपर लालटेन उठा कर देखता। लोग उससे पूछते कि यह क्या कर रहे हैं आप? भरी दोपहरी में लालटेन किसलिए? क्या आपकी आंखें कमजोर हैं? वह कहता, आंखें कमजोर नहीं हैं। लेकिन मैं रोशनी करके देखना चाहता हूं कि कहीं कोई आदमी है या नहीं पृथ्वी पर? लोग तो बहुत हैं, मगर आदमी नहीं हैं।
मैंने सुना कि डायोजनीज जब मरा तो किसी ने पूछा, डायोजनीज, अब तो यह बताओ कि तुम्हें कोई आदमी मिला या नहीं, जिसको तुम जिंदगी भर खोजते थे लालटेन लेकर? करोड़-करोड़ लोगों में तुम्हें एकाध आदमी मिला या नहीं? डायोजनीज ने आंख खोलीं और कहा कि धन्यवाद है परमात्मा का! आदमी तो नहीं मिला, मगर यही क्या कम है कि किसी ने मेरी लालटेन नहीं चुराई।
इसको मैं कहता हूं आशावाद। यही क्या कम है कि किसी ने मेरी लालटेन नहीं चुराई। नहीं तो रात सोता भी हूं लालटेन रख कर, अब कोई रात भर लालटेन तो नहीं पकड़े रहूंगा, कोई लालटेन ही ले भागता। हां, इतना फर्क पड़ता अगर भारत में होता तो कि यह कहने का मौका नहीं आता। कोई न कोई लालटेन ले भागता। आदमी तो नहीं मिलता, लेकिन लालटेन नदारद हो जाती, लालटेन का पता नहीं चलता।
तुम कहते होः "उपेक्षा से क्यों भरे हैं?"
कहां उपेक्षा? हत्या करने की कोशिश करने वाले की प्रशंसा नहीं की उन्होंने, यही क्या कम है! दिल ही दिल में तो खुश हुए होंगे कि अच्छा हुआ, यही होना चाहिए था। पहले ही होना चाहिए था, इतनी देर क्यों लगाई! भीतर-भीतर तो चिंतित हुए होंगे कि यह आदमी असफल क्यों हो गया, सफल हो जाता तो अच्छा था। यह भी ईश्वर ने क्या किया! इस आदमी को सफल ही कर देना था। उपेक्षा नहीं दिखाई, भीतर खुश हुए होंगे।
और तुम कहते हो कि किसी उच्च दर्जे के व्यक्ति ने इसके बारे में कोई वक्तव्य नहीं दिया।
मेरे संबंध में कोई राजनीतिज्ञ कैसे वक्तव्य दे सकता है? राजनीतिज्ञों का जितना खंडन मैंने किया है, संभवतः किसी दूसरे व्यक्ति ने कभी नहीं किया। जितनी आलोचना मैंने की है, किसी और ने नहीं की। और तुम मुझे सुनते हो फिर भी उनको उच्च दर्जे के व्यक्ति कहते हो, हद हो गई! आश्चर्य मुझे तुम पर होता है। राजनीतिज्ञ और उच्च दर्जे का व्यक्ति! उच्च दर्जे के व्यक्ति राजनीति में उत्सुक होते हैं? तो फिर निम्न दर्जे के व्यक्ति कहां जाएंगे? राजनीति में उत्सुकता ही निम्न दर्जे के व्यक्तियों की होती है। राजनीति का अर्थ क्या होता है? यह हीनता की ग्रंथि से भरे हुए लोगों की दौड़ है। जिनके भीतर कहीं एक हीन-भाव है।
पश्चिम के बहुत बड़े मनोवैज्ञानिक एडलर ने अपना पूरा मनोविज्ञान, अपना पूरा शास्त्र हीनता की ग्रंथि पर खड़ा किया है। उसने कहा है कि जिन लोगों के भीतर जिस चीज की कमी होती है, वे उसके विपरीत अपने को सिद्ध करने में लग जाते हैं। और इस बात में बड़ा मूल्य है। जिनको भीतर लगता है कि धन की कमी है, जो भीतर अपने को निर्धन अनुभव करते हैं, वे धन की दौड़ में लग जाते हैं। वे सारा जीवन धन इकट्ठा करने में लगा देते हैं। धन इकट्ठा कर-कर के मर जाएंगे। भोग नहीं सकते। भोगना तो असंभव है, क्योंकि भोगने में खर्च हो जाएगा।
अमरीका का प्रसिद्ध करोड़पति--करोड़पति नहीं कहना चाहिए, अरबपति-- एण्ड्रू कारनेगी जब मरा तो दस अरब रुपये छोड़ कर मरा। मगर जीया ऐसे जैसे कि कोई गरीब क्लर्क भी नहीं जीता। उसके क्लर्क तक उससे बेहतर ढंग से जीते थे।

एण्ड्रू कारनेगी का बेटा लंदन आया हुआ था। उसकी शान देखते बनती थी बेटे की। एण्ड्रू कारनेगी तो बहुत नाराज था बेटे पर, क्योंकि वह शान-शौकत से रहता था--पैसा बर्बाद कर रहा है। वह कहता था, मैंने इतनी मुश्किल से इकट्ठा किया है, और यह लुटा रहा है। लुटाना क्या था? अच्छे कपड़े पहन ले, अच्छे जूते खरीद ले, हवाई जहाज में फर्स्ट क्लास में सफर करे--इसको लुटाना कहता था। अरबपति आदमी इसको लुटाना कहता था! यह भी कोई लुटाना हुआ?
और जब एण्ड्रू कारनेगी लंदन आया और हवाई जहाज के थर्ड क्लास के कंपार्टमेंट में से अपना सामान खुद ही लेकर उतरा, पोर्टर को भी नहीं बुलाया। क्योंकि पश्चिम में पोर्टर मंहगी चीज है। भारत में कुलियों जैसा मामला नहीं है कि सस्ते, दो आने, चार आने में मिल जाएं। पोर्टर जरा मंहगी चीज है। सिर्फ संपन्न लोग ही पोर्टर को बुला सकते हैं।
अपना सामान खुद ही ढोता हुआ उतरा। काउंटर पर क्लर्क ने जब उसके सामान
की जांच की, उसको गौर से देखा, तो उसको पहचान गया। वह तो सारा जग जाहिर आदमी था। उसका चेहरा तो प्रसिद्ध था। उसके फोटो तो जगह-जगह छपते थे।
उसने कहा, अगर मैं भूल नहीं करता तो आप एण्ड्रू कारनेगी हैं। मगर आप फटा कोट पहने हुए हैं!
एण्ड्रू कारनेगी ने कहा, फटे कोट से क्या फर्क पड़ता है? मैं चाहे फटा कोट पहनूं और चाहे हीरे-जवाहरात जड़ा कोट पहनूं--एण्ड्रू कारनेगी एण्ड्रू कारनेगी है!
पर उसने कहा कि आपका बेटा आता है तो शानदार कपड़ों में आता है।
एण्ड्रू कारनेगी बोला कि मेरा बेटा मुझे बर्बाद करने पर तुला हुआ है!
जब मरा तो उसकी आत्मकथा लिखने वाले ने एण्ड्रू कारनेगी से पूछा कि आप प्रसन्न मर रहे हैं? दस अरब रुपया छोड़ कर जा रहे हैं!
उसने कहा, प्रसन्न नहीं, अप्रसन्न मर रहा हूं। क्योंकि मेरे इरादे सौ अरब रुपये इकट्ठा करने के थे। मैं एक पराजित आदमी हूं।
यह कैसा आदमी होगा! महाकृपण था। भिखमंगे तक उसके दरवाजे के सामने भीख नहीं मांगते थे। अगर कभी कोई भिखमंगा उसके दरवाजे के सामने भीख मांगता तो मुहल्ले के लोग समझ जाते कि यह भिखमंगा गांव में नया है। इसको पता नहीं कि यह घर किसका है। पुराने भिखमंगे जो गांव से परिचित थे, वे तो उसका घर छोड़ कर निकल जाते थे। क्योंकि वह कुछ देगा तो है नहीं, आधा घंटा उपदेश देगा कि तुम भले-चंगे हो, काम में क्यों नहीं लगते? मुस्टंडे हो, क्यों मुफ्त मांगते हो? आखिर मेरे पास कुछ नहीं था। मैं भी तुम जैसा था। कमाओ! आधा घंटा खराब करेगा, जितने में कि हम दस-पांच घरों में और मांग लेंगे।
नये भिखमंगे जब गांव में आते तो पुराने भिखमंगे उनको कह देते कि भई और
सब करना, एण्ड्रू कारनेगी के घर भीख मांगने मत जाना। सिर्फ कहते हैं एक भिखमंगा उससे भीख लेने में समर्थ हो पाया था, पूरी जिंदगी में। और वह भी भिखमंगा था जिसने चार बजे रात जाकर उसके दरवाजे को ठोका। उसने दरवाजा खोला, पूछा, क्या चाहते हो?
उसने कहा कि मैं भिखमंगा हूं और भीख मांगने आया हूं।
उसने कहा, यह कोई वक्त है?
उसने कहा, और किसी वक्त पर तो आप देते नहीं। और अगर नहीं दिया तो रोज चार बजे रात आकर मांगूंगा।
एण्ड्रू कारनेगी ने कहा कि आदमी को शिष्टाचार होना चाहिए!
उसने कहा कि तुम अपना धंधा करते हो, तुम बैंकर हो, मैं तो तुम्हें सलाह नहीं देता कि कैसे बैंकिंग करनी चाहिए। तुम्हें क्या पता भीख मांगने का! तुम क्या खाक मुझे सलाह दे रहे हो! अपनी सलाह अपने पास रखो। इतना तुमसे कहे देता हूं कि मैं उन भिखमंगों में से नहीं हूं जो किसी घर से खाली हाथ गए हैं। अगर मुझे नहीं मिला तो चार बजे कुछ दिन कोशिश करूंगा, फिर तीन बजे, फिर दो बजे--रात भर तुम्हें जगाए रखूंगा। रात में कई दफे आऊंगा। रात असल में मुझे नींद ही नहीं आती। उस भिखमंगे ने कहा कि मैं दिन में सोता हूं और रात अनिद्रा की पीड़ा मुझे सताती है।
एण्ड्रू कारनेगी ने कहा, भैया तू ले, और किसी को मत बताना। तू पहुंचा हुआ आदमी मालूम होता है। तू अकेला भिखमंगा है--तेरा स्मरण रखूंगा--जिसने मुझसे पैसे निकलवा लिए। मुझसे कोई निकलवा नहीं सका है।

एडलर ने अपना पूरा मनोशास्त्र इस आधार पर खड़ा किया है कि जिनको भीतर निर्धनता का अनुभव होता है, वे धन के दीवाने हो जाते हैं। इस बात में अर्थ आता है समझ। इसलिए अगर बुद्ध और महावीर ने राजमहल छोड़ दिए हों, तो एडलर का मनोविज्ञान उस बात को समझने में पहली दफा एक वैज्ञानिक प्रक्रिया देता है। इनको भीतर की धनवत्ता अनुभव हुई। इतनी अनुभव हुई कि अब बाहर के धन का क्या करना! बुद्ध और महावीर को समझने के लिए एडलर के पहले तक हमारे पास ठीक मनोविज्ञान नहीं था कि क्यों बुद्ध और महावीर ने राजमहल छोड़ा। अगर राजमहल की तरफ दौड़ने वाले लोग वे लोग हैं जिनको भीतर भिखमंगापन अनुभव होता है, खालीपन अनुभव होता है, इसलिए धन की तरफ दौड़ते हैं, तो फिर बुद्ध और महावीर को भी समझा जा सकता है। इनको भीतर इतना भरापन अनुभव हुआ, ऐसी समृद्धि, ऐसी अमृत की वर्षा, ऐसी रसधार इनके भीतर बही, ऐसे गीत इनके भीतर उठे, ऐसा संगीत इनके भीतर बजा, ऐसा अनाहत नाद जगा कि अब इनको बाहर की कोई चीज अर्थपूर्ण न रही, ये राजमहल छोड़ कर चले आए।
बुद्ध ने कहा भी है। जब वे राजमहल छोड़ कर गए और उनके सारथी ने कहा, आप पागल तो नहीं हैं! इस सोने जैसे महल को छोड़ कर जा रहे हैं?
बुद्ध ने कहा, मुझे वहां कोई महल नहीं दिखाई पड़ता। मुझे जहां महल दिखाई पड़ता है, मैं उस तरफ जा रहा हूं। मुझे, तुम जहां महल बता रहे हो, वहां सिर्फ आग की लपटें दिखाई पड़ती हैं। सब मौत लील जाएगी। और जिसको मौत लील जाएगी, उसको पाकर भी क्या करूंगा? मैं उसकी तलाश में जाता हूं जो अमृत है। जिसको पाकर फिर कभी खोने का कोई उपाय नहीं। उसे पाया, तो कुछ पाया।
तो फिर राजनीति में कौन दौड़ता है? राजनीति का अर्थ हैः पद की दौड़, ऊपर होने की दौड़, प्रमुख होने की दौड़, प्रथम होने की दौड़। वही दौड़ता है, जो अपने भीतर हीनता को अनुभव करता है; जो इनफीरियारिटी कांप्लेक्स से पीड़ित है; जो हीनता की ग्रंथि से मरा जा रहा है; जो सिद्ध करना चाहता है बड़े सिंहासन पर बैठ कर कि मैं कुछ हूं।
यह जान कर तुम हैरान होओगे कि नेपोलियन की ऊंचाई ज्यादा नहीं थी। और
वह उसकी जिंदगी भर की पीड़ा रही। पांच फीट पांच इंच उसकी ऊंचाई थी। भारत में तो पांच फीट पांच इंच कोई बुरी ऊंचाई नहीं है--मध्यम। मगर पश्चिम में पांच फीट पांच इंच का आदमी ठिगना मालूम होता है। जहां सात फीट, साढ़े छह फीट आम ऊंचाई हो जाए, जहां छह फीट बिल्कुल साधारण ऊंचाई हो... । नेपोलियन को यह पीड़ा जीवन भर रही कि मेरी ऊंचाई कम है। तो मुझे ऊंचा होना है। मुझे दुनिया को दिखा देना है कि भला मेरा शरीर न हो ऊंचा, लेकिन मेरा पद ऊंचा है। वह इस बात से इतना ज्यादा विक्षुब्ध हो उठता था अगर कोई उसे याद दिला दे!
एक दिन उसकी दीवाल पर लगी घड़ी बंद हो गयी, तो वह उसे ठीक करने की कोशिश
कर रहा था, लेकिन हाथ उसका दीवाल घड़ी तक नहीं पहुंच रहा था। उसके बॉडीगार्ड ने, उसके अंगरक्षक ने जो कि सात फीट ऊंचा जवान था--नेपोलियन का अंगरक्षक हो, तो सात फीट ऊंचा जवान होना ही चाहिए--उसने कहा, आप रुकिए, मैं आपसे ऊंचा हूं, मैं ठीक किए देता हूं। नेपोलियन ने कहा कि जबान काट ली जाएगी, शब्द वापस ले लो। तुम मुझसे ऊंचे नहीं हो, लंबे हो। कहो कि मैं लंबा हूं, ऊंचा नहीं।
अब तुम फर्क समझे लंबे और ऊंचे में? नेपोलियन को जैसे किसी ने घाव छू दिया--मैं तुमसे ऊंचा हूं। वह बेचारा अंगरक्षक तो साधारण बोल रहा था। उसने सोचा भी नहीं था कि यह इतनी बड़ी पीड़ा हो जाएगी। उसने तत्क्षण क्षमा मांगी और कहा कि आप ठीक कहते हैं। ऊंचे आप हैं, लंबा मैं हूं। नेपोलियन ने कहा, तब तुम घड़ी ठीक करो, अन्यथा जबान काट लूंगा।
लेनिन के पैर छोटे थे शरीर के अनुपात में। पैर के ऊपर का शरीर तो बड़ा
था और नीचे का हिस्सा, पैर छोटे थे। वह उसकी जिंदगी भर की पीड़ा थी। वह कुर्सियां बड़ी बनवाता था। लेकिन उसके पैर जमीन तक नहीं पहुंचते थे, तो टेबलें ऐसी बनवाता था कि किसी को पैर न दिखाई पड़ें। नहीं तो वह बड़ा भद्दा मालूम पड़ता था। उसके पैर कुर्सियों पर लटके मालूम होते, जैसे कोई छोटा बच्चा बैठा हो। वह अपने पांवों को छिपा कर चलता था। वह पांवों से हमेशा पीड़ित होता था। उसने अपने पत्रों में अपने मित्रों को लिखा है कि मैं सिद्ध करके बता दूंगा कि पांव मेरे कितने ही छोटे हों, लेकिन बड़े से बड़े पद

पर मैं पहुंच सकता हूं। मेरे छोटे पैरों से मैं बड़े पद पर पहुंच कर बता दूंगा।
एडलर की बात में कुछ सचाई है। राजनेता कैसे मेरे संबंध में कुछ कहें? मैं उनके संबंध में जो कह रहा हूं, उससे उनके प्राणों पर गुजरती है--बुरी गुजरती है। वे तो खुश हुए होंगे कि जो हम करना चाहते थे, वह किसी आदमी ने तो करने की कोशिश की। दिल ही दिल में धन्यवाद दिया होगा, आभार अनुभव किया होगा।
इसलिए तुम इसकी चिंता न लो, कैलाश गोस्वामी, कि क्यों किसी उच्च दर्जे
के व्यक्ति ने कुछ नहीं कहा। उनका न कहना ही बताता है कि कोई उच्च दर्जा वगैरह नहीं है। सब दौड़ है ऊंचे होने की, मगर ऊंचा कोई पद से नहीं होता। आत्मवान व्यक्ति ही केवल ऊंचा होता है। ध्यान ही एकमात्र धन है। और परमात्मा को अनुभव करना ही एकमात्र पद है। इसीलिए तो भक्तों ने उसे परमपद कहा है। बाकी सब पद तो थोथे हैं, बचकाने हैं।
तुमने छोटे बच्चों को देखा नहीं? छोटे बच्चे कुर्सियों पर चढ़ जाते हैं और अपने पिता से कहते हैं कि डैडी, मैं तुमसे ऊंचा हूं। देखो मैं तुमसे ऊंचा हूं।
ये जो पदों की दौड़ में लगे हुए लोग हैं, ये छोटे बच्चे हैं। जो शरीर से भला बड़े हो गए हों, लेकिन मनोवैज्ञानिक रूप में जिनकी उम्र ज्यादा नहीं है।
यह जान कर तुम हैरान होओगे कि आदमी की औसत मनोवैज्ञानिक आयु बारह साल है। अस्सी साल के आदमी की भी औसत उम्र बारह साल से ज्यादा नहीं होती-- मानसिक। मन तो वहीं अटक जाता हैः बारह-तेरह साल के करीब। फिर खिलौने बदलते रहते हैं। फिर खिलौने बड़े होते चले जाते हैं। लड़कियां गुड्डियों से खेलती हैं, गुड्डियों के विवाह रचाती हैं। फिर बड़े होकर वे बच्चों के विवाह रचाएंगी, मगर खेल वही है। फिर रामलीला होगी, राम-सीता का विवाह रचाया जाएगा। खेल वही है, नाम बदलते हैं, रूप बदलते हैं।
ऐसा हुआ कि मैं पहली दफा रायपुर गया। मुझे कोई पहचाने नहीं, मैं किसी
को पहचानूं नहीं कि कौन मुझे बुलाया है। उसी दिन संयोगवशात उसी एयरकंडीशंड डब्बे में बाबा राघवदास को भी आना था। बाथरूम जाते हुए मैंने देखा कि तख्ती बाबा राघवदास की लगी है। वे एक सर्वोदयी संन्यासी थे। महात्मा गांधी और विनोबा के बड़े भक्त थे। तो मैंने पूछा कि वे हैं यहां या नहीं डब्बे में? पता चला कि वे तो नहीं आए हैं। बात आई-गई हो गई।
फिर रायपुर स्टेशन आया तो मुझे जो लेने वाले थे वे तो नहीं पहुंचे थे, लेकिन बाबा राघवदास को लेने वाले डब्बे के सामने ही फूलमालाएं लिए खड़े थे, और मुझे देख कर बोले कि बाबा राघवदास की जय!
मैंने भी सोचा कि भेद भी क्या है, नाम ही रूप का भेद है, चलो बाबा राघवदास सही। मैं कुछ बोला नहीं। उन्होंने फूलमालाएं पहना दीं, तो मैंने भी पहन लीं। उन्होंने सामान उठा लिया, तो मैंने कहा उठा लो। मुझे कोई और लेने आया भी नहीं था तो मैंने कहा आखिर मुझे कहीं तो जाना ही पड़ेगा। फिर बाबा राघवदास आए भी नहीं हैं, इनका भी काम बनेगा, मेरी भी झंझट कटी। आखिर मैं कहां जाऊं! कौन मुझे लेने आए, वे लोग मुझे कोई दिखाई नहीं पड़ते जिनको मुझे लेने आना चाहिए। मैं पहचानता नहीं उनको। आए होते तो वे खुद ही दिखाई पड़ते।
उनकी कार को रास्ते में ट्रैफिक में कुछ अड़चन पड़ गई, पहुंचने में कोई पांच मिनट की देर हो गई। जब हम स्टेशन के बाहर निकल रहे थे, तब वे भी आ गए फूलमालाएं लिए हुए। एकाध ने मेरी तसवीर देखी थी। वह बड़ा चौंका कि कौन लोग इनको ले जा रहे हैं! वह मेरे पास आया, उसने कहा कि आप कौन हैं?
मैंने कहा, मत पूछो। फिलहाल बाबा राघवदास हूं।
जो मुझे ले जा रहे थे, उन्होंने कहा, आपका मतलब, फिलहाल?
मैंने कहा, सब नाम-रूप है! आदमी जन्म-जन्म में क्या-क्या नहीं होता! अलग-अलग जन्मों में अलग-अलग हो जाता है। चौरासी करोड़ योनियों में क्या- क्या नहीं होना पड़ता! इसलिए कह रहा हूं कि फिलहाल।
उन्होंने कहा, तब ठीक है।

मगर जो मुझे लेने आए थे, उन्होंने कहा, हम ऐसे आपको नहीं जाने देंगे।
यह क्या मामला है? अरे बाबा राघवदास को तो हम जानते हैं। उनमें से एक बाबा राघवदास को जानता था। उसने कहा, आप बाबा राघवदास नहीं हैं।
मैंने कहा, भाई, इस संबंध में तुम आपस में तय कर लो कि मैं कौन हूं।
क्योंकि क्या फर्क पड़ता है! रही बात अगर तुम दोनों को ही अड़चन हो, तो इनका काम आज निपटा देता हूं, कल तुम्हारा निपटा दूंगा। आज बाबा राघवदास रहने दो, कल तुम जो चाहोगे वह हो जाऊंगा।
वे बाबा राघवदास वाले लोग भी चिंतित हो गए कि इस व्यक्ति को कैसे ले जाना! यह आदमी तो भरोसे योग्य भी नहीं है। और कहीं बाबा राघवदास किसी और डब्बे में न बैठे हों। उनको बड़ी चिंता यह पड़ी कि कहीं किसी और डब्बे में बाबा राघवदास बैठे हों और हम इन सज्जन को लिए जा रहे हैं जो कि बिल्कुल भरोसे के ही नहीं मालूम होते। और मेरे मित्रों ने तो जल्दी से उनसे सामान भी ले लिया। और उन्होंने कहा, आप चलिए, यह रही गाड़ी।
वे बाबा राघवदास वाले लोग कुछ-कुछ मेरे पीछे खिसकते आए।
मैंने कहा, भाई, तुम्हारा अब क्या प्रयोजन है? अब ये आ गए तो मैं जाता हूं। अब तुम बाबा राघवदास को खोज लो। मैंने कहा, ये तुम अपनी फूलमालाएं ले जाओ, नहीं तो कैसे खोजोगे? क्योंकि तुम भी उनको जानते नहीं, वे भी तुमको जानते नहीं। वैसे मैं तुमको कहता हूं कि वे आए नहीं हैं, क्योंकि उसी डब्बे में उनको आना था जिसमें मैं आया हूं। तख्ती तो उनके नाम की लगी थी, मगर वे आए नहीं हैं। ये मानते नहीं हैं, नहीं तो मैं राजी हूं दोनों को हल कर देने का। आज तुम्हारा काम निपटा देता, कल इनका निपटा देता। मगर ये भी जिद पर अड़े हैं, और तुम्हारी भी हिम्मत नहीं दिखती। मैंने कहा कि आखिर बाबा राघवदास भी तो मानते ही हैं न कि सब भेद नाम-रूप का है!
उन्होंने कहा, यह तो मानते ही हैं, यह तो सभी ब्रह्मज्ञानी मानते हैं। फिर मैंने कहा, फिर क्या भेद है? नाम ही रूप का भेद है, बाकी सब भीतर तो परमात्मा ही बैठा हुआ है।
उन्होंने कहा, बात तो आप ठीक कहते हैं, मगर पहले हम बाबा राघवदास को देख लें गाड़ी में, अगर वे न मिले तो फिर सोचेंगे।
तुम्हारी मर्जी।
आदमी-आदमी में भेद कहां है? ऊपर के भेद तो कुछ भेद नहीं हैं। तुम चाहे बड़े पद पर होओ, चाहे छोटे पद पर होओ, चाहे किसी पद पर न होओ, धन हो या धन न हो, महल हो कि झोपड़ा हो--ये कुछ भेद नहीं हैं। ये सब नाम-रूप के भेद हैं। इन भेदों को मैं मिटाना भी नहीं चाहता। ये भेद प्यारे हैं। इससे थोड़ा वैविध्य है जगत में। कोई चंपा है, कोई चमेली है, कोई गुलाब है, कोई कमल है-- यूं बहुत फूल हैं और बहुत रंग हैं--सुंदर है। लेकिन असली चीज भीतर है। और राजनीतिज्ञ को भीतर से कोई संबंध नहीं, उसकी दौड़ बाहर है। और धर्म का संबंध भीतर से है। राजनीतिज्ञ जीता है नाम-रूप में, और धर्म जीता है उसमें जो नाम-रूप के अतीत है, वह जो आकार के पार है, वह जो निराकार है।
मुझसे लोग पूछते हैं कि राजनीतिज्ञ और महात्माओं के पास तो जाते हैं, आपके पास क्यों नहीं आते?
और महात्माओं के पास जाना राजनीति में उपयोगी है। वे राजनीतिज्ञ भी
जो मेरी किताबें पढ़ते हैं, जो मेरे विचारों में उत्सुक हैं, जो चोरी-छिपे मुझे संदेश भी भेजते हैं, वे भी मुझसे मिलने सीधे आने की हिम्मत नहीं करते। क्योंकि मुझसे मिलने का मतलब राजनीति में खतरनाक हो सकता है, मंहगा पड़ सकता है। राजनीति की चिंता एक है कि भीड़ उसके साथ हो। भीड़ मेरे साथ नहीं है। मेरे साथ तो थोड़े से चुने हुए, चुनिंदे विद्रोही लोग हैं। इन विद्रोहियों के ऊपर कोई राजनीति नहीं चल सकती।
मैंने जिंदगी में कभी कोई वोट दिया नहीं--किसी को भी। क्योंकि किस चोर
को वोट दो? इसको दो कि उसको दो, सब चोर-चोर मौसेरे भैया, चचेरे भाई-बहन! किसको दो? उस झंझट में ही कभी पड़ा नहीं। कभी कोई राजनीतिज्ञ मुझसे वोट मांगने आया भी नहीं। वे जाते हैं हरेक के पास। क्योंकि मुझसे मांगने आए तो मैं उसको इस तरह ठीक करूं कि वह चौकड़ी ही भूल जाए, होश-हवास खो दे। और इस आश्रम में तो जो लोग हैं, जो मेरे साथ हैं, उनमें से किसी एक को मतलब नहीं है राजनीति से। किसी को मत से मतलब नहीं है।

अगर मेरे पास कोई राजनेता आए भी, तो उसको मिलेगा क्या? एक मत नहीं मिल सकता। राजनेता जाता है किसी भी दो कौड़ी के पंडित, पुरोहित, महात्मा, साधु, जिनका कोई मूल्य नहीं है, मगर उनके पास जाएगा। और हिंदू के पास भी जाएगा, जैन के पास भी जाएगा, मुसलमान के पास भी जाएगा--सबके पास जाएगा और गिड़गिड़ाएगा, क्योंकि उनके पीछे भीड़ का कोई न कोई हिस्सा है। वह भीड़ मत रखती है। उसके पास वोट है।
मेरे पास जो लोग हैं, पहली तो बात ये विश्व के नागरिक हैं। इन्हें किसी एक देश की राजनीति और एक देश की सीमा से कुछ लेना-देना नहीं है। इन्हें वस्तुतः राजनीति से कुछ लेना-देना नहीं है। अभी इतना बड़ा इलेक्शन का उपद्रव होता रहा, यह शायद एकमात्र जगह होगी पूरे देश में, जहां उसकी कोई चर्चा नहीं, कोई बात ही नहीं, किसी को कुछ लेना-देना नहीं, कुछ प्रयोजन नहीं।
वे मेरे पास नहीं आ सकते हैं। और वे मेरे पक्ष में तो बोल नहीं सकते।
वे तो जिसने छुरा मारा है, उसके पक्ष में बोलें तो शायद ज्यादा वोट उनको मिल सकते हैं; मेरे पक्ष में बोलें तो जो मिलते होंगे वोट, वे भी शायद न मिलें। राजनीति को कोई प्रयोजन किसी और बात से नहीं है, सारा प्रयोजन यह है कि कितने वोट! वोट की गिनती है। मेरे पास तो कोई वोट नहीं है। मेरे पास तो सिर्फ साहसियों का काम है।
और अखबार वाले, तुम पूछते हो कैलाश गोस्वामी, कि उन्होंने भी कुछ नहीं कहा।
अखबार वालों के भी मैं बहुत पक्ष में नहीं हूं। क्योंकि अखबार जो है,
वह गलत के प्रचार का माध्यम है; अशोभन के प्रचार का माध्यम है; अश्लील का माध्यम बन गया है। अखबार सत्य पर जीता ही नहीं, असत्य पर जीता है। अखबार सनसनीखेज पर जीता है। उसे और किसी बात से रस नहीं है। हां, अगर मेरे संन्यासियों ने उस छुरा फेंकने वाले को मारा होता, पीटा होता, तो अखबार में खबर छपती। लेकिन न किसी ने मारा, न किसी ने पीटा, उसे प्रेम से उठा कर और पुलिस के हाथों में सौंप दिया। उसे जरा सी खरोंच भी नहीं लगने दी। उसकी पूरी सुरक्षा की। नहीं तो यहां इतनी भीड़ थी, लोग पागल हो सकते थे।
लेकिन यह भीड़ और तरह के लोगों की है। यह पागल होने वालों की भीड़ नहीं है। एक आदमी न हिला, न डुला। लोगों ने मुड़ कर देखा तक नहीं। इससे मैं आनंदित हुआ। बस चार-छः रक्षक उठे, जिनका काम था वे उठे, और उसे चुपचाप ले गए। यूं जैसे कुछ खास बात नहीं हुई। कोई सनसनी नहीं फैली। मैं जैसा बोल रहा था, वैसा ही बोलता रहा; लोग जैसे सुन रहे थे, वैसे ही सुनते रहे। लोग खड़े भी नहीं हो गए, भाग-दौड़ भी नहीं मच गई कि छुरा फेंका गया है, पता नहीं अब कोई गोली चला दे! पता नहीं इसके और साथी हों, कोई तलवार निकाल ले! ... और वह आदमी भी तलवार छिपाए हुए था अपने बेल्ट में। वह भी तलवार निकाल ले सकता था। दो-चार की गर्दन काट दे सकता था।
लेकिन फिर भी अखबार वालों को शुभ से कोई प्रयोजन नहीं है। अगर तुम किसी को एक फूल भेंट करो या किसी गिरते को सम्हालो, अखबार को कोई अर्थ नहीं है इसमें। हां, तुम किसी चलते को गिरा दो, तुम किसी के हाथ से फूल छीन लो, तो अखबार वाले को रस है। अखबार जीता है सनसनीखेज पर। अगर सनसनीखेज खबर मिलती हो, तो ठीक। तो जितनी सनसनी थी, उतनी खबर अखबार ने ले ली। छुरा फेंका गया, यह सनसनी की बात थी। मुझे मारने की कोशिश की गई, यह सनसनी की बात थी। बाकी तुमने कोई दुर्व्यवहार नहीं किया उसके साथ--इसमें तो कोई सनसनी नहीं है। सदव्यवहार से अखबारों को कुछ लेना-देना नहीं है।
इस दुनिया में बुराई को बढ़ा-चढ़ा कर प्रचार करने का जो सबसे बड़ा उपद्रव है, वह अखबार है। दुनिया में बुराई सदा थी, मगर जितनी आज प्रचारित होती है, उतनी कभी प्रचारित नहीं होती थी। आज सुबह से आदमी पहला काम यही करता है-- अखबार पढ़ने का। और अखबार पढ़ने से एक राहत मिलती है। राहत इस बात की मिलती है--कोई हत्या कर रहा है, कोई चोरी कर रहा है, कोई रिश्वत ले रहा है, कोई पकड़ा गया, किसी को फांसी लगी, किसी को गोली मार दी गई, कहीं राज्य का तख्ता उलट गया--तो आदमी को एक राहत मिलती है कि अरे, लोग मुझसे भी ज्यादा बुरे हैं! मैं ही इनसे अच्छा। माना कि मैं भी थोड़ी-बहुत रिश्वत लेता हूं देता हूं, मगर थोड़ी-बहुत। मेरी रिश्वत की क्या बिसात, जहां इतने पाप चल रहे हैं।

परमात्मा के सामने अगर पापियों की कतार लगेगी कयामत के दिन, तो मेरा नंबर आएगा ही नहीं।
मुल्ला नसरुद्दीन पूछ रहा था अपने मौलवी से कि क्या आप कहते हैं कि जो निर्णय का दिन होगा, कयामत का दिन होगा, एक ही दिन में सब निर्णय हो जाएगा? मौलवी ने कहा, एक ही दिन में सब निर्णय हो जाएगा।
मुल्ला जरा चिंतित हुआ। उसने कहा, एक ही दिन में? जितने आदमी हुए हैं
अब तक और आगे भी होंगे, इन सबका?
मौलवी ने कहा, हां, इन सबका।
मुल्ला ने कहा, वहां स्त्रियां भी होंगी कि सिर्फ पुरुष होंगे?
मौलवी ने कहा, तुम बातें किस तरह की पूछते हो, अरे स्त्रियां भी होंगी।
तो मुल्ला ने कहा, मेरा नंबर शायद ही आए। इतना शोरगुल मचेगा वहां, ऐसी किचपिच मचेगी, स्त्रियां एक-दूसरे की साड़ी के पोत देखेंगी, और एक-दूसरे के गहनों की चर्चा करेंगी, और ऐसा धूम-धड़ाका मचेगा वहां, इतने लोग! जहां महापापी इकट्ठे होंगे--चंगीजखां और तैमूरलंग और अडोल्फ हिटलर और मुसोलिनी और स्टैलिन और माओत्से तुंग--वहां मुझ गरीब को कौन पूछेगा! अपने पाप कुछ बड़े नहीं हैं। यूं ही बीड़ी पीते हैं। कभी-कभी दीवाली-होली जुआ खेल लेते हैं। न किसी की हत्या की है, न किसी पर डाका डाला है। हम गरीबों की वहां भी पूछ न होगी!
चित्त, मुल्ला ने कहा, सुन कर उदास होता है कि वहां भी हमको इतने पीछे खड़ा होना होगा जैसे राशन की कतार में यहां खड़ा होना पड़ता है। और यहां तो कम से कम चार-छह घंटे में आखिर हमारा नंबर भी आ जाता है, वहां तो आने वाला नहीं। चौबीस घंटे में--तुम कहते हो एक दिन में सब निपटारा हो जाएगा--हमारा नंबर ही नहीं आने वाला। हमने कुछ ऐसे पाप ही नहीं किए!
जब तुम सुबह अखबार पढ़ते हो तो एक राहत मिलती है, एक बोझ उतर जाता है।
सब पश्चात्ताप गल जाता है। सब अपराध गिर जाते हैं। अरे दुनिया में इतना पाप हो रहा है! तुम एकदम सज्जन मालूम होने लगते हो।
इसलिए तो निंदा में इतना रस है। और अखबारों ने निंदा के रस को विज्ञान
का रूप दे दिया, उसकी पूरी टेक्नालॉजी बना दी। लोग मिलते हैं तो बात ही क्या करते हैं? निंदा। इसकी निंदा, उसकी निंदा। निंदा का मजा यह है कि जब भी तुम किसी की निंदा करते हो, उसकी तुलना में तुम अच्छे मालूम होने लगते हो।
तुमने अकबर की तो कहानी पढ़ी न? उसने एक दिन खड़िया से लकीर खींच दी आकर दरबार में और कहा, इसे बिना छुए कोई छोटा कर दे। कोई नहीं कर सका, लेकिन बीरबल ने कर दी उसे छोटी--बिना छुए। उसने एक बड़ी लकीर उसके नीचे खींच दी। बड़ी लकीर के खिंचते ही वह छोटी हो गई, उसको छुआ भी नहीं।
तुम जब किसी की निंदा करते हो तो तुम अपनी लकीर छोटी करने की कोशिश में लगे हो, तो तुम बड़ी लकीर खींचते हो। इसलिए अगर किसी आदमी से कहो कि फलां आदमी बड़ी प्यारी बांसुरी बजाता है। फौरन वह आदमी कहेगा, अचूक तत्क्षण कहेगा, अरे वह क्या बांसुरी बजाएगा! चोर जमाने भर का, लुच्चा, लफंगा, कालाबाजारी। वह क्या बांसुरी बजाएगा! तस्करी का धंधा करता है, वह बांसुरी बजाएगा? अरे बांसुरी बजाते थे कृष्ण भगवान। यह क्या बांसुरी बजाएगा! बांसुरी बजाने के लिए पवित्रता चाहिए।
अगर तुम किसी से कहो कि फलां आदमी चोर है, बेईमान है--तो कोई एतराज नहीं करेगा। कोई नहीं कहेगा कि नहीं भाई, वह कैसे चोर हो सकता है, इतनी प्यारी बांसुरी बजाता है! और चोरी भी करता होगा तो वैसी ही करता होगा जैसे कृष्ण भगवान माखनचोर! उस चोरी को कोई चोरी थोड़े ही कहते हैं। जो बांसुरी इतनी प्यारी बजाता है, हम मान नहीं सकते कि वह कोई बुरा कृत्य करता होगा-- ऐसा कोई भी नहीं कहेगा।
आदमी के इस मन को समझो! आदमी चाहता है दूसरे की बुराई बड़ी करके बताई जाए। जितनी बढ़ा-चढ़ा कर बताई जाए, उतना अच्छा। क्योंकि उससे अपनी बुराई छोटी मालूम होने लगती है, ना-कुछ मालूम होने लगती है। और जब चारों तरफ बुराई के पहाड़ खड़े हो जाएं, तो तुम्हारी तो बुराई कुछ भी नहीं रह जाती। एक टीला भी नहीं रह जाती, पहाड़ की तो बात ही और। खाई-खड्ड मालूम होने लगती है।

तुम तुलना में संत-साधु मालूम होने लगते हो। तुम किसी की साधुता की बात करो, तत्क्षण लोग एतराज उठाएंगे। साधुओं को तो लोग बहुत गौर से देखते रहते हैं कि कुछ भूल-चूक मिल जाए। जरा सी भूल-चूक मिल जाए, बस पर्याप्त है। उतना काफी है उनको उनकी साधुता छीन लेने के लिए। जैसे बैठे ही हैं इसलिए। अखबार वालों ने इस धंधे को बड़ा निखार दिया है। इसलिए कोई भी शुभ घट रहा हो, उसकी चर्चा नहीं की जाएगी। यहां अखबार वाले आते हैं। यहां कोई ध्यान कर रहा है, इससे उन्हें प्रयोजन नहीं; लेकिन अगर किसी स्त्री-पुरुष के जोड़े को हाथ में हाथ लिए देख लेंगे, तत्क्षण उनका कैमरा क्लिक। ध्यान करने वाले से क्या लेना-देना है! बनौअल बैठा है यह आदमी। आंखें बंद किए, पालथी मारे, विपस्सना का ढोंग कर रहा है। अरे आज कलियुग में कहीं कोई ध्यान करता है! तो यह सच ही नहीं है, इसका फोटो क्या लेना! यह हो सकता है कि फोटोग्राफर को देख कर ही आंख बंद करके ध्यान करने बैठा हो। पता लग गया हो कि अखबार वाला आ रहा है, इसलिए इतने लोग एकदम ध्यान करने बैठ गए हैं।
मगर कोई यह नहीं सोचता कि यह फोटोग्राफर को देख कर किसी ने इस स्त्री
का हाथ अपने हाथ में ले लिया होगा। नहीं, यह क्यों होगा! स्त्री का हाथ अपने हाथ में ले लिया, काम-दमित समाज में यह बात सनसनीखेज है। इस सनसनीखेज की तसवीर होनी चाहिए, इसकी चर्चा होनी चाहिए। फिर अगर न मिलें कुछ घटनाएं, तो झूठी गढ़ो। अखबार वाले इतनी घटनाएं गढ़ते हैं कि चमत्कार मालूम होता है। एक बंगाली अखबार पढ़ने को मिला। लगता नहीं कि उसका लेखक यहां कभी आया हो, क्योंकि उसने जो-जो बातें कही हैं, वे सरासर झूठी हैं। उसने लिखा है कि मैं आश्रम निवासिनी मां विनोदिनी से मिला। इस आश्रम में कोई मां विनोदिनी हैं ही नहीं, मैंने यह नाम ही अब तक किसी महिला को नहीं दिया। इस आश्रम में ही नहीं, मेरी कोई संन्यासिनी इस नाम की नहीं है। उसने सोचा होगा कि जब स्वामी विनोद मैं नाम देता हूं कई को, तो जरूर मैंने विनोदिनी नाम भी दिया होगा। बाकी मैं भी अपने हिसाब से चलता हूं, वह नाम मैंने बचा रखा था किसी अखबार वाले के लिए। वह फंस गए बच्चू। विनोदिनी मेरी कोई संन्यासिनी ही नहीं है।
और झूठ की भी हद होती है। उसने लिखा कि दरवाजे पर ही मुझे मां योग लक्ष्मी मिलीं और वे सफेद कपड़े पहने हुए थीं।
लक्ष्मी और सफेद कपड़े पहने मिले, यह वैसा ही झूठ है, जैसे मैं और गैरिक वस्त्र पहने हुए मिल जाऊं। और वह भी दरवाजे पर! मैं इस दरवाजे तक इन छह सालों में सिर्फ तीन बार गया हूं। वह भी निकलना था दरवाजे से इसलिए। मैंने इस दरवाजे को अब तक गौर से देखा नहीं। लोग मुझसे तारीफ करते हैं कि सुंदर है। मैंने कहा कि कभी देखूंगा, कभी अवसर आया, जब पूना छोडूंगा, तो देखता जाऊंगा। अब इसी को देखने के लिए क्या जाना इतनी दूर। हालांकि ज्यादा दूर नहीं है, मेरे कमरे से मुश्किल से दो सौ कदम। मगर मुझे दो कदम भी दूर लगता है। अपने से दो कदम भी दूर जाना, मुझे काफी दूर जाना लगता है।
लक्ष्मी दरवाजे पर मिली, वह भी सफेद वस्त्रों में! और लक्ष्मी से उनकी मुलाकात दरवाजे पर ही हुई, और चर्चा भी वहीं हुई।
इस आदमी को कुछ भी पता नहीं। यह कभी आया नहीं यहां। और इसने लिखा है कि
जब मैं संन्यास देता हूं, तो वहां सूफी नृत्य होता है संन्यास देते समय। इसने कहीं से शब्द सुन लिए हैं। न इसे संन्यास देने का कुछ पता है, न सूफी नृत्य का कोई पता है। और इसने यह भी लिखा कि आश्रम में मालाएं बिकती हैं। कई तरह की मालाएं--कोई पंद्रह रुपये की, कोई बीस रुपये की, कोई पच्चीस रुपये की, कोई पचास रुपये की। जिसकी जितनी हैसियत हो।
अब यह सरासर झूठ है। मालाएं तो सिर्फ संन्यासियों को मेरे प्रेम के प्रतीक की तरह भेंट में मिलती हैं, बिकती नहीं। पंद्रह रुपये में बिकती नहीं, कोई पंद्रह हजार दे तो भी नहीं बिकती; कोई पंद्रह लाख भी दे माला के लिए, तो भी नहीं बिकती।
मगर उसने लिखा है कि आश्रम की दुकान में मालाएं लटकी हुई हैं और उन पर दामों की तख्तियां लगी हुई हैं--पंद्रह रुपया, बीस रुपया, पच्चीस रुपया। यहां आने की भी जरूरत नहीं है अखबार वालों को, कलकत्ते में बैठ कर यह आदमी गढ़ रहा है। और जब इसको जवाब दिलवाया गया, तो जवाब का भी जवाब देता है

वह, कि यह सत्य है जो मैंने लिखा है; इसमें कुछ भी असत्य नहीं है। मैं अपनी आंख से देख कर आया हूं। मेरी आंखें धोखा नहीं खा सकतीं।
मगर यह कुछ बड़ा असत्य नहीं है, इससे बड़े-बड़े असत्य लिखे जा रहे हैं।
जर्मनी के एक अखबार में लिखा गया है कि आश्रम पंद्रह वर्गमील में बसा है।
बात तो मुझे भी जंची। बसना चाहिए; बसेगा। मगर अभी बसा नहीं है। मैं उससे राजी होता हूं। पंद्रह वर्गमील में ही बसेगा। लेकिन अभी नहीं है।
और उसने लिखा है कि सब सभाएं मेरी भूमि के अंतर्गत होती हैं।
तुम याद रखना, तुम भूमि के अंतर्गत बैठे हुए हो। और भी गजब की बातें लिखी हैं, तुम मानो या न मानो। मगर मानना ही पड़ेगा। जब प्रतिष्ठित अखबार वाले लिखते हैं, तो बात माननी ही पड़ेगी। कि मेरे सब सुनने वालों को, सुनने के पहले वस्त्र उतार देने होते हैं, नग्न बैठना होता है।
तुम सब नग्न बैठे हुए हो। यह बात भी मुझे जंची। गर्मी इतनी है। और यूं
भी कपड़ों के भीतर सभी नंगे बैठे हुए हैं, यह बात तो सच है ही। अरे कपड़े तो ऊपर ही ऊपर हैं, भीतर तो आदमी नंगा ही है। कपड़े से क्या होता है, बैठे तो सब नंगे ही हैं! कपड़े के भीतर बैठे हों कि तंबू के भीतर बैठे हों कि छप्पर के नीचे बैठे हों, मगर बैठे तो नंगे ही हैं।
तो बात तो उसने बड़ी गजब की खोजी। अंधे को अंधेरे में दूर की सूझी। और
यह आदमी लिखता है कि यह आकर गया है आश्रम! और यह पांच बजे सुबह आश्रम आया, दरवाजे पर दस्तक दी, एक नग्न स्त्री ने दरवाजा खोला। ऐसी सुंदर स्त्री जो उसने कभी देखी नहीं।
बातें तो उसने बड़ी प्यारी लिखीं। मन को खूब भायीं। मैं चाहता हूं कि यहां संन्यासी, संन्यासिनियां ऐसे सुंदर हों कि दुनिया में कहीं वैसे लोग इकट्ठे दिखाई पड़ें न। बनती है बात, बनी जा रही है, बनते-बनते बनी जा रही है। इतने सुंदर, इतने प्रसन्न, इतने आनंदित लोग इकट्ठे कहां मिलेंगे?
मगर झूठ की भी कोई सीमा होती है। और फिर उसने कहा कि उस महिला ने, नग्न महिला ने मुझे अंदर आमंत्रित किया, मैं डरता-डरता भीतर प्रविष्ट हुआ। उसने पास ही लगे एक वृक्ष से एक फल तोड़ा--सेब जैसा मालूम पड़ता था--और मुझे दिया और कहा, इसे आप खाएं। इससे आदमी की उम्र लंबी होती है, और उसकी काम-ऊर्जा बढ़ती है।
मैंने लक्ष्मी को पूछा कि यह फल कहां है? अपने ही कितने संन्यासी बेचारे बूढ़े हो गए हैं, ऐरे-गैरे-नत्थूखैरे खा रहे हैं फल, अपने संन्यासी बूढ़े हुए जा रहे हैं। अब फली भाई को देखते हो, बूढ़े हो गए, अब इनको फल देना चाहिए। सीता मैया को देखते हो, बूढ़ी हो गईं। सीता मैया के राम जी हैं, वे बूढ़े हो गए। कहां-कहां के आदमियों को फल दे रही हो और मुझे बताया ही नहीं अब तक कि यह वृक्ष है कहां! तब से मैं खोजबीन में लगा हूं--वह वृक्ष है कहां? वह वृक्ष अभी तक मिला नहीं।
मगर लोग छपे हुए अक्षर पर भरोसा करते हैं। लोग बड़े अजीब हैं। लोग अपनी आंख से भी ज्यादा छपे हुए अक्षर पर भरोसा करते हैं। कोई बात छप गई, तो सच होनी ही चाहिए।
मेरे संबंध में जो अखबार इस तरह के झूठ छाप रहे हैं, जिन्होंने ठेका
ले रखा है झूठ छापने का, जो मेरी बातों को तोड़ते हैं, मरोड़ते हैं, जो मेरे कार्य को सब तरह से विकृत करते हैं--कैलाश गोस्वामी, तुम उनसे आशा करो कि वे आलोचना करेंगे इस हमले की, तो तुम गलत आशा करते हो। गलत आशा करोगे तो निराशा हाथ लगेगी।
मगर अंत में मैं फिर दोहरा दूं कि जो यहां हो रहा है, वह कहीं भी होगा। इसलिए भारत पर नाहक नाराज मत होना। वह सब जगह होगा। वह यहीं नहीं हो रहा है, वह सब जगह होगा।
यह जान कर तुम चकित होओगे कि जिस दिन मुझ पर यहां छुरे से हमला हुआ, ठीक उसी दिन, उसी तारीख को--संयोग की ही बात है, कुछ रहस्य मत खोजने लग जाना--आस्ट्रेलिया में पर्थ में मेरा जो आश्रम चलाते हैं स्वामी इंदीवर, उनके ऊपर भी हमला हुआ छुरे से ही। तो अब क्या करोगे! मुझ पर हमला हो, यह भी समझ में आता है; क्योंकि मैं उपद्रव की जड़ हूं। मगर इंदीवर का क्या कसूर बेचारे का? सीधा-सादा आदमी है, सरल चित्त आदमी है। उस पर भी छुरे से हमला हुआ।

यह तो जगह-जगह होगा। और यहां से तो मुझे कोई अलग नहीं कर सकता कम से कम, लेकिन मैं किसी भी देश में टिकने नहीं दिया जा सकता। जार्ज गुरजिएफ के साथ जीवन भर यह दिक्कत रही। चूंकि वह रूस में पैदा हुआ था और क्रांति हो जाने के बाद उसको रूस छोड़ना ही पड़ा, नहीं तो साइबेरिया में सड़ता। रूस में बुद्ध कोई पैदा हो, तो उसकी आज यही गति होने वाली है कि वह जेलखाने में सड़ेगा। और हालात बिल्कुल बदल गए हैं। अब कोई फांसी भी नहीं लगाता। फांसी भी लगा दो तो झंझट मिट जाती है।
मैंने सुना है कि एक दिन गपशप हो रही है, ईसाइयों की जो त्रिमूर्ति है--ईश्वर पिता, जीसस क्राइस्ट और होली घोस्ट--वे तीनों गपशप कर रहे हैं। यूं भी मोक्ष में बैठ कर और करोगे क्या! गपशप कर रहे हैं। होली घोस्ट ने कहा, बहुत दिन हो गए, कहीं जाने का मन होता है, छुट्टियां मनाने का मन होता है। आप लोगों की इच्छा नहीं होती कहीं जाने की?
ईश्वर ने कहा कि मैं तो बूढ़ा हो गया बहुत, अब क्या छुट्टियां मनानी, कहां मनानी, अब तो जो कुछ है ठीक है, यहीं ठीक है। लेकिन जीसस को कहा कि बेटे तेरी इच्छा हो, तो एक चक्कर पृथ्वी का फिर मार आ।
जीसस ने कहा, अब दोबारा नहीं जाऊंगा। एक ही बार गया, जो फल भोगा, सूली
पर चढ़ना पड़ा, अब तो बिल्कुल नहीं जाऊंगा।
होली घोस्ट ने कहा, तो क्या बिगड़ता है? ज्यादा से ज्यादा सूली पर चढ़ाएंगे, क्षण भर में फैसला हो जाता है, फिर अपने घर वापस। वह समझो कि वापसी टिकट।
जीसस क्राइस्ट ने कहा कि तुम्हें पता नहीं है, तुम अखबार नहीं देखते हो। आजकल वे सूली पर नहीं चढ़ाते; या तो जेलखाने में रख देंगे, जहां जिंदगी भर सड़ो; या साइबेरिया भेज देंगे, जहां जिंदगी भर गड्ढे खोदो। और अगर ज्यादा ही हरकत की, तो पागलखाने में रख देते हैं, जहां इलेक्ट्रिक शॉक देते हैं। वे पुराने लोग तो बड़े भले थे जिन्होंने सूली पर लटका दिया, आखिर घड़ी दो घड़ी में मामला खत्म हो जाता था। मगर अब तो पूरी जिंदगी का उपद्रव है। यह झंझट मैं नहीं लेना चाहता। पृथ्वी पर अब मुझे दोबारा नहीं जाना है। छुट्टी वगैरह मुझे नहीं मनानी। यहीं ठीक है। यहीं से जो अखबार पढ़ लेता हूं, वही काफी हैं।
गुरजिएफ के साथ तो यह घटना घटी। रूस से उसे हटना पड़ा। गुरजिएफ इस सदी
के उन थोड़े से लोगों में एक था, जो पूर्ण बुद्धत्व को उपलब्ध हुए। वे थोड़े से लोग बहुत ही थोड़े से हैं। गुरजिएफ, रमण, कृष्णमूर्ति--ये तीन ही व्यक्ति हैं जिनकी गिनती बुद्धों में की जा सके। गुरजिएफ को रूस छोड़ देना पड़ा, भागना पड़ा। भागते समय भी तीन बार उसके जीवन को खत्म करने की कोशिश की गई। तीन बार उसको गोलियां लगीं, लेकिन बच गया। कभी पैर में गोली लगी, ऐसी जगह गोली लगी कि जीवन-घातक नहीं हो सकी। मगर उसके शरीर को तो सदा के लिए नुकसान पहुंच ही गया। शरीर को कमजोर तो कर ही गईं गोलियां। निकल भागा वहां से, लेकिन फिर छिपना पड़ा उसे। तो टर्की में छिपा रहा।
शायद वहीं छिपे-छिपे मर जाना पड़ता। वह तो पश्चिम के कुछ लोगों ने, खास
कर आसपेंस्की ने उसे खोज लिया, जो तलाश में था किसी सदगुरु की। मगर आसपेंस्की भी लाख उपाय किया--आसपेंस्की जगत-प्रसिद्ध गणितज्ञ था, लोक-विख्यात था--लेकिन वह भी उसके लिए घर नहीं खोज पाया। लाख कोशिश की कि इंग्लैंड में बस जाए, लेकिन इंग्लैंड की सरकार इंग्लैंड में प्रवेश न करने दे। कोई दूसरा देश उसको अपने भीतर लेने को राजी नहीं। बामुश्किल फ्रांस राजी हुआ उसको लेने को, और वह भी इस शर्त पर कि वह पेरिस से दूर जंगल में अपना आश्रम बना ले। और जहां तक बने फ्रेंच जीवन, राजनीति, समाज-व्यवस्था से अपने को अलिप्त रखे। अगर उसने कोई भी गड़बड़ की तो तत्क्षण उसे निकाल कर देश के बाहर कर दिया जाएगा।
तुम क्या सोचते हो मेरे लिए आसान पड़ने वाला है अगर मैं जाना चाहूं, दुनिया के किसी और देश में बसना चाहूं! कितने पत्र आए हैं, कितने टेलीग्राम आए हैं, कितने फोन आए हैं--सारी दुनिया के कोने-कोने से--कि आप हमारे मुल्क में आ जाएं।

ठीक है, जो मुझे प्रेम करते हैं उनका निमंत्रण मैं समझता हूं। लेकिन उनको पता नहीं है कि उनके देश की राजनीति मुझे बरदाश्त कर सकेगी! कौन देश इस आग को लेने को राजी होगा? कोई देश इस आग को लेने को राजी नहीं हो सकता। तो यह मेरे जैसे लोगों का भाग्य है कि हम जहां होंगे वहीं सूली पर होंगे। और सूली पर ही होना हो तो भारत सबसे अच्छा है। यहां सब काम ऐसा सुस्त है, इतना ढीला-ढाला है कि यहां सूली तक से निकल भागने के उपाय हैं। जेलखाने से लोग निकल जाते हैं।
एक व्यक्ति को मैं जानता हूं जिन्होंने करोड़ों रुपये का भारत को नुकसान दिया। जेल में बंद थे। जमानत पर छोड़े गए। मेरे परिचितों में से हैं। जवाहरलाल नेहरू के बहुत निकटतम लोगों में से एक थे, इसीलिए इतना बड़ा धोखा दे सके। उनको एक साल के लिए सख्त मुमानिअत थी कि वे भारत नहीं छोड़ेंगे। न केवल उन्होंने भारत छोड़ा, किसी को पता नहीं चला। इतना ही नहीं, फिर वापस आए, अपना काम करके फिर चले गए। दोबारा जब वापस आए तब लोगों को खबर पता चली।
यहां जैसी सुविधाएं हैं, वैसी सुविधाएं दुनिया में कहीं भी नहीं हैं।
अब यह हद हो गई! कैसे उनको भारत के बाहर जाने का अवसर बन गया, कैसे उनको टिकट मिल गया, कैसे उनको पासपोर्ट मिल गया! सब मिलता है। यहां जितनी सुविधा है, कहीं और नहीं।
जब मोरारजी देसाई सत्ता में थे, और वे हर तरह से उपद्रव करने की कोशिश
कर रहे थे कि मेरे लिए हर तरह से कठिनाइयां खड़ी कर दें--और वे जितनी कठिनाइयां खड़ी कर सकते थे, उन्होंने कीं--तो मैंने कुछ मित्रों को उनके मुल्कों में उनकी सरकारों से पूछताछ करने को कहा था।
जर्मनी से तो साफ खबर आ गई कि जर्मनी मुझे लेने को राजी नहीं होगा, क्योंकि जर्मनी का प्रोटेस्टेंट चर्च मेरे प्रवेश पर भारी हंगामा मचाएगा। मेरे खिलाफ किताबें छापी गई हैं। मेरे खिलाफ हर चर्च में सूचनाएं भेजी गई हैं कि मैंने जीसस के संबंध में जो कहा है, उसमें से कुछ उद्धरण न दिया जाए। मेरे नाम का उल्लेख चर्चों में न किया जाए। इसलिए जर्मनी से खबर आई कि मुझे जगह नहीं मिल सकती।
नेपाल के मित्रों ने कहा कि हम कोशिश कर लेते हैं। लेकिन खबर अंततः आई
कि नेपाल की सरकार भी भारत की सरकार को नाराज नहीं कर सकती। भारत की सरकार के विपरीत मुझे नेपाल भी जगह नहीं दे सकता।
और चीन तो मुझे जगह कैसे देगा! मेरी किताब प्रवेश नहीं हो सकती! और रूस
तो मुझे कैसे जगह देगा! मेरी किताबें अनुवादित हो गई हैं, लेकिन छप नहीं सकतीं!
जहां मेरी किताबें अनुवादित होकर छपी हैं, उनमें से भी कोई मुल्क की सरकार हिम्मत नहीं जुटा सकती कि मुझे अपने भीतर ले ले। कोई मुसलमान देश तो मुझे ले नहीं सकता। क्योंकि जब हिंदू इतने अनुदार हो जाएं कि छुरा फेंकने लगें, तो फिर मुसलमानों का क्या कहना! वे तो आखिरी दर्जे के अनुदार हैं। उनका तो कोई मुकाबला ही नहीं है। वे तो इतनी देर-दार ही नहीं करेंगे।
अब तुम क्या सोचते हो मैं ईरान में एक दिन भी जिंदा रह सकता हूं? अयातुल्ला खोमैनी मुझे एक दिन जिंदा रहने देंगे? असंभव।
कोई मुसलमान देश मुझे ले नहीं सकता। कोई ईसाई देश मुझे ले नहीं सकता।
क्योंकि ईसाइयत बेचैन है, बहुत बेचैन है, क्योंकि मैंने जितने लोग संन्यासी बनाए हैं, उनमें से अधिक तो ईसाई हैं। इसलिए ईसाई मुझसे सबसे ज्यादा नाराज हैं। सच तो यह है कि हिंदुओं को मुझसे बहुत नाराज नहीं होना चाहिए। मैं बहुत थोड़े से ही हिंदुओं को बिगाड़ने में सफल हो पाया हूं। ईसाइयों की बड़ी संख्या मैंने बिगाड़ी है। और बड़ी संख्या बिगाडूंगा, क्योंकि ईसाई जितने सुशिक्षित हैं और जितने बुद्धिमान हैं और जितनी उनमें प्रतिभा है, उतनी किसी और में नहीं है। इसलिए मेरी बात जितनी उनको जम सकती है, उतनी किसी और को नहीं जम सकती।
इजरायल तो मुझे एक क्षण के लिए बरदाश्त नहीं कर सकता, क्योंकि ईसाइयों के बाद नंबर दो पर यहूदी हैं। यहां बड़ी संख्या में यहूदी हैं। तुम यह जान कर हैरान होओगे कि हिंदुस्तान में इतनी बड़ी संख्या में यहूदी तुम्हें एक जगह कहीं नहीं मिलेंगे। यह अकेली जगह है जहां सैकड़ों यहूदी

हैं। इसलिए इजरायल नाराज है, बहुत नाराज है। क्योंकि यहूदियों को जीसस भी नहीं बिगाड़ पाए। नाराजगी स्वाभाविक है। अगर मैं इजरायल में होऊं तो फिर से सूली लगनी स्वाभाविक है। फिर से सूली लगेगी।
कुछ बात मेरी यहूदियों से बनती है, क्योंकि यहूदियों के पास प्रतिभा
तो है, प्रखर प्रतिभा है। और यहूदियों के धर्म ने कुछ बातें उन्हें दी हैं, जो बातें किसी धर्म ने नहीं दीं। और इसलिए मेरी बात का कुछ तालमेल उनके हृदय से एकदम बैठ जाता है। एक तो यहूदी इसलिए मेरी बात में तत्क्षण उत्सुक हो जाते हैं कि मैं कह रहा हूं कि मैं एक ऐसी धार्मिकता चाहता हूं दुनिया में, जो धर्मों से मुक्त हो। यहूदियों ने यहूदी धर्म के कारण बहुत तकलीफ झेल ली, बहुत तकलीफ झेल ली।
मैंने सुना है, एक बूढ़ा यहूदी तीस वर्ष तक प्रार्थना करता रहा रोज सिनागॉग में जाकर। आखिर ईश्वर भी थक गया होगा। ईश्वर ने एक दिन कहा कि भई, आखिर तुझे क्या कहना है, कह ही दे। क्या चाहता है? तीस साल तू सतत प्रार्थना में लगा है। तू बोल ही दे क्या चाहता है!
उसने कहा कि भई, मुझे एक बात पूछनी है। हम आपके चुने हुए लोग हैं-- यहूदी?
ईश्वर ने कहा, इसमें क्या शक है!
तो उसने कहा, अब आप कृपा करो, किसी और को चुनो। तुम्हारे चुनने के कारण
आज ढाई हजार वर्षों से हम इस तरह सताए जा रहे हैं। तुमने किसी और को क्यों न चुना? तुम्हें कोई और न मिला? हम गरीब यहूदियों को पकड़ लिया, हमको चुन लिया!
यहूदियों की यह धारणा है कि वे ईश्वर के चुने हुए लोग हैं। और इसी धारणा ने उनको कष्ट में डाला है। यहूदी ईसाई नहीं हो सकते। इस कारण ईसाई नहीं हो सकते कि जीसस ने यहूदियों की सारी मान्यताओं का विरोध किया। और इस कारण भी नहीं हो सकते ईसाई कि ईसाइयों ने यहूदियों को दो हजार साल तक इस बुरी तरह सताया है कि अब क्या ईसाई होना, किस वजह से ईसाई होना! और यहूदी कोई दूसरा धर्म भी अंगीकार नहीं कर सकते। क्योंकि यहूदियों की मूल मान्यता त्यागवादी नहीं है। वे मानते हैं जीवन में, जीवन के स्वीकार में। यहूदी धर्म तपश्चर्या और त्याग में भरोसा नहीं करता। जीवन का रस और जीवन की स्वीकृति और जीवन का अंगीकार और जीवन का अहोभाव। यह सब उन्हें मेरे विचारों में मिल जाता है। मैं जीवन के अहोभाव को स्वीकार करता हूं।
फिर मैं न ईसाई हूं, न हिंदू हूं, न मुसलमान हूं--मैं कोई धर्म में मानता नहीं, धार्मिकता में मानता हूं। इसलिए बड़े यहूदियों का वर्ग मेरी तरफ आकर्षित हुआ है। सारी दुनिया से यहूदी यात्रा करके मेरे पास पहुंचे हैं।
इजरायल मुझ पर नाराज है--स्वभावतः। जिस बुरी तरह मैं यहूदियों को भ्रष्ट कर रहा हूं, पिछले दो हजार सालों में कोई आदमी नहीं कर पाया। उनके गढ़ को तोड़े डाल रहा हूं।
यहूदी मुझे ले नहीं सकते। इजरायल मुझे स्वीकार करेगा नहीं। ईसाई मुझे स्वीकार कर नहीं सकते। कम्युनिस्ट मुझे स्वीकार कर नहीं सकते। मैं जहां भी रहूंगा, वहां अड़चन स्वाभाविक है। मैंने कुछ अनायास ही, आकस्मिक रूप से भारत में रहना तय नहीं किया--यही स्थल सर्वाधिक सुगमतापूर्ण मालूम पड़ता है।
इसलिए कैलाश गोस्वामी, इस चिंता में न पड़ो कि भगवान, ऐसे मुर्दा देश में क्या आपका रहना उचित है?
फिर मुर्दा जहां हों, वहीं तो जरूरत है कि कोई मुर्दों को जगाने वाला हो। जहां बीमार हों, वहीं तो चिकित्सक की आवश्यकता है। जहां बीमारी हो, वहां उपचार चाहिए।
और यह देश सच में मुर्दा है। और बहुत दिन से मुर्दा है। और इस देश के भीतर बड़ी प्रतिभा छिपी पड़ी है। क्योंकि जो देश बुद्ध को पैदा कर सका, कृष्ण को पैदा कर सका, महावीर को पैदा कर सका, कबीर को, नानक को पैदा कर सका, फरीद को पैदा कर सका--उस देश के पास आग छिपी है, मगर राख में दब गई है। और राख पांच हजार साल पुरानी है। उस राख को अगर हम हटाने में समर्थ हो सकें, तो अंगारा फिर चमक सकता है।

और यह भी ध्यान रहे कि हमने पांच हजार सालों से अपनी प्रतिभा का कोई उपयोग नहीं किया है, इसका एक लाभ हो सकता है। ऐसे ही जैसे अगर जमीन को बहुत दिन तक बिना खेती-बाड़ी के छोड़ दिया जाए, तो जमीन में बहुत से खनिज इकट्ठे हो जाते हैं। अगर दस-पंद्रह साल तक जमीन में कोई खेती न की जाए और फिर खेती की जाए, तो जो पैदावार होगी उसके कहने क्या! ठीक वैसी हालत भारत की प्रतिभा की है। जहां दूसरे देशों ने तो अपनी प्रतिभा का उपयोग कर लिया है, भारत की प्रतिभा बिना उपयोग की पड़ी है, राख में दबी पड़ी है। हीरे कचरे में पड़े हैं। कचरे को हटाना है, राख को झड़ाना है और भारत से ऐसी प्रतिभा का आविर्भाव हो सकता है कि सारे जगत को उससे रोशनी मिले।
इसलिए भारत की संभावना बहुत है। भारत का भविष्य महत्वपूर्ण है। लेकिन किसी न किसी को तो हिम्मत करनी पड़ेगी और किसी न किसी को तो हाथ जलाने की तैयारी दिखानी होगी। जब तुम राख झड़ाओगे अंगारे से, तो हाथ जलेंगे। और यहां के साधु-महात्मा तो छाछ भी फूंक-फूंक कर पी रहे हैं। वे दूध के जले हैं, वे छाछ भी फूंक-फूंक कर पी रहे हैं।
मैं चाहता हूं एक ऐसी आग मेरे संन्यासियों से पैदा हो, जो इस देश की सोई हुई मुर्दा प्रतिभा को पुनरुज्जीवित कर दे। तो शायद हम सारी पृथ्वी को रोशनी देने में समर्थ हो सकते हैं। फिर सौभाग्य का उदय हो सकता है। फिर सूर्योदय हो सकता है।

आखिरी प्रश्नः ओशो! मैं एक ज्योतिषी हूं, किंतु आपके विचार सुन कर ऐसा लगता है कि यह गलत और धोखे का धंधा छोड़ दूं। आपका आशीष चाहिए।

पंडित कृष्णदास शास्त्री! भैया, जल्दी न करना। धंधा तो धोखे का है और झूठा है, मगर छोड़ कर फिर क्या करोगे? बाल-बच्चे होंगे, पत्नी होगी, परिवार होगा। यूं तो सभी धोखा है और सभी झूठ है। कुछ और करोगे। और अगर जीवन भर के अभ्यासी हो झूठ के, तो जो भी करोगे वह भी झूठ ही होगा। अभ्यास जल्दी नहीं जाते।
फिर ज्योतिषी का धंधा यूं प्रतिष्ठित धंधा है। क्यों झंझट में पड़ते हो? नाटक है, करते रहो। बस नाटक समझो। मैं किसी को भी कुछ छोड़ने को नहीं कहता हूं। तुम जो भी कर रहे हो, उसे अभिनय की तरह करो। और ज्योतिषी का धंधा तो इस समय खूब चमक रहा है। दिल्ली जा बसो भैया, कहां की बातों में पड़े हो! बनाते वर्ष-फल और राशि-फल संपादकों का हम
किसी अखबार में खुलता हमारे नाम से कालम
कभी अफसर, कभी बाबू, कभी व्यापारियों के घर
हमारे चरण-कमलों में झुके होते सभी के सरन
फिर यों जिंदगी का बोझ गदहों की तरह ढोते
अगर हम ज्योतिषी होते
सफल फिल्मों के अभिनेता हमारे साथ में होते हमारे देश के नेता हमारे हाथ में होते हमारा पर्स भी सौ-सौ के नोटों से भरा होता महानगरों के उत्तम होटलों में बिस्तरा होता न टूटी खाट पर बच्चों सहित फिर इस तरह सोते अगर हम ज्योतिषी होते
हमारे भाषणों के अंश भी अखबार में छपते हमारे नाम की माला सभी वी.आई.पी. जपते हमारे नाम के चर्चे भी हिंदुस्तान में होते कभी लंदन, कभी पेरिस, कभी जापान में होते
किसी कोने में अपना सर छुपा कर हम नहीं रोते अगर हम ज्योतिषी होते
हमारे सामने होतीं न कोई भी समस्याएं
हमें भोजन खिला, नहला रही होतीं सुकन्याएं सुरक्षित सेफ में होतीं असीमित स्वर्ण मुद्राएं चहकतीं आश्रम में बुलबुलों की भांति शिष्याएं लगाते साथ उनके हम भी स्विमिंग पूल में गोते

अगर हम ज्योतिषी होते
हमारे भक्त गण होते सभी शहरों में गांवों में हमारा नाम भी चर्चित हुआ करता चुनावों में हमारे साथ भी यारो हजारों सिर-फिरे होते
जहां जाते वहीं पर पत्रकारों से घिरे होते स्वदेशी सैकड़ों नेता हमारे भी चरण धोते
अगर हम ज्योतिषी होते
चला कर चक्र तंत्रों का कुबेरों को फंसाते हम
बता कर भाग्य लिपि उनकी उन्हें बुद्धू बनाते हम
किसी के शुक्र के घर में कभी शनि को घुसा देते
किसी के चंद्रमा पर राहु या केतु बिठा देते
अगर हम ज्योतिषी होते
जो ज्योतिषी नहीं हैं, वे बेचारे प्रार्थना करते हैं परमात्मा से कि
हे प्रभु, ज्योतिषी बना दो। और पंडित कृष्णदास शास्त्री, तुम ज्योतिषी होकर मेरी बातों में न आ जाना। डटे रहो। जमे रहो। बस इतना ही ख्याल रहे कि सब खेल है, सब अभिनय है। गंभीरता से न लो। गंभीरता से लेने से उपद्रव खड़ा होता है।
ज्योतिष में कुछ खराबी नहीं है, और हजार तरह की बेईमानियां चल रही हैं। लेकिन अगर तुम जान कर कर रहे हो, होशपूर्वक कर रहे हो, तो जो दूसरों को लूट रहे हैं उनको लूटने में क्या हर्जा है! गरीबों को कृपा करना, उनके हाथ वगैरह मत देखना, उनकी जन्म-कुंडली न बिठाना और बिठाओ तो मुफ्त बिठा देना। अमीरों से दिल खोल कर लेना। राजनेताओं को जितना खींच सको खींचना; रस निचोड़ लेना; छोड़ना ही मत जो फंस जाए तुम्हारे चक्कर में, निचोड़ ही लेना। तुम्हारे हाथ में अच्छी कला है। यहां-वहां न भटको। गांव-देहातों में क्या रखा है, दिल्ली में बसो। सब ज्योतिषी दिल्ली में बस गए हैं। ऐसा कोई राजनेता नहीं है जिसका ज्योतिषी न हो। और अगर होशियार हो, तो ज्योतिष का खेल ऐसा है कि उसमें कभी नुकसान होता ही नहीं। धंधा बड़ा अच्छा है। ज्योतिषी बात इस तरह की करता है कि उसमें कभी फंसने का मौका ही नहीं आता। अगर तुम्हें गुर न आते हों, तो मुझसे एकांत में मिल लो, मैं तुम्हें कुछ गुर समझा दूं। जैसे कुछ गुर तो हरेक व्यक्ति जानता है। जैसे हर आदमी का हाथ देखो और कहो कि धन आता है, लेकिन टिकता नहीं। किसके हाथ में टिका? धन टिक जाए, तो वह धन ही नहीं। धन तो आता ही जाता है। इसलिए तो अंग्रेजी में उसको करेंसी कहते हैं। करेंसी मतलबः जो आए और जाए, चलती-फिरती रहे। धन चंचल है। जिससे मिलो उससे ही कहो कि जितनी तुम्हारी योग्यता है, उसके योग्य अभी संसार ने तुम्हें स्वीकार नहीं किया। सभी की योग्यता हमेशा ज्यादा होती है। कौन मानता है कि मेरी योग्यता को कोई स्वीकार करता है? मुल्ला नसरुद्दीन दिखा रहा था हाथ अपने एक ज्योतिषी को। चवन्नी छाप ज्योतिषी। ज्योतिषी ने कहा कि बेटा, खुश हो जा! बड़ी ससुराल मिलने वाली है। धन वाली ससुराल। एकमात्र बेटी है। उसके साथ ही बहुत धन भी दहेज में मिलने वाला है।
मुल्ला ने कहा, गजब कर दिया! यह लो और चवन्नी, मगर एक बात और बताओ कि मेरी पत्नी और तीन बच्चों का क्या होगा?
इस तरह की बातें जरा सोच-समझ कर कहना। उनको हमेशा सशर्त कहना। उनको इस ढंग से कहना कि चाहो तो इधर मोड़ दो, चाहो तो उधर मोड़ दो। हमेशा दोहरी कहना। ज्योतिषी जो होशियार है, वह राजनीतिज्ञ की भाषा बोलता है। वह इस ढंग से बोलता है कि उसके कुछ भी अर्थ हो सकते हैं। जब जैसी जरूरत पड़े वैसे अर्थ। एक ज्योतिषी ने एक आदमी का हाथ देखा, चंदूलाल का, और चंदूलाल से कहा, तुम्हारा विवाह हो रहा है। चंदूलाल ने कहा, बिल्कुल ठीक।
सारे गांव को खबर थी। अब कोई विवाह ऐसी चीज थोड़े ही है कि छिप कर होती है। अरे छिप कर ही करना हो, तो विवाह करना होता है? विवाह तो खुलेआम होता है। बैंड-बाजे बज रहे थे। सारे गांव में निमंत्रण-पत्र बांटे गए थे।
चंदूलाल सजे-बजे घूम रहे थे। कोई भी देख कर कह देता।
ज्योतिषी ने कहा, तुम्हारा विवाह हो रहा है, और यह तुम्हारे दुखों का अंत है।

पांच-सात दिन बाद चंदूलाल ने ज्योतिषी को एकदम पकड़ लिया रास्ते में। गर्दन दबाने लगा। कहा कि गर्दन दबा दूंगा तेरी। अठन्नी वापस कर! तूने तो कहा था दुखों का अंत हो रहा है और मैंने दुख इसके पहले कभी जाने ही नहीं थे! यह तो दुखों की शुरुआत हो गई। यह पत्नी क्या आई है, चौबीस घंटे नाक में दम किए हुए है। बिल्कुल मुर्गा बना दिया है मुझे। नाकों चने चबवा रही है। ज्योतिषी ने कहा, गला छोड़ भाई, पहले तू बात तो समझ। यह मैंने जरूर कहा
था कि तेरे दुखों का अंत आ गया है, लेकिन कौन सा अंत आ गया--इधर वाला या उधर वाला, यह मैंने कहा नहीं था। अंत तो दो होते हैं न! हर चीज के दो छोर होते हैं, दो अंत होते हैं। तो कौन सा अंत आ गया, यह मैंने कुछ कहा ही नहीं था। तूने पूछा भी नहीं, मैंने कहा भी नहीं। अठन्नी में तू सभी कुछ जान लेना चाहता था! अगर तू और अठन्नी देता तो मैं बता देता--कौन सा अंत आ गया है। ज्योतिषी हमेशा दोहरी बात बोलता है; कूटनीति की बात बोलता है; होशियारी की बात बोलता है। उसके कुछ भी अर्थ हो सकते हैं।
एक बार एक शहजादा घूमता हुआ एक छोटे से गांव में पहुंचा। तभी सामने से आता हुआ गांव का ज्योतिषी दिखाई दिया, जिसकी शक्ल शहजादे से हूबहू मिल रही थी। उसे छेड़ने के ढंग से शहजादे ने पूछा, क्यों मियां, क्या तुम्हारी मां हमारे महलों में काम करती थी कभी? ज्योतिषी बोला, नहीं-नहीं श्रीमान, पर मेरे पिता अवश्य बहुत वर्षों तक शाही हरम में द्वारपाल रह चुके हैं। ज्योतिषी जानता है कि कैसे बात को बदल देना, कैसे बात के रुख को बदल देना। और जिंदगी में हर चीज जुड़ी हुई है, इसलिए तुम एक बात कहो तो ख्याल रखना, वह और बातों से जुड़ी हुई है, उनको भी ध्यान में रख कर कहना।
सफल ज्योतिषी वही हैं जो बहुत सी बातों को ख्याल में रख कर चलते हैं,
जो जीवन के अंतर्संबंध को ख्याल में रख कर चलते हैं, जो एक ही बात को इकहरा नहीं कह देते। बातें एटामिक नहीं हैं, अणुओं की तरह अलग-अलग नहीं हैं, उनकीशृंखलाएं हैं, उन सबके भीतर सूत्र बंधे हुए हैं। जैसे अगर वे कहेंगे किसी नेता को, तो कहेंगे जीत तो अवश्य होगी, मगर एक ही बाधा पड़ रही है। उतना बचा लेंगे, ताकि अगर जीत न हो तो वे बाधा को बड़ा करके बता सकें, कि हमने पहले ही कहा था कि एक बाधा पड़ रही है।
एक दिन नसरुद्दीन घबड़ाया हुआ सा अपने निजी डाक्टर के पास पहुंचा और उससे बोला कि डाक्टर साहब, मेरे नौजवान बेटे ने, जिसे कि छूत की बीमारी है, मेरी नौजवान नौकरानी को चूम लिया है और वह कहता है कि मैं तो उसे अक्सर चूमा करता हूं।
डाक्टर बोला, तो आखिर इसमें इतना परेशान होने की क्या बात है? नसरुद्दीन, आखिर वह अभी युवा ही है। फिर छोकरे छोकरे हैं, लड़के लड़के हैं। और नौकरानी को ही चूमा है न, तो इसमें इतना क्यों घबड़ाते हो?
नसरुद्दीन बोला, पर डाक्टर साहब, आप समझने की कोशिश कीजिए, क्योंकि मैं भी उस नौकरानी को अक्सर चूमा करता हूं। क्या वह छूत का रोग मुझे नहीं लग सकता?
डाक्टर बोला, घबड़ाओ मत बड़े मियां, नौकरानियां आखिर चूमने के लिए ही तो रखी जाती हैं। और छूत की बीमारी भी कोई बीमारी है! और यदि तुम्हें कोई लग भी जाए, तो उसका आखिर इलाज है। मैं किसलिए हूं?
नसरुद्दीन बोला, पर डाक्टर साहब, बात यहीं खत्म नहीं होती। नौकरानी
को चूमने के बाद मैं कई बार अपनी पत्नी को भी चूम चुका हूं।
अब डाक्टर ने घबड़ाते हुए कहा, ऐं, तो क्या यह वाहियात रोग मुझे भी लग गया!
जिंदगी बड़ी जुड़ी है। इधर एक चीज से दूसरी चीज जुड़ी है। होशियार ज्योतिषी वही है, पंडित कृष्णदास, जो सारे जोड़ों का हिसाब रख कर चलता है। और इस तरह की बातें बोलता है कि जिसमें सारे जोड़ों का हिसाब आ जाए, कि कभी इधर भी हो जाए बात, उधर भी हो जाए बात, तो चित भी उसकी, पट भी उसकी।
मैं नहीं कहूंगा कि तुम छोड़ो ज्योतिषी का काम। और इतने जल्दी डगमगा जाओ, यह शोभा नहीं देता। मेरी बातें कई लोग सुनते हैं, कई शास्त्री यहां आते हैं, मगर बिल्कुल अडिग रहते हैं, बिल्कुल पत्थर की तरह, हिलते ही नहीं। सुनते ही नहीं, हिलने का सवाल कहां! तुम भी बड़े सरल आदमी मालूम होते हो।
असल में ज्योतिषी होने योग्य नहीं। इतने सरल आदमी, इतने जल्दी राजी हो

जाएं; ज्योतिषी होने योग्य नहीं। इसके लिए तो बड़ी चालबाजी चाहिए। चार सौ बीस होना चाहिए। अगर यह चार सौ बीसी तुममें न हो, तो फिर भैया छोड़ ही दो।
क्योंकि उसमें फिर सार हाथ लगेगा नहीं। उसमें जगह-जगह कुटोगे-पिटोगे, उलटा-सीधा बोलोगे, कुछ का कुछ निकल जाएगा, झंझट में पड़ोगे।
और ऐसा लगता है कि सरल आदमी हो। तुम कहते होः "मैं एक ज्योतिषी हूं, किंतु आपके विचार सुन कर ऐसा लगता है कि यह गलत और धोखे का धंधा छोड़ दूं। आपका आशीष चाहिए।"
मैं तो आशीष दे दूं। आशीष में न तो हल्दी लगती है, न फिटकरी। तुम अपनी सोच लो। और धंधा न चल रहा हो, तो बात अलग, छोड़ ही दो फिर। ऐसा ही लगता है कि धंधा चल भी नहीं रहा। यह तो बहुत काइयों का काम है, यह धंधा ऐसा गलत धंधा है। यह धंधा अच्छा धंधा नहीं है। अच्छे आदमी इसको कर नहीं सकते। बहुत चालबाज, बहुत शैतान प्रकृति के आदमी ही यह काम कर सकते हैं। तुम सीधे-सादे आदमी मालूम पड़ते हो।
अगर तुम्हें बात जम ही गई हो, तो मेरा आशीष है, छोड़ दो। मगर इसके पहले सोच-विचार कर लेना। मुझे दोषी मत ठहराना। मैं किसी का दोष अपने ऊपर नहीं लेता। मैं किसी के लिए उत्तरदायी नहीं हूं। मेरे साथ चलने वाला प्रत्येक व्यक्ति अपने लिए स्वयं उत्तरदायी है। क्योंकि तुम्हारा उत्तरदायित्व जब तुम्हारा होता है, तभी तुम स्वतंत्र होते हो। और मेरी यही सबसे महत्वपूर्ण घोषणा है कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी निजता में जीए, अपनी स्वतंत्रता में जीए। तुम्हें दिखाई पड़ता हो कि व्यर्थ है, छोड़ दो। मेरी बात समझ कर मत छोड़ देना, नहीं तो कल मुझे दोषी ठहराओ। तुम्हें ही दिखाई पड़ने लगा हो, तो फिर ठीक है। मेरा आशीष तुम्हारे साथ है।
आज इतना ही।

पिय को खोजन मैं चली
चौथा प्रवचन

जीवन का सार-सूत्र: ध्यान

पहला प्रश्नः ओशो! आप मेरी सुहागरातों के मालिक हैं। मुझे कभी वैधव्य
का दुख देना ही नहीं। बस इतनी ही चाह है--जीओ हजारों साल!

चंद्रकांत भारती! उसका ही अनजाने वे लोग आयोजन कर रहे हैं, जो मुझे मार डालना चाहते हैं। हजारों साल जीने का वह सुगमतम उपाय है। न चढ़ाया होता जीसस को सूली पर, न तुम जीसस को याद रख सकते। न पिलाया होता जहर सुकरात को, सुकरात कभी का भूल चुका होता।
मरते समय सुकरात के एक शिष्य क्रेटो ने पूछा, गुरुदेव, यह तो बता दें जाते समय कि आप अपना अंतिम संस्कार किस विधि से करवाना चाहेंगे--पूर्वीय विधि से? सुकरात निश्चित ही पूर्वीय रहस्यवाद में उत्सुक था। क्या आप पसंद करेंगे अग्नि से संस्कार हो? आपकी देह अग्नि में तिरोहित हो जाए? या आप पश्चिम की विधि को पसंद करेंगे कि आपकी देह को जमीन में गड़ा दिया जाए? सुकरात जहर पी चुका था, जहर का असर होना शुरू हो चुका था, फिर भी उसने आंख खोलीं, लड़खड़ाती जबान से जवाब दिया, क्रेटो, तू भी पागल है। वे जो मुझे जहर पिला रहे हैं, सोचते हैं मुझे मार रहे हैं। वे सोचते हैं कि मेरे दुश्मन हैं। तू सोचता है कि मेरा मित्र है। दुश्मन सोच रहे हैं--कैसे मारें! मित्र सोच रहे हैं--कैसे गड़ाएं! न वे मुझे मार पाएंगे, न तुम मुझे गड़ा पाओगे। जब उन्हें भी लोग भूल जाएंगे और तुम्हें भी लोग भूल जाएंगे, तब भी मैं जीवित रहूंगा। अगर उनका नाम और तुम्हारा नाम याद भी रहा, तो मेरे कारण याद रहेगा।
सच ही है यह बात। आज क्रेटो का कौन नाम याद रखता? आज पच्चीस सौ साल बाद, इस सुबह, क्रेटो के नाम की याददाश्त का कोई भी तो कारण नहीं था। क्रेटो के जीवन में कुछ और तो था ही नहीं।
पांटियस पायलट ने, जिसने जीसस को सूली की आज्ञा दी, कौन याद रखता उस छोटे-मोटे गवर्नर जनरल को? कितने गवर्नर जनरल हुए हैं दुनिया में! वह रोमन गवर्नर जनरल था जेरुसलम में। उसके पहले भी बहुत गवर्नर जनरल हुए, उसके बाद भी बहुत हुए। किसी और का नाम याद भी नहीं। सिर्फ पांटियस पायलट का नाम याद है। छोटे-छोटे बच्चों को भी याद है।
एक स्कूल में, चित्रकला की कक्षा में अध्यापक ने कहा, बच्चो, तुम्हें मैंने जीसस की कहानी सुनाई है, यूं भी तुम रविवार को धर्मगुरु से जीसस की कहानी बहुत बार सुन चुके हो। तुम सभी जीसस का चित्र बनाने की कोशिश करो। एक बच्चे ने बहुत अनूठा चित्र बनाया। उसने हवाई जहाज बनाया, जिसमें चार खिड़कियां हैं। चारों खिड़कियों से चार लोगों के चेहरे दिखाई पड़ते हैं। शिक्षक ने पूछा, यह क्या है? मैं कुछ समझा नहीं। कहा था जीसस के संबंध में चित्र बनाओ।
उसने कहा, जीसस के संबंध में ही चित्र है। आपने ही तो कहानी सुनाई थी
कि ईश्वर के तीन रूप हैं। ईश्वर पिता--गॉड दि फादर। यह जो बूढ़ा आदमी पहली खिड़की में से झांक रहा है, यह ईश्वर है। और दूसरा आदमी आपने ही कहा था होली घोस्ट--पवित्र आत्मा। यह दूसरी खिड़की से जो झांक रहा है आदमी यह पवित्र आत्मा है। और आपने ही कहा था कि जीसस ईश्वर के इकलौते बेटे हैं। तीसरी खिड़की से जो झांक रहा है, वह वही इकलौता बेटा है--जीसस।
शिक्षक ने कहा, यह भी समझ में आ गया, मगर यह चौथा आदमी कौन है?
उस बच्चे ने कहा, यह आप भी समझ सकते हैं। यह है पांटियस दि पायलट।
छोटा बच्चा, उसने समझा कि पांटियस पायलट और कौन होगा! पायलट तो कहते हैं हवाई जहाज चलाने वाले को, तो यह हवाई जहाज को चलाने वाला पांटियस पायलट! छोटे बच्चों को भी याद है। कारण? कारण है जीसस को लगी सूली।
जो मुझे मारने का आयोजन कर रहे हैं, सफल हों या असफल, एक परिणाम उसका जरूर होगा, उनकी सारी चेष्टाओं का यह परिणाम होना ही है कि वे मुझे हजारों साल के लिए जिंदा कर जाएंगे। जो मुझे मारने के लिए आयोजन कर रहे हैं, उनसे

जरा भी चिंता न लेना; उनके कारण, जो मुझे प्रेम करते हैं, वे और भी मेरे निकट आ जाएंगे। जिन्होंने मुझे चाहा है, वे और परिपूर्ण हृदय से चाह सकेंगे। उनके-मेरे बीच अगर कोई भी थोड़ी-बहुत दूरी रह गई होगी, वह भी मिट जाएगी। वे मुझे नहीं मार पाएंगे, मेरे और मेरे प्रियजनों के बीच की दूरी को मार डालेंगे।
जीवन का गणित बड़ा अजीब है। चंद्रकांत, जीवन के इस गणित को कभी मत भूलना। ऊपर से कुछ और दिखाई पड़ता है, भीतर परिणाम कुछ और होते हैं। अब मुझ पर यह फेंका गया छुरा, सारी दुनिया में लाखों लोगों को मेरे प्रति एक अपूर्व प्रेम से भर गया। कितने तार आए हैं, कितने पत्र आए हैं--उन्हें उत्तर भी देना मुश्किल है--कितने फोन आए हैं, कितने लोगों ने लिखा है कि हम आपकी जगह मरने को तैयार हैं! उन्होंने कभी सोचा भी न होगा ऐसा। मगर यह छुरा काम कर गया। इसने मेरे बीच और अनेक लोगों के बीच के फासले गिरा दिए।
सत्य के साथ एक अदभुत बात है, उसे हानि पहुंचाई ही नहीं जा सकती। तुम हानि पहुंचाओ, तो भी लाभ ही पहुंचाते हो। असत्य को लाभ नहीं पहुंचाया जा सकता; तुम लाभ भी पहुंचाओ, तो भी हानि ही पहुंचाते हो। सत्य को मिटा डालने का कोई उपाय न कभी था, न है, न होगा। असत्य को छिपा लेने का, बचा लेने का न कभी कोई उपाय था, न है, न होगा। असत्य किसी न किसी तरह से प्रकट हो जाएगा कि असत्य है। और सत्य, हजार दबाओ तो भी उभर आएगा, हजार रूपों में उभरेगा, इधर दबाओगे तो उधर उभरेगा, एक जगह दबाओगे तो हजार जगह उभरेगा।
इसलिए ऊपर से जैसा दिखाई पड़ता है, वैसा ही नहीं है। उतने से चिंता नहीं लेना। प्रेम मरता ही नहीं। इतने लोगों ने मुझे चाहा है कि प्रेम कैसे मर सकता है। और सब मर जाता है, प्रेम नहीं मरता।
तुम कहते होः "आप मेरी सुहागरातों के मालिक हैं। मुझे कभी वैधव्य का दुख देना ही नहीं।"
मैं देना भी चाहूं तो नहीं दे सकता, असंभव है। यह नाता शाश्वत है। मेरे और तुम्हारे बीच जो घट रहा है, वह समय के पार है। मेरे और तुम्हारे बीच जो घट रहा है, वह मेरे और तुम्हारे शरीर के बीच नहीं घट रहा है, मेरी और तुम्हारी आत्मा के बीच घट रहा है। यह प्रेम सगाई है। यह कोई साधारण सुहागरात नहीं है। तुम्हारी चाह पूरी हो रही है। तुम्हारी चाह पूरी होगी।

दूसरा प्रश्नः ओशो! मैं नौ वर्षों से आर्यसमाज में पुरोहित था। पांच वर्षों से आपके संपर्क में हूं। पुरोहित की मौत हो गई है। मैं पांच जून को संन्यास लेकर जा रहा हूं। मैं आर्यसमाज से घूमने के बहाने पच्चीस दिन की छुट्टी लेकर यहां आया था। अब मैं माला लेकर दस जून को जाऊंगा। वे लोग मेरे गले में माला पड़ी देखेंगे, मेरे दुश्मन हो जाएंगे, मुझे धक्के देकर वहां से निकाल देंगे। मैंने पहले ही निकलने की तैयारी कर ली है। ऐसी अवस्था में मैं क्या करूं?

कैलाश! यह सौभाग्य है कि तुम पुरोहित को मर जाने दिए; बड़ी मुश्किल होती है, बड़ी कठिनाई होती है। और आर्यसमाजी पुरोहित और सभी पुरोहितों से ज्यादा जड़बुद्धि होता है, ज्यादा कट्टरपंथी होता है, ज्यादा अंधा होता है।
दूसरे धर्मों में तो शायद कभी प्रथमतः कोई ज्योति भी थी, यह आर्यसमाज
तो धर्म ही नहीं है; इसमें तो ज्योति कभी रही ही नहीं। दयानंद को कभी सत्य का साक्षात्कार हुआ ही नहीं। दयानंद महापंडित थे, इसमें कोई शक-शुबहा नहीं। इस देश ने बहुत थोड़े से ऐसे पंडित पैदा किए। दयानंद की गिनती महापंडितों में की जानी चाहिए। कुशल थे, मेधावी थे, प्रतिभाशाली थे, मगर पंडित ही थे--प्रज्ञावान नहीं, कोई बुद्धपुरुष नहीं।
बौद्ध धर्म में कितना ही सब मर गया हो और कितनी ही राख के हिमालय इकट्ठे हो गए हों, तो भी कहीं दूर दबी बुद्ध की जीवंत चिनगारी है। पारसी कितने ही दूर चले गए हों और कितने ही जंगलों में भटक गए हों, लेकिन उनकी भटकन में भी कहीं जरथुस्त्र के स्वर हैं; कहीं कोई दबी हुई आवाज, जो उकसाई जा सकती है। राख झड़ाई जा सकती है बौद्ध की और उसके भीतर बुद्ध को जगाया जा

सकता है। पारसी को उसकी भटकन से जगाया जा सकता है, सपनों में खो गया होगा, उसके भीतर जरथुस्त्र की हंसी फिर गूंज सकती है।
जरथुस्त्र की यह कहानी मुझे बार-बार कह कर भी कहने का मन होता है कि जरथुस्त्र पृथ्वी पर अकेला आदमी है, एकमात्र घटना है, ऐसा न कोई दूसरा व्यक्ति हुआ और शायद कभी होगा भी नहीं। शायद यह घटना कभी घटी भी न हो, सिर्फ प्रतीक है, मगर जरथुस्त्र के संबंध में बड़ी सूचक है। और मुझे प्यारी है, क्योंकि मेरी जीवन-दृष्टि से मेल खाती है, तालमेल खाती है। जरथुस्त्र जब पैदा हुआ तो हंसता हुआ पैदा हुआ। बच्चे रोते हुए पैदा होते हैं। जरथुस्त्र ने जो पहला काम किया, वह था किलकारी मार कर हंसना। बात करीब-करीब असंभव लगती है। लेकिन जरथुस्त्र का पूरा जीवन हंसी का एक फव्वारा है, एक उत्सव है, एक तारों से भरी रात, एक फूलों से भरी बगिया।
इसलिए पारसी कितने ही दूर चला गया हो जरथुस्त्र से--और बहुत दूर चला गया, क्योंकि हजारों साल का फासला हो गया--लेकिन उसे खींचा जा सकता है। अगर .जरीन मुझमें उत्सुक हो गई है, तो मेरी आवाज में जरथुस्त्र की आवाज को सुन कर ही उत्सुक हुई है। मेरे भीतर उसे जरथुस्त्र दिखाई पड़ा है, तो उत्सुक हुई है।
ऐसी ही बात जैनों के संबंध में सच है। कितना ही शोरगुल मचाया हो उन्होंने--और बहुत शोरगुल मचाया है। पच्चीस सौ साल में जैनों ने जितनी दुकानें चलाई हैं, उतनी किसी ने चलाई नहीं। और दुकानें, और बाजार, और शोरगुल--महावीर से बिल्कुल उलटा सब कर डाला। कहां महावीर कहते हैं--धन का अपरिग्रह! और जितना धन का परिग्रही जैन होता है, उतना कोई भी नहीं। इस देश में तुम जैन भिखमंगे को नहीं पा सकते हो। है न चमत्कार! जैन इस देश में सर्वाधिक संपन्न जातियों में से एक हैं, सर्वाधिक सुशिक्षित भी। बहुत थोड़े से हैं, लेकिन चूंकि उनके पास धन है, इसलिए बहुत दिखाई पड़ते हैं। ज्यादा उनकी संख्या नहीं है, तीस-पैंतीस लाख। सत्तर करोड़ के देश में तीस-पैंतीस लाख की कोई संख्या होती है? दाल में भी नमक थोड़ा ज्यादा होता है। मगर फिर भी जैन दिखाई पड़ते हैं।
धन हो तो दिखाई पड़ने में अड़चन नहीं होती। हजार गरीब गुजर जाएं, दिखाई नहीं पड़ते; देखना ही कौन चाहता है! एक अमीर गुजरे, तो दिखाई पड़ जाता है, गिनती में आ जाता है। महावीर नग्न रहे और तुमने चमत्कार देखा कि जैन अधिकतर कपड़ों की दुकान करते हैं--कापड़ मार्केट उन्हीं का।
मेरे एक प्रियजन हैं, उनकी दुकान का नाम है--दिगंबर क्लाथ शॉप। मैंने उनसे पूछा कि भैया मेरे, दिगंबर का अर्थ जानते हो? दिगंबर का अर्थ होता है--नंगा आदमी, जिसके लिए आकाश ही वस्त्र है। दिगंबर का अर्थ होता है--इतना नंगा कि आकाश ही जिसका एकमात्र वस्त्र है। छप्पर को भी नहीं लेता बीच में, खुले आकाश! जमीन जिसकी चादर और आकाश जिसकी ओढ़नी--इन दो के बीच और कुछ नहीं मानता। तुम थोड़ी शर्म तो खाओ, मैंने उनसे कहा कि दिगंबर क्लाथ शॉप! दिगंबर क्लाथ शॉप का मतलब क्या हुआ? नंगों की कपड़ों की दुकान! नंगे कपड़े क्या करेंगे? और कपड़े ही नंगे खरीद लेंगे, तो फिर नंगे कैसे रहेंगे? तुम तो कपड़े छीनो यहां; कोई कपड़ा पहने मिले, एकदम छीन लिए।
उन्होंने कहा, आप क्या बातें करते हैं?
तो मैंने कहा, इसमें से काट दो कुछ एक--या तो दिगंबर हटा दो या क्लाथ शॉप हटा कर कुछ और... बाल्टियां बेचो, क्योंकि नंगों को भी पानी तो भरना ही पड़ेगा कुएं से। रस्सियां बेचो। कुछ ऐसा बेचो जो दिगंबर से मेल खाता हो।
न तो उन्होंने दिगंबर हटाया, न क्लाथ शॉप हटाई; एक ही काम किया, फिर मुझे दुकान पर बुलाना बंद कर दिया। मैं वहां से निकलूं भी तो वे जयरामजी भी करनी बंद कर दिए, इधर मुंह फेर लें। फिर भी मैं खड़ा रहूं। जब तक जयरामजी वे न करें, तब तक मैं हटूं ही नहीं। मैं कहूं कि कोई बात नहीं, मैं रुका हूं, मैं रुका रहूंगा जब तक जयरामजी नहीं करोगे।
लेकिन फिर भी, इतने दूर चले गए हों, बिल्कुल उलटे हो गए हों... कहां महावीर का आनंद और कहां जैन मुनियों की शक्लें! कहां महावीर का उत्सवपूर्ण व्यक्तित्व, कहां वे रसपूर्ण आंखें और कहां जैन मुनि का सूखा- साखा जीवन, जिसमें रस बहता ही नहीं, ठूंठ की तरह! अगर इस जमीन पर तुम्हें ठूंठ खोजने हों, जो जैन मुनियों से ज्यादा ठूंठ आदमी नहीं मिल सकते। उनमें

सूखी पत्तियां भी नहीं लगतीं, हरी पत्तियां तो बहुत दूर। पत्तियां लगती ही नहीं। उनकी जड़ें भी तिरोहित हो गई हैं। उनमें कोई रसधार नहीं बहती। फिर भी, अगर इस शोरगुल में भी कोई शांति से सुनने की कोशिश करे, तो महावीर के संगीत को पकड़ा जा सकता है। और ऐसा ही सच है हिंदुओं के संबंध में, मुसलमानों के संबंध में, ईसाइयों के संबंध में, यहूदियों के संबंध में। आर्यसमाज तो एक अनूठी घटना है। यह धर्म है ही नहीं। यह एक सामाजिक आंदोलन है। दयानंद में तो कोई सत्य जैसी बात नहीं है। हां, एक विवादी व्यक्तित्व था। इसलिए तुम अगर दयानंद की जो श्रेष्ठतम पुस्तक है, वह पढ़ोगे--सत्यार्थ प्रकाश--तो बड़े हैरान हो जाओगे। इतनी दुर्गंधयुक्त कोई पुस्तक दुनिया में नहीं है। गालियां ही गालियां हैं। सबको गालियां हैं। सारे धर्मों को गालियां हैं। बस, केवल वैदिक धर्म सही है, वेद सही हैं, और सब गलत है--बाइबिल गलत है, कुरान गलत है, तालमुद गलत है, जिन-सूत्र गलत है, धम्मपद गलत है--सब गलत है। कोई और तीर्थंकर, कोई और पैगंबर सही नहीं--सिर्फ वेद!
और किस तरह की तोड़-मरोड़ की है... क्योंकि वेदों में निन्यानबे प्रतिशत कचरा है। होगा ही, क्योंकि वेद कोई सिर्फ धर्मशास्त्र नहीं हैं, उस समय की सारी की सारी घटनाओं का संकलन है उनमें। वेद तो यूं है जैसे एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका। उसमें सभी कुछ है। उस समय का सारा संकलन है। इसलिए वेद संहिता है। उस समय जो कुछ भी उपलब्ध था ज्ञान--गलत, सही, सब इकट्ठा है। मगर उस सबको सही करने की कोशिश की जाती है। उस सबके भीतर से कुछ न कुछ निकालने की तरकीब जुड़ाई जाती है। जिसमें से कुछ भी नहीं निकलता, निकल सकता नहीं, उसमें भी बड़ी राज की बातें निकाली जाती हैं--जबरदस्ती! दयानंद ने दुनिया में सबसे बड़े मिथ्या धर्म को जन्म दिया। अगर उसमें
से राख हटाओ, तो राख ही राख मिलती है। मैंने सब राख हटा कर देखी है, इसलिए कह रहा हूं, यूं ही नहीं कह रहा हूं। क्योंकि अगर कुरान में मुझे खोजने पर महावीर, कृष्ण और बुद्ध जैसी ही वाणी मिल सकी मोहम्मद की, अगर मुझे कुरान में भी सत्य की कहीं न कहीं कोई झनकार मिल सकी, तो मुझे क्या एतराज होता आर्यसमाज में! अगर मुझे गुरुग्रंथ साहिब में मिल सका धर्म, तो मुझे क्या तकलीफ थी आर्यसमाज में! दयानंद के ही समसामयिक थे रामकृष्ण परमहंस, उनमें अगर मुझे धर्म का साकार रूप दिखाई पड़ता है, तो दयानंद से मेरा क्या झगड़ा! लेकिन मैं भी क्या करूं, बहुत खोजने के बाद भी कहीं कोई अंगार उसमें पाई नहीं। सब शब्दजाल है, तर्कजाल है।
कैलाश, अच्छा हुआ कि यह आर्यसमाज का पुरोहित तुम्हारे भीतर मर गया।
यह एक बड़ी बीमारी थी। तुम्हारा छुटकारा कैंसर से हो गया--यह आत्मा का कैंसर समझो। तुम मुक्त हुए। कोई भी कीमत चुकानी पड़े, सस्ता सौदा है। धक्के मार कर निकालें, तो भी आनंद से गीत गाते हुए निकलना। कृपा ही मानना उनकी कि उन्होंने धक्के देकर निकाला; धक्के प्रमाणपत्र होंगे। उनके हर धक्के से तुम्हारे भीतर धन्यवाद ही पैदा हो, ऐसी आशा करता हूं। धक्के तो वे देंगे, बुरे धक्के देंगे। वे तुम्हारे साथ जितना दुर्व्यवहार कर सकते हैं, उतना करेंगे। क्योंकि सदव्यवहार दयानंद में नहीं था तो उनके अनुयायियों में तो क्या होगा!
तुम कहते होः "मैं नौ वर्षों से आर्यसमाज में पुरोहित था।"
लंबा समय था नौ वर्ष। और पुरोहित होना मतलब बस उससे नीचे गिरना मुश्किल था। तुम बिल्कुल खड्डे में पड़े थे। मगर निकल आए। चमत्कार होते हैं! तुम्हारा निकल आना एक चमत्कार है। परमात्मा को धन्यवाद दो।
तुम कहते हो कि अब पुरोहित की मौत हो गई है।
खुशियां मनाओ। जलसे मनाओ। दावतें दो।
तुम कहते होः "मैं पांच जून को संन्यास लेकर जा रहा हूं। मैं आर्यसमाज
से घूमने के बहाने पच्चीस दिन की छुट्टियां लेकर यहां आया था। अब मैं माला लेकर दस जून को जाऊंगा। वे लोग मेरे गले में माला पड़ी देखेंगे तो मेरे दुश्मन हो जाएंगे।"
उनकी क्या चिंता लेना! न उनकी मैत्री से कुछ मिलने वाला है, न उनकी दुश्मनी से कुछ खोने वाला है। जिनकी मैत्री से ही कुछ नहीं मिला--नौ वर्ष तो उनके साथ रह कर देख लिए--उनकी दुश्मनी से क्या खो जाएगा? हां, थोड़े-बहुत

धक्के देंगे, गालियां देंगे, खंडन करेंगे, निंदा करेंगे, जिसमें वे कुशल हैं--सह लेना। जल्दी निकल आए। और सुबह का भूला शाम भी घर लौट आए, तो भूला नहीं कहलाता।
इंश्योरेंस कंपनी के आफिस में फोन बजा। एक महिला बोली, जी, मैं इंश्योरेंस करवाना चाहती हूं। मैनेजर ने कहा, हम अभी उधर आते हैं। महिला ने कहा, जी नहीं, आप फोन पर ही कर दें। मैनेजर ने कहा, ऐसा नहीं कर सकता। महिला ने कहा, फिर रहने दें, अब तो घर में आग लग चुकी है।
तुम्हारा घर जलने के पहले बचा जा रहा है। धन्यवाद दो परमात्मा को। अभी तुम बिल्कुल नहीं मर गए थे, तुममें कुछ जिंदा था, तुममें कुछ चिनगारी थी--इसलिए तुम मेरी पुकार सुन सके, इसलिए तुम मेरी आंखों में आंखें डाल कर देख सके, इसलिए तुम्हारा हृदय मुझसे तरंगित हो सका, इसलिए तुम मौका दिए मुझे कि मैं तुम्हारे हृदय की वीणा को बजा सकूं। तुम बिल्कुल नहीं मर गए थे, इसलिए पुरोहित मर सका। तुम बिल्कुल मर गए होते तो फिर पुरोहित को मारना मुश्किल था। फिर तो यह जीवन गया था हाथ से। बच गया, लाख-लाख शुक्र करो परमात्मा का।
तुम कहते होः "मैंने पहले ही निकलने की तैयारी कर ली है।"
तुम करो या न करो, वे तुम्हें निकालेंगे। कर ली है तो अच्छा है। कर ली
है तो सुविधा रहेगी।
अब पूछते होः "ऐसी अवस्था में मैं क्या करूं?"
निकलो पहले तो। फिर जो सहज स्फुरणा हो वह होने देना।
मेरे संन्यासी का जीवन, नियोजित जीवन नहीं है। पहले से कुछ योजनाबद्ध करके चलने से कुछ सार भी नहीं है। क्योंकि इधर आदमी कुछ करता है, कुछ तय करता है, कुछ बनाता है... लेकिन आदमी की बिसात कितनी है? यह इतना विराट विश्व हमारे अनुकूल नहीं चलता, हमको ही इसके अनुकूल चलना होता है। और वही आस्तिकता है कि हम इसके अनुकूल चलें। नास्तिकता का अर्थ हैः हम इसे अपने अनुकूल चलाएंगे। जिसने इसे अपने अनुकूल चलाना चाहा, वह दुख भोगेगा; और जो इसके अनुकूल चला, उसके जीवन में सुख ही सुख की वर्षा हो जाएगी।
पहले निकलो। फिर जो होगा संन्यास से, ध्यान से, प्रेम से, प्रार्थना
से जो स्फूर्त होगा, वह होगा। छोड़ो परमात्मा पर। जो करवाएगा करवा लेगा। तुम कोई अपेक्षा लेकर चलोगे, अगर वह पूरी न हुई तो दुख होगा। अपेक्षा रखो ही मत। मैं सिखाता ही हूं एक बातः अपेक्षा-शून्य जीवन। और तब बहुत घटता है, खूब घटता है। और जिसने अपेक्षा की, उसके जीवन में दुख ही दुख है, विषाद ही विषाद है। अपेक्षा से मुक्त हो जाना संन्यास है। संन्यासी क्षण में जीता है, अभी जीता है, यहां जीता है। कल की किसको खबर है! कल जब आएगा, तब देखा जाएगा।
पहले जाओ, पहले धक्के तो खाओ, पहले धक्कों का मजा लो। वे सब पागल कहेंगे--यह सब सुनो। जिन्होंने तुम्हारे पैर छुए होंगे, वे ही तुम्हें धक्के मारेंगे--यह भी जरा देखो। यह मजा भी देखो, यह तमाशा भी देखो कि जो तुम्हें ज्ञानी मानते थे, वही कहेंगे कि तुम पागल हो गए, अज्ञानी हो गए। जैसे कि ज्ञानी भी अज्ञानी हो सकता है! जैसे कि ज्ञानी भी पागल हो सकता है! उनकी कड़वी बातें सुनो, तब तुम्हें उनका असली रूप दिखाई पड़ेगा। अभी तुमने उनका जो रूप देखा है, वह सब थोथा और ऊपरी है, वह सब लिपा-पुता है, रंग-रोगन है। असली चेहरे उनके देखो। वे तुम्हारे साथ जो दुर्व्यवहार करेंगे, उससे तुम्हें उनके असली चेहरे दिखाई पड़ जाएंगे। फिर जो हो, होने देना। संन्यासी को यूं जीना चाहिए जैसे हवा में उड़ता हुआ सूखा पत्ता।

तीसरा प्रश्नः ओशो! हम आपको पूछना बहुत चाहते हैं, मगर प्रश्न बनता नहीं; मिलना भी चाहते हैं, मगर मिल भी नहीं सकते; बदलना भी चाहते हैं, मगर कुछ बदलाहट होती नहीं। हम कैसे आपसे जुड़ जाएं, कृपया बतलाएं।

भरत राजगुरु! मुझसे मिलना तो सरल मामला है, सीधा मामला है। एक छोटा सा शब्द याद रखोः संन्यास! संन्यास सेतु है। और अब उसके अतिरिक्त मुझसे मिलने का कोई उपाय नहीं। अब धीरे-धीरे तो मैं सिर्फ संन्यासियों के लिए ही जीऊंगा। अब तो मेरा सारा समय और मेरी सारी ऊर्जा और मेरा सारा आनंद उनके

लिए ही होगा, जो परवाना होने की हिम्मत रखते हैं। शमा परवानों के लिए जलती है। मैं भी उनके लिए ही जलूंगा।
अगर तुम झूठ बोलोगे तो कहां जाओगे, न्यायाधीश द्वारा यह पूछे जाने पर धर्मगुरु मटकानाथ ने कहा, वत्स, सीधा नरक जाऊंगा। यह सुन कर जज बहुत प्रभावित हुआ। दूसरा प्रश्न उसने किया, और यदि सच बोलोगे तो कहां जाओगे? ब्रह्मचारी जी ने निराश स्वरों में मात्र एक ही शब्द में जवाब दिया, जेल। मैं भी तुम्हें एक ही शब्द में जवाब देता हूं--संन्यास। उतनी हिम्मत जुटाओ। साहस के बिना तो कुछ भी नहीं हो सकता है।
लोग सस्ते-सस्ते बदलाहट चाहते हैं, क्रांति चाहते हैं! कुछ न हो, कुछ करना न पड़े और जीवन में क्रांति घट जाए, अमृत बरस जाए। लोग सोचते हैं बस प्रार्थनाएं करते रहें--और प्रार्थनाएं भी क्या, दो कौड़ी की प्रार्थनाएं-- सोते वक्त आधे नींद में आधे होश में दोहरा देते हैं रटे-रटाए शब्द तोतों की भांति, सो जाते हैं। सुबह उठ कर फिर तोतों की भांति उन्हीं शब्दों को दोहरा देते हैं। न उनमें कुछ अर्थ रहा है, इतनी बार दोहराए हैं कि वे यंत्रवत हो गए हैं। और सोचते हैं बस क्रांतियां हो जाएंगी, जीवन बदल जाएंगे, मोक्ष मिलेगा, निर्वाण मिलेगा!
कल्पनाओं में खो रहे हो। व्यर्थ कल्पनाओं के जाल से जगो।
संन्यास साहस है--सोने से जागने का, सपनों को तोड़ने का। और सत्य अवतरित होता है तभी, जब तुम्हारे सब सपने टूट जाते हैं।

चौथा प्रश्नः ओशो! मैं आपको सालों से सुनती हूं और कल भी सुना, तो लगा
कि आप स्त्रियों के प्रति सामान्यतः अत्यंत करुणा भाव से सराहना करके उनको सम्मान देते हैं। मगर जब स्त्री की बात पत्नी के रूप में करते हैं, तब उसे डांटते हैं और बहुत अलग ही रूप में चित्रित करते हैं। ऐसा क्यों?

योग सुशीला! पति बनते ही पुरुष पुरुष नहीं रह जाता; पत्नी बनते ही स्त्री स्त्री नहीं रह जाती। दोनों कुछ गंवा बैठते हैं। दोनों स्वतंत्रता गंवा बैठते हैं। और वही तो प्राण है जीवन का, वही तो आत्मा है। और स्वभावतः स्त्री की स्वतंत्रता ज्यादा खो जाती है। यह समाज पुरुष के द्वारा निर्मित है, इस समाज का सारा आचरण, जीवन, नीति पुरुष ने निर्धारित की है। तो पुरुष ने दो तरह के मापदंड उपयोग किए हैं--अपने लिए एक, स्त्रियों के लिए और। स्वभावतः मालिक जो है, ताकत जिसके हाथ में है, लाठी जिसके हाथ में है उसकी भैंस है। तो उसने अपने लिए सुविधाएं बना ली हैं, सब तरह की सुविधाएं, तरह-तरह की सुविधाएं। अपने लिए स्वतंत्रता के कुछ न कुछ उसने दरवाजे खुले छोड़ रखे हैं, स्त्री के लिए सब दरवाजे बंद कर दिए हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि स्त्री की आत्मा इतनी पददलित हो जाती है, और पददलित होने के कारण इतनी क्रुद्ध हो जाती है, इतनी रुष्ट हो जाती है--हो ही जाएगी--इतनी अपमानित हो जाती है कि उस अपमान का बदला लेने की और प्रतिशोध की अग्नि से जलने लगती है। स्त्री चौबीस घंटे पति से बदला लेती रहती है। जैसे ही वह पत्नी होती है कि वह बदला लेना शुरू कर देती है। निश्चित ही उसके बदला लेने के ढंग स्त्रैण हैं, इसलिए बहुत साफ-साफ दिखाई नहीं पड़ते। उसके बदला लेने के ढंग गांधीवादी हैं। स्त्रियां सदा से गांधीवादी हैं। गांधी ने जो भी जीवन-दर्शन दिया है, वह कुछ नहीं है, सदियों के स्त्रियों के अनुभव का सार-निचोड़ है।
गांधी खुद भी बहुत कमजोर आदमी थे, अति कमजोर आदमी थे, डरपोक थे। जब भारत से वे पहली दफा इंग्लैंड अध्ययन करने जा रहे थे, तो जहाज पर दो व्यक्तियों से उनकी मैत्री हो गई। जब काहिरा में जहाज रुका तो उन दोनों मित्रों ने कहा कि आओ, यहां पड़े-पड़े क्या करोगे! दो-तीन दिन जहाज को यहां रुकना है। चलो हम तुम्हें वेश्या के यहां ले चलें। कभी स्त्री का स्वाद चखा है?
गांधी ने कहा कि नहीं।
और मां ने चलते वक्त कसम दिला दी थी कि लंगोट के पक्के रहना, ब्रह्मचर्य पक्की तरह साधना। दो ही कसमें दिलाई थीं--ब्रह्मचर्य, और मांसाहार न करना।

मगर वे इतने कमजोर आदमी थे कि वे यह भी न कह सके कि मुझे नहीं जाना है। इसमें कोई बड़ी भारी बहादुरी की जरूरत नहीं थी। नहीं जाना है वेश्या के यहां, तो कह देते कि नहीं जाना है। मगर यह सोच कर कि ये लोग क्या सोचेंगे कि यह कैसा नामर्द है। सभी जा रहे थे वेश्या के यहां, सारा जहाज खाली हो रहा था, तीन दिन लोग पड़े-पड़े करेंगे क्या! जहां-जहां जहाज रुकते हैं ज्यादा देर तक, वहां वेश्याओं के अड्डे होते हैं। जहां फौजी ठहरते हैं ज्यादा देर तक, वहां वेश्याओं के अड्डे होते हैं। अकेला मैं न जाऊंगा तो लोग हंसेंगे, मजाक उड़ाएंगे, खिल्ली करेंगे। जाना तो नहीं था; मां ने मना किया था। मगर कैसे मना करें! मना करने तक की हिम्मत इस आदमी में नहीं थी। तो चले गए साथ। उन्होंने जाकर एक वेश्यालय में इनके लिए एक स्त्री भी चुन दी। इनको देखा कि यह आदमी अजीब सा ही है। इनको धक्का देकर उसके कमरे में भी अंदर कर दिया और दरवाजा भी उन लोगों ने बाहर से अटका दिया।
भीतर जो गांधी पर गुजरी, वह घटना उन्होंने अपनी आत्मकथा में लिखी है
कि मेरी समझ में न आए कि अब मैं क्या करूं! मां की याद आए कि कसम खिला दी है। और न भी खिलाई होती कसम तो स्त्रियों से कोई परिचय भी नहीं था कि करना तो क्या करना, बात शुरू भी करनी तो कहां से करनी। सो वे आंखें नीची किए हुए, वेश्या के पलंग के एक कोने पर बैठे हुए हैं!
वेश्या भी घबड़ाई--आदमी उसने बहुत देखे थे--कि इस बेचारे को क्या हुआ? हिलाया-डुलाया कि जिंदा है कि गया! पूछा कि भई, कुछ तो बोलो। मगर वे बोलें ही न। पक्के गुजराती भाई थे, बोलें ही न। वे तो आंख ऊपर न उठाएं। पर-स्त्री को तो देखना भी पाप है। अरे तो साफ कह देते कि भई, मुझे आना नहीं था, जबरदस्ती ये लोग ले आए। इतनी ही तो कहनी थी बात! मगर इसके लिए भी मुंह न खोलें, गला सूख गया, आवाज न निकले, घिग्घी बंध गई। स्त्री भी बैठ कर रोने लगी। उसने कहा अब करना क्या। उसको भी बड़ा दुख होने लगा कि इस बेचारे को क्या हुआ है! कैसे तुम्हारी सेवा करूं? कैसे तुम्हें प्रसन्न करूं? और वे पसीना-पसीना हुए जा रहे हैं। स्त्री टावल से उनका पसीना पोंछ रही है! घंटे भर बाद जब वे बाहर निकले और मित्रों के साथ बाहर अपने जहाज की तरफ चले, तो मित्र बताने लगे जो-जो घटना घटी। इनसे पूछा, क्या घटा? ये क्या बताएं बेचारे कि क्या घटा! छिपाए ही रखे बात को। यह तो आत्मकथा में बाद में उन्होंने लिखा, वर्षों बाद, कि कुछ नहीं घटा। घट सकता ही नहीं था। वे तो आंखें झुकाए बैठे रहे।
उस स्त्री को इतनी दया आई कि जो पैसे दिए थे, वे भी उसने इनको कहा कि भैया, तुम अपने पैसे भी वापस ले जाओ। पैसों का दुख हो रहा हो तो ये पैसे ले लो। और कुछ जरूरत हो तो बोलो। उसको इतनी दया आई कि यह बेचारा किस तरह का आदमी है!
स्त्रियों का जो सदा-सदा से ढंग रहा है व्यवहार का, विद्रोह का, प्रतिशोध का, वही गांधी ने उपयोग किया। नाम उसको प्यारे दे दिए--अहिंसा, सत्याग्रह। अगर पुरुष को क्रोध आता है तो वह स्त्री को पीटेगा; अगर स्त्री को क्रोध आता है तो वह खुद को पीटती है। यह सत्याग्रह हो गया--खुद को पीटना। अगर पुरुष को क्रोध आ जाए तो वह स्त्री का सिर फोड़ देता है। स्त्री को क्रोध आ जाए, अपने बाल नोंचती है, अपना सिर दीवाल से पीटती है। वह भेद है दोनों की अभिव्यक्ति में, मगर बात वही है। दोनों क्रुद्ध हैं। पुरुष को क्रोध आ जाए तो वह गालियां बकेगा; स्त्री को क्रोध आ जाए तो वह रोएगी। मगर उसके रोने में गालियां ही हैं। वह उसका ढंग है गालियां देने का।
स्त्री का तो मेरे मन में बहुत सम्मान है। पुरुष का भी मेरे मन में बहुत सम्मान है। लेकिन पति का मेरे मन में कोई सम्मान नहीं है और न पत्नी का मेरे मन में कोई सम्मान है। मैं एक दुनिया चाहता हूं जहां पुरुष हों, स्त्रियां हों, प्रेमी हों, प्रेमिकाएं हों; जीवन भर भी साथ रहने का जिनका मेल बनता हो, वे जीवन भर साथ रहें; और अनेक-अनेक जन्मों तक जिनका मेल बनता हो, अनेक-अनेक जन्मों तक साथ रहें--उसमें मुझे एतराज नहीं; मगर रहें सिर्फ प्रेम के कारण साथ, कोई कानून की वजह से नहीं, कोई जबरदस्ती के कारण नहीं, किसी सामाजिक बंधन के कारण नहीं, किसी आरोपण के कारण नहीं। क्योंकि जहां आरोपण होगा, जहां बंधन होगा--वहां प्रेम नष्ट होने लगता है, वहां प्रेम की जगह क्रोध आ जाता है।

इसलिए सुशीला, तुझे ठीक लगा कि जब भी मैं स्त्रियों की बात करता हूं,
तो सम्मान और सराहना। पुरुषों से भी ज्यादा सम्मान मेरे मन में स्त्रियों का है। क्योंकि उनका अपमान इतना हुआ है; उस अपमान की पूर्ति होनी चाहिए। और पुरुषों ने ही अपमान किया है, सदियों से अपमान किया है; मनु से लेकर आज तक अपमान ही अपमान, जहर ही जहर स्त्री को पिलाया गया है।
और उसको इस तरह से जहर पिलाया गया है कि जो अपमानजनक बातें पुरुषों ने उसे सिखा दी हैं, वह खुद भी उनको दोहराती है! भूल ही गई वह कि ये बातें अपमानजनक हैं, उसे नहीं दोहरानी चाहिए। ये शास्त्र अपमानजनक हैं। उन्हीं महात्माओं को सुनने जाती है...! असल में महात्माओं के पास भीड़ ही स्त्रियों की होती है। पुरुषों को कोई रस ही नहीं है महात्माओं में। पुरुषों को और हजार कामों में रस है। महात्माओं के पास अगर उन्हें जाना पड़ता है, तो सिर्फ स्त्री की वजह से जाना पड़ता है। या तो अपनी स्त्री की वजह से जाना पड़ता है कि वह ज्यादा उपद्रव मचाएगी। एक मामले में वह पुरुष को दबा सकती है कि वह ज्यादा धार्मिक है, तुम कम धार्मिक हो। वह ज्यादा मंदिर जाती है, ज्यादा शास्त्र पढ़ती है, ज्यादा साधु-सत्संग करती है--तुम नहीं करते। तुम्हें अपने ताश खेलने से, शतरंज बिछाने से, क्लबघर जाने से फुर्सत नहीं है। तुम अपना जीवन व्यर्थ गंवा रहे हो। यह एक मौका है स्त्री को जहां वह पुरुष को चारों खाने चित्त करती है।
तो या तो वह अपनी स्त्री के डर के कारण महात्मा जी को सुनने जाता है। सुन कर उसे कुछ जंचता नहीं, कुछ बात भरती नहीं, मगर बैठा रहता है स्त्री के डर से। और या फिर दूसरी स्त्रियों के कारण पहुंचता है कि किसी को धक्का ही मार लेगा, भीड़-भाड़ में किसी का पल्लू ही खींच लेगा, किसी को चुटकी ही काट देगा, कचोटी ही भर लेगा--कुछ न कुछ कर लेगा। जो मौका मिल जाएगा, जितना सुअवसर हाथ आ जाएगा। और जितना सुअवसर धर्म-सभा में आएगा, उतना और कहां आएगा! मगर महात्मा वगैरह से कुछ लेना-देना नहीं है पुरुषों को।
और ये महात्मा स्त्रियों को गाली देने के सिवाय कोई काम करते नहीं।
ये उनको नरक का द्वार बताते हैं। और स्त्रियां ही सिर हिलाती हैं! वे कहती हैं कि बिल्कुल ठीक कह रहे हैं। घर में लड़का पैदा होता है तो बाजे बजते हैं और लड़की पैदा होती है तो उदासी छा जाती है। क्या पागलपन है! और पुरुष अगर बाजे बजाएं लड़के के पैदा होने पर तो ठीक है, स्त्रियां भी लड़का पैदा होता है तो प्रसन्न होती हैं, गीत गाती हैं; और लड़की पैदा हो जाए तो स्त्रियां ही मातम मनाती हैं!
स्त्रियों को यह भी ख्याल नहीं रहता, भूल ही गई हैं, इतनी सदियों तक उनके संस्कारों को खराब किया गया है कि वे खुद ही स्त्रियों के विपरीत हैं, खुद ही स्त्रियों की दुश्मन हो गई हैं। लड़के के साथ स्त्रियां और तरह का व्यवहार करती हैं, लड़की के साथ और तरह का--खुद स्त्रियां! कम से कम उन्हें तो लड़की के साथ सदव्यवहार करना चाहिए। अगर लड़का कुछ गड़बड़ करेगा तो वे कहेंगी कि लड़के लड़के हैं। लड़की माफ नहीं की जा सकती। लड़की के पीछे तो माताएं बिल्कुल हाथ धोकर पड़ी रहती हैं। लड़कों को सब छूट है। सदियों-सदियों में जो अन्याय हुआ है, उसकी परिपूर्ति के लिए मैं स्त्रियों का ज्यादा सम्मान करता हूं पुरुषों की बजाय। वे सम्मान की अधिकारिणी हो गई हैं अब। उन्होंने बहुत अपमान सह लिया। उन्हें उसी मात्रा में सम्मान ज्यादा मिलना चाहिए ताकि एक तरह की समता आज नहीं कल पैदा हो सके। अंततः तो दोनों समान हैं।
लेकिन पत्नी होने की बात ही गलत है। पत्नी होने का अर्थ है कि तुमने गुलामी स्वीकार कर ली। पति होने की बात गलत है।
मैं जब विश्वविद्यालय से नया-नया बाहर आया, स्वभावतः बहुत से पिता उत्सुक थे कि उनकी लड़कियों का विवाह मुझसे हो जाए। उनको आशा भी थी कि विश्वविद्यालय में सर्वप्रथम आया हूं, तो भविष्य भी मेरा उज्ज्वल है। उन्हें क्या पता था कि मेरा भविष्य बिल्कुल अंधकारमय है। एक डाक्टर अपनी लड़की को लेकर आ गए। कहने लगे कि आप मेरी लड़की तो देख लो, उससे बात तो कर लो। लड़की सुंदर थी। मैंने कहा, लड़की सुंदर है। और मेरे साथ रहना चाहे तो मुझे कोई एतराज नहीं। उन्होंने कहा, आपका मतलब! मैंने कहा, मेरा मतलब यह कि मेरे साथ कोई भी रहना चाहे तो मुझे कोई एतराज नहीं। जो सेवा मुझसे बन सकेगी,

करूंगा; और जो सेवा इससे बन सकेगी, यह करेगी। पर उन्होंने कहा, विवाह वगैरह? तो मैंने कहा, विवाह वगैरह संभव नहीं है। विवाह की क्या जरूरत? जब तक बनेगी, बनेगी; जब नहीं बनेगी, तो जय-जयरामजी। उन्होंने कहा, आप बात कैसी करते हैं? होश-ठिकाने की बात करिए। आप मजाक कर रहे हैं?
मैंने कहा, मैं मजाक नहीं कर रहा हूं। मैं किसी स्त्री का इतना अपमान नहीं कर सकता कि उसको पत्नी बनाऊं। और मैं किसी स्त्री का इतना अपमान नहीं कर सकता कि उसका पति बनूं। पति का अर्थ ही होता है स्वामी।
मगर हमारी आदतें खराब हो गई हैं। तो हम मुल्क के प्रेसीडेंट को राष्ट्रपति कहते हैं। खराब आदतें ऐसी हैं कि शर्म भी नहीं आती हमें राष्ट्रपति कहते हुए। जरा यूं सोचो कि एक महिला हो जाए मुल्क की प्रेसीडेंट, उसको राष्ट्रपत्नी कहोगे? तब तत्क्षण अखरेगी बात। वह महिला भी राजी नहीं होगी। वह कहेगी, इसका क्या मतलब? राष्ट्रपत्नी? इसका मतलब तो वेश्या से भी गए-बीते हो गए। वेश्या भी नगरवधू होती है। सिर्फ एक गांव की वधू। राष्ट्र भर की, सत्तर करोड़ की पत्नी? कभी नहीं। मगर ये भोंदू जो राष्ट्रपति बन कर बैठते हैं, ये नहीं कहते कि राष्ट्रपति हम नहीं बनते; राष्ट्रपति शब्द अशोभन है। सत्तर करोड़ लोगों में पैंतीस करोड़ तो स्त्रियां हैं। पैंतीस करोड़ स्त्रियों के पति और पैंतीस करोड़ पुरुषों के पति--यह तो हद हो गई!
मगर हम पति शब्द को बिल्कुल सोचते ही नहीं, विचार में ही नहीं लाते।
वह हमें स्वीकार है। अर्थ भी भूल गए हैं हम उसका, कि उसका अर्थ ही स्वामी होता है। लैंडलार्ड को भूमिपति कहते हो कि नहीं? राजा को भूपति कहते हो कि नहीं? पति यानी स्वामी, मालिक। और स्त्री यानी संपत्ति, पत्नी यानी संपत्ति! हमारे पास शब्द हैं--स्त्री संपत्ति। बाप जब बेटी का विवाह करता है तो कन्यादान करता है। कन्या न हुई, कोई चीज-वस्तु हुई, दान कर दी। पुत्रदान नहीं करता, कन्यादान! ये बेहूदे शब्द... !
तो मैंने उनसे कहा कि मुझे कोई एतराज नहीं है। यह साथ रहने को उत्सुक
हो, तो जिस जगह मैं रह रहा हूं काफी जगह है, यह भी रह सकती है। आपको रहना हो, आप भी रह सकते हैं।
उन्होंने कहा, तुम बातें कैसी करते हो बहकी-बहकी!
बहकी-बहकी बातें नहीं कर रहा हूं, मगर मैं किसी का अपमान नहीं कर सकता। मैंने कहा, आप सोच-विचार लें दोनों। अगर सोच-विचार कर तय करें तो लौट आना, नहीं तो कोई मेरा आग्रह नहीं है।
ऐसे न मालूम कितने लोगों ने मुझसे कहा होगा, उनसे सबसे मैंने यही कहा--
ये ही बहकी-बहकी बातें। फिर वे दोबारा आए ही नहीं। धीरे-धीरे उन्होंने आशा ही छोड़ दी कि यह आदमी आशा रखने योग्य नहीं है।
मैं किसी स्त्री को पत्नी के रूप में सम्मान नहीं दे सकता, न किसी पुरुष को पति के रूप में सम्मान दे सकता हूं। इसलिए सुशीला, तुझे लगता होगा--यह क्या बात है कि मैं स्त्रियों का सम्मान करता हूं और पत्नियों की जितनी मजाक उड़ा सकता हूं उड़ाता हूं। मगर उसके पीछे कारण है।
मैं मुल्ला नसरुद्दीन से पूछ रहा था, आप अपने दफ्तर में केवल विवाहितों को ही क्यों लेते हैं? तो मुल्ला ने कहा, क्योंकि विवाहितों को कितना भी डांटो, वे सह लेते हैं; उन्हें डांट खाने की आदत रहती है; कुंआरे अनुभव-शून्य रहते हैं।
एक दिन चंदूलाल की पत्नी चंदूलाल से कहने लगी, आखिर तुम यह कैसे कह रहे हो कि तेरह अंक तुम्हारे लिए अशुभ है?
चंदूलाल ने कहा, अब झगड़ा न खड़ा करो तो अच्छा। अब सुबह-सुबह झगड़ा खड़ा न करो तो अच्छा। सुबह से ही उपद्रव मचाओगी, दिन भर खराब जाएगा।
पत्नी ने कहा, इसमें उपद्रव की बात ही क्या है? मैं तो एक शुद्ध सवाल तुमसे पूछ रही हूं, इसमें झगड़ा कहां है, कि तुम तेरह के अंक को अपने लिए अशुभ क्यों मानते हो?
चंदूलाल ने कहा कि नहीं मानती तो सुनो--क्योंकि आज से तेरह वर्ष पूर्व, तेरह तारीख को ही मेरा तुमसे विवाह हुआ था।
विवाह से बड़ी कोई अशुभ घटना नहीं है। इसीलिए तो सभी सगे-संबंधी, मित्र, परिचित शुभकामना करने आते हैं कि भैया जा तो रहे हो, ईश्वर

तुम्हारी रक्षा करें! अब तुम मानते ही नहीं हो, तो जैसी मर्जी। कहते हैं नः जो दुख में, सुख में काम आए सो मित्र! और खासकर तो जो दुख में काम आए सो मित्र। इसलिए विवाह के समय सब मित्र आते हैं।
मुल्ला नसरुद्दीन का विवाह हो रहा था। उसके एक दिन पहले चंदूलाल रास्ते पर मिल गए, एकदम गले लगा लिया, नसरुद्दीन का चुंबन ले लिया और कहा, नसरुद्दीन, आज का दिन तुम्हारे जीवन में बड़े सौभाग्य का दिन है। नसरुद्दीन ने कहा, लेकिन मेरा विवाह आज नहीं हो रहा, कल हो रहा है। चंदूलाल ने कहा, इसीलिए तो कह रहा हूं कि बस आज आखिरी दिन समझो, फिर कल
से तो उपद्रव ही उपद्रव है। तो आज मैं तुम्हें धन्यवाद देता हूं कि आज आखिरी दिन है, मना लो खुशी! आओ नाश्ता करवा दूं, शराब पिलवा दूं, सिनेमा दिखला दूं। जो भी कहो आज करने को तैयार हूं। कल के बाद तो तुम अपने मालिक भी न रह जाओगे। क्या खाओ, क्या पीओ, कहां उठो, कहां बैठो--इस सबका इंतजाम तुम्हारी पत्नी करेगी। इसलिए कहता हूं कि आज का दिन तुम्हारे जीवन में सबसे बड़े सौभाग्य का दिन है।
मुल्ला नसरुद्दीन अपनी पत्नी से कह रहा था एक दिन, गुलजान, शादी के समय तुमने तो यह वचन दिया था कि तुम मेरा सम्मान करोगी, मुझे प्रेम करोगी और मेरी सेवा भी। पर अब तुम्हें क्या हो गया है कि सदा चुड़ैल की तरह पेश आती हो?
गुलजान ने कहा, नाशमुए, तुझमें इतनी भी अक्ल नहीं कि कुछ समझ सको! उस वक्त क्या इतने लोगों के सामने तुमसे विवाद करती? वह दुष्ट मुल्ला कह रहा था कि प्रेम करेगी, सेवा करेगी, पति का सदा सम्मान करेगी, तो उस वक्त क्या नहीं करती? कह देती कि नहीं? इतने आदमियों के सामने विवाद खड़ा करती? अब एकांत में तो जो सत्य है, वही प्रकट होगा। वहां भीड़-भाड़ में तो मैंने सब बातों में हां भर दिया था।
एक दुबला-पतला आदमी एक मोटी स्त्री के साथ विवाह कर रहा था। जब पंडित
ने पूछा, क्या तुम ईश्वर को साक्षी रख कर यह कहते हो कि इस स्त्री को ग्रहण करते हो?
उसने कहा, मैं कोई ग्रहण-व्रहण नहीं करता, मैं ग्रहण किया जा रहा हूं। मैं भाग नहीं सकता बस, इतना ही समझो।
एक युवक से उसकी प्रेयसी के बाप ने पूछा कि क्या तुम मेरी लड़की से विवाह करोगे?
उस युवक ने कहा कि क्या मुझे अभी भी चुनाव करने का अधिकार है? मुझे विकल्प है? क्या मैं स्वतंत्र हूं कि तय कर सकूं कि करूं या न करूं? स्वतंत्रता बहुत पहले खोनी शुरू हो जाती है। एक-दूसरे पर पाश पड़ना शुरू हो जाता है। तुम्हें पता है पशु शब्द किस चीज से बनता है? पाश से बनता है। पशु का अर्थ होता हैः बंधा हुआ, पाश में पड़ा हुआ। जंगली जानवर को पशु नहीं कहना चाहिए। जानवर कहो ठीक, पशु कहना ठीक नहीं है भाषा के लिहाज से, क्योंकि वह बंधा हुआ नहीं है। तुम्हारे घर में जो भैंस बंधी है, वह पशु है। लेकिन जंगली जो भैंसा है, वह पशु नहीं है। लेकिन पत्नी और पति को क्या कहोगे? पशु! इनको जानवर भी नहीं कह सकते। जान वगैरह तो कब की निकल चुकी, अब क्या जानवर कहोगे! अब तो पशु बचे--एक-दूसरे की गर्दन में पाश डाले, एक-दूसरे को कसे हुए, एक-दूसरे से जुते हुए।
इसलिए इनकी मैं मजाक उड़ाता हूं।
चंदूलाल को एक दिन उदास देख कर नसरुद्दीन ने पूछा कि क्या बात है भई,
यह रोनी सूरत क्यों बना रखी है?
चंदूलाल बिल्कुल रो देने वाले अंदाज में बोला, क्या बताऊं दोस्त, मेरी पत्नी ने मेरा सब कुछ ले लिया और मुझे तलाक दे दिया।
नसरुद्दीन बोला, अरे किस्मत वाले हो चंदूलाल, अरे मेरी बीबी ने तो मेरा सब कुछ भी ले लिया और मुझे तलाक भी नहीं दिया।
नसरुद्दीन की सातवीं पत्नी गुलजान का भी रात अचानक हार्टफेल हो गया था। गुलाबो चंदूलाल से बोली, जाइए न, क्या आपको अपने दोस्त की पत्नी की मैयत में नहीं जाना है?

चंदूलाल तैश में आकर जोर से बोला, अरे हद हो गई दोस्ती की जी, मैं छह बार उसके यहां हो आया, वह हरामजादा एक भी बार मेरे यहां नहीं आया। मैं क्यों जाऊं? मैं भी नहीं जाता हूं अब।
और उदाहरण के लिए यह प्रश्न देख सुशीला--

ओशो, मेरे पति आपके संन्यासी हैं, मुझे कोई एतराज नहीं है। वे मुझे आपके प्रवचनों में, कीर्तन, ध्यान, शिविर और पूना तक के कार्यक्रमों में साथ भी लाते हैं। मैंने आपका संन्यास अभी तक नहीं लिया है, फिर भी वे लेने को मजबूर नहीं करते हैं। मगर मेरी शिकायत सिर्फ इतनी ही है कि वे न सिनेमा देखने जाते हैं, न साथ घूमने निकलते हैं; घर में ही चुपचाप बैठे रहते हैं और खुले आकाश को ताकते रहते हैं, बातचीत में कोई उत्सुकता नहीं रखते। ज्यादा समय आपकी बातों में ही पड़े रहने का क्या मतलब? मैं भी उनकी पत्नी हूं, जरा मेरी भी सुनें!
शांताबेन ने पूछा है। शांताबेन पत्नी हैं स्वामी चंद्रकांत भारती की। चंद्रकांत भारती का पहला प्रश्न था, भूल मत जाना। उन्होंने कहा थाः "आप मेरी सुहागरातों के मालिक हैं। मुझे कभी वैधव्य का दुख देना ही नहीं। बस इतनी सी चाह है--जीओ हजारों साल!"
अब यह पत्नी उनको घर जाकर ठीक करेगी। ये शांता बहन किसी भी क्षण अशांता बहन हो सकती हैं। ये कहेंगी कि तुमको शर्म नहीं आई कहते कि आप मेरी सुहागरातों के मालिक हैं, तो फिर मैं कौन हूं?
शांताबेन का प्रश्न देखा? एक-एक शब्द सोचने जैसा है। कहा है कि "मेरे पति आपके संन्यासी हैं, मुझे कोई एतराज नहीं।"
एतराज है, नहीं तो यह बात भी लिखने की कोई जरूरत न थी। अक्सर हम जो कहते हैं, वह उससे उलटा होता है जो असलियत होती है।
मैं मैट्रिक का विद्यार्थी था और एक नये-नये शिक्षक, श्री निगम, अध्यापक होकर आए विज्ञान के। देखने में बिल्कुल डरपोक, दब्बू मालूम पड़ते थे, मगर आते ही से उन्होंने रोब बांधने की कोशिश की। यह पता था कि वह मेरी जो कक्षा है, उपद्रवियों की है। सो उन्होंने सोचा कि पहले ही... और अध्यापकों ने उनको सुझाया होगा कि पहले ही दिन बांध लेना रोब; अगर पहले दिन ही नहीं बांध पाए, तो फिर बांधना मुश्किल है। सो उन्होंने आकर बहुत ही शोरगुल मचाया। बड़े जोर-जोर से चीखे-चिल्लाए। और कहा कि मैं किसी से डरता नहीं। मैं तुममें से किसी से नहीं डरता हूं। अरे तुमसे क्या डरूंगा, मैं भूत-प्रेत से नहीं डरता।
मैंने उनसे पूछा कि भूत-प्रेत की बात ही नहीं हो रही, आप केमिस्ट्री पढ़ाने के लिए अध्यापक हुए हैं कि भूत-प्रेत पढ़ाने के लिए? और हमने आपसे कहा नहीं कि आप हमसे डरो। आप ये बातें क्यों कर रहे हैं कि मैं आपसे डरता ही नहीं? आप जरूर डरते हैं।
उन्होंने कहा, मैं नहीं डरता। मैंने कहा, आप डरते हैं। वे एकदम कंपने लगे कि नहीं डरता। जब मेरे विद्यार्थी साथी जो थे, उन्होंने देखा कि ये तो डरने लगे, तो उन सारे लड़कों ने मेरा साथ दिया, सब चिल्लाए कि आप डरते हैं। वे इतने घबड़ा गए कि गश खाकर गिर पड़े। वह पहले दिन ही उनका मामला खत्म हो गया। हमको उनकी हवा करनी पड़ी, पानी छिड़कना पड़ा। जब होश में आए, हमने कहा कि अब आप इस तरह की बातें न करना।
कहने लगे, ये लोग किस तरह के हैं? यह क्लास कैसी है? ये सारे के सारे एकदम खड़े हो गए और कहने लगे कि आप डरते हैं। तुम लोगों ने सिर आसमान पर उठा लिया।
पूरे स्कूल में खबर हो गई। सारे स्कूल से लोग भागे आए--शिक्षक भागे आए, चपरासी भागे आए, हेडमास्टर भागे आए। पूछा कि यह मामला क्या है? मैंने कहा, मामला कुछ नहीं है। इन्होंने ही शुरू किया। हम तो कोई बात ही नहीं कर रहे थे, हम लोग सब चुपचाप बैठे थे। हम तो जरा देख रहे थे कि आदमी किस तरह के हैं, किस ढंग से इनसे व्यवहार करना।
मगर होश में आकर वे फिर बोले हेडमास्टर और सब मास्टरों को देख कर कि मैं कहे देता हूं कि मैं डरता नहीं। मुझे मिरगी की बीमारी है जी। यह बीमारी तो मुझे है बहुत पुरानी।

मैंने कहा, यह मिरगी की बीमारी नहीं है। मिरगी की बीमारी में आदमी के मुंह से फसूकर आता है, तुम्हारे मुंह से फसूकर नहीं आया। दोबारा जब बेहोश होओ, फसूकर लाकर दिखलाना।
मगर वे माने ही नहीं। नहीं माने तो मैंने कहा ठीक है। मुसलमानों के कब्रिस्तान पर जो आदमी कब्रिस्तान की रखवाली करता था, वह मेरा दोस्त था, लंगोटिया यार था। हम एक ही पहलवान के अखाड़े में डंड-बैठक लगाते थे। सो उससे मैंने कहा, भैया, तू एक खोपड़ी मुझे दे दे। उसने कहा, खोपड़ी का क्या करोगे? मैंने कहा, एक मास्टर आ गए हैं, वे कहते हैं कि भूत-प्रेत से नहीं डरते। उनको भूत-प्रेत दिखलाना है। तो उसने कहा कि दे देंगे। जाकर हमने एक कब्र खोद ली और एक मुर्दे की खोपड़ी निकाल लाए।
साफ-सुथरी करके, वह जिस मकान में रहना उन्होंने शुरू किया था, बड़ा मकान था। छोटा गांव, पांच रुपये महीने पर बड़ा मकान मिल जाए। मैं उसके ऊपर चढ़ गया, खपड़ा एक सरका कर, खोपड़ी के ऊपर एक छेद कर लिया था, उसमें रस्सी बांध कर, खोपड़ी वहां से लटकाई। और चार-छह लड़कों को आस-पास छिपा रखा था। उन्होंने जोर से खी-खी खी-खी खी-खी की आवाज की, जैसे कि भूत-प्रेत हंसते हैं।
वे अपने बिस्तर पर पड़े थे। उनकी आंखें खुलीं। खोपड़ी उतरती देखी उन्होंने और खी-खी की आवाज सुनी, बस उनकी घिग्घी बंध गई। एकदम से उन्होंने हू-हू हू-हू... ।
तभी से तो मुझे हू-हू का ध्यान समझ में आया। यह उन्हीं निगम मास्टर से मैंने सीखा। वे तो चले गए, स्कूल छोड़ दिया, मगर यह ध्यान की विधि दे गए। वह जो उनको हू-हू की जिच बंधी, खोपड़ी भी हमने खींच ली, उनका खप्पड़ भी जमा दिया, हम भाग भी गए, मुहल्ले के लोगों ने दरवाजा खोल लिया, हम वापस भी पहुंच गए, दरवाजे से अंदर भी घुस गए, उनको बहुत समझाया, हिलाया-डुलाया, मगर वह हू-हू उनकी बंद न हो। और हम लोगों को उन्होंने देखा। पूछा, बात क्या है? उन्होंने कहा, कुछ बात नहीं जी। मुझे ऐसा कभी-कभी हो जाता है। कोई दुखस्वप्न मैंने देखा।
मगर वह बात तो पूरे गांव में फैल गई। और जब दूसरे दिन वे स्कूल में पहुंचे तो उनकी टेबल पर खोपड़ी रखी थी। और खोपड़ी के माथे पर लिखा थाः हू-हू। बस उन्होंने इस्तीफा दे दिया और वे चले गए। फिर उनका पता नहीं चला। फिर मैं तलाश ही करता रहा। मैं पूरे मुल्क में घूमता रहा। जहां जाता था वहीं पूछता था कि भई, निगम मास्टर करके कोई आदमी यहां शिक्षक तो नहीं हैं केमिस्ट्री के? क्योंकि उनसे एक दफा मुलाकात करनी है और धन्यवाद देना है कि उन्होंने जो हू-हू की थी--क्या गजब की हू-हू की थी--मुझ पर ऐसा प्रभाव छोड़ गई है कि मैं लाखों लोगों को हू-हू करवा रहा हूं। हू-हू करने से भूत-प्रेत भाग जाते हैं!
तू कहती है शांताबेनः "मुझे कोई एतराज नहीं है।"
एतराज है बाई--सख्त एतराज है। मगर मैं तेरे पति को जानता हूं, तू एतराज
भी करे तो वे कुछ मानने वाले नहीं हैं। वे भी एक सिद्धपुरुष हैं। एतराज करने में कोई सार भी नहीं है। एतराज करके झंझट ही खड़ी होगी। इसलिए तू एतराज नहीं कर रही, मगर एतराज है। और फिर इतने आदमियों के सामने क्या कहना! एतराज वगैरह प्राइवेट बातें हैं, एकांत में की जाती हैं।
तू कहती हैः "वे मुझे आपके प्रवचनों, कीर्तन, ध्यान, शिविर और पूना तक
के कार्यक्रमों में साथ भी लाते हैं।"
लाना पड़ता होगा। क्योंकि कई पत्नियां कहती हैं कि साथ लेकर चलो, क्योंकि वहां इतनी स्त्रियां हैं, क्या पता! और वहां सब स्वतंत्रता है, वहां कोई पर रोक-टोक नहीं है। वहां तुम पता नहीं किसके गले में हाथ डाल लो, किसका हाथ हाथ में ले लो। मैं नजर रखूंगी! तू कहती है कि लाते हैं, मगर बात और है--लाना पड़ता है।
और तू कहती हैः "मैंने आपका संन्यास अभी तक नहीं लिया है।"
अगर तू यहां आती होती और सच में सुनती होती, ध्यान शिविर में भागीदार होती होती, तो संन्यास लेने से कैसे बच सकती थी! यहां आए और बिना भीगे चली जाए! नहीं, मगर यहां तू नजर रखती होगी चंद्रकांत पर कि क्या कर रहे हैं? कहां देख रहे हैं? किसी को धक्का वगैरह तो नहीं मार रहे! किसी से दोस्ती

वगैरह तो नहीं बना रहे! किसी से आंखों-आंखों में बातचीत तो नहीं हो रही! अरे तुझे दूसरे काम में लगे रहना पड़ता होगा यहां।
और तू कहती है कि "मगर मेरी शिकायत सिर्फ इतनी ही है... ।"
अब यह कोई छोटी शिकायत है तू जो कह रही है कि इतनी ही? यह बड़ी से बड़ी शिकायत है।
"कि वे न सिनेमा देखने जाते हैं।"
अब जो ध्यान करेगा वह सिनेमा देखने क्यों जाएगा, किसलिए जाएगा? सिनेमा वगैरह देखने तो दुखी लोग जाते हैं। जिनके जीवन में कुछ नहीं है, थोथापन भरा है, वे घंटे, दो घंटे गुजार कर अपने को भुला लेते हैं। परदे पर धूप-छाया का खेल है। आंखें अलग खराब होती हैं।
मैं तो कोई तीस साल से गया नहीं, तो मुझे पता नहीं हालतें क्या हैं। तीस साल पहले कुछ मित्रों ने कहा कि चलें, एक दफा तो चलें, तो मैं गया था देखने। सो उन्होंने तो फिल्म देखी, मैं सोया। जब बाहर उन्होंने आकर मुझसे पूछा कि क्या ख्याल है? मैंने कहा कि बड़ी ताजगीदायी फिल्म है। उन्होंने कहा, मतलब? मैंने कहा कि नींद भी गहरी आई और तबियत बिल्कुल ताजी हो गई। और अब दोबारा नहीं आऊंगा, क्योंकि यह नींद तो मैं घर ही ले सकता हूं। यह यहां आकर और न मालूम कितने लोग जिन कुर्सियों पर बैठते हैं, कोई टी.बी. का बीमार, कोई कैंसर का बीमार, कोई खंखार रहा है, कोई खांस रहा है, कोई थूक रहा है, कोई बिड़ी पी रहा है, एक-एक तरह के छंटे हुए नालायक जहां इकट्ठे होते हों और जहां की हवा एकदम गंदे धुएं से भरी है, क्योंकि लोग बिड़ी पी रहे, सिगरेट पी रहे, पान की पिचकारियां दीवालों पर पड़ी हुई हैं--इस दृश्य को दोबारा नहीं देखना। देख लिया एक दफा, जी भर गया। अब इस नरक में दोबारा नहीं आना।
नरक? आप कैसी बातें करते हैं! लोग वहां पैसा देकर जाते हैं।
मैंने कहा, यही तो हैरानी की बात है कि लोगों की मूढ़ता का कोई अंत नहीं है। कि लोग पैसा देकर और ऐसी-ऐसी बेवकूफी के कामों में पड़ते हैं कि अगर एक दफे भी सोचें... ।
उतनी देर ताजी हवा... । तेरे पति चंद्रकांत को ज्यादा अकल है। खुले आकाश को देखने का मजा; तारों भरे आकाश को देखने का आनंद; बादल आकाश में तैरते हों, उन तैरते बादलों पर ध्यान; सूरज निकलता हो कि डूबता हो, वह सारा जादू--उसको छोड़ कर किसी गंदे कटघरे में... । पहले तो कतार में खड़े रहो। जमाने भर के लोगों के धक्के खाओ, गालियां सहो। किसी तरह टिकिट लेकर भीतर पहुंचो। जहां सांस लेना भी दूभर हो, वहां गंदगी की सांस लो। और फिर आंखें खराब करो। सार क्या है? और कहानी में रखा क्या है? जो तूने दिखा दिया जिंदगी में, अब और कौन सी फिल्म दिखाएगी? अरे यही तो वहां होना है। चारों तरफ कहानियां ही कहानियां तो चल रही हैं। ये ही कहानियां फिल्म पर दोहराई जा रही हैं। यही त्रिकोण--कि दो औरतें, एक आदमी; कि दो आदमी, एक औरत। खेल में मामला कितना? और खेल खत्म! खेल की कुल कहानी इतनी है, वही पुरानी रामलीला। राम और रावण और सीता मैया। वही पुराना त्रिकोण, ट्राएंगल। कैसे ही बना लो उसको, जैसा बनाना चाहो, थोड़ा रंग-बिरंगा, अलग बात है।
सिर्फ मूढ़ ही वहां इकट्ठे होते हैं। जिनमें थोड़ा बोध आ जाएगा, इस जगत में बहुत सौंदर्य है देखने योग्य--सागर के तट पर बैठो, सागर के तट से टकराती हुई लहरों की गूंज को सुनो। पैसा ही ज्यादा इकट्ठा हो जाए और जेब में न समाता हो, तो पहाड़ों पर चले जाओ; जंगलों में जाओ--जहां परमात्मा अभी भी अनुभव हो सकता है, क्योंकि जहां आदमी ने अभी सभी नष्ट नहीं कर दिया है। शहरों में तो परमात्मा को खोजना मुश्किल होता जाता है, क्योंकि सीमेंट के रोड परमात्मा ने नहीं बनाए; और न सीमेंट की गगनचुंबी इमारतें परमात्मा ने बनाई हैं; और न बड़े-बड़े कारखाने परमात्मा ने बनाए हैं। जहां परमात्मा की बनाई एक चीज नहीं, जैसे बंबई में या न्यूयार्क में, वहां तुम लाख कोशिश करो तो परमात्मा का कोई प्रमाण नहीं मिलता।
यह जान कर तुम चकित होओगे कि लंदन में बच्चों का एक सर्वे किया गया, छोटे बच्चों का, दस लाख बच्चों ने गाय नहीं देखी! इन बच्चों के जीवन में कुछ कमी रह जाएगी। सात लाख बच्चों ने कभी खेत नहीं देखे--दूर-दूर तक, दूर क्षितिज तक फैले हुए हरियाली से भरे खेत! इन बच्चों की जिंदगी में कुछ हरियाली कम रह जाएगी। ये तो बैठे टेलीविजन के सामने।

पश्चिम में टेलीविजन को ठीक नाम दे दिया है, उसको कहते हैं--ईडियट बॉक्स। पांच-पांच, छह-छह घंटे एक डब्बे के सामने बैठे रहोगे तो बुद्धू तो हो ही जाओगे, और बचेगा क्या तुममें! और लोग ऐसे बैठे हैं कुर्सियों से चिपके हुए कि जैसे गाद लगा दी गई हो, वहां से हट नहीं सकते। और देख क्या रहे हो? और जितना टी.वी. नुकसान पहुंचा रहा है, उतनी कोई चीज आंखों को नुकसान नहीं पहुंचा रही। टी.वी. आंखों का कैंसर पैदा कर रहा है। और जहां टी.वी. आ गया, वहां सिनेमा दकियानूसी हो जाता है; वहां तो टी.वी. ही देखोगे, फिर क्या जरूरत इतनी दूर जाने की? अपने घर में बैठ कर ही चाय की चुस्कियां भी ले रहे हैं, सिगरेट के कश भी मार रहे हैं, टी.वी. भी देख रहे हैं, और आंखें खराब भी कर रहे हैं, आंखों का कैंसर भी पैदा कर रहे हैं।
तू पूछती है कि बस इतनी ही शिकायत है कि वे सिनेमा नहीं जाते।
शिकायत छोटी नहीं है शांताबेन, शिकायत बड़ी है! शिकायत यह कह रही है कि
अब वे बुद्धूपन नहीं करते।
और कहती हैः "न साथ घूमने निकलते हैं।"
अब अपने भीतर जाएं कि तेरे साथ जाएं? और तू घूमने भी कहां ले जाएगी? कि चलो बाजार। लोग शॉपिंग करने निकलते हैं उसको घूमना कहते हैं! जंगल तो ले नहीं जाएगी। जंगल में क्या रखा है! पहले हुआ करता था कहते हैं जंगल में मंगल, अब नहीं होता। अब तो मंगलवारा, कहीं कोई बाजार। और डरते होंगे बेचारे चंद्रकांत। अब ध्यानी आदमी हैं, ज्यादा कमाई भी नहीं कर सकते। ऐसे भी जिंदगी में उन्होंने कोई ज्यादा कमाई की नहीं; धन के पीछे दीवाने भी नहीं हैं। उनकी दुकान को मैंने देखा है। उस पर ग्राहक वगैरह तो दिखाई पड़ते ही नहीं कभी। जब मैं गया था तो कोई आधा घंटा उनकी दुकान पर था, कोई ग्राहक वगैरह आया नहीं। और मुझ जैसे ग्राहकों को दुकान पर ले जाओगे तो नुकसान में ही पड़ोगे; मुझे कुछ और भेंट देना पड़ा।
घूमने जाने का क्या मतलब तेरा? घूमने जाने का मतलब यह कि यह साड़ी खरीदनी है। यह साड़ी तो खरीदनी ही पड़ेगी। ध्यानी आदमी कहां झंझट में पड़ें साड़ियों की! वे प्रतीक्षा कर रहे हैं कि कब तू साड़ियों की झंझट छोड़े और गैरिक वस्त्र पहने। गैरिक वस्त्र पहनते ही से साड़ियों की झंझट छूट जाती है, साड़ियों का उपद्रव छूट जाता है।
कई स्त्रियां संन्यास नहीं ले पा रहीं सिर्फ साड़ियों के कारण। और कोई बाधा नहीं है--न तो कोई कर्मों की बाधा है; न कोई भाग्य में बाधा है। मुझसे महिलाएं पूछती हैं कि हमारे भाग्य में संन्यास नहीं है? मैं कहता, बकवास न करो, सिर्फ तुम्हारे घर में साड़ियां ज्यादा हैं और कोई मामला नहीं है। साड़ियां बांट दो, कल तुम्हारा संन्यास हो जाए। तब वे कहती हैं कि बात तो सच है। असल बात तो यही है कि साड़ियों से मोह नहीं जाता।
संन्यास भी ले लेती हैं, तो फिर मुझे पूछती हैं कि अगर बार्डर लगा हुआ साड़ी पहनें तो कुछ, बार्डर अगर थोड़े और रंग का हो तो कुछ हर्जा है? थोड़ा बेलबूटा हो तो चलेगा?
क्या-क्या तरकीबें निकालने की कोशिश में लगी रहती हैं--थोड़ा बेलबूटा, थोड़ा बार्डर! वे पीछे के दरवाजे से सब वापस ले आएंगी।
वे डरते होंगे तेरे साथ जाने से। और जाना कहां है? तेरे साथ जिंदगी भर
तो रह लिया, अब कृपा कर, तू जा तो उनको कुछ देर एकांत मिले। वे कहते होंगे कि बाई, तू जा जहां तुझे जाना हो, थोड़ी देर तो मुझे अकेले में छोड़ दे। मगर पति-पत्नी एक-दूसरे को अकेले में छोड़ते ही नहीं। अकेले छोड़ने में डरते हैं। नजर रखनी पड़ती है। कैसे छोड़ दें! तो साथ चलो।
तू कहती है, "घर में चुपचाप बैठे रहते हैं।"
तो और क्या करें! अपने से बोलें? खुद ही बैठे-बैठे बकवास करें? दीवालों से बोलें? और तुझसे क्या बोलने को बचा होगा! वह जो बोलना था, शादी के पहले बोल चुके। न बोलते तो शादी ही कैसे होती! वह तो हो गया खत्म मामला।
शादी हो गई कि बोल बंद। फिर कहां बोलना वगैरह! फिर तो तू बोलती है और उनको सुनना पड़ता है। तो चुपचाप, मौका मिल जाता होगा, तो चुपचाप बैठते होंगे।
तेरे को लगता है चुपचाप बैठे हैं, वे ध्यान कर रहे हैं।

एक महिला दूसरी महिला से कह रही थी कि चलो कुछ भी हो, मेरे पति रजनीश
के चक्कर में पड़ गए, एक लाभ तो हुआ--पहले चुपचाप बैठे रहते थे, अब कम से कम ध्यान तो करते हैं।
बात वही की वही है--पहले चुपचाप बैठे रहते थे, अब ध्यान करते हैं। मगर ध्यान करने का मतलब ही इतना होता हैः चुपचाप बैठे रहना। ध्यान है चुप्पी, मौन।
और तू कहती है, "खुले आकाश को ताकते रहते हैं। बातचीत में कोई उत्सुकता नहीं रखते।"
है क्या बातचीत में? किसकी बातचीत करें--कि पड़ोसी की पत्नी किसके साथ भाग गई; कि पड़ोसी के बेटे को कितने नंबर मिले स्कूल में; कि पड़ोसी कौन सी कार खरीद लाया; कि पड़ोसी की पत्नी ड्राइवर के साथ रंगरेलियां कर रही है-- क्या बातचीत करें?
और तेरे को इससे भी बहुत ज्यादा एतराज है कि "ज्यादा समय आपकी बातों में ही पड़े रहने का क्या मतलब?"
जब तू मुझसे ही पूछ रही है खुलेआम, तो उनकी क्या गति करती होगी वह मैं समझ सकता हूं।
"मैं भी उनकी पत्नी हूं, जरा मेरी भी तो सुनें!"
सुन चुके बाई, तेरी बहुत सुन चुके। शांताबेन, अब शांत हो जा।
चंदूलाल अपनी सास से कह रहा था, आपने कहा था कि आपकी लड़की संपूर्ण शाकाहारी है!
सास ने कहा, बिल्कुल है।
चंदूलाल ने कहा, फिर दो-दो घंटे मेरा दिमाग खाती है, शाकाहारी कैसे है?
अब बेचारे चंद्रकांत भारती को छोड़। मत उनका सिर खा। कुछ थोड़ा-बहुत बचा हो, तो बच जाने दे। यूं तो संभावना बहुत कम है कि कुछ बचा हो। नसरुद्दीन ने चंदूलाल को दावत पर बुलाया था। खाना बनाते-बनाते पत्नी काफी झुंझला चुकी थी, क्योंकि घर में राशन नहीं और इस नसरुद्दीन के बच्चे को अपने मित्र को ऐसे समय में ही दावत पर बुलाने की सूझी। जब उसने देखा कि शक्कर के डब्बे में शक्कर बिल्कुल नहीं है, तो चीख कर नसरुद्दीन से बोली कि सुनते हो जी, घर में शक्कर बिल्कुल खत्म हो गई है। बताओ अब खीर में क्या डालूं?
नसरुद्दीन, जो कि तल्लीनता से अखबार पढ़ने में जुटा था, एकदम से भड़क गया। वह भी चिल्लाया कि हद हो गई शराफत की, कभी तो चैन से अखबार पढ़ने दिया होता। मेरा भेजा डाल दे खीर में! अरे एक दिन तो, छुट्टी के दिन तो कम से कम चैन लेने दिया कर।
पत्नी तो पत्नी, बेचारी यह सुन कर शांत हो गई। थोड़ी देर बाद नसरुद्दीन
को चाय की तलफ महसूस हुई। वे कुर्सी पर बैठे-बैठे ही अपनी पत्नी गुलजान को आवाज देकर बोले कि सुनती हो, जरा एक कप चाय बना कर तो दे जाओ।
गुलजान बोली, हजार दफे कह चुकी कि शक्कर खत्म है।
नसरुद्दीन क्रोध से फिर बौखला उठा और बोला, मैंने तुझसे कहा न कि शक्कर नहीं तो मेरा भेजा डाल दे, अब क्यों सिर चाट रही है?
गुलजान बोली, अब चाय में तुम्हारा भेजा कहां से डालूं; वह तो मैं पहले
ही खीर में डाल चुकी हूं।
मैं नहीं सोचता कि बहुत चंद्रकांत पर बचा होगा भेजा कि तू अब और खा सके, मगर जो कुछ बचा हो छोड़ दे। कुछ परमात्मा को चढ़ाने के लिए भी शेष रहने दे। तुझे जाना हो जहां जा। तुझे जो घूमना हो घूम। सिनेमा देखना हो सिनेमा देख। यह पति के गले में रस्सा डाल कर जगह-जगह मत घूम। और तुझे यहां आना हो, तो आ; मुझमें रस हो, तो आ। रस मालूम नहीं होता। नहीं तो तू ऐसा नहीं कह सकती थी कि आपकी बातों में ही पड़े रहने से क्या मतलब? नाहक जासूसी करने उनके पीछे मत आ।
कोई पत्नी अपने पति पर भरोसा नहीं करती। और कोई पति अपनी पत्नी पर भरोसा नहीं करता। एक-दूसरे की जासूसी में लगे रहते हैं। यह कैसा प्रेम है? प्रेम के नाम से क्या चल रहा है! कैसे धोखे को हमने प्रेम कह रखा है! इस

धोखे से जगो। एक-दूसरे को स्वतंत्रता दो। प्रेम स्वतंत्रता देता है।
प्रेम परम स्वतंत्रता देता है।

छठवां प्रश्नः ओशो! एक ही नजर में देख कर मैं आपका दीवाना हो गया हूं।
ऐसा लगता है कि मेरा और आपका पूर्व-जन्म का संबंध है। मैं तो पागल सा हुआ जा रहा हूं। दिन-रात बस आप ही आप की बातें मेरे मस्तिष्क में घूमती रहती हैं, और हृदय में बराबर यह प्रतीति बनी रहती है कि मैंने आपके चेहरे को कहीं और भी देखा है। ओशो, कुछ कहें।

सरदार बलवीर सिंह! हे सरदार जी, यह संभव नहीं कि तुमने मेरे चेहरे को कहीं और भी देखा हो। वह निश्चित ही तुम्हारी सरदारी कल्पना है। क्योंकि जहां तक मुझे स्मरण पड़ता है, हालांकि मेरी स्मृति बहुत कमजोर है, फिर भी इस बात के संबंध में मुझे पक्की याद है कि पिछले उनचास वर्षों से मेरा चेहरा मेरी ही गर्दन पर विराजमान है, तुमने उसे और कहीं देखा ही नहीं होगा।

सातवां प्रश्नः ओशो! हमेशा दिन को ही सूरज क्यों निकलता है, रात को क्यों नहीं?

सरदार बलवीर सिंह! सत श्री अकाल! रात को भी निकलता है श्रीमान, मगर अंधेरे के कारण दिखाई नहीं देता।

आठवां प्रश्नः ओशो! क्या आपने कभी गधों के सवालों का भी जवाब दिया है?

सरदार बलवीर सिंह! नहीं भाई, आज यह पहला मौका है। वाह गुरुजी की फतह! वाह गुरुजी का खालसा! आप क्या आ गए, मजा आ गया। आप दीवाने क्या हुए, मैं भी आप पर दीवाना हो गया हूं।

आखिरी प्रश्नः ओशो! मैं पूर्ण भोजनभट्ट हूं। मैं क्या करूं?

गणेशीलाल!
पूर्ण तो इस संसार में कोई भी नहीं, सो वह भ्रांति तो छोड़ दो। और पूर्ण भोजनभट्ट तो बहुत ही कठिन बात है, करीब-करीब असंभव।
मथुरा के चौबे, वे वहां के पंडे हैं, बड़े भोजनभट्ट होने के लिए विख्यात हैं। एक बार उनका जातीय भोज था, जिसे देखने के लिए ढेर लड़के इकट्ठे हो गए। भोज एक अहाते में आयोजित था। जब समाप्त हुआ तो भीतर से एक चौबे अपनी उभरी तोंद पर हाथ फेरते हुए बाहर निकले। लड़कों ने ताली बजा कर कहा, यह रहा खाने वाला चौबे। उस चौबे ने बहुत धीमी आवाज में कहा, अभी क्या देखा है! खाने वाला पीछे आ रहा है। लड़के उत्सुकता से उसकी राह देखने लगे। जब कि दो नौकरों के कंधों पर हाथ धर कर दूसरा चौबे बाहर आया, लड़कों ने ताली बजा कर कहा, यह रहा खाने वाला चौबे। इस चौबे ने बड़ी उपेक्षा से कहा, खाने वाला पीछे आ रहा है। लड़के चकित हुए कि इससे भी बड़ा भोजनभट्ट कौन है! तभी बैलगाड़ी पर लद कर तीसरा चौबे आता दिखाई पड़ा। यह रहा असली भोजनभट्ट--लड़कों ने ताली पीट कर फिर कहा। लेकिन बैलगाड़ी के ऊपर से आवाज आई, असली भोजनभट्ट पीछे आ रहा है। और तभी भीतर से एक चौबे की अरथी लिए हुए, रामनाम सत्य है कहते हुए, एक झुंड बाहर आया।
इसको कहते हैं पूर्ण भोजनभट्ट। यहां तक तुम आ ही नहीं सकते थे अगर पूर्ण भोजनभट्ट होते। छोटे-मोटे भोजनभट्ट होओगे, तो ऐसी क्या अड़चन है! नाम है तुम्हारा गणेशीलाल, थोड़ा-बहुत तो होना ही चाहिए, गणेश जी की तोंद तो होनी ही चाहिए। सूंड नहीं है, यही क्या कम है! और गणेश जी को देखा, जब बैठे हैं तभी हाथ में लड्डू लिए हुए। मोतीचूर का लड्डू कोई कहता, कोई कहता अंडा। पता नहीं क्या है राज, मगर जो कुछ भी हो, है खाने की चीज। चौबीस घंटे हाथ में रखे बैठे हैं। क्यों चिंता में पड़े हो!
एक ही बात स्मरण रखो, जो मैं निरंतर कहता हूं कि हमेशा समस्याओं की जड़ में जाओ। लक्षणों को, ऊपरी लक्षणों को मत चिंता दो, मत ऊपरी लक्षणों का

बहुत विचार करो। बहुत भोजन करते हो, इसका मतलब है भीतर बहुत दुखी होओगे। उस दुख को काटो, भोजन अपने आप विदा हो जाएगा। लोग कोशिश करते हैं भोजन कम करने की। आठ-दस दिन, महीना पंद्रह दिन जबरदस्ती करके भोजन कम कर लोगे। फिर एकदम से टूट पड़ोगे, दोगुना बदला लोगे फिर। देखते नहीं, जैन दस दिन पर्युषण में भोजन थोड़ा कम कर देते हैं, सब्जियों के बाजार में दाम गिर जाते हैं। और दस दिन के बाद ऐसे टूटते हैं भोजन पर कि दस दिन में जो थोड़ा-बहुत वजन गंवाया हो, उससे दोगुना वजन पांच-सात दिन के भीतर कमा कर बता देते हैं। अक्सर जो लोग ज्यादा भोजन करते हैं, उनके साथ यह हमेशा घटता रहता है। परेशान होकर... क्योंकि ज्यादा भोजन करोगे तो शरीर बोझिल हो जाएगा, खींचना पड़ेगा शरीर को। नाहक का बोझ! जैसे कोई आदमी हमेशा अपना बिस्तरा अपने कंधे पर लिए चल रहा हो, बेकार ही। और यह बिस्तरा बाहर हो तो उतार कर भी रख दो, यह बिस्तरा भीतर है, सो इसको उतार कर भी नहीं रख सकते।
मगर दुखी आदमी भोजन ज्यादा करता है। मेरी चिंता तुम्हारे भोजन से नहीं है, तुम्हारे दुख से है। और तुम्हारे दुख के कटने का एक ही उपाय है-- ध्यान। सच तो यह है कि सारी बीमारियों का एक ही उपचार है--ध्यान। ध्यान आ जाए तो सारी बीमारियां कट जाएं। ध्यान अमृत है।
तुम और छोटी-छोटी बीमारियों को मत मेरे पास लाओ। और फिर तुम कोई भी बीमारी लाओ, फर्क पड़ता नहीं; मेरी तो एक ही रामबाण औषधि है कि तुमसे कहूंगा--ध्यान। तुम कहो लोभ से परेशान हूं, क्रोध से परेशान हूं, काम से परेशान हूं, मैं कहूंगा--ध्यान। तुम्हारी परेशानी कुछ भी हो, तुम कहो या न कहो, अगर तुम परेशान हो तो ध्यान की जरूरत है। परेशानी का क्या कारण है ऊपर, यह गौण बात है। भीतर एक कारण है और वह यह है कि तुम्हारे भीतर आनंद नहीं है। ध्यान तुम्हारे भीतर आनंद के फूल को खिला देगा।
और गणेशीलाल, भीतर आनंद का फूल खिले, बस तुम भीतर भर जाओ आनंद से, ऐसे भरे-पूरे हो जाओ लबालब कि फिर अपने से भोजन कम हो जाएगा, लोभ कम हो जाएगा, क्रोध कम हो जाएगा, काम कम हो जाएगा--सब अपने आप क्षीण हो जाती हैं ये बातें। जैसे घर में कोई दीया जला ले, अंधकार विदा हो जाता है।
बुद्ध ने कहा हैः जिस घर में दीया जलता है, उस घर में चोर नहीं आते। ऐसे ही जिस घर में ध्यान का दीया जलता है, उस घर में कोई रोग प्रवेश नहीं करते। ये सब रोग हैं। ये ही असली रोग हैं। शरीर के रोग तो कुछ खास नहीं हैं। उनका तो इलाज चिकित्सक कर देता है। मैं भी चिकित्सक हूं, लेकिन मैं आत्मा के रोगों का चिकित्सक हूं।
लक्षणों पर मत जाओ, हमेशा जड़ को काटो। और जड़ को काटने की एक ही कुल्हाड़ी है--ध्यान।
झेन फकीर रिंझाई नदी के तट पर बैठा था। और एक आदमी ने उससे पूछा, संक्षिप्त में कह दें कि आपकी शिक्षा का सार क्या है? वह चुपचाप ही बैठा रहा। कुछ बोला ही नहीं। उस आदमी ने कहा, आपने सुना नहीं? आप बहरे तो नहीं हैं? ऊंचा तो नहीं सुनते हैं? मैंने पूछा--उसने चिल्ला कर कहा अब की बार-- कि मैंने पूछा कि आपकी शिक्षाओं का संक्षिप्त सार क्या है, थोड़े में बता दें।
रिंझाई ने कहा, बताया, लेकिन तुम समझे नहीं। मैं चुप जो बैठा रहा, वही मेरी शिक्षाओं का सार है। चुप बैठ जाओ। उस आदमी ने कहा, इतना संक्षिप्त भी न करो, थोड़ा विस्तार। तो रिंझाई ने अंगुली से रेत पर लिख दिया--ध्यान। उस आदमी ने कहा, यह भी कोई विस्तार हुआ! यह तो बात वही की वही हुई। रिंझाई ने कहा, मैं भी क्या करूं, सागर को कहीं से भी चखोगे तो खारा ही पाओगे। उस आदमी ने कहा, थोड़ा और, मुझे समझाने के लिए जरा जोर देकर, स्पष्ट कर दें।
तो रिंझाई ने बड़े-बड़े अक्षरों में लिख दिया--ध्यान। उस आदमी ने कहा, तुम आदमी पागल तो नहीं हो? मैं पूछता हूं कि मुझे समझाने के लिए, साफ करने के लिए और थोड़ा प्रकाश डालो, और स्पष्ट करो। तो रिंझाई खड़ा हो गया और अपने पैर से उसने रेत पर बड़े-बड़े अक्षरों में लिख दिया--ध्यान। और उसने कहा कि अब इससे ज्यादा मैं भी नहीं कर सकता।
ध्यान ही सार-सूत्र है। ध्यान मिल गया तो सब संपदा मिल गई, प्रभु का राज्य मिल गया। ध्यान नहीं मिला तो तुम कुछ भी पा लो, सब व्यर्थ है।
आज इतना ही।

पिय को खोजन मैं चली
पांचवां प्रवचन

ध्यान कुंजी है

पहला प्रश्नः ओशो! आपको सुनते-सुनते रोना आ जाता है। अब सक्रिय ध्यान
के उत्सव के समय पर रोना फूट पड़ता है। यह क्या है? ध्यान के बीच-बीच ऐसा भाव जगता है कि यह शरीर अब रुकावट है; यह कैसे छूटे--ऐसा भाव सघन होता जाता है। यह क्यों? समझाने की अनुकंपा करें।

अक्षय विवेक! मनुष्य को ऐसे गलत संस्कार दिए गए हैं कि न तो वह जी भर
कर कभी रोया है, न जी भर कर कभी हंसा है। जी भर कर जीया ही नहीं है। किसी पहलू से, किसी आयाम में, जी भर कर कोई काम किया ही नहीं, सब अधूरा-अधूरा है! और इसलिए भीतर बहुत सी चीजें त्रिशंकु की भांति लटकी रह जाती हैं।
मैं तो कहता हूं ध्यान उत्सव है, लेकिन यह घटना जो तुम्हें घट रही है, औरों को भी घटती है। उत्सव मनाते-मनाते अचानक रोना न मालूम किस कोने से उभर आता है! दबा पड़ा होगा कहीं; जन्मों से दबा पड़ा होगा। विशेषकर पुरुषों को। क्योंकि बचपन से ही हम सिखाते हैं लड़कों कोः रोना मत! रोती हैं लड़कियां। तुम हो मर्द बच्चे, रोना तुम्हारा काम नहीं है।
यह बात झूठ है। यह सरासर झूठ है। प्रकृति ने पुरुष और स्त्री की आंखों में आंसुओं की ग्रंथियां एक जैसी बनाई हैं। पुरुष की आंखों में आंसू की ग्रंथियां छोटी नहीं हैं स्त्रियों से। इसलिए एक बात तो तय है--प्रकृति चाहती थी दोनों बराबर रोएं। लेकिन पुरुष ने एक अहंकार निर्मित किया है कि पुरुष को रोना नहीं है। टूट जाए भला, रोए नहीं। मिट जाए भला, रोए नहीं। रोकर क्या अपनी कमजोरी प्रकट करनी है!
हमने पुरुष को कठोर होना सिखाया है। हमने पुरुष शब्द का अर्थ ही धीरे- धीरे कठोर होना कर लिया है। हमारी भाषा में एक शब्द हैः परुष। और अधिकतर लोग सोचते हैं, परुष से ही पुरुष बना है। परुष यानी कठोर।
परुष से पुरुष नहीं बना है। पुरुष तो बड़ा अनूठा शब्द है। पुरुष तो बना
है पुर से। पुर का अर्थ होता हैः नगर। यह देह नगर है। इसके भीतर जो बसा है, वह पुरुष है। स्त्री के भीतर भी वही बसा है, पुरुष के भीतर भी वही बसा है। वह जो भीतर बसा है, वह न तो स्त्री है, न पुरुष है सामान्य अर्थों में। वह तो केवल पुर का वासी है। वह तो मेहमान है, अतिथि है। देह मेजबान है, आतिथेय है।
लेकिन हमने पुरुष की परिभाषा कर रखी हैः परुषता, कठोरता। और जो बहुत कठोर होते हैं, उनका हम बहुत सम्मान करते हैं। जैसे सरदार वल्लभ भाई पटेल को भारत में लोग कहते थेः लौह-पुरुष। परुष होना ही काफी नहीं था, लौह-पुरुष!
अब लोहे के आदमी कहीं रोते हैं!
रूस में जोसेफ स्टैलिन ने जितनी हत्याएं कीं उतनी संभवतः मनुष्य-जाति के इतिहास में किसी व्यक्ति ने नहीं कीं। तुम्हें याद दिलाना चाहता हूं, स्टैलिन का नाम स्टैलिन नहीं था; स्टैलिन का तो अर्थ लौह-पुरुष होता है--मैन ऑफ स्टील। धीरे-धीरे लौह-पुरुष ही उसका नाम हो गया, उसका असली नाम तो लोग भूल ही गए।
सदियों से हमने कठोरता की पूजा की है। और स्वभावतः इसका परिणाम यह हुआ है कि पुरुष में आंसू दबे रह गए हैं, रुदन प्रकट नहीं हो पाया। नहीं तो रोने का भी अपना हलकापन है। रोने का भी अपना राज है।
स्त्रियां कम पागल होती हैं। और मनोवैज्ञानिक कहते हैं, उसका कुल कारण इतना है कि वे जी भर कर रो लेती हैं। रोने में उनका पागलपन बह जाता है। पुरुष ज्यादा पागल होते हैं। स्त्रियां कम आत्महत्या करती हैं, पुरुष दोगुनी आत्महत्या करते हैं। स्त्रियों के हाथ में अगर दुनिया हो तो युद्ध बंद हो जाएं। पुरुषों के हाथ में दुनिया रहेगी तो युद्ध जारी रहेंगे, क्योंकि हमने पुरुष को मौलिक रूप से सैनिक के ढांचे में ढाला है। और सैनिक और संन्यासी में बुनियादी भेद है।

अक्षय विवेक मजबूत पुरुष हैं। तुम उनको देखोगे तो भी समझ जाओगे कि मजबूत पुरुष हैं। जब शुरू-शुरू मेरे पास आए थे तो मैं यूं ही समझा था कि शायद पहलवानी करते होंगे। फिर धीरे-धीरे नरम हुए--भीतर तो बहुत नरम थे, भीतर तो बहुत गीले थे, मगर ऊपर की कठोर पर्त टूट रही है। सदियों पुरानी है, जन्मों पुरानी है, टूटते-टूटते ही टूटेगी।
इसलिए अक्सर यह हो जाता होगा कि मुझे सुनते-सुनते रोना आ जाता होगा।
तो रो लिए, जी भर कर रो लिए। बुरा क्या है? आंखें धुल जाती हैं--बाहर की ही नहीं, भीतर की भी धुल जाती हैं, स्वच्छ हो जाती हैं। आंसुओं की जरूरत ही इसीलिए है कि वे आंखों को स्वच्छ करते रहते हैं। प्रतिपल तुम्हारी पलकों को गीला करते रहते हैं, ताकि आंखें धुलती रहें। क्योंकि आंख तो बड़ी कोमल वस्तु है--तुम्हारी देह में सर्वाधिक कोमल। तुम्हारी देह में जो सर्वाधिक नाजुक तत्व है, वह आंख है। उसकी रक्षा का पूरा इंतजाम है। इसलिए पलक झपकते रहते हो तुम पूरे समय; पलक के झपकने का राज यही है कि झपक कर पलक साफ करते रहते हैं आंख को। और पलक गीले हैं, इसलिए प्रतिपल आंख पर कोई धूल नहीं जम पाती।
और जो बात आंसुओं के संबंध में बाहरी आंख के लिए लागू है, वही भीतर अंतर्चक्षु के लिए भी लागू है। जब ध्यान में तुम रो उठोगे, तो भीतर की आंख भी धुलेगी, वहां भी हलकापन आएगा, निर्भार हो जाओगे। तुमने रोने के बाद का निर्भारपन देखा या नहीं?
अगर कोई मर जाए तो स्त्रियां रो लेती हैं, छाती पीट कर रो लेती हैं, सिर धुन कर रो लेती हैं, और जल्दी ही मुक्त हो जाती हैं। लेकिन पुरुष तो कैसे रोएं! वे तो अकड़े रह जाते हैं, वे तो दबा कर रह जाते हैं। फिर यह दबा हुआ दुख उनके रग-रग में, रेशे-रेशे में फैल जाता है। फिर उनका जीवन पाषाणवत हो जाता है। फिर उनके जीवन में संवेदनशीलता कम हो जाती है। फिर उनको फूल नहीं दिखाई पड़ते। वे खुद ही कांटे हो गए तो फूल कैसे दिखाई पड़ेंगे!
हमें वही दिखाई पड़ता है, जो हम होते हैं। हमारा उससे ही तालमेल बैठता है, जो हम होते हैं। अगर हमारे भीतर संगीत है, तो बाहर के संगीत से हमारा तालमेल बैठता है। अगर भीतर विसंगीत है, तो बाहर के शोरगुल से हमारा तालमेल बैठता है। अगर भीतर सौंदर्य है, तो बाहर के सौंदर्य से तालमेल बैठता है। अगर भीतर कुरूपता है, तो बाहर भी हम सब तरह की कुरूपता को खोजते फिरते हैं। जो भीतर है उसका ही विस्तार बाहर होता है। और हम कुछ भी छिपा नहीं सकते। ध्यान का यही तो रहस्य है कि ध्यान तुम्हारे भीतर जो भी दबा पड़ा है, उस सबको उभार कर ले आएगा, उस सबको धीरे-धीरे मुक्त कर देगा। तुम्हारा उससे छुटकारा हो जाएगा। हंसोगे भी, रोओगे भी। ऐसी घड़ियां भी आएंगी जब कि हंसोगे और रोओगे साथ-साथ भी। कोई भी देखेगा तो समझेगा पागल है। तुम खुद भी सोचोगे तो समझोगे कि क्या हुआ मुझे? क्या मैं पागल हुआ जा रहा हूं! हंसना और रोना तो सिर्फ पागल ही करते हैं एक साथ।
मगर प्रत्येक व्यक्ति पागल है कमोबेश, मात्रा का भेद होगा--कोई निन्यानबे डिग्री का पागल है, कोई अट्ठानबे डिग्री का पागल है, कोई सत्तानबे डिग्री का। जरा सा धक्का मार दो कि सौ डिग्री के उस तरफ हो गए कि पागलखाने के भीतर। दिवाला निकल जाए कि बस... एक डिग्री के पार होने में देर कितनी लगती है! दुख में भी एक डिग्री पार हो सकती है, सुख में भी एक डिग्री पार हो सकती है। अचानक लाटरी खुल जाए, एक दस लाख रुपये की लाटरी मिल जाए, तो एक डिग्री पार हो सकती है। सह न सको, इतना ज्यादा सुख हो जाए, टूट ही जाओ सुख के बोझ से। दुख ही नहीं तोड़ता, सुख भी तोड़ देता है। हम इतने ज्यादा कठोर हो गए हैं, हम लोच खो दिए हैं। हर चीज हमें तोड़ देती है। और हमें सिखाया ही यह गया हैः झुकना मत, भला टूट जाना।
लेकिन जो जानते हैं वे कुछ और कहते हैं। लाओत्सु ने कहा है कि जब तूफान आता है तो बड़े वृक्ष गिर जाते हैं, मगर फिर उठ नहीं सकते। क्योंकि वे अकड़ कर खड़े रहते हैं। उनकी अकड़ ही उनकी मौत हो जाती है। वही तूफान उन्हीं बड़े वृक्षों के पास घास के पौधों पर से भी गुजरता है। घास के पौधे तूफान के साथ झुक जाते हैं, तूफान के साथ नाच लेते हैं; तूफान ऐसा तो ऐसा, तूफान वैसा तो वैसा; बाएं चले हवा तो बाएं बहने लगते हैं, दाएं चले हवा तो दाएं बहने लगते हैं; तूफान उन्हें जमीन पर बिछा दे तो जमीन पर लेट जाते हैं; कोई

एतराज ही नहीं है; तूफान के हाथों में अपने को बिल्कुल छोड़ देते हैं-- समर्पित।
श्रद्धा का वही अर्थ है। ऐसे जीने का नाम श्रद्धा है। ऐसे जीने का नाम आस्तिकता है। अस्तित्व के साथ ऐसी तन्मयता कि जो अस्तित्व कराए वही कर लेते हैं।
तूफान जा चुका होता है, बड़े वृक्ष गिर गए सो गिर गए, अब कभी न उठेंगे।
और घास के पौधे, पतले पौधे, कमजोर पौधे, नाजुक पौधे, फिर वापस अपनी जगह खड़े हैं--ताजे होकर। सारी धूल-धवांस झाड़ कर ले गया तूफान, उन्हें और हरा कर गया है, उनकी जड़ों को और मजबूत कर गया है।
लाओत्सु ने अपने शिष्यों को कहा हैः बड़े वृक्षों की तरह मत होना; वह अहंकार का प्रतीक है बड़ा वृक्ष। घास के पौधों की तरह होना; वह निरहंकारिता का प्रतीक है।
अक्षय विवेक, जब रोना आए, रोए। बुरा क्या? जब हंसना आए, हंसे। बुरा क्या? और उत्सव के समय पर भी अगर रोना फूट पड़े तो विसंगति मत देखना, विरोधाभास मत देखना। क्योंकि जो भीतर दबा पड़ा है, वह कब फूट पड़ेगा कहना मुश्किल है।
असल में उत्सव के समय ही तुम्हारे भीतर जो गहरी से गहरी दबी हुई वृत्तियां हैं, उनके उभर कर आने का अवसर है। क्योंकि उत्सव के समय में तुम दबाना भूल जाते हो; तुम्हारी सारी ऊर्जा नृत्य में लग गई, उत्सव में लग गई; जो दबा रही थी, अब दबा नहीं रही है। उसी घड़ी तो मौका है कि सब दमित भावनाएं उभर कर परिधि पर आ जाएं।
सत्यों को छिपाया नहीं जा सकता। और ध्यान की कला ही क्या है? यही कि सारे सत्य प्रकट हो जाएं। अपनी विसंगतियों के साथ, अपने विरोधाभासों के साथ तुम्हारा पूरा व्यक्तित्व परिधि पर आ जाए, तो तुम्हारा केंद्र मुक्त हो जाए, तुम्हारे केंद्र पर रह जाएगा सिर्फ साक्षी। वह हंसने को भी देखेगा, रोने को भी देखेगा। वह दोनों को देखेगा--और अलिप्त, और असंग, विमुक्त, अछूता।
अदालत में मुकदमा था। मटकानाथ ब्रह्मचारी पर आरोप था कि उन्होंने अपने पड़ोसी की बीबी के साथ बलात्कार किया है। जब कोई गवाह अथवा ठोस सबूत न मिला तो जज ने धमकाने के लिए कहा, ब्रह्मचारी जी, व्यर्थ दलीलें मत कीजिए; आप पर लगाया गया आरोप इस बात से सही सिद्ध हो चुका है कि पड़ोसी के दरवाजे पर, पलंग पर और उसकी पत्नी के गहनों पर आपके हाथों की अंगुलियों के निशान पाए गए हैं। क्या आपको अपनी सफाई में कुछ कहना है?
महामहिम मटकानाथ ने गुस्से में कहा, यह बात सरासर झूठ है, क्योंकि मुझे अच्छी तरह याद है कि मैं रबर के दस्ताने पहन कर उसके घर में घुसा था। ध्यान में तो सब प्रकट हो जाएगा। तुम्हारी परुषता गलेगी, तुम्हारे झूठ गिरेंगे, तुम्हारा जमाया हुआ आचरण उखड़ेगा, तुम्हारी सहजता प्रकट होगी, तुम्हारी प्रकृति, तुम्हारा स्वभाव पहली बार खिलेगा। इसलिए ऐसा हो रहा है।
तुम कहते होः "आपको सुनते-सुनते रोना आ जाता है।"
तो रो लिए। मुझे सुन रहे हो, यही इस बात का सबूत है कि तुम्हारे भीतर कुछ हो रहा है। मेरे हृदय और तुम्हारे हृदय के बीच तार जुड़ रहे हैं। मेरी अंगुलियां तुम्हारी हृदय-तंत्री पर टंकार देने लगी हैं। यूं ही थोड़े ही आंसू आ जाएंगे।
तुम कहते होः "अब सक्रिय ध्यान के उत्सव के समय पर भी रोना फूट पड़ता है।"
फूटने दो। वह भी उत्सव का अंग है। वह भी उत्सव का हिस्सा है।
पूछते हो कि "ध्यान के बीच-बीच ऐसा भाव भी जगता है कि यह शरीर अब रुकावट है, कैसे छूटे?"
यह भी सदियों-सदियों तक सिखाई गई शिक्षाओं का परिणाम है। हमें शरीर
की दुश्मनी सिखाई गई है। हमें सिखाया गया हैः शरीर से मुक्त होना है। शरीर में होना पाप है। शरीर बंधन है। शरीर गर्हित है। शरीर कुत्सित है। वही भाव उठ रहा है और कुछ भी नहीं।

यह भाव भी विदा हो जाएगा। अगर तुम तूफान को चलने दिए और साथ-साथ डोलते रहे, नाचते रहे तूफान में, तो यह सब धूल झर जाएगी--आंसू भी जाएंगे, हंसी भी जाएगी; इस तरह की भावनाएं भी उठेंगी और विदा हो जाएंगी। तब शरीर तुम्हें पाप नहीं मालूम होगा और न ही बोझ मालूम होगा, न ही बाधा मालूम होगा--मंदिर मालूम होगा, क्योंकि जहां परमात्मा रह रहा हो वही जगह तो मंदिर है; तीर्थ मालूम होगा।
और प्रत्येक के भीतर तीर्थंकर विराजमान है। तुम उतने ही तीर्थंकर हो जितने महावीर। तुम उतने ही बुद्ध हो जितने बुद्ध। तुम उतने ही अवतार हो परमात्मा के जितने कृष्ण। तुम ईश्वर के उतने ही बेटे हो जितने जीसस--जरा भी भेद नहीं। बस तुम्हें पता नहीं है, उन्हें पता हो गया था। तुम्हें भी पता हो सकता है। ध्यान उस पता को पाने की ही कुंजी है।
हम जैसे जी रहे हैं, वह तो बिल्कुल झूठ है। इस सारे झूठ का साक्षात्कार करना होगा। हमारे संस्कार भ्रांत हैं। मौलिक रूप से, आधारभूत रूप से हमारे ऊपर गलत बातें थोपी गई हैं। हमें जीवन-विरोध सिखाया गया है। और मैं तुम्हें सिखा रहा हूं जीवन-प्रेम; क्योंकि मेरे लिए जीवन ईश्वर का पर्यायवाची है। और कोई ईश्वर है ही नहीं सिवाय जीवन के। यह जीवन का विस्तार ही परमात्मा है। इसके अतिरिक्त, इसके अलावा, कहीं कोई दूर बैठा हुआ आकाश में कोई परमात्मा नहीं है, कि जिसके तीन मुंह हैं--ब्रह्मा, विष्णु, महेश; कि जिसके चार हाथ हैं--चतुर्भुज। ये सब बच्चों की कल्पनाएं हैं, बचकानी कल्पनाएं हैं। ठीक हैं छोटे बच्चों को समझाने के लिए; प्रतीक हैं।
मगर तुम जो कि प्रौढ़ हो, और अब मनुष्य प्रौढ़ हुआ है, पूरी मनुष्यता प्रौढ़ हुई है, अब इन झूठों के हमें बाहर होना होगा।
जीवन परमात्मा है। वृक्षों में, नदियों में, पहाड़ों में, पशुओं में, मनुष्यों में वह जो अनंत फैला हुआ है, परमात्मा उसी का नाम है। कहीं सोया है, कहीं जागा है। जहां जाग गया है, वहां बुद्धत्व है, वहां प्रतिपल आनंद ही आनंद है। जहां सोया है, वहां प्रतिपल दुख ही दुख है, उदासी है, बेचैनी है। बेचैनी है इसीलिए कि जो हमारा है, उसको ही हम भूले बैठे हैं। जो अपनी निज की संपदा है, उसका भी हमने अधिकार अभी तक छोड़ रखा है। हैं सम्राट और बन गए हैं भिखारी। और भिखारी भी कैसे भिखारी कि गरीब तो भिखारी हैं ही, भिखारी तो भिखारी हैं ही, हमारे सम्राट भी भिखारी हैं!
और भिखारी का भिक्षापात्र कभी भरता ही नहीं। दिखता तो छोटा है भिक्षापात्र, लेकिन कभी भरता नहीं, भर सकता नहीं, क्योंकि भिखमंगे का मन दुष्पूर है। फिर भीख मांगने के लिए हमें क्या-क्या झूठ नहीं बोलने पड़ते! एक-एक वासना को पूरा करने के लिए हमें कितने-कितने झूठों से नहीं गुजरना पड़ता!
फिर उन सारे झूठों से घबरा कर हम पंडित-पुरोहितों से पूछते हैं कि इससे छुटकारा कैसे हो? हम ही हैं जिन्होंने झूठें खड़ी कर ली हैं, फिर हम उनसे पूछते हैं--छुटकारा कैसे हो? सांप है ही नहीं, जिसको हम मारना चाहते हैं। फिर हम पूछते हैं किसी से कि सांप को मारें कैसे? तो वह हमें लकड़ी पकड़ा देता है, जो सांप ही जैसी झूठी है। वह कहता है, इस लकड़ी से मार डालो। जिनको तुम आमतौर से धर्म मानते हो, वे तुम्हारे झूठों को काटने के ही झूठे उपाय हैं, और कुछ भी नहीं। ध्यान तुम्हें न केवल अधर्म से मुक्त करेगा, धर्म से भी मुक्त कर देगा; न केवल पाप से मुक्त करेगा, पुण्य से भी मुक्त कर देगा। ध्यान तुम्हें सिर्फ शुद्ध चैतन्य में विराजमान कर देगा।
और वही सत्य है।
एक भिखमंगा भीख मांग रहा है। बोला, बाबूजी, भगवान के वास्ते इस अंधे
को एक रुपया दस पैसे देते जाइए।
मगर तुम तो अंधे नहीं हो, तुम्हारी एक आंख तो बिल्कुल ठीक नजर आती है।
बाबूजी, तो फिर पचपन पैसे ही दे दीजिए।
लेकिन तुम पचपन पैसे क्यों मांगते हो, सीधा आठ आना क्यों नहीं मांगते? बाबूजी, देखते नहीं कैसी मंहगाई छा रही है, क्या हम भिखारी दस प्रतिशत मंहगाई भत्ता भी न मांगें?

अरे, तुम्हारी तो दूसरी आंख भी खुल गई। जान-बूझ कर बंद किए बैठे हो और अपने आप को अंधा बताते हो! बेईमानी की भी हद होती है!
बाबूजी, पैसा देना हो दे दीजिए वरना आगे बढ़िए। व्यर्थ की बकवास करके हमारा समय नष्ट मत करिए। मैं बेईमान नहीं हूं। मैं तो अपने अंधे दोस्त की जगह आज भीख मांग रहा हूं, पूरी ईमानदारी के साथ, इसीलिए तो आंखें बंद किए बैठा था। आपके साथ तर्क-वितर्क करने में मेरी आंखें खुल गईं। रात नौ बजे तक मेरा अंधा मित्र सर्कस देख कर वापस आएगा और उसे यह बात पता चलेगी तो वह बहुत नाराज होगा। मैं अंधा नहीं हूं, यह बात सच है; मैं तो बहरा हूं जो सामने की सड़क पर बैठ कर भीख मांगता है।
तुम्हें शर्म नहीं आती? भले-चंगे जवान आदमी हो और भीख मांगते हो! लानत
है तुम पर। कुछ मेहनत का काम क्यों नहीं करते?
बाबूजी, आप अपने रास्ते लगिए। कीमती समय आप मेरा नष्ट कर रहे हैं। आपको क्या पता कि भीख मांगने में कितनी मेहनत लगती है! और शर्म तो आपको आनी चाहिए, बातों ही बातों में मैंने आपकी जेब काट ली, देखिए, इसमें एक पैसा भी नहीं निकला और आप अपने को मेहनतकश मान कर गौरवान्वित अनुभव करते हैं! आपको तो चुल्लू भर पानी में डूब मरना चाहिए।
यहां तो प्रत्येक व्यक्ति भिखमंगा है लेकिन। सभी हाथ फैलाए हुए मांग रहे हैं--और मिल जाए, और मिल जाए। और उस मांगने के लिए उन्हें जो भी जीवन में झूठ आरोपित करने होते हैं, वे आरोपित करने को राजी हैं। जिनकी आंखें हैं, वे अंधे बने बैठे हैं; जिनके कान हैं, वे बहरे बने बैठे हैं; जो दौड़ सकते हैं, वे लंगड़े बने बैठे हैं; जो प्रबुद्ध हो सकते हैं, वे ऐसी गहरी नींद में सोए हैं कि घुर्रा रहे हैं!
अक्षय विवेक, ध्यान जागरण की प्रक्रिया है। और इस जागरण के रास्ते पर बहुत कुछ घटेगा। और तुम बहुत चौंकोगे भी, क्योंकि तुमने अपने भीतर जिन बातों की कभी कल्पना भी नहीं की थी, उनको तुम पाओगे। क्योंकि तुम अपने भीतर कभी गए ही नहीं--कितने आंसू दबे पड़े हैं; कितनी हंसियां मुरझाई हुई पड़ी हैं; कितना जीवन कुचला हुआ पड़ा है; कितनी आंखें, जो साफ हो जाएं तो तुम सारा अस्तित्व देख लो, धूल में दबी हैं; और कितने हीरे, जिनकी कोई कीमत नहीं आंक सकता, यूं पड़े हैं जैसे कूड़ा-करकट हो! और सबसे गहराई में छिपी पड़ी है तुम्हारी चैतन्य की अपार संपदा; सागर की तरह जिसकी कोई थाह नहीं, जिसकी कोई सीमा नहीं।
मगर उस तक पहुंचते-पहुंचते बीच में बहुत सी चीजें मिलेंगी और उन सारे संस्कारों को तुम्हें पार करना होगा। यह भी एक संस्कार है, जो तुम्हें सिखाया गया है, शरीर की दुश्मनी का। इसलिए यह उठ रहा है। ध्यान करोगे तो यह संस्कार उठेगा कि कैसे छुटकारा हो जाए अब इस शरीर से; अब तो यह शरीर भी बाधा मालूम पड़ता है!
यह तुम नहीं कह रहे हो, यह तुम्हारे पंडित-पुरोहित बोल रहे हैं। यह तुम्हारे भीतर ग्रामोफोन रेकार्ड है जो बोल रहा है। जब तुम अपनी निजता में पहुंचोगे तो न तो शरीर से मुक्त होने का सवाल है, न शरीर में बंधने की आकांक्षा है--जब तक है, आनंदित; जब नहीं है, तब भी आनंदित। फिर प्रभु की मर्जी सब कुछ है। फिर हम उसकी मर्जी के साथ जीते हैं।
इस समर्पण को ही मैं संन्यास कहता हूं।

दूसरा प्रश्नः ओशो! आप कहते हैं कि ध्यान पुनः जन्म है और व्यक्ति छोटे बच्चों की भांति प्रतिभावान हो जाता है। क्या छोटे-छोटे बच्चे सच ही इतने प्रतिभा-संपन्न होते हैं?

योगेश! निश्चय ही। प्रत्येक बच्चा ताजा पैदा होता है। उसका दर्पण निर्मल होता है। न विचारों की कोई भीड़-भाड़ होती उसके भीतर, न आकांक्षाओं का कोई जाल होता उसके भीतर, न अहंकार की अकड़ होती उसके भीतर--अभी उसके भीतर कुछ भी नहीं होता। अभी कोई उपद्रव खड़ा नहीं हुआ है।
उपद्रव खड़े होंगे अभी। हम शिक्षा देंगे उसको और उपद्रव खड़े करेंगे। न
तो अभी वह हिंदू है, न मुसलमान है; न अभी उसे मस्जिद से लेना है कुछ, न मंदिर से लेना है कुछ। अभी तो हम उसे संसार की शिक्षा देंगे। अभी उसे अगर हम कहें

भी कि तू राष्ट्रपति बन जा। तो वह कहेगा, क्यों? मैं क्यों बनूं राष्ट्रपति? अभी वह अपने में मस्त है। अभी तितलियों के पीछे दौड़ने में ऐसा मजा है, अभी तो समुद्र-तट पर सीपियां बीन लेने में इतना आनंद है कि अगर हम उसको कहें भी कि धन कमा, तो वह हंसेगा। उसकी समझ में ही नहीं आएगा कि धन किसलिए? कि पद किसलिए?
लेकिन बीस साल, पच्चीस साल हमारी शिक्षण की प्रक्रिया से गुजर कर... और पच्चीस साल तुम सोचते हो कितना समय होता है? तुम्हारे जीवन का एक तिहाई हिस्सा! और सबसे बहुमूल्य हिस्सा! क्योंकि फिर इतने ताजे भी तुम कभी नहीं होओगे, इतने जिंदा भी कभी नहीं होओगे। पच्चीस वर्ष की शिक्षाओं के बाद हम प्रत्येक बच्चे को विषाक्त कर देते हैं। उसको महत्वाकांक्षाओं से भर देते हैं; उसे राजनीति से भर देते हैं, कूटनीति से भर देते हैं; तरह-तरह के झूठों से भर देते हैं। इसी सब में उसकी प्रतिभा दब जाती है। उसके दर्पण पर इतनी परतें जम जाती हैं धूल की कि दर्पण खो ही जाता है, फिर दर्पण में प्रतिबिंब बनता ही नहीं। नहीं तो प्रत्येक बच्चा प्रतिभा के साथ पैदा होता है।
इसे तुमने अनुभव भी किया होगा कि प्रत्येक बच्चा सुंदर मालूम होता है। उसकी आंखों में एक दमक मालूम होती है। उसके चेहरे पर एक चमक मालूम होती है। धीरे-धीरे दमक खो जाती है, चमक खो जाती है, सौंदर्य भी खो जाता है। कहां चला जाता है सारा सौंदर्य? हम छीन लेते हैं। हमारी पूरी की पूरी व्यवस्था अब तक की अमानवीय है।
दुनिया एक बिल्कुल ही नयी शिक्षा के लिए आतुर है। एक नयी मनुष्यता के लिए, एक नये मनुष्य के लिए तैयारी करनी है। क्योंकि पुराना मनुष्य काम नहीं आया। और जो हमने मनुष्य बनाया था, उसमें कहीं कुछ बुनियादी चूकें हो गईं। वह ठीक था युद्ध के लिए, हत्या करने के लिए, मरने-मारने के लिए; लेकिन जीने की कला उसे नहीं आती थी। हमने सिखाया ही उसे यही थाः छीना-झपटी, मारपीट, कलह, ईर्ष्या, जलन, महत्वाकांक्षा, अहंकार। हमने उसे कोई प्रेम की शिक्षा तो दी नहीं। हमने उसे कोई प्रतिभा की शिक्षा तो दी नहीं। हमने यह तो नहीं किया कि उसकी प्रतिभा पर और धार रखते।
तुम जरा छोटे बच्चों की बातें सुनो, योगेश, और तुम्हें मेरी बात समझ में आ जाएगी।
बाप ने बेटे को डांटा। कहा, मैं जब बच्चा था तो कभी झूठ नहीं बोलता था। बेटे ने अपने बाप की तरफ देखा और पूछा, फिर आपने झूठ बोलना कब से शुरू किया पिताजी? जब बच्चे थे तब झूठ नहीं बोलते थे। फिर कभी तो शुरू किया होगा, कब से शुरू किया?
उसकी आंख साफ देख रही हैं कि यह बात भी झूठ है। यह बात भी सरासर झूठ है। यह बाप का कहना कि मैं जब बच्चा था तो कभी झूठ नहीं बोलता था--यह भी झूठ है।
एक महिला ने अपने बच्चे को डबल रोटी पर मक्खन लगा कर दिया। उसे खाते- खाते बच्चा रोता रहा। मां ने पूछा, रोते क्यों हो? मैंने तो तुम्हें काफी बड़ा टुकड़ा दिया है!
इसीलिए तो मैं रो रहा हूं, क्योंकि यह लगातार छोटा होता जा रहा है।
यही तो स्थिति जिंदगी की है, लेकिन कितने लोगों को होश है? कितने लोगों के पास प्रतिभा है जो यह देख सकें कि हम रोज मर रहे हैं, कि जन्म के बाद सिवाय मरने के हम और कुछ भी नहीं कर रहे हैं, कि जिस दिन हम जन्मे हैं उस दिन से मरना शुरू हो गया है, कि रोटी का टुकड़ा रोज छोटा होता जा रहा है, कि मौत रोज करीब आती जा रही है! और हमने क्या तैयारी की है मौत के स्वागत की? मेहमान द्वार पर आने को है, हमने उसके स्वागत का क्या आयोजन किया है? मौत आएगी तो तुम्हें बिल्कुल ही गैर-तैयार पाएगी। तुम आलिंगन कर सकोगे मौत का? तुम शहनाई बजा सकोगे? तुम कह सकोगे कि आओ स्वागत है? कि कंपोगे, कि डरोगे, कि रोओगे, कि घबड़ाओगे, कि चीख-पुकार मचाओगे--कि और थोड़ी देर जी लेने दो?
जो आदमी मौत को सामने देख कर कहता है और थोड़ी देर जी लेने दो, वह आदमी जीया ही नहीं। अगर वह जीया होता, तो वह मरने को भी राजी होता; क्योंकि मरना, जिसने जीया है उसके लिए जीवन का शिखर है, जीवन की आत्यंतिक ऊंचाई है,

गौरीशंकर है। लेकिन जो जीया ही नहीं उसके लिए मरना तो ऐसा लगता है कि बात ही खत्म हुई जा रही है, और हम तो जीए भी नहीं! तो जीवन यूं ही निकल गया, बिना जीए निकल गया! कारवां निकल गया, गुबार उड़ती रह गई! अब सिर्फ धूल ही धूल हाथ में मालूम पड़ती है, तो रोए न तो क्या करे? अलेक्जेंडर भी रोता हुआ मरता है! सिर्फ कोई बुद्ध जैसा व्यक्ति ही हंसते हुए विदा होता है--आनंदपूर्वक। जीवन ने बहुत दिया, जीवन को धन्यवाद देता हुआ, अनुग्रह से विदा होता है। एक अध्यापक एक छोटे से बच्चे से बार-बार पूछ रहे थे, बता पानीपत की लड़ाई किसने लड़ी थी?
जब बहुत बार पूछने पर भी लड़का कुछ नहीं बोला, तो अध्यापक ने एक थप्पड़
जड़ दिया। लड़का रोते हुए बोला, मास्टरजी, मैं सच कहता हूं, मैंने नहीं लड़ी थी।
अब पानीपत की लड़ाई, सच तो यह है, यह मूढ़तापूर्ण बात है कि हम बच्चों को सिखाएं कि किसने लड़ी थी। यह मूढ़तापूर्ण बात है कि हम बच्चों को सिखाएं नादिरशाह के संबंध में और तैमूरलंग के संबंध में और चंगेज खां के संबंध में और औरंगजेब के संबंध में। यह पागलपन की बात है कि हम बच्चों को कहें कि तुम अतीत को घोंटो। यह निपट मूढ़तापूर्ण बात है। उनको जीना है भविष्य में और सिखाते हैं हम उनको अतीत!
यह यूं हुआ जैसे कोई बहुत पागल आदमी, मूढ़ आदमी कार बनाए और जहां ड्राइवर बैठता है वहां दर्पण भर लगा दे जिसमें पीछे का रास्ता दिखाई पड़े। जहां कांच होता है जिसमें से वह आगे का रास्ता देखता है, वहां दर्पण लगा हो--पूरा बड़ा दर्पण--कि पीछे का रास्ता दिखाई पड़े जहां से कार गुजर चुकी, और जहां जा रही है कार वहां का कुछ भी दिखाई न पड़े। तो क्या गति होगी? गति होगी या दुर्गति होगी?
यह कार गिरने ही वाली है किसी गड्ढे में। यह उतरेगी ही गड्ढे में। क्योंकि दिखाई वह रास्ता पड़ रहा है जिस पर अब चलना नहीं है, जिससे हम चल चुके; और वह रास्ता दिखाई नहीं पड़ रहा है जिस पर चलना है। यह भी पता नहीं कि रास्ते की तरफ जा रहे हैं, कि दीवाल की तरफ जा रहे हैं, कि खड्ड की तरफ जा रहे हैं!
सच्ची शिक्षा वर्तमान में जीना सिखाएगी, और इतनी मेधा देगी कि हम भविष्य की तरफ देखने में समर्थ हो सकें। लेकिन अभी हमारी सारी शिक्षा अतीत-उन्मुख है। मगर हम बड़े बहानों से उसकी शिक्षा देते हैं, बड़ी तरकीबों से उसकी शिक्षा देते हैं। और ऐसे सुंदर बहाने हम खोज लेते हैं कि लगता है कि शिक्षा देने जैसी है। सारी दुनिया में यह चलता है।
मैं भी इतिहास का विद्यार्थी रहा। मेरी हमेशा झंझट रही अध्यापकों से।
इस बात की झंझट रही कि मुझे लेना-देना क्या कि पानीपत की लड़ाई कहां हुई, क्यों हुई! सच तो यह है कि होनी ही नहीं थी। हुई ही क्यों?
मेरे अध्यापक कहते कि यह भी हद हो गई। तुमसे हम यह पूछ ही नहीं रहे हैं
कि हुई क्यों या कि होनी नहीं थी कि होनी थी। हम पूछ रहे हैं--कहां हुई? किनके बीच हुई?
मैं कहता, मुझे लेना-देना क्या है? मुझे लड़ना नहीं। मैं पानीपत की लड़ाई के संबंध में क्यों समय खराब करूं? कुछ मूढ़ लड़े, कुछ मूढ़ पढ़ा रहे हैं वे जो लड़े उसको, और कुछ मूढ़ उसको याद करें--प्रयोजन क्या है? लेना-देना क्या है?
अगर अतीत के संबंध में भी कुछ बहुमूल्य कहना हो, तो बुद्ध के संबंध में कुछ कहो, महावीर के संबंध में कुछ कहो, कृष्ण के संबंध में कुछ कहो, क्राइस्ट के संबंध में कहो। इनके बाबत तो कोई खास चर्चा नहीं होती। इतिहास में ये तो पाद-टिप्पणियों में भी नहीं आते। इतिहास में तो गधों की चर्चा होती है--निपट गधों की, जिनको हमें बिल्कुल ही भुला देना चाहिए। जो होने ही नहीं थे, पहली तो बात। और अगर हो गए तो अब उनको क्यों घसीटते हो? अब क्या उनकी याद करने की जरूरत है? कि किस सन में कौन सा राजा इंग्लैंड में राज्य करता था--क्या प्रयोजन है?
यह बच्चा ठीक कह रहा है कि पानीपत की लड़ाई मैंने नहीं लड़ी थी।
एक बच्चे ने अपने पिता से पूछा, पिताजी, परमात्मा ने यह आकाश क्यों बनाया? आकाश की जगह छप्पर क्यों न बनाया?

किसी तरह उससे छुटकारा पाने के लिए... बाप अपना अखबार पढ़ रहा है और यह बेटा उसका ऐसे-ऐसे प्रश्न पूछ रहा है जिनका कोई उत्तर भी नहीं हो सकता... बचने के लिए बाप ने कहा कि इसलिए बेटा, कि ऊपर से भूत-प्रेत नीचे उतर कर बच्चों को तंग न करें। अगर छप्पर होता तो भूत-प्रेत नीचे उतर आते। उसने इतना बड़ा आकाश बना दिया है कि उतरते-उतरते भी उनको सदियां लग जाएंगी। कहां उतरेंगे? उतर ही नहीं सकते। अनंतकाल लग जाएगा। इसलिए! अब मुझे पढ़ने दो। बेटे ने कहा, एक सवाल और, तो फिर मास्टरजी कहां से आए? जब भूत-प्रेत उतर ही नहीं सकते, तो ये मास्टरजी कहां से आए?
यह बात मुझे जंचती है। क्योंकि मास्टरजी का कुल धंधा इतना है कि भूत-प्रेत के संबंध में पढ़ाना। जो बीत गया, वह भूत; जो अब नहीं है, वह प्रेत। अब औरंगजेब क्या है? भूत-प्रेत।
मगर हम बच्चों की प्रतिभा नहीं देख पाते। हम उनके प्रश्नों से बेचैन जरूर होते हैं। और बेचैनी का कुल कारण इतना होता है कि उनके प्रश्नों के अगर हम उत्तर दें तो हमें अपनी मूढ़ता दिखाई पड़नी शुरू होती है। हम उन्हें टालते हैं। हम अपने प्रश्नों से जबरदस्ती उनका मुंह बंद कर देना चाहते हैं। और हमारे हाथ में ताकत जरूर है कि हम उनके मुंह बंद कर सकते हैं।
एक बार एक मास्टर ने लड़कों से कहा कि कोई महत्वपूर्ण लड़ाई बताओ।
एक लड़के ने कहा, मेरे डैडी ने कहा है, घर की बातें बाहर नहीं बतानी चाहिए।
पति गुस्से में था। उसने पत्नी से कहा, मैं सारे घर में आग लगा दूंगा।
बच्चा हंसते हुए बोला, आपको चूल्हे में तो आग लगानी आती नहीं, इसी पर
तो मां नाराज हो रही हैं, और आप सारे घर में आग कैसे लगा देंगे, जरा मैं भी सुनूं।
बच्चे चीजें सीधी देखते हैं, साफ देखते हैं कि चूल्हा जलता नहीं इनसे,
और घर में आग लगाने की बात कर रहे हैं! चूल्हा ही जल जाता तो झगड़ा ही क्यों खड़ा होता? मां इसीलिए तो नाराज हो रही हैं कि चूल्हा नहीं जला पाए।
एक बच्चा दूसरे सेः तुम्हारे पिताजी क्या काम करते हैं?
दूसराः लोगों में सुख-दुख बांटते हैं।
पहलाः अरे, क्या वे भगवान हैं?
दूसराः नहीं, पोस्टमैन हैं।
एक अध्यापक ने पूछा, घटना व दुर्घटना में फर्क समझाओ।
बच्चे ने कहा, अगर विद्यालय में आग लग जाए, तो वह घटना होगी। और अगर आप
आग में बच जाएं, तो वह दुर्घटना होगी।
छोटा लड़का पहले दिन स्कूल गया। वहां से लौट कर आया तो मां ने पूछा, कैसा लगा? स्कूल कैसा लगा, बेटा?
ठीक था। लेकिन मम्मी, हमारे मास्टरजी बड़े मूर्ख हैं, उन्हें कुछ नहीं आता; हर बात बच्चों से पूछते हैं।
छोटे बच्चों को अगर तुम गौर से निरीक्षण करो तो तुम उनमें एक स्पष्ट प्रतिभा पाओगे; एक सूझ-बूझ पाओगे; एक मौलिकता पाओगे। लेकिन हम इस मौलिकता को मार डालते हैं। हम इस मौलिकता को सहारा नहीं देते, हम इसको पोषण नहीं देते; हम इसकी हत्या कर देते हैं। अगर इस मौलिकता को पोषण मिले तो इस दुनिया में इतना सौंदर्य हो सकता है, इतने अदभुत व्यक्ति हो सकते हैं... और प्रत्येक व्यक्ति के फूल अलग-अलग होंगे।
मगर हम सबको तोड़-मरोड़ कर, यंत्रवत, एक जैसा बना देते हैं। हमारी पूरी फिक्र इस बात की है कि किस तरह हम सबको एक सांचे में बिठा दें, एक सांचे में ढाल दें! हमारे स्कूल और विद्यालय और विश्वविद्यालय अभी विद्यापीठ कहलाने योग्य नहीं हैं। अभी तो वे फैक्टरियां हैं जहां हम आदमियों को मशीनों में ढालते हैं। अभी वहां हम चेतना को जन्म नहीं देते। अभी हम चेतना की हत्या करते हैं वहां। अभी वहां हम जहर निर्मित करते हैं।
मगर जहर को हमने इतने अच्छे नाम दे रखे हैं कि हमें भी पता नहीं चलता, औरों को भी पता नहीं चलता कि यह जहर है। जब तुम बच्चों को कहते हो कि प्रथम आना, तो तुम उन्हें महत्वाकांक्षा सिखा रहे हो; तुम उन्हें युद्ध सिखा रहे हो; तुम उन्हें अहंकार सिखा रहे हो। एक तरफ तुम उनसे कहते हो कि प्रथम आना और दूसरी तरफ तुम उनसे कहते हो कि विनम्रता सीखो! तुम विरोधाभास भी नहीं

देखते। एक तरफ कहते हो अहंकार बुरी चीज है, और दूसरी तरफ कहते हो कि महत्वाकांक्षा अगर नहीं होगी तो जीवन में विकास कैसे करोगे!
मेरी यह बात स्कूल के दिनों से ही कभी समझ में नहीं आई।
मेरे एक शिक्षक ईसाई थे। और धार्मिक ईसाई थे, नियम से चर्च जाते थे। मेरे गांव में ज्यादा ईसाई नहीं थे। और एक ही चर्च था। और चार-छह ईसाई परिवार थे। उनसे मैंने पूछा कि आप बाइबिल पढ़ते हैं, बाइबिल में जीसस ने कहा हैः धन्य हैं वे जो अंतिम होंगे, लेकिन कक्षा में आप यह व्यवहार नहीं करते। आप कैसे ईसाई हैं? जो अंतिम बैठे हैं वे धन्य हैं या जो प्रथम पंक्ति में बैठे हैं वे धन्य हैं?
उन्होंने मुझसे कहा कि देखो, ऊलजलूल बातें नहीं पूछा करो।
इस बात को मैं भूल ही नहीं सकता कि यह आदमी, जो बाइबिल पढ़ता है, चर्च जाता है, यह इस बात को ऊलजलूल कहता है! मैंने कहा, अगर यह बात ऊलजलूल है, तो बाइबिल में आग लगा दो। मैं यह जानना चाहता हूं कि मैं कहां बैठूं? आप साफ-साफ कर दो। यूं मैं पीछे ही बैठना पसंद करता हूं। क्योंकि पीछे बैठने के कई फायदे हैं।
उन्होंने कहा, तुम्हारा मतलब?
मैंने कहा, पीछे बैठ कर ताश खेलो, उपन्यास पढ़ो, कंकड़-पत्थर फेंको, लोगों के कपड़े खींचो... । मैं तो जीसस की बात का मतलब बिल्कुल ठीक समझ गया कि धन्य हैं वे जो अंतिम हैं! मगर मुझे आप आगे बैठने को कहते हैं!
वे कहते, इसीलिए तो हम आगे बैठने को कहते हैं कि तुम बिल्कुल आंख के सामने होने चाहिए।
तो फिर मैंने कहा कि वह वचन जीसस का क्या होगा?
फिर वे बोले कि ऊलजलूल बातें न करो!
सारी शिक्षा आदर किसको देती है? जो प्रथम आ जाए उसको आदर, उसको सम्मान, उसको प्रतिष्ठा, उसको गोल्ड मेडल। और आश्चर्य की बात तो यह है कि अब जैसे अभी कलकत्ता की मदर टेरेसा को नोबल प्राइज मिली, तो मदर टेरेसा भी इनकार न कर सकी नोबल प्राइज लेने से! ऐसी निष्णात ईसाई होकर भी यह पुरस्कार लेने से इनकार नहीं कर सकी। और यह पुरस्कार लेने के बाद जगह-जगह सम्मान शुरू हो गए। तब से साल भर बीत चुका है, सम्मान चल रहे हैं। सेवा वगैरह तो अब भूल ही गई। अब सेवा वगैरह की फुरसत कहां है! आज लखनऊ में सम्मान है, कल कलकत्ते में सम्मान है, परसों मद्रास में सम्मान है, फिर दिल्ली में सम्मान है, फिर हिंदुस्तान के बाहर। जगह-जगह सम्मान हो रहे हैं। अब सेवा वगैरह का तो सवाल ही कहां है! वह नोबल प्राइज क्या मिली, अब सारे विश्वविद्यालयों को डी.लिट. देना है, और सारे लोगों को सम्मान बांटने हैं, और भारत-रत्न की उपाधि देनी है। अब तो सम्मान ही सम्मान लेने में समय गुजरना है।
और जीसस कहते हैंः धन्य हैं वे जो अंतिम हैं।
अगर ईसाई होती यह महिला, तो इसे कहना था कि हमें नोबल प्राइज नहीं चाहिए। इससे तो ज्यां पाल सार्त्र कहीं ज्यादा ईमानदारी का काम किया। जब उसे नोबल प्राइज मिली, वह हालांकि ईसाई नहीं था, नास्तिक था... मगर इसीलिए तो मैं तुमसे कहता हूं कि अक्सर नास्तिक आस्तिकों से ज्यादा ईमानदार होते हैं। तुम्हारे तथाकथित आस्तिक बिल्कुल बेईमान होते हैं। उनकी सबसे बड़ी बेईमानी तो यह होती है कि वे नास्तिकता की आग से गुजरे ही नहीं और आस्तिक हो गए! उन्होंने नहीं कहने की कभी क्षमता ही नहीं जुटाई और उन्होंने हां कह दिया! उनकी हां लचर-पचर तो होगी ही। उनकी हां में कोई जान तो हो नहीं सकती।
ज्यां पाल सार्त्र को जब नोबल प्राइज मिली तो उसने इनकार कर दिया। सधन्यवाद नोबल प्राइज वापस लौटा दी। और उत्तर में जो उसने बात कही वह बिल्कुल ठीक कही। उसने कहा कि मैं नहीं मानता हूं, जो स्थापित समाज है उसके किसी मूल्य में मेरा भरोसा नहीं है, इसलिए इस स्थापित समाज के द्वारा किसी तरह का सम्मान स्वीकार करना समझौता होगा। मैं एक नया समाज चाहता हूं। मैं इस समाज का दुश्मन हूं; इसलिए इस समाज से किसी तरह का सम्मान लेना, रिश्वत लेना होगा। इस समाज से सम्मान लेना और फिर इसका विरोध करना, दोनों में संगति नहीं होगी। इसलिए क्षमा करें, मैं यह पुरस्कार नहीं ले

सकता हूं। यह पुरस्कार आप उन चापलूसों को दें जो स्थापित न्यस्त स्वार्थों के हित में हैं।
इतनी भी हिम्मत मदर टेरेसा न कर सकी। और यह जीसस की अनुयायी है, गले में क्रॉस टंगा हुआ है! मगर इस क्रॉस का कोई मूल्य नहीं है, इसका कोई अर्थ नहीं है। प्रथम होने की दौड़ में अगर मौका मिल जाए, तो कौन पीछे होना चाहेगा? यह मदर टेरेसा मर कर भी अगर साथ ले जा सके नोबल पुरस्कार का तगमा, तो लेकर पहुंचेगी स्वर्ग। परमात्मा को दिखाएगी कि मैं कोई साधारण महिला नहीं हूं, यह देखो नोबल पुरस्कार का तगमा लेकर आई हूं। किसी और ईसाई सेवक को नहीं मिला, सिर्फ मुझको मिला है। मैं सब सेवकों में प्रथम हूं। किसी पोप को भी नहीं मिली नोबल प्राइज, और मुझे मिली है। मुझे स्थान विशेष मिलना चाहिए अब स्वर्ग में।
मुझे ज्यां पाल सार्त्र की बात में अर्थ मालूम पड़ता है, संगति मालूम पड़ती है, ईमानदारी मालूम पड़ती है। यद्यपि वह नास्तिक है--न वह ईश्वर में मानता है, न वह मानता है कि जीवन का कोई अर्थ है, न वह मानता है कि कोई आत्मा है जो बचेगी--मगर फिर भी उसकी हिम्मत, उसका साहस, उसका बल! एक बात उसको साफ दिखाई पड़ती है कि जिस समाज के सारे मूल्यों का मैं विरोध करता हूं, उस समाज से कोई सम्मान मैं कैसे स्वीकार कर सकता हूं!
जैसे मुझे कोई भारत-रत्न की उपाधि दे, तो मैं कैसे स्वीकार कर सकता हूं! असंभव! क्योंकि मैं देशों के विरोध में हूं। मैं किसी देश का रत्न नहीं हो सकता। कंकड़-पत्थर होना ठीक। मैं किसी देश का रत्न नहीं हो सकता, क्योंकि वह तो फिर राष्ट्रीयता में मान लेना हो जाएगा। वह तो राष्ट्रीयता को स्वीकार कर लेना हो जाएगा। मैं तो मानता नहीं कि पृथ्वी को विभाजित होना चाहिए। मैं तो मानता नहीं कि पासपोर्ट होने चाहिए। मैं तो मानता नहीं कि लोगों को एक-दूसरे देश में जाने में कोई बाधा होनी चाहिए। प्रत्येक देश का विधान कहता हैः आवागमन की स्वतंत्रता। मगर कुछ स्वतंत्रता वगैरह क्या खाक है! क्या आवागमन की स्वतंत्रता है? अपने ही देश में आवागमन की स्वतंत्रता नहीं होती। आसाम में ही जो भारतीय रह रहे हैं, वे भी विदेशी हैं! भारत के ही लोग, मगर वे भी विदेशी हैं, क्योंकि एक खास तारीख के बाद वे वहां पहुंचे। उसके पहले पहुंचते तो देशी होते, उसके बाद पहुंचे तो विदेशी हैं!
मुझे कोई नोबल प्राइज दे, मैं स्वीकार नहीं कर सकता।
सच तो यह है कि जिस व्यक्ति ने नोबल प्राइज स्थापित की, तुम्हें पता
है वह कौन था? जिस आदमी ने नोबल प्राइज शुरू की, वह आदमी दुनिया का सबसे बड़ा अस्त्र-शस्त्रों का उत्पादक था--नोबल। पहला महायुद्ध उसके ही अस्त्र-शस्त्रों से लड़ा गया। वह दुनिया का सबसे बड़ा बमों का बनाने वाला आदमी था। यह सारा धन जो नोबल प्राइज में मिल रहा है लोगों को, उसने बमों और हत्याओं और युद्धों से कमाया था। फिर उसे पश्चात्ताप होने लगा बुढ़ापे में कि यह मैंने क्या किया! उसे अपने हाथ खून से रंगे हुए मालूम पड़े। उसे दिखाई पड़ा कि मैंने जीवन भर जो किया है, वह पाप है निहित, निश्चित रूप से पाप है। मेरा सारा धन खून से निचुड़ा हुआ है। लाखों लोग मेरे कारण मरे और कटे हैं। अब मैं क्या करूं! वह मरते वक्त घबड़ाया होगा कि अब शायद जवाब देना पड़ेगा। परमात्मा का आमना-सामना मैं कैसे करूंगा!
तो प्रायश्चित्त करने के लिए उसने नोबल प्राइज शुरू की। सारी संपत्ति
को उसने ट्रस्ट बनाया। और निश्चित ही उसने काफी संपत्ति इकट्ठी की होगी। प्रत्येक वर्ष हर विषय में नोबल प्राइज दी जाती है। और एक-एक नोबल प्राइज... करीब अठारह लाख रुपया एक-एक नोबल प्राइज के साथ मिलता है। और उसने इंतजाम ऐसा किया है कि यह सदा चलता रहेगा। यह सिर्फ ब्याज से चल रहा है! ये करोड़ों रुपए जो प्रतिवर्ष बांटे जाते हैं, यह सिर्फ ब्याज है उसकी संपत्ति का।
उसने तो प्रायश्चित्त किया है, मगर किसी ईसाई में तो यह हिम्मत होनी चाहिए कि इस खून से भरे हुए पैसे को, इस लहूलुहान हाथ से दिए गए पैसे को लेने से इनकार कर दे। और ऐसा नहीं है कुछ कि प्रायश्चित्त करके नोबल ने अपने कारखाने बंद कर दिए। कारखाने जारी रहे।

यही तो मजा है तथाकथित धार्मिक लोगों का। गंगा भी नहा आते हैं, पाप से छुटकारा भी हो गया, जब पाप से छुटकारा हो गया तो फिर पाप करने के लिए छूट हो गई। अब फिर करो, फिर नहा लेना गंगा। कारखाने भी जारी रहे, बम भी बनते रहे, वे उसके बेटे सम्हाल रहे हैं, वे उसके बच्चे सम्हाल रहे हैं, और उसने जो कमाई की थी, उसने उसका एक ट्रस्ट भी बना दिया, उससे पुरस्कार भी बंटते रहेंगे। शांति का पुरस्कार भी मिलता है, सेवा का पुरस्कार भी मिलता है, वैज्ञानिक शोधों के लिए पुरस्कार मिलता है! और मिलता है किसकी संपत्ति से? इस सदी के सबसे ज्यादा बड़े हत्यारे आदमी की संपत्ति से। उसने तो गंगा नहा ली, ठीक। मगर गंगा नहा लेने से भी कृत्यों में कोई भेद नहीं पड़ता। वही के वही कृत्य जारी रहते हैं।
मगर ईसाई में भी कहां इतनी हिम्मत होती है। और उससे भी कहो, तो वह भी कहेगा, क्या बकवास लगा रखी है!
छोटे बच्चों में स्पष्टरूपेण देखने की क्षमता होती है, आर-पार देख सकते हैं।
एक छोटा-बच्चा चर्च से घर आया। उसकी मां ने पूछा, आज पादरी ने क्या पढ़ाया?
उस बच्चे ने कहा, आज पादरी ने बताया मोजेज के संबंध में कि जब मोजेज इजिप्त से अपने अनुयायियों को लेकर आया और बीच में समुद्र पड़ा, तो उसने अपने सारे इंजीनियर लगा दिए। बड़ी-बड़ी दीवालें उठाईं इंजीनियरों ने, समुद्र को दो हिस्सों में काट दिया। दुश्मन पीछा कर रहा है। और उसकी सेनाएं और उसके मित्र, सब उन दीवालों के बीच से गुजर कर समुद्र को पार कर गए। और जैसे ही वे इस पार हुए और दुश्मन की सेनाएं पीछे आईं कि दीवालें एकदम गिर गईं। इस ढंग से दीवालें बनाई गई थीं कि इंजीनियरों ने बटन दबाया कि दीवालें गिर गईं, समुद्र अपनी जगह हो गया। दुश्मन उस पार और मूसा और उसके अनुयायी इस पार।
मां ने कहा कि सच में तेरे पादरी ने यह कहानी तुझे सुनाई है?
उसने कहा, मम्मी, अब तुमसे क्या कहना, जिस ढंग से उसने सुनाई अगर मैं तुम्हें सुनाऊंगा, तो तुम मानोगे ही नहीं। इसलिए मैं उसको वैज्ञानिक बना कर सुना रहा हूं, ताकि तुम्हारी समझ में आ सके और तुम मान सको। उसने तो बिल्कुल ऊलजलूल... गप्प मार रहा था। वह तो कह रहा था कि मोजेज आए, न इंजीनियर, न स्थापत्य के जानकार, न कोई, न कोई, एकदम चमत्कार हुआ और परमात्मा ने समुद्र को दो हिस्सों में बांट दिया। यह कहीं हो सकता है? और वे निकल गए बीच में से, समुद्र खुद खड़ा रहा कटा हुआ। और जब वे निकल गए तो परमात्मा ने दूसरा चमत्कार किया, समुद्र को वापस जोड़ दिया। उसने तो ऐसी झूठी कहानी सुनाई थी, मगर यह तो मैं तुमको ढंग से सुना रहा हूं।
बच्चे देख लेते हैं कि कहां की बात झूठ हो रही है, कहां तक बात सच हो रही है। छोटे बच्चों से कहो कि जीसस का जन्म हुआ था कुंआरी कन्या से। वे भी चकित होकर सुनते हैं यह बात।
एक बच्चा अपने बाप से पूछ रहा था कि मैं कहां से आया? बाप बैठा अपना हुक्का ग.ुडगुड़ा रहा है बाहर। इससे छुटकारा पाने के लिए... मां-बाप ने बच्चों से छुटकारा पाने के लिए खूब कहानियां गढ़ी हुई हैं। कोई कहता है परमात्मा छप्पर से डाल देता है। कोई कुछ, कोई कुछ।... सामने से ही एक बगुला उड़ा जा रहा था। बाप ने कहा, यह बगुला देखता है, बगुला ही तुझे लाया।
उस लड़के ने कहा कि डैडी, इसका यह मतलब कि तुम जो हरकतें मम्मी के साथ करते हो वे ही बगुले के साथ भी करनी शुरू कर दीं! शर्म नहीं आती? अगर मम्मी को पता चल गया तो ऐसी मुसीबत खड़ी होगी! और मैं मम्मी को बताऊंगा कि तुम क्या-क्या काम में लगे हुए हो।
बच्चे भलीभांति जानते हैं। लेकिन हम बच्चों की आंखों में धूल झोंके चले जाते हैं। हम कुछ भी उनको समझाते चले जाते हैं। और सोचते हैं हम धूल झोंकने में समर्थ हो रहे हैं। बच्चे हंसते हैं। मगर जल्दी ही वे भी हमारी बेईमानी के शिकार हो जाते हैं। उन्हें भी अपनी प्रतिभा खोनी पड़ती है। मेरे गांव में मेरे पिता के एक मित्र थे--पंडित भागीरथ प्रसाद द्विवेदी। वे गांव के बड़े प्रतिष्ठित वैद्य थे। और वैद्य से भी ज्यादा, उनका घर ब्रह्मज्ञानियों का अड्डा था। वहां सत्संग चलता ही रहता था। कभी

कोई महात्मा आएं, कभी कोई महात्मा आएं; कभी करपात्री जी ठहरे हुए हैं, कभी शंकराचार्य आए हुए हैं, कभी कोई और बाबा आए हुए हैं। मतलब यह कि शायद ही कभी ऐसा होता हो कि उनका घर खाली हो। और वहां सत्संग जारी रहता। मैं भी वहां पहुंच जाता। मुझे देख कर ही वे मुझे पास बुलाते और कहते, देखो, बिल्कुल चुपचाप बैठना। कुछ प्रश्न वगैरह नहीं करना। बड़े जब हो जाओगे, तब सब समझ में अपने आप आ जाएगा। अभी प्रश्न करने की कोई जरूरत नहीं।
मगर मुझसे रहा न जाता, जब मैं बेवकूफी की बातें सुनता, तो मुझसे रहा न जाता। हालांकि वे मुझ पर गुर्राते, आंखें दिखलाते, मगर फिर मैं उनकी तरफ देखता ही नहीं, फिर तो महात्मा से मुझे जो कहना होता, कह लेता।
धीरे-धीरे उनके घर आने वाले सारे महात्मा और करीब-करीब भारत के सारे महात्मा, महात्माओं से मेरा परिचय बचपन से उन्हीं के घर हुआ, वे भी मुझे जानने लगे। वे उनसे कहते कि देखो, यह छोकरा नहीं आना चाहिए। यह आया कि यह कुछ ऐसी बात पूछेगा, पूछेगा ही, कि जिसमें झंझट खड़ी होती है। और दूसरे लोगों पर भी प्रभाव कम होता है। इसको डांटो-डपटो तो यह मानता भी नहीं। डांटने-डपटने से यह और उलटा तेजी में आ जाता है। अगर इस पर गुस्सा हो जाओ, तो यह कहता है कि यह कैसा महात्मापन है कि बस जरा से में गुस्सा आ गया। और अभी समझा रहे थे अक्रोध, और भूल ही गए, और खुद ही क्रोध में आ गए! और अभी कह रहे थे कि मनुष्य को जल में कमलवत रहना चाहिए, और अब क्या हुआ! जरा चाबी घुमाई कि भूल ही गए कि जल में कमलवत रहना है, एकदम डुबकी मार गए जल में! यह कुछ न कुछ गड़बड़ करता है।
तो वे मेरे पिता को खबर भेज देते थे कि महात्मा आए हैं आज हमारे घर में, तुम्हारे बेटे को पता न चले। मगर मैं उनके घर के सामने से दिन में दो दफे निकलता ही था।
और उनकी पत्नी महात्माओं के खिलाफ थी, स्वभावतः, क्योंकि इनकी सेवा करते-करते थक मरी थी वह। और एक से एक मूढ़ों की सेवा उसको करते-करते... । तो अगर मुझे पता भी न चले, उनकी पत्नी खबर भिजवा दे कि बेटा, तू आ जाना। लगा दे इसको ठिकाने। मैं तो कुछ कर नहीं सकती, क्योंकि वह पतिदेव के पीछे।... उनकी पत्नी महात्माओं से भी ज्यादा मेरी सेवा करती थी। मालपुए खिलाती, यह करती... कि बिल्कुल ठिकाने लगा दे इस महात्मा को। ऐसा ठिकाने लगाओ कि यह कभी आए ही नहीं वापस।
तो मैं भी उनसे कहता कि मैं क्या करूं, मुझे तो पता ही नहीं था, संदेश आपके घर से ही मिला है।
वे कहते कि भेजा होगा मेरी पत्नी ने। मैं जानता हूं उसको कि वह तेरे पक्ष में है। और वह क्यों तेरे पक्ष में है, वह भी मैं जानता हूं। वह मुझसे बदला ले रही है तेरे द्वारा।
मैंने कहा, तुम अपने महात्माओं को क्यों नहीं कहते कि जवाब क्यों नहीं देते! सत्संग का मतलब ही यह है कि जवाब दे दो। और मैं कोई कठिन सवाल नहीं पूछता, सीधे-सादे सवाल पूछता हूं।
अब एक महात्मा समझा रहे थे कि रामचंद्र जी सोने के हिरण के पीछे भागे
और तभी रावण आया और सीता को चुरा ले गया। मैंने कहा, ठहरो, तुमने रामचंद्र जी को इतना बुद्धू समझा है? उनको भी इतनी अकल नहीं है? गधे से गधे आदमी को यह अकल होती है। अगर मुझे भी--मैं निपट गंवार हूं समझो--मुझे भी अगर सोने का हिरण दिखाई पड़े, तो मैं मानूंगा नहीं कि यह सचाई हो सकती है। हिरण कहीं सोने के होते हैं? तुम अपनी ही कहो, अगर तुम्हें कहीं रास्ते पर हिरण दिखाई पड़ जाए और सोने का, तो तुम उसके पीछे जाओगे?
वे कहते, नहीं, मैं पीछे नहीं जाऊंगा।
तो मैंने कहा, तुम सोचते हो कि रामचंद्र जी तुमसे भी ज्यादा गए-बीते थे? सोने के हिरण के पीछे चले गए! सोने के कहीं हिरण होते हैं? इतनी अकल तो उनमें होनी चाहिए। अरे जो कहते हैं कि सारा जगत मृग-मरीचिका है, वे मृग की ही मरीचिका में आ गए, हद हो गई!
जवाब नहीं है तो बेचैनी खड़ी होती, पसीना छूट जाता, गुस्से में आ जाते। मेरा अपना अनुभव यही है कि छोटे बच्चों को अगर मौका मिले... । उन्हें
हम मौका ही नहीं देते। हम उन्हें डांट-डपट कर रखते हैं, अवसर ही नहीं देते, नहीं तो तुम पाओगे कि उनके पास से ताजगी और उनके पास से मौलिक सूझ-बूझ,

दृष्टि... । और हम अगर उनको सहारा दें, तो हम उनकी दृष्टि को निखार सकते हैं, उसे बलवान बना सकते हैं।
छोटे बच्चों के पास जो क्षमता है, अब तक हमारी सारी चेष्टा उसे नष्ट करने में लगी रही है, इसीलिए मनुष्य-जाति इतनी मूढ़ है, अन्यथा बुद्धों से भरी होती। और बुद्धों से भर सकती है पृथ्वी, मगर हमें काम बच्चों से ही शुरू करना पड़ेगा। और जब तक हम बच्चों की प्रतिभा को स्वीकार नहीं करते, तब तक हम मनुष्य को बदलने में समर्थ नहीं हो सकते हैं।

तीसरा प्रश्नः ओशो! आपके पास आते-आते मेरी बुद्धि खो गई है। मैं क्या करूं?

प्रेम चैतन्य! यह तो होना ही चाहिए। जो होना था, वही हुआ है। लेकिन तुम शायद मन में अपेक्षा और ही लेकर आए होओगे। मेरे पास जो लोग आते हैं प्रारंभ में, वे यही सोच कर आते हैं कि ज्ञानी होकर लौटेंगे, थोड़ा ज्ञान लेकर लौटेंगे। नये-नये लोग जो प्रश्न मुझे लिखते हैं, उनमें यही होता है कि भगवान, हमें ज्ञान दें।
ज्ञान तुम्हारे पास काफी है, जरूरत से ज्यादा है। वही तो तुम्हारे प्राण ले रहा है। सदगुरु वह है जो तुम्हारा ज्ञान छीन ले। ज्ञान तो तुम्हें दे दिया है न मालूम किन-किन ने! सब तुम्हें ज्ञान देने में लगे हुए हैं। मां-बाप दे रहे हैं, पड़ोसी दे रहे हैं, जो मिले वही ज्ञान दे रहा है। ज्ञान देने में कोई कमी है? तुम लो न लो, यह तुम्हारी मर्जी, मगर देने वाले दिए ही चले जाते हैं।
इस दुनिया में सबसे ज्यादा मुफ्त दी जाने वाली चीज सलाह है। हर कोई देता है। तुम न भी मांगो तो लोग देते हैं! तुम नहीं लोगे, यह भी जानते हैं, फिर भी देते हैं! और ऐसी सलाहें देते हैं जो उन्होंने खुद नहीं मानीं अपने जीवन में, वे भी तुम्हें दे रहे हैं सलाहें! सलाह देने में तो लोग बिल्कुल ही कृपण नहीं होते, कंजूस नहीं होते।
मगर सदगुरु सलाह नहीं देता, ज्ञान नहीं देता, बुद्धि नहीं देता-- बुद्धि छीन लेता है। जिसको तुम बुद्धि समझते हो, उसको छीन लेता है। अभी तुम्हारी बुद्धि कहां तुम्हारी है! अभी तो सब उधार है, बासी है। इसके छिन जाने पर ही तुम्हारी अपनी निजता आविष्कृत होती है। तुम्हारे भीतर अंकुरित होती है प्रतिभा। तुम्हारी मेधा बढ़नी शुरू होती है, उसमें अंकुर आते हैं, पत्ते लगते हैं, फूल खिलते हैं।
यह तो अच्छा हुआ। मगर तुम्हें अड़चन हो रही होगी, क्योंकि तुम आए कुछ
और ख्याल से, और हो गया उलटा।
सदगुरु के पास होना, है तो मामला ही उलटा। इसलिए तो जो चालाक हैं, चालबाज हैं, वे भागे-भागे रहते हैं, दूर-दूर रहते हैं, बचे-बचे रहते हैं; बचने के न मालूम कितने उपाय खोज लेते हैं, कितने बहाने खोज लेते हैं, कितने तर्कजाल बिछा लेते हैं अपने चारों तरफ।
इसीलिए तो मेरे जैसे व्यक्तियों के खिलाफ इतनी झूठी अफवाहें उड़ाई जाती हैं। वे इसीलिए उड़ानी पड़ती हैं। उनके पीछे मनोविज्ञान है। और उनको मानने वाले लोग मिल जाते हैं। मानने के पीछे भी अर्थ है। कौन उन झूठी अफवाहों को मान लेता है? वही मान लेता है जो बचना चाहता है। उन झूठी अफवाहों को मान कर वह अपने को भरोसा दिला लेता है--जाने की कोई जरूरत नहीं, ऐसे आदमी के पास क्या जाना! क्या हम पागल हैं जो ऐसे आदमी के पास जाएं!
जो आ जाता है यहां, वह गलत कारणों से आता है। अक्सर तो गलत कारणों से
ही तुम आओगे। तुम्हारे पास ठीक कारण कैसे हो सकते हैं?
रमण महर्षि से एक जर्मन प्रोफेसर ने कहा कि मैं आपके पास कुछ सीखने आया हूं, अध्यात्म सीखने आया हूं। रमण महर्षि ने कहा, फिर तुम कहीं और जाओ। अगर सीखना है, तो कहीं और जाओ। अगर भूलना हो, तो यहां रुको। जितना तुम्हें अध्यात्म आता है, वह भी यहां भुलाना हो, तो रुक जाओ। भुलाने का काम मैं करता हूं।
मेरा काम भी यही है कि तुम्हारी स्लेट पट्टी को साफ कर दूं। मैं ये जो उत्तर दे रहा हूं तुम्हें, ये तुम्हारे ज्ञान को बढ़ाने के लिए नहीं हैं, ये

तो एक कांटे से दूसरा कांटा निकाल लेने वाली बात है। एक कांटा तुम्हें लगा है, वह दूसरे कांटे से निकाल रहा हूं, फिर दोनों कांटे फेंक देने हैं।
मगर प्रथमतः प्रेम चैतन्य, यह झंझट होती है जब उलटा हो जाता है। तुम
आए कुछ सोच कर, हो गया कुछ। तुम आए थे सोच कर कि आवागमन से छुटकारा पाना है, और यहां आकर तुम्हें पता चला कि यह बात ही मूढ़तापूर्ण है। छुटकारा किसी चीज से नहीं पाना है। छुटकारा पाने का ख्याल ही मौलिक रूप से जीवन-विरोधी है। तुम आए थे ज्ञान इकट्ठा करने कि थोड़े ज्ञानी होकर लौटोगे, थोड़े पंडित होकर लौटोगे। यहां आकर पता चला कि पांडित्य मूढ़ता को छिपाने का उपाय है। पंडित से तो बेहतर है अज्ञानी। तो स्वभावतः एकदम घबड़ाहट होती है कि यह तो सब उलट-पुलट हुआ जा रहा है!
चंदूलाल को उदास देख कर नसरुद्दीन बोला कि क्या बात है भई, बड़े उदास
लग रहे हो!
चंदूलाल बोले, क्या बताऊं यार, न ही पूछो तो अच्छा है। आजकल तुम्हारी भाभी के मोटापे की वजह से बहुत परेशान हो गया हूं। बात तो यहां तक बढ़ गई है कि सड़क पर उसके साथ निकलता हूं तो लोग कहने लगते हैं कि भाई चंदूलाल, माताजी को कहां ले जा रहे हो? यह सब सुन कर तो मैं शर्म से गड़ जाता हूं। दुनिया भर के यम-नियम, व्रत-उपवास, जो भी बन सका किया, मगर उसका मोटापा है कि कम होने का नाम ही नहीं लेता। और जब से उसे झाडूवाले बाबा से झड़वाया है, तब से तो और भी मोटी होनी शुरू हो गई है। अब तो तुम्हारा ही सहारा है। यदि तुम्हें इस संबंध में कुछ पता हो तो बताओ।
नसरुद्दीन कुछ क्षण तो आंख बंद किए सोचता रहा, फिर बोला, ऐसा करो, तुम
एक महीने के लिए उन्हें हॉर्स-राइडिंग करवाओ। खुदा के फजल से शायद दुबली हो जाएं।
एक महीना बाद चंदूलाल जाते हुए दिखे तो नसरुद्दीन ने उन्हें रोक कर पूछा, क्यों भाई चंदूलाल, कुछ हुआ?
चंदूलाल बोले, हां मित्र, बिल्कुल सूख कर आधी रह गई है। नसरुद्दीन तो प्रसन्नतापूर्वक बोले कि देखो, मैंने कहा था न... चंदूलाल बीच में ही बात काट कर बोले कि मियां, मैं तुम्हारी भाभी की नहीं, घोड़ी की बात कर रहा हूं! बिल्कुल सूख कर आधी रह गई है। भाभी तो जैसी थीं, उससे दोगुनी हो गई हैं। जब उलटा हो जाएगा, तो तुम चौंकोगे ही, हैरानी तो तुम्हें होगी ही। तुम क्या सोच कर आए और क्या हो गया!
इसलिए पूछते होः "अब मैं क्या करूं?"
अब मत पूछो। बुद्धि खो गई, अब यह कर्तापन भी जाने दो। इतना बड़ा विराट जिस ऊर्जा से चल रहा है, उसी ऊर्जा के अंग तुम हो, उसको ही चलाने दो, तुम्हें भी चलाने दो। अब कहो कि जो तेरी मर्जी! जो करवाए, वह करो। खुद कर्ता न रहो। बांस की जैसे पोंगरी होती है पोली, ऐसे हो जाओ। गीत गाए--जो गाए--गुजर जाने दो गीत उसका।
संन्यास का यही अर्थ है, प्रेम चैतन्य। अपने को खो देना और परमात्मा
के हाथों में इस तरह छोड़ देना कि जो करवाए उससे ही राजी, जो करवाए वही शुभ, वही सुंदर। तुम चकित होओगे, अपूर्व आनंद की वर्षा हो जाएगी, प्रसाद ही प्रसाद के फूल खिल जाएंगे, ऐसी सुगंध उठेगी, ऐसा संगीत जगेगा तुम्हारे भीतर कि तुम उसकी कल्पना भी नहीं कर सकते। यह बुद्धि-अतीत मामला है। यह कर्ता के पार की बात है। यह तुम्हारे हाथ की बात नहीं है, यह विराट के साथ अपने को एक कर लेने का राज है। लहर अपने को सागर से अलग समझे कि बस उपद्रव में पड़ी और सागर से अपने को एक जाना कि सब उपद्रव शांत हुए, समाप्त हुए। अच्छा हुआ तुम्हारी बुद्धि खो गई। धीरे-धीरे तुम भी गलोगे और खो जाओगे। यहां अगर बने ही रहे, भाग न गए, तो निश्चित खो जाओगे। और तब जो शेष रह जाता है, वही परमात्मा है।
इसलिए तो पलटू ने कहा न कि मैं पहले ही सचेत किए देता हूं कि दीवाल कहकहा, इस पर चढ़ कर मत झांकना--मत कोई झांकन जाय--क्योंकि जिसने भी झांका, वह खो गया। खोने की हिम्मत हो, तो कोई झांके। मिटने की हिम्मत हो, तो कोई झांके। मगर मिटने में कोई मिटता थोड़े ही है। वस्तुतः मिटने में ही पहली बार तुम होते हो। बूंद जब मिट जाती है तो सागर हो जाती है।

खो गई बुद्धि, अच्छा हुआ। यूं थी भी तो क्या कर लेते? क्या कर लिया था बुद्धि से? क्या पा लिया था? दुख ही देती थी। कांटे की तरह गड़ती थी, चुभती थी। और भी कुछ बचे हों कांटे, जाने दो।
अहंकार बचा है अभी भी, क्योंकि पूछ रहे होः "अब मैं क्या करूं?"
अब यह मैं भी जाने दो। अब यह कर्ता भी जाने दो। अब चल ही पड़े तो क्या रुकना! अब चल ही पड़े तो क्या पीछे लौट कर देखना है!

चौथा प्रश्नः ओशो! उस फल दी मैंनूं सख्त जरूरत है, जो कल आप सीता मैया
और फली भाई को देने के लिए मा लक्ष्मी से कह रहे थे।
सदगुरु साहब, तुसी मैंनूं क्यों भूल गए?

संत महाराज! मुझे क्या पता कि तुम भी अब वृद्धावस्था की अवस्था में आ
गए हो। अच्छा किया तुमने बता दिया।
सीता मैया ने तो पत्र लिखा है कि भगवान, आपने कहा, उसके पहले ही मैंने
वह फल खा लिया है। और जब से वह फल खाया है, बस ऊपर-ऊपर से बूढ़ी दिखती हूं, भीतर तो बच्ची जैसी हो गई हूं।
और यह बात सच है। नाचती-फुदकती रहती हूं। सीता मैया को तुम देखोगे तो तुम मानोगे यह बात कि नाचती-फुदकती रहती है। और फली भाई भी खा चुके हैं, कहें कि न कहें! ये राज की बातें हैं, कह देनी जरूरी भी नहीं हैं। सीता मैया नहीं रोक पाईं, कह गईं।
स्त्रियों से कुछ बात छिपती नहीं। इसलिए कहते हैं जो बात पूरे गांव में फैलानी हो, किसी एक स्त्री को बता दो। बस फिर तुम चिंता छोड़ो, चौबीस घंटे में पूरे गांव में अपने आप फैल जाएगी। अखबार में छपवाने की भी जरूरत नहीं, एक स्त्री को बता देना पर्याप्त है। हां, बताते वक्त इतना जरूर कह देना कि बाई, किसी और को न बताना। फिर तो निश्चित ही समझो, गारंटीड है मामला। अखबार में कोई पढ़े न पढ़े विज्ञापन!
अब फली भाई भी खा लिए हैं, मगर चुप। पुरुष छिपा सकता है बातों को। चुप्पी साधे हैं। कुछ कह ही नहीं रहे। मुस्कुरा लेते हैं बैठे-बैठे। यहीं सामने बैठे मुस्कुरा रहे हैं कि ये सीता मैया ने हमारा भी राज खोल दिया। संत महाराज, तुम सीता मैया से मिलो। उसे पता है कि कौन सा फल खाना है। इसीलिए तो आदमी ने कपड़े ईजाद किए। अगर कपड़े न होते तो बड़ा मुश्किल हो जाता। अगर कपड़े न होते... ।
स्वामी अगेह भारती ने सुझाव दिया है कि भगवान, यह शुभ होगा, सुंदर होगा कि जो लोग भी आएं, वे कपड़े दरवाजे पर ही छोड़ दें और सभा में दिगंबर होकर बैठें। तो ये छुरा इत्यादि फेंकने वाले, छुरा वगैरह नहीं ला सकेंगे। बात तो बड़े पते की है। यूं अगेह भारती थोड़े झक्की हैं, मगर कभी-कभी पते
की बात कह देते हैं। मुझे तो बात जंची। और मजा आ जाएगा। अखबारों में तहलका मच जाएगा। सोचेंगे अगेह, विचारेंगे इस पर। मामला ठीक है, बस गड़बड़ यह हो जाएगी कि अब जैसे अगर यह बात हो गई होती, तो फली भाई और सीता मैया का जब नाम लिया तो मैंने संत महाराज का भी नाम लिया होता--कपड़े अगर न होते। कपड़े की भ्रांति से मैं समझा कि संत महाराज अभी काफी दूर हैं बुढ़ापे से। देखा, कपड़े कैसी भ्रांति पैदा कर देते हैं!
चंदूलाल एक महिला को अपना बगीचा घुमा रहे थे। महिला बड़ी बेचैन थी। सर्दी की सुंदर सुबह, मगर उसको पसीना आ रहा था, क्योंकि चंदूलाल की पतलून के बटन खुले हुए थे। और वह महिला परेशान थी कि कहीं और कोई न आ जाए। और कहे तो चंदूलाल से क्या कहे। और तभी देखा कि तीन-चार आदमी दरवाजे से प्रवेश किए। उस महिला ने कहा अब मारे गए, अब तो कहना ही पड़ेगा। तभी उसने कहा कि कोई न कोई तरकीब निकालनी पड़ेगी। महिलाएं ईजाद करने में होशियार होती हैं। और बातें ही ईजाद करनी हों, तो उनका कोई मुकाबला नहीं। उसने कहा कि सेठ चंदूलाल, आपके गैरेज का दरवाजा खुला हुआ है।
मगर चंदूलाल भी सिद्धपुरुष हैं। उनकी अकल में कुछ न घुसा। अकल हो तो कुछ घुसे। वे बोले, गैरेज का दरवाजा खुला हुआ है! तो मेरी नयी मर्सिडी.ज गाड़ी दिखाई पड़ रही है कि नहीं?

उस महिला ने कहा, धत तेरे की! असली मर्सिडी.ज गाड़ी? अरे वही एम्बेसेडर गाड़ी दिखाई पड़ रही है जिसमें बाबा आदम अदन के बगीचे से निकले थे, और जिसके चारों टायर पंक्चर, और जिसको बैलगाड़ी भी कहने में शर्म आए। कहां की मर्सिडी.ज लगा रखी है!
तब उनको होश आया कि माजरा क्या है! जल्दी से अपने बटन बंद किए।
अब संत महाराज, तुमने खुद ही कह दिया! कहते हो कि "सदगुरु साहब, तुसी मैंनूं क्यों भूल गए?"
ये कपड़ों की बदौलत भैया। मगर कुछ बात नहीं, अभी कुछ बिगड़ा नहीं, सीता मैया से मिलो।
ध्यान ही वह फल है जो ऐसा ताजा कर जाए, जो सदा के लिए युवा कर जाए। ध्यान को जिसने चखा, फिर न मौत है, न बुढ़ापा है। शरीर तो बूढ़ा होगा और शरीर तो मरेगा भी--वह तो शरीर का गुणधर्म है, उससे कुछ लेना-देना नहीं--लेकिन तुम न कभी जन्मे हो और न तुम कभी मरोगे। तुम न कभी बच्चे थे, न तुम कभी जवान हुए, न तुम कभी बूढ़े होओगे। तुम तो शाश्वत हो, तुम तो अजर-अमर हो। मगर तुम्हारे इस होने का स्वाद ध्यान के फल से ही लगता है!
ध्यान का फल चखो। सीता मैया चख रही हैं, फली भाई चख रहे हैं, और लोग चख रहे हैं। और संत महाराज, चख तो तुम भी रहे हो, कह नहीं रहे। लोभी हो। चख भी रहे हो और सोचा होगा कि शायद कहीं और भी तो फल नहीं हैं इससे, नहीं तो हम यह ध्यान को ही चखते रहें और लोग आगे और भी कुछ चख रहे हों--समाधि वगैरह चख रहे हों--तो पूछ ही लेना उचित है!
नहीं, तुम ठीक रास्ते पर चल रहे हो। इसी रास्ते से वह क्रांति घट जाएगी जहां सब ताजा हो जाता है, सदा के लिए ताजा हो जाता है; फिर कभी बासा होता ही नहीं।

आखिरी प्रश्नः ओशो! मैं ज्योतिष छोड़ कर कवि हो जाऊं तो कैसा रहे?

पंडित कृष्णदास शास्त्री! तुम कोई झंझट में ही पड़ने को आतुर हो, तो तुम्हारी मर्जी। जब ज्योतिष ही नहीं चल रहा, तो कविता क्या खाक चलेगी! ज्योतिष तो, इतने मूढ़ हैं कि चल ही जाना चाहिए। अगर वह भी नहीं चल रहा, तो कविता का मामला तो बहुत मुश्किल है। तुम्हें इस देश में होने वाले कवि- सम्मेलनों का कुछ अंदाज नहीं, तो एकाध-दो कवि-सम्मेलनों में जाकर देख आओ। लोग सड़े टमाटर फेंकते हैं कवियों के ऊपर, केले के छिलके फेंकते हैं, सड़े केले फेंकते हैं, अंडे फेंकते हैं, जूते घिसते हैं जब लोग कविताएं पढ़ते हैं फर्श पर, हू-हल्ला मचाते हैं, बंद करो का शोरगुल करते हैं। और कवियों को इसी के लिए तो आयोजक पैसा देते हैं कि कुछ भी होता रहे, तुम सुख-दुख में समभाव रखना, तुम तो गीता की स्थितप्रज्ञ की अवस्था साधे रखना। और कवि भी हैं कि डटे रहते हैं। जब पैसा लिया है तो डटे रहना पड़ता है--कितने ही पिटें, कितने ही कुटें, कुछ भी हो जाए।
ज्योतिष नहीं चल रहा है, अब तुम्हें कविता की सूझी! तुम कुएं से बचो तो खाई में गिरोगे। भले आदमी, कोई काम की बात करो। कविता से क्या हाथ लगेगा? कविता कुछ ऐसी चीज भी नहीं है कि जो चाहे कर ले। कवि पैदा होते हैं, बनाए नहीं जाते। बने-बनाए कवि कवि नहीं होते, केवल तुकबंद होते हैं। तुकबंदी कविता नहीं है। सच्ची कविता तो जीवन की एक नयी शैली का नाम है--ऐसी जीवन की शैली जिसमें सौंदर्य हो, प्रसाद हो, अहोभाव हो। फिर चाहे तुम कविता लिखो या न लिखो, तुम्हारा उठना काव्य हो, तुम्हारा बैठना काव्य हो। कवि-सम्मेलन में
संचालक ने सबसे पहले सिने गीतकार को बुलाया।
उन्होंने गाया--
मेरी मां है जब बीमार, भला मैं कैसे गाऊं!
भीड़ में बैठा हुआ एक स्थानीय कवि चिल्लाया--
भइया, जब अम्मा बीमार थी तो तू कवि-सम्मेलन में क्यों आया? गीतकार ने गीत को आगे बढ़ाया--
घर में टाट भी नहीं, टूटी खाट भी नहीं।
आवाज आई--

यार, तू गीत सुना रहा है या घर की इकोनॉमिक कंडीशन बता रहा है? तंग आकर गीतकार ने दूसरा गीत शुरू किया--
मेरे देश को बचा लो, मेरी जान ले लो रे।
अनिमंत्रित लोकल कवि चिल्लाया--
मेरी नाक को बचा लो, मेरे कान ले लो रे।
मुझे गीत न सुनाओ, मेरे प्राण ले लो रे।
पब्लिक की फरमाइश पर दूसरा कवि आया
और उसने अपना कारवां शुरू किया-- स्वप्न झरे फूल से, मीत चुभे शूल से लुट गए सिंगार सभी बाग के बबूल से
और हम खड़े-खड़े बहार देखते रहे
कारवां गुजर गया गुबार देखते रहे।
भांग खाए हुए एक कवि ने पैरोडी बनाई--
चोर माल ले गए, लोटे-थाल ले गए
मूंग और मसूर की सारी दाल ले गए
और हम डरे-डरे, खाट पर पड़े-पड़े
सामने खुले हुए किवाड़ देखते रहे।
संचालक ने तब एक कवयित्री को बुलाया और कहा--
आप आइए और कवि-सम्मेलन जमाइए।
कवयित्री शुरू हुईं, बोलीं--
एक मुद्दत से हूं मैं तुम्हें अपने दिल में बसाए हुए।
भीड़ में से एक श्रोता चिल्लाया--
कितने दिन हो गए जी तुमको नहाए हुए?
कहां की झंझट में, पंडित कृष्णदास शास्त्री, तुम पड़ना चाहते हो? कुछ काम की बात पूछो। और झंझट ही लेनी हो तो संन्यासी हो जाओ, झंझटों पर झंझटें आएंगी, मुसीबतों पर मुसीबतों के द्वार खुल जाएंगे। और अब यहां आ गए हो... पहले मुझसे पूछा कि ज्योतिष छोड़ देने का मन होता है! अब पूछते हो--क्या कविता करने लगूं?
न मैं कोई ज्योतिषी हूं, न मैं कोई कवि हूं। मैं तो एक ही उपद्रव जानता हूं--संन्यास! संन्यासी हो जाओ, फिर सब मुसीबतें अपने आप टूट पड़ेंगी। क्या छोटे-मोटे खड्डों में गिरते हो--कविता, ज्योतिष! मैं तुम्हें समुंदर में ले चलता हूं, कि डूबे सो डूबे, फिर लौटना नहीं है। जैसे कोई नमक की पुतली सागर की थाह लेने जाए और जैसे-जैसे भीतर डूबे वैसे-वैसे गलती जाए, कभी लौटेगी नहीं खबर देने कि थाह मिली या नहीं। थाह मिलते-मिलते ही नमक की पुतली सागर में एक हो जाएगी। ऐसा ही संन्यास है।
एक उपद्रव से छूटना चाहते हो तो दूसरे उपद्रव में! मैं तुम्हें रास्ता देता हूं मिट जाने का। और तुम्हीं मिट गए, तो फिर कोई उपद्रव नहीं है। तुम्हीं न बचे, तो फिर कोई बीमारी नहीं है। तुमने यह बात तो सुनी है कि ऐसे चिकित्सक होते हैं कि मरीज को ही मिटा देते हैं। मैं उन्हीं चिकित्सकों में से हूं। मैं बीमारी की उतनी फिक्र नहीं करता, बीमार को ही मिटाने में लग जाता हूं। क्योंकि बीमार ही मिट गया तो फिर बीमारी किसको रहेगी? बीमारी तो अपने आप मिट जाएगी। और जब तक बीमार है, एक बीमारी से बचोगे तो दूसरी लगेगी, दूसरी से बचोगे तो तीसरी लगेगी। हजारों बीमारियां हैं, किस-किस से बचते फिरोगे? एक ही चीज जड़ से काट डालो न!
यह कहां का पांडित्य और कहां का शास्त्रीयपन तुमने पकड़ रखा है! आज ही छलांग मारो। मरने दो पंडित को और मरने दो शास्त्री को, बीच की बात बचा लो-- कृष्णदास प्यारा है। स्वामीकृष्णदास भारती ठीक रहेगा!
आज इतना ही।

पिय को खोजन मैं चली
छठवां प्रवचन

मैं निमंत्रण हूं--खुले आकाश का

पहला प्रश्नः ओशो! प्रवचन में फल के बारे में आपने कहा कि मैं चुप रह गया और कुछ नहीं बोला। ओशो, इतने सालों से आपने इतने फल खिलाए हैं कि अब न तो कुछ बोलने को रहा है, न कुछ पूछने को। सब कुछ मिल गया है। अब तो बस आपकी अनुकंपा मात्र रह गई है। आपका लाखों, करोड़ों, अरबों बार अनुग्रह, उपकार!

स्वामी ज्ञान निर्मल उर्फ फली भाई! . मैं जिस फल की बात कर रहा हूं, उस
फल के संबंध में न बोलना ही ठीक है। कबीर ने कहा हैः हीरा पायो गांठ गठियायो, बाको बार-बार क्यों खोले। हीरा मिल जाए तो गांठ में बांध लेना चाहिए, उसे बार-बार खोलने की कोई जरूरत नहीं है; उसे खोल-खोल कर न देखना है, न दिखाना है; उसके प्रदर्शन का भी कोई अर्थ नहीं है।
यही उचित है कि चुप रह जाओ। यही उचित है कि आनंद से मुस्कुराओ। बोलो कुछ मत, क्योंकि शब्द उस रस को कहना भी चाहें तो कह न सकेंगे। भाषा प्रकट भी करना चाहे तो न कभी कर पाई है, न कभी कर पाएगी। वह तो राज है, जो राज ही रहता है। हृदय में उसकी गूंज होती है, तार छिड़ जाते हैं रोएं-रोएं में, तन-मन-प्राण में उसका नाद गूंजता है। अनुकंपा मालूम होगी, अनुग्रह का भाव उठेगा, आनंद होगा, आंसू झर सकते हैं, नाच घट सकता है, लेकिन कहने को कुछ भी नहीं है।
उस फल को ही तो अमृत फल कहा है। ध्यान के वृक्ष पर वही फल तो लगता है।
वह तो मैं मजाक कर रहा था कि फली भाई चुप रह गए हैं। चुप बैठे हैं और मुस्कुरा रहे हैं। सीता मैया बोल गईं। सीता मैया भी बोल कर क्या बोल सकती हैं? वह भी अनुग्रह का ही भाव है। शब्द लड़खड़ा जाते हैं। सीता वृद्ध हैं। कभी जीवन में कविताएं न लिखी होंगी, सोचा भी न होगा, अब कुछ नहीं सूझता तो कविताएं लिख लाती हैं। साथ में लिख देती हैं यह भी कि मुझे कुछ कविता करना आता नहीं; पढ़ी-लिखी भी नहीं हूं; मगर क्या करूं, कुछ है भीतर जो इतने जोर से उठता है कि फूट पड़ना चाहता है, मार्ग नहीं पाता।
बोलो या चुप रहो, सब बराबर है। अनुग्रह का भाव ही असली बात है। और ऐसे फलों के संबंध में न बोलना ही उचित है, क्योंकि बहुत से लोगों को लोभ पैदा हो जाता है। संत महाराज को ही लोभ पैदा हो गया न! अभी जवान हैं, और साधारण जवान नहीं, पंजाबी जवान हैं; और उनके गैरेज में कोई फटियल एम्बेसेडर भी नहीं है, उन्नीस सौ अस्सी का मर्सिडी.ज मॉडल ही है, मगर फिर भी लोभ पैदा हो गया।
चंदूलाल का बेटा झुम्मनलाल जर्मनी गया था। वहां उसे पता चला कि नवीनतम खोज की है वैज्ञानिकों ने एक टिकिया की कि जिसे खा लेने से आदमी जवान हो जाता है। सोचा चंदूलाल बूढ़े हो गए हैं, मां भी बूढ़ी हो गई है, तो दोनों के लिए दो टिकियाएं खरीद कर... बड़ी मंहगी टिकियाएं थीं और झुम्मनलाल है तो चंदूलाल मारवाड़ी का ही बेटा, तो सिर्फ दो टिकियाएं उसने खरीदीं, तत्क्षण भिजवाईं और लिखा कि एक पिताजी आप ले लेना, एक माताजी को दे देना, दोनों जवान हो जाएंगे।
फिर महीने भर बाद जब झुम्मनलाल लौटा, हवाई जहाज से उतरा, तो देख कर हैरान हुआ, मां तो उतनी की उतनी बूढ़ी, उससे भी ज्यादा बूढ़ी मालूम पड़ती है, एकदम थकी-मांदी। और भी आश्चर्य हुआ यह देख कर कि एक छोटे से बच्चे को, जो रो रहा है, वह हिलकोरे दे रही है, सम्हाल रही है, समझा रही है। तो उसने कहा, अरे, यह छोटा सा बच्चा कहां से आया? यह किसका बच्चा है?
तो चंदूलाल की पत्नी, झुम्मनलाल की मां बोली कि अरे नालायक, यह बच्चा नहीं है, ये तेरे पूज्य पिताजी हैं--सेठ चंदूलाल मारवाड़ी!
उसने कहा, इनकी यह गति कैसे हो गई?
उसने कहा कि ये दोनों टिकियां लोभ में इकट्ठी खा गए। मुझे तो दी ही नहीं। सो जवान ही नहीं हुए... दो टिकियां खा गए, एक खाते तो जवान होते, दो खा गए तो यह हालत हो गई। सो महीने भर से इनका रोना-धोना, अब इस बुढ़ापे में इस

बच्चे को सम्हालना, तो मेरी तो और दुर्गति हो गई। तूने भी कहां की टिकियां भेज दीं! बेटा, पांव छू, यह कोई बच्चा-वच्चा नहीं है, यह तेरी ही करतूत है। ऐसा ही लोभ संत महाराज को पैदा हो गया। संत महाराज, वह फल का तुम्हें पता भी चल जाए तो खाना मत, नहीं तो यह हालत हो जाएगी। और तुम्हें पता ही है कि छोटे बच्चों को मैं आश्रम में घुसने नहीं देता। तुम्हारी पहरेदारी भी गई और भेज दिए जाओगे स्कूल में। फिर से पढ़ो क ख ग। तुम लाख चिल्लाओ कि मैं संत हूं, कोई नहीं सुनेगा।
मैं मजाक ही कर रहा था फली भाई। लेकिन यही उचित है, चुप रह जाना ही उचित है।
पश्चिम के एक बहुत बड़े दार्शनिक विटगिंस्टीन ने अपनी बड़ी अदभुत किताब, इस सदी की सबसे अदभुत किताब--ट्रेक्टेटस--में लिखा हैः जिस संबंध में कुछ न कहा जा सके, उस संबंध में कुछ भूल कर कहना भी मत। क्योंकि तुम जो भी कहोगे वह गलत होगा; तुम जो भी कहोगे उससे भ्रांतियां फैलेंगी; तुम जो भी कहोगे उससे हानि होगी। जो कहा जा सके वही कहना; जो न कहा जा सके उस संबंध में चुप रह जाना। जो समझने वाले हैं, वे तुम्हारी चुप्पी समझ लेंगे; जो नहीं समझने वाले हैं, वे तुम्हारे शब्दों से और भी ज्यादा नासमझियों में पड़ जाएंगे।
इसलिए जो असली बात है, वह तो कभी नहीं कही जाती। मैं भी थोड़े ही कह रहा हूं। तुमसे जो बातें कह रहा हूं, वे बातें तो तुम्हें उस तरफ ले चलने की हैं, जहां तुम मेरे मौन को समझ सको। मैं मौन की तैयारी में लगा हुआ हूं। तुम तैयार हो जाओ तो मैं मौन हो जाऊं। बस तुम्हारी तैयारी की देर है। तुम सब फली भाई जैसे हो जाओ तो मैं चुप हो जाऊं।
बोलना मेरे लिए कष्टपूर्ण है--इसका तुम्हें अहसास नहीं है। तुम्हें अहसास हो भी नहीं सकता। चौबीस घंटे चुपचाप रहने के बाद रोज सुबह फिर उस गहन चुप्पी से वापस शब्दों में आना जितनी कठिन बात है उतनी कठिन और कोई बात नहीं। आकाश में उड़ना और फिर जमीन पर घसिटना--उड़ते पक्षी को कितना कठिन हो जाता होगा जमीन पर घसिटना! सागर में तैरती मछली को डाल दो रेत में तो वह जैसी परेशान हो जाती होगी वैसी मेरी परेशानी है।
मेरा तो शब्दों से छुटकारा हो चुका है, मगर तुम्हारे लिए बोल रहा हूं।
और यह बोलने का सारा प्रयोजन इतना ही है--यह नहीं कि मैं सोचता हूं कि इससे तुम्हें सत्य पता चल जाएगा--इसका प्रयोजन सिर्फ इतना ही है कि शायद तुम मौन के लिए राजी हो जाओ, ध्यान के लिए राजी हो जाओ। यह सिर्फ ध्यान के लिए तुम्हें फुसलाने का उपाय है।
इसलिए कुछ भी तुम पूछो, मैं तुम्हें हर तरफ से यात्रा करा कर ध्यान की तरफ ले आता हूं। तुम उत्तर की पूछो कि दक्खिन की, तुम इस बीमारी की पूछो कि उस बीमारी की, मेरी चेष्टा होती है कि तुम्हें जल्दी से जल्दी ध्यान की तरफ ले आऊं। बीमारियों में मेरी उत्सुकता नहीं है।
एक ही उपचार है जीवन में और वह है--चित्त से मुक्त हो जाना। चित्त शब्दों से भरा है, इसलिए शब्दों के ही द्वारा चित्त से मुक्त नहीं हुआ जा सकता। चित्त से मुक्त होने के लिए शब्दों से मुक्त होना होगा। इसलिए तो बार-बार कहता हूंः शास्त्रों से मुक्त हो जाओ, क्योंकि शास्त्रों में कितने ही प्यारे शब्द हों, शब्द शब्द ही हैं, और तुम्हें जाना है निःशब्द में, तुम्हें जाना है महाशून्य में।
सब शास्त्र बाधाएं हैं। मेरे शब्द भी बाधा हैं। इनको भी तुमने पकड़ा
तो बाधा हो जाएगी। ये पकड़ने को नहीं हैं, ये इशारे हैं कि और आगे, और आगे। ये यूं हैं जैसे कि मील के पत्थर लगे होते हैं रास्ते पर, जिन पर तीर बना रहता है। तीर कहता हैः और आगे, यहां मत रुक जाना, मंजिल आगे है। तुम पत्थर को ही पकड़ कर बैठ जाओ छाती से लगा कर कि बस आ गई मंजिल! वैसी ही दशा शास्त्रों को पकड़ लेने वालों की है।
और ध्यान रखना, जब मैं शास्त्रों की बात करता हूं तो मेरे शब्दों को मैं सम्मिलित कर रहा हूं, उनको बाहर नहीं छोड़ रहा हूं। यह नहीं कह रहा हूं कि और शास्त्रों को छोड़ दो और मेरे शब्दों को पकड़ लो। शब्द मात्र को छोड़ना है, वहां कौन मेरा, कौन तेरा!

लेकिन तुम एकदम से नहीं छोड़ सकोगे, इसलिए बोल रहा हूं, बोले जा रहा हूं। जितनी देर तक बन सकता है, बोलता रहूंगा। लेकिन जल्दी करो। चाहता हूं ऐसे लोगों को मैं... आते जाते हैं वे लोग, उनकी संख्या बढ़ती जाती है, ज्यादा देर नहीं है। इसलिए मैं प्रफुल्लित हूं, आनंदित हूं कि जल्दी ही मेरे पास उन लोगों का समूह होगा जो चुप बैठ सकेंगे; जो मेरे मौन में जुड़ सकेंगे, जो मौन संवाद में सम्मिलित हो सकेंगे। वही होगा सत्संग। अभी तो उसकी पूर्व-भूमिका चल रही है, बस तैयारी चल रही है। अभी तो सिर्फ आयोजन चल रहा है। मंदिर बन रहा है, दीवालें उठाई जा रही हैं, दरवाजे लगाए जा रहे हैं। जिस दिन तुम मौन में मेरे साथ होने को राजी हो जाओगे, उस दिन मंदिर में प्रभु की प्रतिमा प्रतिष्ठित होगी। और उसी दिन तुम समझ पाओगे कि सत्य क्या है। विटगिंस्टीन से मैं राजी हूं। जो न कहा जा सके उसे कहने की कोशिश करनी
भी नहीं चाहिए। मैंने कभी की भी नहीं। जिन्होंने की है, वे लोगों को भरमा गए, भटका गए।
लेकिन किसी ने भी--बुद्ध ने या महावीर ने या लाओत्सु ने--कोशिश ही नहीं
की उसको कहने की। और बातें कही हैं, और हजार बातें कही हैं, बस उस एक बात को छोड़ दिया है। मतलब की बात छोड़ दी है। हजार बातें हैं तुम्हें उस जगह ले आने के लिए, जहां तुम मतलब की बात खुद समझ सकोगे। वह तो तुम्हारे भीतर आविर्भूत होगी। वह ध्यान का वृक्ष तो तुम्हारे भीतर उगेगा। समाधि के फल तो तुम्हारे भीतर लगेंगे। वह सहस्रदल कमल तो तुम्हारे भीतर खिलेगा। बाहर से तुम जो भी पकड़ लोगे, वह सब रुकावट है।
फली भाई, ठीक कर रहे हो। यूं ही मुस्कुराए चलो। ऐसे ही संन्यासियों को चाहता हूं कि जो बैठें चुप, मुस्कुराएं, मौज हो तो नाचें, इकतारा हाथ में ले लें कि खंजड़ी बजाएं, गीत गाना हो गीत गाएं। मगर यह सब उत्सव होगा; इसमें कुछ कहा नहीं जा रहा है। और जब सब सन्नाटा छा जाए, सब मौन हो जाए, सब चुप हो जाए, तो सत्य की कली भीतर खिलती है, फूल बनती है।

दूसरा प्रश्नः ओशो! मैं नहीं जानता कि यहां क्या पाने आया हूं, लेकिन कुछ पाने की इच्छा है। क्या मिलेगा? कृपया बताएं।

श्रीचंद! यदि कुछ पाने यहां आए हो, तो गलत जगह आ गए हो। यहां तो खोना ही खोना है। यहां तो इतना खोना है कि तुम्हारे पास खोने को ही कुछ न बचे। तब जो शेष रह जाएगा, जिसे तुम खोना भी चाहो और न खो सको, वही है सत्य, वही है तुम्हारा स्वरूप, वही है तुम्हारी निजता, वही है तुम्हारे भीतर बैठा हुआ परमात्मा।
पाने की बात तो अहंकार की बात है। पाने की बात तो लोभ की बात है। और अक्सर यह हो जाता है। संसार में भी हम पाने में लगे रहते हैं--धन पा लें, पद पा लें। फिर धन से ऊबते हैं, पद से ऊबते हैं। आखिर ऊबना ही पड़ेगा, क्योंकि कितना ही पा लो धन, हाथ कुछ लगता नहीं, बस राख लगती है। और कितने ही पद पा लो, हाथ कुछ लगता नहीं, जीवन यूं व्यर्थ ही बह जाता हुआ दिखाई पड़ने लगता है, निरर्थकता गहरी होती जाती है। बस इतनी ही बात समझ में आती है कि यह सब दौड़ बेकार थी, हम नाहक दौड़े, नाहक भागे। इस सब समय का हमने व्यर्थ दुरुपयोग कर डाला, सदुपयोग हो सकता था, यह अवसर बहुमूल्य था, और हमने कौड़ियों के दाम लुटा दिया। हीरे थे, हमने फेंक डाले। हम मूर्च्छा में सब गंवा बैठे।
सूफी कहानी है--एक मछुआ सुबह-सुबह जल्दी नदी पर पहुंच गया। अभी सूरज नहीं निकला था। सूरज निकले तो जाल फेंके, क्योंकि अभी मछलियां जागी भी नहीं थीं। और अभी जाल भी फेंके तो कहां फेंके, मछलियां दिखाई भी नहीं पड़ती थीं। तो प्रतीक्षा कर रहा था सूरज ऊगने की। जहां बैठा था वहीं उसे मिल गई एक थैली। सो उसने थैली खोल कर टटोल कर देखा कि क्या है! देखा कि पत्थर भरे हैं। खाली आदमी क्या न करता... हमारे भीतर ऐसी बेचैनी है, हम कुछ भी करने लगते हैं... वह उठा-उठा कर एक-एक पत्थर उस थैली में से और झील में फेंकने लगा। छप-छपाक की आवाज हो, आवाज को वह सुने, फिर दूसरा पत्थर निकाले और फेंके।
सूरज निकलते-निकलते थैली में सिर्फ एक पत्थर बचा। जब सूरज निकल रहा था, उसने आखिरी पत्थर निकाला, सूरज की रोशनी में पत्थर दिखाई पड़ा, छाती पीट

ली--वह पत्थर नहीं था, हीरा था! वह घंटे भर से हीरे फेंक रहा था झील में। मगर अब बहुत देर हो चुकी थी। अब तो कोई उपाय न था उन हीरों को पाने का। झील गहरी थी। किस अतल में गिर गए होंगे वे, कहां चले गए होंगे! सब दिशाओं में फेंक दिए थे उसने--अपने हाथ से फेंक दिए थे! अंधेरा जो था, मूर्च्छा जो थी! ऐसा ही हमारा जीवन है--सूफी कहते हैं। यूं ही फेंक देते हैं। होश आते- आते अगर एकाध हीरा भी बच जाए तो बहुत। अक्सर तो वह भी नहीं बचता। उस कहानी में तो बड़ी दया की है, जिसने भी कहानी बनाई होगी, कि कम से कम एक हीरा तो बचाया। अक्सर तो वह भी नहीं बचता।
सौभाग्यशाली हो श्रीचंद, कि जीवन में और सब व्यर्थ है, यह जान कर यहां
आ गए हो। धन, पद की दौड़ छूट गई, मगर दौड़ नहीं छूटी है। विषय बदल गए आकांक्षाओं के, लेकिन आकांक्षाएं नहीं बदली हैं। वही वासना जो धन पाने के लिए थी, अब ध्यान पाने के लिए हो जाएगी। तो फिर कोई क्रांति घटित हुई ही नहीं। क्योंकि सवाल यह नहीं है कि तुम क्या पाना चाहते हो; सवाल यह है कि तुम पाना चाहते हो। जब तक पाने की दौड़ है, तब तक तुम भ्रांत ही रहोगे, मूर्च्छित ही रहोगे।
पाना नहीं है कुछ। जो है, वह पाया ही हुआ है; मिला ही हुआ है; एक क्षण को
भी तुमने उसे गंवाया नहीं है। जब तक पाने की दौड़ रहेगी, तब तक तुम उसे न देख सकोगे जो तुम्हारे भीतर अभी मौजूद है, इसी क्षण मौजूद है। क्योंकि तुम्हारा मन तो उलझा हुआ है पाने में--देखे कौन? जागे कौन? तुम तो सपने देख रहे हो पाने के। पहले धन पाने के देख रहे थे, अब ध्यान पाने के देख रहे हो। पहले सोचते थे पद मिल जाएगा, अब सोचते हो परमात्मा मिल जाएगा। पहले सोचते थे सम्मान मिल जाएगा, अब सोचते हो समाधि मिल जाएगी। मगर आकांक्षा अटकी है कहीं दूर कुछ पाने में। चित्त वहां उलझा है, तो चित्त यहां कैसे आए! तुम दूर-दूर भटक रहे हो।
और ध्यान रखना, ध्यान तो और भी दूर का लक्ष्य हो गया--धन से भी दूर का।
धन इतना दूर नहीं है--चोरी से भी मिल सकता है, पड़ोसी के घर में सेंध मार सकते हो, जेब काट सकते हो, भीख मांग सकते हो, लाटरी खुल सकती है, रास्ते पर चलते हुए किसी की गिरी हुई थैली मिल सकती है, संयोगवशात मिल सकता है--धन इतने दूर नहीं है। मगर ध्यान की न तो चोरी हो सकती है, न रास्ते पर पड़ा मिल सकता है, न किसी की जेब काट सकते, खरीद नहीं सकते, भीख नहीं मांग सकते--बहुत दूर है, सो और उलझन में पड़ जाओगे। धन से भी दूर का लक्ष्य है। अब तो दौड़ो जन्मों-जन्मों, तो भी यह यात्रा पूरी नहीं होगी। और इस उलझाव में उसकी तरफ पीठ हो जाएगी जो तुम्हारे भीतर मौजूद है, और अभी मौजूद है।
मेरी सारी देशना यही है कि तुम्हें कुछ पाना नहीं है, तुम्हें कुछ खोजना नहीं है, तुम्हें कहीं जाना नहीं है--तुम जो हो, जैसे हो, जहां हो, वहीं परमात्मा मौजूद है तुम्हारे भीतर। वही धड़क रहा है तुम्हारी धड़कनों में। वही श्वास ले रहा है तुम्हारी श्वासों में। वही है तुम्हारा चैतन्य। वही तुम्हारे भीतर साक्षी बन कर बैठा है। इस उदघोषणा का नाम ही मैं ध्यान कहता हूं। इस प्रत्यभिज्ञा का नाम ही समाधि है--इस पहचान का नाम।
लेकिन इस संबंध में भी हमारे पुराने ही ढर्रे फिर से लौट कर हमारी गर्दन पर सवार हो जाते हैं। इधर से बचे, उधर से फंस जाते हैं। और वही लोभ और वही कृपणता। मुझसे लोग पूछते हैं कि हम... बहुत से संन्यासी यहां हैं, किसी का पिता बीमार है, बूढ़ा है, मरने के लिए मरण-शय्या पर पड़ा है, और संन्यासी मुझे पूछता है कि तीन सप्ताह के लिए जाना पड़ रहा है--जाऊं या न जाऊं? जाने में डर लगता है कि कुछ खो न जाए! न जाऊं तो मन में अपराध-भाव पैदा होता है कि पिता मर रहे हैं, कम से कम मरते वक्त तो उनके पास मौजूद हो जाऊं।
मैं यहां रोज चीख-चीख कर तुमसे कह रहा हूं कि तुम खोना भी चाहो तो उसे नहीं खो सकते। कहीं भी चले जाओ तुम, नरक में भी चले जाओ, तो भी उसे नहीं खो सकते। जो खो जाए वह स्वभाव नहीं, और जो स्वभाव है वही तो परमात्मा है। मगर वे तीन सप्ताह में जाने से डरे हुए हैं कि कहीं कुछ खो न जाए। अभी भाषा वही है--वही कृपणता, वही कंजूसी!
मारवाड़ी सेठ धन्नालाल व्यापार के सिलसिले में एक बार शिमला गए। पहाड़ी रास्ता था। एक खतरनाक ढलान पर अचानक टैक्सी के ब्रेक खराब हो गए और गाड़ी

तीव्र गति से नीचे की ओर लुढ़कने लगी। धन्नालाल जोरों से चिल्लाए, अरे भई, रोको-रोको! यह क्या कर रहे हो, क्या जान ही ले लोगे?
ड्राइवर ने घबराए हुए उत्तर दिया, सेठजी, मैं क्या कर सकता हूं! गाड़ी
के ब्रेक फेल हो गए हैं। अब गाड़ी का रुकना संभव नहीं है। भगवान से प्रार्थना करिए, वही चाहे तो रोक दे, कोई चमत्कार कर दे। मैं तो नहीं रोक पा रहा।
सेठ धन्नालाल बोले, अरे मूरख, टैक्सी रोकने की कौन कह रहा है, मगर कम
से कम मीटर तो बंद कर ले भलेमानुस! बेकार में ही किराया बढ़ता जा रहा है। ड्राइवर गुस्से में बोला, आप कैसी बातें कर रहे हैं श्रीमान! टैक्सी गड्ढे में गिरने वाली है और आपको मीटर और भाड़े की पड़ी है!
सेठजी ने कहा, टैक्सी क्या मेरे बाप की है, जहां गिरना हो गिरे, मुझे क्या है!
ड्राइवर ने आश्चर्य से कहा, लेकिन मेरे बाप, टैक्सी के साथ-साथ आपका
भी खात्मा हो जाएगा।
सेठजी ने निश्चिंतता से जवाब दिया, तू मेरी फिक्र मत कर, मेरा तो जीवन-बीमा है। जो मैं कहता हूं वह कर, पहले इस मीटर को बंद कर!
वही कृपणता, वही कंजूसी, वही लोभ, वही वासना तुम्हें धर्म के जगत में पकड़ लेगी। वही भय, वही चिंता, वही संताप; सिर्फ नाम बदल जाएंगे। वही अहंकार, वही मेरे-तेरे का झगड़ा--यह मेरा धर्म, यह तेरा धर्म। यह हिंदू, यह मुसलमान, यह ईसाई, यह जैन, यह बौद्ध--ये सब वही के वही झगड़े। वही बाजार, वही दुकानें; मगर अब नाम अच्छे-अच्छे, तख्तियां धार्मिक! यह मेरा शास्त्र, यह तुम्हारा शास्त्र। मेरा शास्त्र सही और तुम्हारा गलत! मेरे पैगंबर सही और तुम्हारे गलत! सब रोग वही का वही है। कुछ भेद नहीं पड़ता--जब तक कि तुम्हें यह बात समझ में न आ जाए कि रोग की जड़, तुम क्या चाहते हो, इसमें नहीं है; रोग की जड़, तुम चाहते हो, इसमें ही है। चाह में जड़ है। चाह को गिर जाने दो। श्रीचंद, अब यहां आ गए हो तो यह तो मत पूछोः "मैं नहीं जानता कि यहां क्या पाने आया हूं, लेकिन कुछ पाने की इच्छा है।"
इच्छा है, तो फिर तुम चूक जाओगे, तो फिर तुम पाने से वंचित रह जाओगे। पाना चाहा कि पाने से वंचित रह जाओगे। उन्होंने ही पाया है, जिन्होंने पाने की इच्छा छोड़ दी। यह विरोधाभास तुम्हें लगेगा, मगर मजबूरी है, ऐसा ही है जीवन का नियम--एस धम्मो सनंतनो--यही सनातन जीवन का धर्म है, कुछ और उपाय नहीं है। जो बचाएगा, वह गंवा देगा; जो खोने को राजी है, वह पा लेगा।
तुम पूछते होः "लेकिन कुछ पाने की इच्छा है। क्या मिलेगा? कृपया बताएं।"
यहां तो कुछ नहीं मिल सकता। क्योंकि मैं तो देखता हूंः तुम्हें जो भी चाहिए, तुम्हारे जीवन के लिए जो भी जरूरी है, वह तुम्हें मिला ही हुआ है-- जन्म के साथ, तुम्हारे स्वभाव के साथ, तुम्हारे भीतर है। तुम लाख उपाय करो गंवाने के तो गंवा नहीं सकते।
लोग मुझसे पूछते हैं, परमात्मा को कैसे खोजें? मैं उनसे पूछता हूं, तुमने उसे खोया कब? तुमने उसे खोया कैसे? तुम मुझे यह बता दो कि तुमने खोया कब, किस तिथि-तारीख में, किस स्थान पर, किस अक्षांश, किस देशांश में, किस देश में, काबा में कि काशी में--कहां खोया, कब खोया, कैसे खोया? अगर तुम मुझे यह बता दो, तो फिर मैं तुम्हें यह बता दूं कि कहां मिलेगा।
अगर काशी में खोया हो, तो काबा में बेकार खोज रहे हो। अगर काबा में खोया हो, तो काशी में बेकार खोज रहे हो। क्योंकि जहां खोया है वहीं खोजना चाहिए। और कब खोया, यह भी पक्का होना चाहिए। फिर यह भी पक्का पता होना चाहिए कि परमात्मा कोई ऐसी पत्थर जैसी चीज है कि तुमने जहां खोया हो वहीं पड़ा हो। अगर दो-चार हजार साल पहले खोया हो, तो पता नहीं वह भी चल कर कितना आगे बढ़ चुका हो, कहां पहुंच चुका हो।
एक अफीमची ने एक मिठाई की दुकान से मिठाई खरीदी। पीनक में था, डोल रहा था। दुकानदार को रुपया दिया, अठन्नी की मिठाई ली थी। दुकानदार ने कहा कि भई, मेरे पास आठ आने टूटे हुए नहीं हैं लौटाने को, कल सुबह ले लेना। अफीमची ने सोचा कि कहीं कल सुबह यह बदल जाए, क्या भरोसा, तो कुछ पक्का
कर लूं कि बदल न सके। तो उसने चारों तरफ नजर डाल कर पक्का कर लिया, ठीक से

देख लिया--कौन सी दुकान है, कहां है, क्या है! और उसने सोचा कि दुकान देखने से ही कुछ नहीं होता! अरे आदमी अगर पक्का बेईमान हो, बोर्ड बदल ले, यह बोर्ड ही निकाल कर रख दे सुबह। हम इसी बोर्ड को खोजते फिरें! तो उसने देखा एक भैंस दुकान के सामने ही बैठी हुई है। उसने देखा कि यह बोर्ड बदल लेगा, मगर इसको भी शायद ही याद आए कि सामने भैंस बैठी हुई है, इसको भगा दे! इतना क्या इंतजाम करेगा! अफीमची मस्त घर लौट आया।
दूसरे दिन सुबह पहुंचा। दुकान में घुसा और एकदम उसकी गर्दन पकड़ ली दुकानदार की, कि हद हो गई, आठ आने के पीछे न केवल तुमने धंधा बदला, दुकान भी बदल ली! अरे दुकान ही नहीं बदली, धंधा ही नहीं बदला, जात तक बदल ली! कल रात तक हलवाई का काम कर रहे थे, आज नाई का काम कर रहे हो! शर्म नहीं आती? अरे बेशर्म, अठन्नी रखनी थी, ऐसे ही मांग लेते तो ऐसे ही दे देता।
वह नाई तो बहुत घबड़ाया। उसने कहा, तू बातें क्या कर रहा है? कहां की मिठाई की दुकान? मैं जिंदगी भर से नाई हूं। जिंदगी भर से यही बाल काटने का धंधा कर रहा हूं।
उसने कहा, तू मुझको धोखा न दे सकेगा। देख ले वह भैंस! जहां छोड़ गया था, वहीं बैठी है। तूने सब बदल लिया--बोर्ड बदल लिया, शक्ल तक अपनी बदल ली। और हद हो गई, रात भर में चमत्कार कर दिया तूने। एकदम नाई होकर बैठा है!
तुमने कहां खोया? और परमात्मा कोई पत्थर जैसी चीज है कि वहीं पड़ा हो?
और कब खोया--मैं पूछता हूं--कैसे खोया? क्योंकि जब तक इन सब बातों का ठीक उत्तर न हो तुम्हारे पास, तब तक तुम्हारी सब खोज व्यर्थ जाएगी।
बुद्ध एक दिन सुबह-सुबह प्रवचन देने आए और अपने हाथ में एक रूमाल लेकर आए। लोग बड़े चकित हुए, क्योंकि वे कभी रूमाल लेकर आते नहीं थे। और सामने ही बैठ कर उन्होंने प्रवचन देने के पहले, रूमाल को हाथ में लटका कर ऊपर उठाया। लोग तो बहुत चौंके कि आज बात क्या है! आज कोई नये ढंग की ही बात दिखता है वे कहेंगे। शायद रूमाल में कोई राज है, कोई रहस्य है। एकदम सन्नाटा हो गया। जो सोए थे, वे भी जग गए।
धर्मसभा में लोग सोते हैं। जिनको रात भर नींद नहीं आती, उनको भी धर्मसभा में नींद आती है। धर्मसभा में बड़ा राज है। नींद की दवा इससे अच्छी अभी तक कोई चिकित्सक नहीं खोज सके हैं।
सब चौंक कर, सम्हल कर बैठ गए। सबने अपनी-अपनी कुंडलिनी जगा ली। सब देखने लगे कि माजरा क्या है! आज कोई जादू दिखाने वाले हैं या क्या बात है! और बुद्ध ने उस रूमाल में एक गांठ बांधी, दूसरी गांठ बांधी, तीसरी बांधी, चौथी बांधी, पांच गांठें बांधीं और फिर भिक्षुओं से पूछा कि भिक्षुओ, तुमने देखा मैंने रूमाल में गांठें बांधीं! मैं तुमसे एक सवाल पूछता हूं, क्या यह रूमाल वही का वही है जो गांठें बांधने के पहले था? अब भी वही का वही है कि बदल गया?
एक भिक्षु ने कहा, आप बड़ी चालबाजी का प्रश्न पूछ रहे हैं। अगर हम कहें वही का वही है, तो आप कहेंगे पहले गांठें कहां थीं? हालांकि रूमाल वही का वही है। अगर हम कहें बदल गया, तो आप कहेंगे क्या खाक बदल गया! अरे गांठें लगने से क्या बदलता है? रूमाल तो वही का वही है। आप ऐसी पहेली पूछ रहे हैं कि हम इस तरफ कहें तो फंसें, उस तरफ कहें तो फंसें।
बुद्ध ने कहा, तुम चिंता न करो। तुम उत्तर दो जो तुम्हारे अनुभव में आता हो।
उसने कहा कि एक अर्थ में रूमाल वही है, क्योंकि स्वभावतः रूमाल बदला नहीं, जैसा था वैसा ही है। और एक अर्थ में रूमाल बदल गया, क्योंकि तब गांठें नहीं थीं, अब गांठें हैं।
बुद्ध ने कहा, ठीक। तुम्हारा उत्तर स्वीकार करता हूं। अब मैं ये गांठें खोलना चाहता हूं। देखो, क्या मैं ठीक कर रहा हूं गांठें खोलने के लिए जो आयोजन कर रहा हूं? और बुद्ध ने रूमाल के दोनों छोर पकड़ कर जोर से खींचे। गांठें और सिकुड़ कर छोटी होने लगीं!
वह भिक्षु चिल्लाया। उसने कहा, आप यह क्या कर रहे हैं? गांठें और मजबूत हो रही हैं!
तो बुद्ध ने कहा, मैं क्या करूं?

उस भिक्षु ने कहा, पहले हमें यह जानना चाहिए कि गांठें आपने लगाईं कैसे। जब तक यह पता न हो कि गांठें लगाईं कैसे, तब तक गांठें कैसे खुलेंगी, इसका पता करना असंभव है। लेकिन यह मैं देख रहा हूं कि गांठें छोटी होती जा रही हैं। बड़ी थीं तब तक खुलना आसान था, अब और कठिन हो गया; सूक्ष्म हो गईं। श्रीचंद, यही मैं तुमसे कहता हूं। धन की गांठ मोटी गांठ है, स्थूल है।
धन की चाह स्थूल है। सभी को है। कोई बड़ी खूबी की बात नहीं। ध्यान की चाह-- गांठ और सूक्ष्म हो गई। अब दिखाई भी न पड़ेगी। क्योंकि यह दौड़ बाहर न रही, भीतर ही भीतर हो गई। बिल्कुल मानसिक हो गई, बिल्कुल काल्पनिक हो गई। और तुम खींचते जाना इस गांठ को, यह और सूक्ष्म होती जाएगी। यह इतनी सूक्ष्म हो जाएगी कि तुम्हें खुद भी दिखाई न पड़ेगी। मगर गांठ खुल नहीं रही, गांठ बंध रही है। तुम और भी ग्रंथियों में पड़ते जा रहे हो।
महावीर ने, जो जाग गए हैं, जो प्रबुद्ध हो गए हैं, उनको निर्ग्रंथ कहा है। निर्ग्रंथ का अर्थ होता हैः जिसकी सारी ग्रंथियां खुल गईं, सारी गांठें खुल गईं। बड़ा प्यारा शब्द उपयोग किया, निर्ग्रंथ, जिसमें कोई गांठें न रहीं।
स्वभावतः तो तुम वही के वही हो, लेकिन कुछ गांठें तुमने बांध ली हैं। कुछ लोग स्थूल गांठें बांधे हुए हैं, कुछ लोगों ने और भी सूक्ष्म गांठें बांध ली हैं। ज्ञान की गांठ बड़ी सूक्ष्म गांठ है; बड़ी अकड़ पैदा हो जाती है; भारी अकड़ पैदा हो जाती है। राष्ट्र की गांठ बड़ी सूक्ष्म गांठ है। धर्म की गांठ बड़ी सूक्ष्म गांठ है; बड़ी अकड़ पैदा हो जाती है।
एक मित्र ने पूछा है कि भारत-ज्योति दयानंद सरस्वती जैसे आर्यपुत्र
ने विश्व भर में आर्यावर्त की शान का झंडा फहराया; जोधपुर नरेश जैसे लंपटों को कुत्ती जैसी वेश्याओं से बचने की चेतावनी दी; और अपने को भोजन में जहर देने वाले रसोइए को माफ कर दिया; उसे आप कहते हैं कि उनमें सदव्यवहार ही नहीं था। तो मैं समझता हूं कि आप दयानंद जैसे प्रखर सूरज का तेज देख ही नहीं पाए हैं। आपको बिना समझे ऐसे महानुभावों के बारे में बोलना बंद कर देना चाहिए। वे भी जीसस, सुकरात जैसे लोगों की तरह मरे हैं। आप उनके साथ अन्याय न करें।
लिखा है ब्रह्मचारी दीपक वेदालंकार ने।
जरा शब्दों को देखते हो! अगर उन्होंने अपना नाम न भी दिया होता, तो भी मैं जानता कि वे दयानंद के शिष्य हैं, आर्यसमाजी हैं, वेदालंकार, वेद के जानकार हैं। मगर शब्द देखते हो, भारत-ज्योति! यह अकड़ भारतीय होने की, किसी की चीनी होने की, किसी की जापानी होने की--ये सूक्ष्म गांठें हैं, बड़ी सूक्ष्म गांठें। ये दुनिया भर में फैली हैं। ये कोई तुम्हें ही थोड़े पकड़े हुए हैं, सारी मनुष्यता इन्हीं से पीड़ित है। छोटे से छोटा देश भी अपने को क्या नहीं समझता!
सिसली छोटा सा द्वीप है। उसका राजदूत अफ्रीका जा रहा था। तो सिसली के राजा ने उसको कहा कि तू जा रहा है अफ्रीका, अफ्रीका के लोगों को यह भ्रांति है कि उनका देश महाद्वीप है। वे सोचते हैं कि सिसली से भी बड़ा है।
अब कहां सिसली और कहां अफ्रीका! सिसली को अफ्रीका में रखो तो हजारों सिसली जम जाएं अफ्रीका में। मगर राजा ने कहा कि वहां के लोगों को यह भ्रांति है कि वे सोचते हैं कि उनका देश सिसली से भी बड़ा है। राजनीतिज्ञ को इतनी कुशलता होनी चाहिए कि जब कोई इस तरह की बात कहे, तू चुप रह जाना। अपने दिल में तो तू जानता ही है कि सिसली महान है, मगर चुप रह जाना। क्योंकि कूटनीतिज्ञ को, जहां जा रहा है, उनको किसी तरह दुखी नहीं करना चाहिए।
सिसली की हैसियत ही क्या है? लंका भी बहुत बड़ा है। पच्चीस सिसली लंका
को काटने से बन सकते हैं। अफ्रीका तो महाद्वीप है ही। मगर सिसली के राजा को भी यही भ्रांति है। और वह भ्रांति के लिए पोषण दे रहा है। वह कह रहा है, वहां के लोगों को यह भ्रांति है कि वे अपने देश को बड़ा देश समझते हैं, इस भ्रांति में मत पड़ना।
जब अंग्रेज पहली दफा चीन पहुंचे, तो अंग्रेजों ने लिखा है कि चीनियों
को देख कर हमें पक्का भरोसा आ गया कि डार्विन ठीक कहता है। और अब तक इस बात की खोजबीन की जा रही थी कि बंदरों और आदमी के बीच की कड़ी कहां है? क्योंकि

बंदरों से एकदम आदमी नहीं हो सकता, बीच में कोई कड़ी भी होगी जो बंदर और आदमियों के बीच में होगा। चीनियों को देख कर हमें भरोसा आ गया।
और चीनियों ने क्या लिखा? चीनियों ने भी यही लिखा कि अब हम समझे कि डार्विन क्यों कहता है कि आदमी बंदर से पैदा हुआ है। जब तक हमने यूरोपियंस को नहीं देखा था, हमको यह भरोसा ही नहीं आता था कि आदमी बंदर से पैदा हो सकता है। ये बिल्कुल बंदर की औलाद हैं।
दोनों को डार्विन के सिद्धांत पर भरोसा आ गया एक-दूसरे को देख कर। हर
एक देश को यही भ्रांति है, हर एक जाति को यही भ्रांति है कि हमसे महान और कोई भी नहीं!
पूछा है ब्रह्मचारी दीपक वेदालंकार नेः "भारत-ज्योति... !"
भारत, चीन और पाकिस्तान और ईरान राजनैतिक विभाजन हैं! पृथ्वी अखंड है। लेकिन दयानंद को ही वह भ्रांति थी, उसी भ्रांति को उनके शिष्य दोहराते हैं तो कुछ आश्चर्य नहीं।
कहा है कि "दयानंद सरस्वती जैसे आर्यपुत्र ने... ।"
आर्यपुत्र का अर्थ होता हैः श्रेष्ठ। आर्य शब्द का अर्थ होता हैः श्रेष्ठ। किसको भ्रांति नहीं है श्रेष्ठ होने की?
अडोल्फ हिटलर अपने को आर्य कहता था। और मानता था कि सिर्फ, जर्मनों में एक खास जर्मनों की जाति--नार्डिक, वे ही असली आर्य हैं, बाकी कोई असली आर्य नहीं है। वे ही श्रेष्ठ लोग हैं। और उनको ही हक है सारी दुनिया पर राज्य करने का।
स्वभावतः, श्रेष्ठजनों को हक होना चाहिए अश्रेष्ठ लोगों पर राज्य करने का। इसी भ्रांति में दूसरा महायुद्ध लड़ा गया। इसी भ्रांति का परिणाम था कि लाखों-करा.ेडों लोगों की हत्या हुई। लाखों यहूदी काट डाले अडोल्फ हिटलर ने। और जिन जर्मनों से कटवाए, उनसे क्यों कटवा सका वह? सिर्फ इस प्रचार से कि तुम श्रेष्ठ हो, और दुनिया को अगर श्रेष्ठ बनाना है तो हमें इसे अश्रेष्ठ लोगों से मुक्त करना होगा। यहूदी सबसे जघन्य हैं, और हम सबसे श्रेष्ठ हैं! बुरों को मिटाना होगा।
जहां भी यह भ्रांति पैदा हुई कि हम श्रेष्ठ हैं, वहां स्वभावतः दूसरा अश्रेष्ठ हो जाता है। और जब दूसरा अश्रेष्ठ हो गया, हम श्रेष्ठ हो गए, तो निश्चित ही हम ब्राह्मण, दूसरा शूद्र!
भारत के लोगों को यह आदत है कहने की--मुसलमानों को कहेंगेः मलेच्छ; अंग्रेजों को कहेंगेः मलेच्छ। मगर यह कुछ भारतीयों का ही मामला नहीं है, सारी दुनिया में यही पागलपन है। मैं जैन घर में पैदा हुआ। अगर तुम जैनों से पूछो तो वे हिंदुओं को भी मलेच्छ ही समझते हैं।
मैं छोटा था। एक जैन मुनि गांव में आए हुए थे। मैंने उनसे पूछा, रामकृष्ण परमहंस के संबंध में आपका क्या ख्याल है? उन्होंने कहा, क्यों उस मलेच्छ की बात छेड़ते हो! मैंने कहा, मलेच्छ? हां, उन्होंने कहा, मछली जो खाए, उसको मलेच्छ नहीं कहोगे तो क्या कहोगे?
अब यह बात तो सच्ची है कि रामकृष्ण मछली खाते थे। बंगाली और मछली न खाए, जरा मुश्किल ही है। और जैन मुनि को इससे ज्यादा दुख देने वाली बात और क्या हो सकती है--कोई मछली खाए!
हिंदुस्तान में जिनको तुम ब्राह्मण कहते हो, उनमें से भी अधिक मांसाहारी हैं। कश्मीरी ब्राह्मण मांसाहारी हैं। दक्षिण के ब्राह्मण मांसाहारी हैं। पंडित जवाहरलाल नेहरू मांसाहारी थे सिर्फ इस कारण क्योंकि वे कश्मीरी ब्राह्मण थे।.अब यह बड़े मजे की बात है कि महात्मा गांधी जैसे व्यक्ति को, जिसे अहिंसा का इस जगत में सबसे बड़ा पोषक समझा जाता है, उसने अपनी वसीयत--राजनैतिक वसीयत--जवाहरलाल नेहरू को दी, जो कि मांसाहारी थे! जिनका एक दिन बिना मांस खाए न चले!
मगर हिंदुओं को कुछ अखरने वाली बात नहीं है। जैनों को अखरती है। जैनों को लगता है यह बात मलेच्छ हो गई। आखिर जैनों ने और बौद्धों ने इसीलिए तो वेदों का विरोध किया, क्योंकि वेदों में समर्थन मिलता है मांसाहार का। गौवध का भी समर्थन है! अश्वमेध यज्ञ ही नहीं, नरमेध यज्ञ भी होते थे, जिनमें मनुष्यों की बलि दी जाती थी! इसलिए कभी-कभी अभी भी यह घटना घट जाती है, अखबारों में खबर मिल जाती है कि फलां गांव में लोगों ने एक

आदमी की बलि दे दी। ये बेचारे कुछ भी नहीं कर रहे हैं, ये सिर्फ आर्यपुत्र हैं! ये शुद्ध वैदिक धर्म का अनुशीलन कर रहे हैं!
ब्रह्मचारी दीपक वेदालंकार कहते हैंः "विश्व भर में आर्यावर्त की शान का झंडा फहराया।"
ये बातें ही अधार्मिक हैं--झंडा फहराना! ये बातें राजनीति में तो शायद ठीक हों, क्योंकि राजनीति में हर तरह की मूढ़ता चल सकती है; मगर धर्म से इन बातों का क्या संबंध? झंडा फहराना--और शान का! तो फिर अहंकार किसको कहते हो?
"जोधपुर नरेश जैसे लंपटों को... ।"
यह भाषा देखते हो, यह आर्यसमाज की भाषा है। यह दयानंद की वसीयत है। इसी तरह की भाषा वे बोलते थे। और इसलिए मैं कभी नहीं स्वीकार कर सकूंगा कि इस व्यक्ति को कोई आत्मज्ञान हुआ था या ब्रह्मज्ञान हुआ था। क्योंकि जिसको आत्मज्ञान हुआ हो, वह लंपट कहेगा? और बात सुनते हो!
"जोधपुर नरेश जैसे लंपटों को कुत्ती जैसी वेश्याओं से बचने की चेतावनी दी।"
और मजा यह है, ये वेश्याएं पैदा किसने की हैं? यह तुम्हारे ही साधु- महात्माओं की कृपा है। वेश्या विवाह का परिणाम है। जब तक दुनिया में जबरदस्ती, कानून से आरोपित विवाह जारी रहेगा, वेश्या भी जारी रहेगी। जब तक विवाह नहीं मिटता, वेश्या नहीं मिट सकती।
और यह तो बड़ी पुरानी आर्य-परंपरा है, यह कुछ नयी बात नहीं। पहले इसको नगरवधू कहते थे वेश्या को। बुद्ध के समय में प्रसिद्ध नगरवधू थी-- आम्रपाली। उसका नाम जाहिर है। नगर में जो सुंदरतम लड़की होती थी, उसको पूरे नगर की वधू घोषित कर देते थे, ताकि लोगों में कलह न हो, झगड़ा न हो कि कौन इससे विवाह करे। सबकी वधू हो गई वह--नगरवधू। और सम्मानित होती थी। कोई अपमान नहीं था उसमें। यह गौरव की ही बात थी कि कोई नगरवधू चुनी जाए। वेश्याओं को कुत्ती जैसा शब्द का उपयोग करना और वेदालंकार जैसे व्यक्ति को, वेदों के जानकार को... नहीं भी उन्होंने नाम लिखा होता तो भी मैं जान लेता कि ये एक शुद्ध आर्यसमाजी हैं। यह भाषा आर्यसमाज की है। यह भाषा अधार्मिक है। इस भाषा का धर्म से क्या संबंध हो सकता है? बुद्धपुरुष ऐसी भाषा नहीं बोल सकते।
और कहा है कि जीसस और सुकरात जैसे लोगों के साथ हम गिनती करेंगे।
लेकिन जीसस ने वेश्या को कुत्ती नहीं कहा है। जीसस ने तो अपने समय की प्रसिद्ध वेश्या मेग्दालिन को अपनी शिष्या स्वीकार किया। जीसस के जीवन में घटना है कि एक गांव के लोग एक वेश्या को पकड़ कर ले आए। जीसस नदी के किनारे रेत पर बैठे हुए थे। गांव के लोगों ने उन्हें घेर लिया और वेश्या को उनके सामने बिठा दिया। और कहा कि इस वेश्या को हमने पकड़ा है। यह व्यभिचारिणी है।... उन्होंने यही कहा होगा जो वेदालंकार कह रहे हैं।... कि यह कुत्ती है। और हमारा पुराना शास्त्र कहता है कि ऐसी स्त्रियों को पत्थर मार-मार कर मार डालना चाहिए।
अब यह बड़े मजे की बात है कि यह वेश्या गांव में जी रही है तो किनकी वजह
से जी रही होगी? आखिर पुरुष ही इसके पास जाते होंगे। इस वेश्या के पास जाता कौन है? मगर वे पुरुष पापी नहीं हैं! यह वेश्या पत्थर मार-मार कर मार डालने योग्य है।
आप क्या कहते हैं--उन लोगों ने जीसस से पूछा।
जीसस ने कहा कि मैं तुम्हारी बात समझा। मैं समझ गया भलीभांति कि तुम सोचते हो कि या तो जीसस कहेंगे इसे क्षमा करो, क्योंकि मेरी शिक्षा यही है कि सबको क्षमा करो, तो तुम कहोगे कि यह हमारे पुराने सिद्धांत के विपरीत बात कर रहा है। और अगर मैं कहूं कि इसको पत्थर मार-मार कर मार डालो, तो तुम कहोगे क्या हुआ तुम्हारे क्षमा के सिद्धांत का! लेकिन मैं ये दोनों बातें नहीं कहता। मैं तुमसे यह कहता हूं कि पत्थर वे लोग मारें जिन्होंने कभी वेश्यागमन न किया हो या वेश्यागमन का विचार न किया हो। उठाओ पत्थर! जिन्होंने कभी दूसरी स्त्रियों की तरफ ललचाई नजरों से न देखा हो, वे उठाएं पत्थर! वे आगे आएं!

और वे सारे बहादुर जो उस गरीब स्त्री को मारने को तैयार थे, चुपचाप पीछे सरकने लगे। कौन आगे आए? क्योंकि उन सबमें से अधिकतर तो वेश्यागामी थे। या नहीं थे तो कम से कम आकांक्षा रखते थे। या दूसरी स्त्रियों को जिन्होंने लालसा से न देखा हो, ऐसे पुरुष खोजने कहां संभव हैं! बहुत मुश्किल। धीरे-धीरे भीड़ छंट गई, लोग भाग गए। अकेले जीसस रह गए और वेश्या रह गई। वेश्या उनके चरणों पर गिर पड़ी। और उसने कहा कि मुझे क्षमा कर दें। आप पहले व्यक्ति हैं जिसने मेरे प्रति अपमानजनक शब्दों का उपयोग नहीं किया। इसलिए मैं स्वीकार करती हूं कि मैं पापिनी हूं।
जीसस ने कहा, मेरे सामने स्वीकार करने की कोई भी जरूरत नहीं है। यह तुम्हारे और तुम्हारे परमात्मा के बीच की बात है। मैं कौन हूं निर्णायक! मैं कौन हूं जो तुम्हें पापी कहूं! अगर तुझे दिखाई पड़ गया हो कि बात गलत है, तो बदल लेना। और तुझे दिखाई पड़ता हो कि बात ठीक है, तो जारी रखना। यह तेरे और तेरे परमात्मा के बीच निर्णय होना है। मैं कौन हूं!
लेकिन ये ब्रह्मचारी दीपक वेदालंकार "कुत्ती जैसी वेश्याएं" शब्द का प्रयोग कर रहे हैं! ब्रह्मचारी हैं न। वेश्याएं आकर्षित करती होंगी। ब्रह्मचारी और वेश्याओं में एक आंतरिक संबंध है गणित का। इन दोनों में जोड़ है, तालमेल है। मगर यह आर्यसमाज की भाषा है। इसलिए मैं आर्यसमाज को कोई धार्मिक आंदोलन ही नहीं मानता।
और यह बात जरूर सच है कि अपने को जहर देने वाले रसोइए को दयानंद ने माफ
कर दिया था। जैसे अच्छे से अच्छे आदमी के जीवन में एकाध बुरी घटना हो सकती है, वैसे बुरे से बुरे आदमी के जीवन में एकाध अच्छी घटना हो सकती है। लेकिन एकाध घटनाओं से निर्णय नहीं होते। निर्णय तो समग्र जीवन से होते हैं। निर्णय तो पूरे जीवन का निचोड़ होता है। उस एक घटना पर निर्णय को नहीं टांगा जा सकता।
फिर यह भी हो सकता है, जिसकी पूरी संभावना है... क्योंकि पूरा जीवन जिस व्यक्ति का गाली-गलौज से भरा हो, वह व्यक्ति अपने मारने वाले को माफ कर दे, यह बात तर्कसंगत नहीं मालूम होती, युक्तियुक्त नहीं मालूम होती; उसके जीवन में यह बात कहीं बैठती नहीं। तब फिर एक ही संभावना है और वह यह कि सदियों से यह धारणा रही है कि महात्मा व्यक्ति को अपने मारने वाले को क्षमा कर देना चाहिए। और अब मर ही रहे हैं तो कम से कम अपने को महात्मा सिद्ध करने का अंतिम मौका क्यों चूका जाए! क्षमा कर दो, मर तो रहे ही हैं। इतनी होशियारी!
आदमी होशियार थे। यह मैंने कभी कहा नहीं कि आदमी होशियार नहीं थे। और आदमी महापंडित थे। मैंने कभी उनके पांडित्य पर शक नहीं किया। संभवतः इस सदी में उनके मुकाबले कोई महापंडित नहीं है। आखिरी क्षणों में शायद सिर्फ इसीलिए क्षमा किया होगा कि अब मर ही रहे हैं, अब जीसस और सुकरात होने का मौका भी क्यों छोड़ा जाए!
मगर पूरा जीवन कुछ और कहता है। पूरे जीवन से इस घटना की कोई संगति नहीं है। जीसस के जीवन में तो उनकी अंतिम क्षमा की संगति है। सुकरात के जीवन में संगति है। मगर दयानंद के जीवन में कोई संगति नहीं है। दयानंद का जीवन तो अत्यंत क्रोध से भरा हुआ जीवन है--वैमनस्य, तर्कजाल। तर्क भी कम, वितर्क ज्यादा, वितंडा--और उसी में वे निष्णात कर गए हैं ये तथाकथित वेदालंकार और सिद्धांतालंकार इत्यादि-इत्यादि को। और ये गुरुकुल कांगड़ी से जो लोग तैयार होकर निकलते हैं, ये उसी भाषा में तैयार होकर निकलते हैं। इनको अड़चन हो रही है कि मैं कहता हूं उनमें सदव्यवहार नहीं था। मैं पुनः दोहराता हूंः उनमें सदव्यवहार नहीं था। और यह जो घटना है, एक घटना जरूर... इसे मैं अस्वीकार नहीं करता। जो है, उसे मैं कभी अस्वीकार नहीं करता। यह घटना है, लेकिन इसकी उनके जीवन में कोई संगति नहीं है, कोई तालमेल नहीं है। यह जीवन में यूं लगती है जैसे ऊपर से चिपका दी गई हो। जैसे आदमी जिंदगी भर तो रोता रहा हो और मरते वक्त हंस दे, तो वह हंसी एकदम चिपकी हुई मालूम पड़े।
एक ईसाई फकीर को एक आदमी ने मारा एक चांटा गाल पर, तो उसने दूसरा गाल उसके सामने कर दिया। क्योंकि वह ईसाई फकीर कहता था बार-बार अपने प्रवचनों

में कि जीसस ने कहा है--जो व्यक्ति एक गाल पर चांटा मारे, उसके सामने दूसरा कर देना।
मगर वह दूसरा भी एक पहुंचा हुआ ही सिद्धपुरुष रहा होगा। उसने दूसरे गाल पर और करारा चांटा जड़ दिया।
बस फिर वह ईसाई फकीर टूट पड़ा उस आदमी पर।
वह तो बिल्कुल तैयार ही नहीं था इसके लिए। वह तो बिल्कुल निश्चिंत।
जब एक पर मारा था, तब तो थोड़ा डरा भी था कि पता नहीं यह अपने सिद्धांत का अनुसरण करेगा कि नहीं! लेकिन जब उसने दूसरा गाल कर दिया तो वह बिल्कुल निश्चिंत था, उसने दिल खोल कर मारा था। जिंदगी में ऐसा मजा फिर कभी आए, न आए; मौका मिले, न मिले। अक्सर दूसरा गाल करने वाले आदमी मिलते कहां! उसने अच्छा करारा हाथ दिया था। जीवन भर की दबी हुई वृत्तियां प्रकट हो गई होंगी। उसको तो ख्याल ही नहीं था, तो वह तैयार ही नहीं था।
और ईसाई फकीर एकदम उसकी छाती पर चढ़ गया; और इस तरह उसे दबोचा और इस तरह पीटा। उसका भी जिंदगी भर का दबा था--और भी दबा था--वह तो बेचारा एक गाल पर जो मारे उसको दूसरा गाल सामने करने वाला सिद्धांत मानता था।
वह आदमी जब पिटने लगा और इतने जोर से मारने लगा ईसाई फकीर, तो उसने कहा, भई, सुनो भी तो! तुम्हारे सिद्धांत का क्या हुआ?
उसने कहा, ऐसी की तैसी सिद्धांत की। जीसस ने जहां तक कहा था, वहां तक मैंने पालन कर दिया; उसके आगे अब मैं स्वतंत्र हूं। जीसस ने कहा थाः जो एक गाल पर मारे, दूसरा गाल कर देना। तीसरा गाल तो है नहीं। अब मैं स्वतंत्र हूं। अब मैं तुझे मजा चखाता हूं बेटा। अगर पहले गाल पर मार कर तू लौट गया होता तो किसी को कभी पता भी नहीं चलता कि मामला कहां समाप्त होता है।
एक आदमी ने बुद्ध से पूछा कि आप कहते हैं क्षमा करो। मैं पूछता हूं, कितनी बार?
उसके पूछने का ढंग ही ऐसा था--कितनी बार? क्योंकि जो पूछे कितनी बार, उसका मतलब है कि फिर जब उतनी बार के आगे बात निकल जाए तो फिर मजा चखा देंगे। बुद्ध ने कहा, सात बार।
उस आदमी ने कहा, अच्छी बात है। ठीक है। सात बार सही।
बुद्ध ने कहा, रुक भाई! तू जिस ढंग से कह रहा है ठीक है, अच्छी बात है, चलो सात बार सही, उससे ऐसा लग रहा है कि आठवीं बार में तू ऐसा वार करेगा कि सौ सुनार की और एक लुहार की, कि एक ही बार में सातों बार का मामला हल कर देगा। तू ठहर! क्षमा में हिसाब नहीं होता, गणित नहीं होता। क्षमा का अर्थ ही है--क्षमा।
लेकिन दयानंद के जीवन में भारत का अहंकार, आर्य-धर्म की श्रेष्ठता का अहंकार, वेदों का अहंकार। और सब गलत हैं--महावीर गलत हैं, बुद्ध गलत हैं। और जिस ढंग से उन्होंने निंदा की है महावीर और बुद्ध की, जिन शब्दों में निंदा की है, और जो ओछे तर्क दिए हैं, जो बचकाने तर्क दिए हैं--वे सब बताते हैं कि ऐसा आदमी क्या क्षमा करेगा! अगर इसने कर भी दिया है क्षमा, तो शायद, निश्चित ही एक ही कारण हो सकता है क्षमा करने का कि अब मर ही रहा हूं, अब जाते वक्त महात्मा होने की यह आखिरी सील भी क्यों छोड़ी जाए! यह सील भी अपने जीवन पर लगा ली जाए।
उस घटना को मैं कोई बहुत ज्यादा मूल्य नहीं दे सकता। मैं घटनाओं को मूल्य नहीं देता। मैं घटनाओं कीशृंखला को मूल्य देता हूं। औरशृंखलाएं पूरे जीवन पर फैली होती हैं। एकाध फूल खिल जाए, इससे कोई वसंत नहीं आ जाता। वसंत जब आता है तो फूल ही फूल खिल जाते हैं। इतने फूल खिल जाते हैं कि पत्तों को जगह नहीं मिलती। एकाध फूल तो कभी-कभी असमय में भी खिल जाता है; वसंत आया न हो तो भी खिल जाता है। एकाध फूल से कुछ हल नहीं होता।
और वेदालंकार ने कहा है कि "मैं तो समझता हूं कि आप दयानंद जैसे प्रखर सूरज का तेज देख ही नहीं पाए हैं।"
तेज हो, तो देखना ही पड़े, दिखाई ही पड़े। कोई तेज वगैरह नहीं है। पांडित्य का जरूर एक अदभुत प्राकट्य हुआ है। भाषा का, व्याकरण का चमत्कार है। शब्दों को तोड़ने-मरोड़ने की जितनी कुशलता दयानंद की थी, शायद कभी किसी आदमी की नहीं रही। ऐसे-ऐसे अर्थ निकाल लेने की, जो कि उन शब्दों में हो ही नहीं सकते, जैसी उनकी प्रतिभा थी, वैसी किसी आदमी की नहीं रही।

जो है, वह मुझे दिखाई पड़ता है।
और अगर मुझे बुद्ध का तेज दिखाई पड़ता है, महावीर का दिखाई पड़ता है, कृष्ण का दिखाई पड़ता है, नागार्जुन का दिखाई पड़ता है, वसुबंधु का दिखाई पड़ता है, शंकर का दिखाई पड़ता है, रामानुज का दिखाई पड़ता है, निम्बार्क का दिखाई पड़ता है, वल्लभ का दिखाई पड़ता है, रामकृष्ण का दिखाई पड़ता है, रमण का दिखाई पड़ता है, कृष्णमूर्ति का दिखाई पड़ता है--तो दयानंद से ही मेरी ऐसी कौन सी दुश्मनी है? मुझे दूर-दूर के लोगों का भी--जरथुस्त्र का दिखाई पड़ता है, लाओत्सु, च्वांग्त्सु, लीहत्सु का दिखाई पड़ता है, जीसस और मोहम्मद का भी दिखाई पड़ता है--तो दयानंद से मुझे क्या अड़चन है? इतने नामों में दयानंद का भी एक नाम गिनने में मुझे कुछ कंजूसी नहीं हो जाती। नाम तो कुछ बुरा नहीं है, प्यारा नाम है--दयानंद। उसका अर्थ भी अच्छा है।
लेकिन मैं भी क्या करूं--रोशनी हो तो दिखाई पड़े! रोशनी हो तो दिखाई पड़ेगी ही। और कितने ही बादलों में घिरी हो, तो भी सूरज दिखाई पड़ जाता है। मोहम्मद का सूरज बहुत बादलों में घिरा है--फिर भी मैं उसे देख पाता हूं। और मूसा का सूरज भी बहुत बादलों में घिरा है--फिर भी मैं उसे देख पाता हूं। लेकिन दयानंद को न मूसा का सूरज दिखाई पड़ता है, न ईसा का सूरज दिखाई पड़ता है, न महावीर का, न बुद्ध का! दयानंद की तो सारी की सारी सीमा वेदों में बंधी हुई है। वेदों के बाहर उन्हें कुछ नहीं दिखाई पड़ता। और वेदों में निन्यानबे प्रतिशत कचरा है।
मैं भी क्या करूं! जैसा है, वैसा ही कहूंगा!
तुमने पूछा है श्रीचंदः "मैं नहीं जानता क्या पाने आया हूं, लेकिन कुछ पाने की इच्छा है। क्या मिलेगा? कृपया बताएं।"
यहां पांडित्य नहीं मिलेगा। यहां ज्ञान नहीं मिलेगा। यहां तो खोना पड़ेगा--शास्त्र खो जाएंगे; अगर वेदालंकार हो, तो वेदालंकार होना खो जाएगा; अगर ब्रह्मचारी का अहंकार लिए घूम रहे हो, तो वह खो जाएगा; अगर आर्य होने का दंभ है, तो वह खो जाएगा; हिंदू, जैन, बौद्ध होने की अगर अकड़ है, तो वह खो जाएगी। मैं तो तुमसे छीनूंगा, ताकि तुम्हारे भीतर बस उतना ही बच रहे जितना छीना ही नहीं जा सकता। और जिस दिन उतना ही बच रहेगा जो छीना नहीं जा सकता, उस दिन तुमने पा लिया जो पाने योग्य है। और उसे पाने से नहीं पाया जाता, दौड़ कर नहीं पाया जाता--बैठ कर पाया जाता है, रुक कर पाया जाता है, ठहर कर पाया जाता है।

तीसरा प्रश्नः ओशो! मैं ध्यान करने की अथक चेष्टा कर रहा हूं, पर सफलता हाथ नहीं लगती है। क्या करूं?

सुधाकर! ध्यान करने की अथक चेष्टा? चेष्टा में ही उपद्रव है। ध्यान कोई चेष्टा नहीं है। चेष्टा से तो तनाव पैदा हो जाएगा। चेष्टा कौन करेगा? वह तो मन ही करेगा। और ध्यान है मन का अतिक्रमण। ध्यान चेष्टा से नहीं होता, ध्यान तो होता है विश्राम में।
पतंजलि ने ठीक कहा है कि समाधि और सुषुप्ति में एक समानता है। जैसे सुषुप्ति घटती है जब तुम विश्राम में पड़ जाते हो, वैसे ही समाधि भी घटती है विश्राम में। भेद भी है, समानता भी है। समानता है कि दोनों विश्राम में घटते हैं; और भेद है कि सुषुप्ति में होश नहीं होता और समाधि में होश होता है। मगर भूमिका में दोनों समान हैं।
मुल्ला नसरुद्दीन मुझसे कह रहा था, भगवान, मुझे नींद नहीं आती।
मैंने पूछा, क्यों नहीं आती?
मुल्ला बोला, मालूम नहीं। रात को रोज मैं बारह बजे तक नींद की प्रतीक्षा करता हूं, अथक चेष्टा करता हूं कि आए, आए, आए। जब वह नहीं आती तो मैं तंग आकर सो जाता हूं।
सुधाकर, करो अथक चेष्टा। जब तंग आ जाओगे, तब हल होगा।
बुद्ध ने छह वर्ष ध्यान की अथक चेष्टा की। फिर तंग आ गए, फिर एक दिन ध्यान भी छोड़ दिया। और जिस दिन ध्यान छोड़ा, उसी दिन समाधि फली।
बुद्ध के जीवन की यह घटना अपूर्व है। छह वर्ष की अथक चेष्टा में नहीं घटी घटना। घटी उस दिन, जिस दिन वे थक गए--बिल्कुल थक गए। और उन्होंने कहा कि

होना ही नहीं है अब, यह बात ही फिजूल है। यह मालूम होता है सिर्फ काल्पनिक है। उस सांझ पूरी रात वे बिल्कुल बिना चेष्टा के सोए। नहीं तो सोए ही नहीं थे छह वर्ष से ठीक से। वह ध्यान ही उनको सता रहा था--कि जीवन कब खो जाए! कल हो या न हो! इसलिए सब समय लगा रहे थे, पूरी ताकत लगा रहे थे। जितनी ताकत लगा रहे थे, उतना ही मुश्किल होता जा रहा था।
तुमने कभी ख्याल किया एक छोटी सी घटना का? राह पर तुम्हें एक आदमी मिलता है। शक्ल पहचानी मालूम पड़ती है। नाम भी लगता है जबान पर रखा है, मगर याद नहीं आता। तुम कहते भी हो कि मालूम है कि यह आदमी कौन है, नाम भी मालूम है, मगर बस जबान पर रखा है।
अब जबान पर रखा है तो निकालते क्यों नहीं? और तुम गलत भी नहीं कह रहे हो, यह भी मैं जानता हूं। जबान पर ही रखा है। मगर बस कुछ अटकन है, कुछ अड़चन है। तुम जितनी कोशिश करते हो कि आ जाए, आ जाए, उतना ही मुश्किल होता जाता है।
फिर तुम थक जाते हो। फिर तुम छोड़-छाड़ कर अखबार पढ़ने लगे कि भाड़ में जाए, हमें करना क्या है! और अखबार पढ़ रहे हो, कुछ का कुछ पढ़ रहे हो, और तब अचानक वह नाम आ जाता है।
मैडम क्यूरी तीन वर्ष तक एक गणित के सवाल को हल करती रही। नहीं आया, नहीं आया। और एक रात वैसा ही घटा, जैसा बुद्ध को घटा था। वह रात थक कर सोई। उसने कहा, खत्म, अब नहीं करना, कल से बात खत्म। अब जिंदगी में और भी सवाल हैं। तीन साल काफी हो गए। और उसी रात हल हो गई बात। उत्तर उभर आया। यूं उभरा कि खुद मैडम क्यूरी को चकित कर गया।
वह नींद में उठी और जाकर टेबल पर उत्तर लिख कर और फिर वापस सो गई। सुबह
जब उठी, टेबल पर उत्तर लिखा हुआ पाया। दरवाजे भीतर से बंद थे। कमरे में कोई आ सकता नहीं था। और कोई आ भी जाता, तो जिस उत्तर को मैडम क्यूरी तीन वर्ष तक नहीं ला सकी, उसको कौन लाने वाला था! घर में एक नौकर जरूर था, मगर उस नौकर की क्या हैसियत थी! मैडम क्यूरी को, नोबल पुरस्कार विजेता महिला को अगर गणित हल नहीं हो रहा है, तो नौकर क्या करेगा हल! और दरवाजे बंद थे तो नौकर भी नहीं आ सकता।
फिर जब गौर से देखा तो हैंड राइटिंग भी पहचाना हुआ लगा--अपना ही था। तब
तो और भी चकित हुई। फिर धीरे-धीरे याद आनी शुरू हुई। तब उसे ख्याल आया कि रात उसे ऐसा लगा था कि वह सपने में उठी है और उठ कर उसने कुछ लिखा है टेबल पर। फिर तो धीरे-धीरे सारी बात याद आ गई। उसने ही जाकर टेबल पर वह उत्तर लिखा था। और उसी सांझ उसने तय किया था कि अब छोड़ दी यह बात।
ऐसे ही एक सांझ बुद्ध ने तय किया था--पूरे चांद की रात थी--कि अब छोड़ दी
यह बात। अब नहीं करनी चेष्टा। हो गई बहुत चेष्टा। और जब बुद्ध ने अपने पांच शिष्यों को, जो छह वर्ष से उनके पीछे चलते थे छाया की तरह, उनको कहा कि भई, मैं थक गया इस तप से, तपश्चर्या से। यह सब मूढ़ता मालूम होती है। जो मुझे कहा गया है, मैंने किया, लेकिन ध्यान नहीं लगा। इसलिए अब मैं यह छोड़ता हूं। वे पांचों शिष्यों ने यह सोच कर कि यह गौतम सिद्धार्थ भ्रष्ट हो गया, बुद्ध का साथ छोड़ दिया। वे उसी सांझ बुद्ध का साथ छोड़ कर चले गए! कह गए बुद्ध को कि गौतम, तुम भ्रष्ट हो गए! अब तक हम मानते थे तुम हमारे गुरु हो, क्योंकि हम जो तपश्चर्या नहीं कर सकते थे, वह तुम करते थे। हम अगर घंटे भर सिर के बल खड़े होते थे, तुम छह-छह घंटे खड़े होते थे। हम तुमसे चमत्कृत थे। हम अगर एक बार भोजन करते थे, तुम दो दिन में एक ही बार भोजन करते थे।
किसी ने बुद्ध को कहा कि भोजन को रोज कम करते जाओ। इतना कम करो कि सिर्फ एक चावल के दाने तक आ जाओ। छह महीने में कम करते-करते रोज, एक चावल के दाने पर आए। इतने क्षीणकाय हो गए--अस्थि सब दिखाई पड़ने लगीं। पेट पीठ से लग गया। मगर नहीं हुआ ध्यान। अब कोई अस्थिपंजर हो जाने से थोड़े ही ध्यान का संबंध है। नींद भी खो गई। ध्यान तो दूर, नींद भी खो गई। चैन भी खो गया।
जब उन्होंने यह सब छोड़ दिया और गांव की एक युवती--सुजाता ने मनौती मनाई थीः पीपल के देवता को खीर चढ़ाएगी अगर वह गर्भवती हो जाए। वह गर्भवती हो गई थी। तो पूरे चांद की रात थी, पूर्णिमा की रात थी, वह खीर चढ़ाने आई। वहां उसने बुद्ध को बैठे देखा। उसने समझा कि देवता स्वयं पीपल से प्रकट होकर खीर स्वीकार करने को मौजूद हैं। उसका तो धन्यभाग! वह तो चरणों पर गिर

पड़ी। और कोई दिन होता तब तो बुद्ध लेते ही नहीं खीर उसकी। रात को लेते ही नहीं थे। लेकिन उस दिन तो उन्होंने सब त्याग-तपश्चर्या छोड़ दी थी--खीर स्वीकार कर ली।
उन पांचों भिक्षुओं ने देखा कि यह तो हद हो गई भ्रष्ट होने की बात कि रात को भोजन हो रहा है! यह आदमी बिल्कुल गया काम से। वे तो एकदम नमस्कार करके कि भैया, अब हम चले। भाग ही गए। छोड़ कर ही चले गए। उन्हें क्या पता था कि आज की ही रात वह क्रांतिकारी घटना घटने वाली है! एक सिलसिला आज की रात शुरू होगा जो सदियों तक न मालूम कितने लोगों के जीवन में रोशनी को जलाएगा! आज एक दीया जलेगा जिस दीये से फिर न मालूम कितने दीये जलेंगे! जिससे एक दीयों कीशृंखला पैदा होगी! वे छोड़ कर चले गए।
और उसी रात बुद्ध को घटना घटी। इतने विश्राम में पड़े थे। सुबह जब आंख खुली, आखिरी तारा डूब रहा था। उस आखिरी तारे को डूबते देख कर--सिर्फ साक्षी उनके भीतर था--बस तारे को डूबते देखा, तारा डूब गया और उन्हें साक्षी का बोध हो गया। कोई विचार न था। कोई तनाव न था। वह ध्यान की वासना भी जा चुकी थी।
तुम कहते हो सुधाकरः "मैं ध्यान करने की अथक चेष्टा कर रहा हूं, पर सफलता हाथ नहीं लगती।"
अथक चेष्टा करोगे तो सफलता हाथ लगेगी नहीं। ध्यान विश्राम की कला है। तुम्हारी चेष्टा ही सब गड़बड़ किए दे रही है। तुम मेरी बात को नहीं समझ पा रहे। मैं यहां विश्राम सिखाता हूं। मैं यहां तुम्हें तपश्चर्या नहीं सिखा रहा हूं। मैं यहां तुम्हें सिखा रहा हूं कि कैसे तुम शिथिल, शांत, विश्राम को उपलब्ध हो जाओ; कैसे तुम्हारे जीवन से सारे तनाव चले जाएं। तुम उलटा ही कर रहे हो। उलटा करोगे तो फिर हारोगे। लेकिन हारने का दोष तुम मुझे मत देना।
मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी गुलजान एक दिन भागती हुई चिकित्सक के पास पहुंची और हांफते हुए बोली कि डाक्टर साहब, जल्दी कुछ करिए। मेरे पति मुल्ला नसरुद्दीन सुबह से संडास गए हैं, तो शाम होने को आई, अभी तक निकलने का नाम ही नहीं ले रहे हैं!
डाक्टर ने पूछा, लेकिन बात क्या हुई, जरा विस्तार से तो कहो।
गुलजान बोली कि बात दरअसल यह है कि पिछले एक माह से हमारी कजरी भैंस
ने गोबर देना बंद कर दिया था। दाना-पानी तो खाए, मगर गोबर न करे। इससे नसरुद्दीन को बड़ी परेशानी थी। सो आज वे चिकित्सक के पास गए थे और उसे अपनी भैंस की तकलीफ के बारे में बताया। चिकित्सक ने उन्हें कुछ गोलियां दीं और कहा--इन्हें भैंस को खिला देना। जब उनसे पूछा कि इन गोलियों को कैसे खिलाया जाए? तो बोले कि इन्हें एक पाइप में रखना, तथा पाइप का एक छोर अपने मुंह में तथा दूसरा भैंस के मुंह में रख कर जोर की फूंक मारना, बस गोलियां भैंस के अंदर चली जाएंगी।
चिकित्सक गुलजान को टोकते हुए बोला, लेकिन इस किस्से का नसरुद्दीन से क्या संबंध है?
गुलजान बोली, वही तो मैं बताना चाह रही हूं कि नसरुद्दीन के फूंक मारने के पहले ही भैंस ने फूंक मार दी और गोलियां नसरुद्दीन के पेट में चली गईं। उसी के परिणामस्वरूप नसरुद्दीन संडास में जो घुसे हैं, सो निकलने का नाम ही नहीं ले रहे हैं। अब उन्हें संडास से कैसे निकालना है, यही पूछने आपसे आई हूं!
उलटा हो गया। भैंस ने पहले फूंक मार दी। भैंसों का कोई भरोसा!
तुम कह रहे होः "मैं अथक चेष्टा में लगा हूं।"
वही मैं समझा रहा हूं कि चेष्टा भर न करना। तुम चेष्टा ही नहीं कर रहे--अथक चेष्टा कर रहे हो।
ये भ्रांत धारणाएं सदियों पुरानी हैं। ये हमारी छाती पर चढ़ी बैठी हैं। तप, तपश्चर्या, चेष्टा, श्रम--हमने इतना मूल्य दे दिया है इन बातों को जिसका हिसाब नहीं! जैनों की पूरी परंपरा, पूरी संस्कृति श्रमण संस्कृति कहलाती है। श्रमण संस्कृति का अर्थ होता हैः श्रम करने वाले लोग। अथक चेष्टा में लगे हैं!

मैं तुम्हें विश्राम सिखा रहा हूं, विराम सिखा रहा हूं। यहां नाचो, गाओ--मगर मस्ती में, चेष्टा में नहीं--आनंदमग्न, उत्सवपूर्वक! यहां जो भी हो रहा है, वह सब तुम्हारे तनावों को क्षीण करने की व्यवस्था है। तुम्हारा चित्त जितना तनाव-शून्य हो जाएगा, उतनी ही शीघ्रता से ध्यान फलित होगा।

चौथा प्रश्नः ओशो! आप कहते हैं कि इस सदी का मनुष्य सबसे ज्यादा प्रौढ़ है। तो यह मनुष्य आपको क्यों नहीं समझ पा रहा है? कृपया समझाने की अनुकंपा करें।

धर्म सरस्वती! मैं जब कहता हूं इस सदी का मनुष्य सबसे ज्यादा प्रौढ़ है, तो इसका यह अर्थ नहीं है कि इस सदी में रहने वाले सभी लोग इस सदी के हैं। इस सदी में रहने वाले बहुत ही कम लोग बीसवीं सदी के हैं। जो बीसवीं सदी के हैं, वे तो प्रौढ़ हैं और उनको मेरी बात समझ में आ रही है। लेकिन वे बहुत कम हैं।
अब ये ब्रह्मचारी दीपक वेदालंकार, इनको मैं इस सदी का नहीं मान सकता हूं। ये समसामयिक नहीं हैं। एक ही साथ यहां इतने लोग बैठे हैं, इससे तुम यह मत सोचना कि सभी लोग एक ही साथ हैं। इनमें कोई पांच हजार साल पुराना है! खोपड़ी-खोपड़ी अलग-अलग सदियों की हैं। किसी की खोपड़ी में वेद भरे हैं। जिनकी खोपड़ी में वेद भरे हैं, वे कम से कम पांच हजार साल पुराने तो हैं ही।
और मजा तो यह है कि जिनकी खोपड़ी में वेद भरे हैं, वे न केवल यह चेष्टा करते हैं कि वे पांच हजार साल पुराने हैं वेद, उनकी चेष्टा यह होती है कि पांच हजार साल! कौन कहता है पांच हजार साल? नब्बे हजार साल पुराने हैं। इसी तथाकथित पुण्य की नगरी पूना में बालगंगाधर तिलक ने सिद्ध करने की कोशिश की थी कि वेद नब्बे हजार साल पुराने हैं। और भारतीय अहंकार को खूब आनंद आया। इसलिए बालगंगाधर तिलक एकदम लोकमान्य हो गए। हो ही जाना चाहिए लोकमान्य। जो तुम्हारे अहंकार की तृप्ति करे वह लोकमान्य हो जाए, लोकनायक हो जाए, लोकनेता हो जाए! जितने पुराने हों वेद, इसकी खींचने की कोशिश की जाती है। जैसे वेद न हुए कोई शराब हुई कि जितनी पुरानी हो उतनी अच्छी। एक अर्थ में शराब ही है।
कार्ल मार्क्स से मैं राजी हूं, निन्यानबे प्रतिशत राजी हूं। उसने कहा है कि तुम्हारे तथाकथित धर्म जनता के लिए अफीम का नशा हैं। निन्यानबे प्रतिशत मैं राजी हूं। क्योंकि निन्यानबे प्रतिशत तथाकथित धार्मिक लोग अपने धर्मों का उपयोग नशे की तरह कर रहे हैं। सिर्फ एकाध प्रतिशत लोग हैं जो धर्मों का उपयोग जागरण की तरह करते हैं; बाकी लोग तो सोने के लिए, सांत्वना के लिए--सत्य के लिए नहीं।
तो सारे लोग इस सदी के नहीं हैं। इस सदी में हैं, लेकिन तरह-तरह के लोग हैं--कोई तीन सौ साल पुराना है, कोई पांच सौ साल पुराना है, कोई हजार साल पुराना है, कोई दो हजार साल पुराना है, कोई पांच हजार साल पुराना है, कोई दस हजार साल पुराना है। इनको मेरी बात कैसे समझ में आ सकती है? मैं जो कह रहा हूं, वह अभी की बात है--इतनी ताजी जैसे सुबह की ओस, जैसे अभी खिला-खिला फूल! स्वभावतः समझ में आना मुश्किल होगा, कठिनाई होगी, अड़चन होगी।
रेलगाड़ी रुकने पर चंदूलाल ने अपने बगल में बैठे ढब्बूजी के कंधे पर हाथ रख कर पूछा, क्यों भाई, यह कौन सी स्टेशन है?
ढब्बूजी ने हाथ को झिड़कते हुए कहा, माफ करिए, यह कोई स्टेशन नहीं, मेरा कंधा है।
मुल्ला नसरुद्दीन को फास्ट ड्राइविंग का बड़ा शौक था। एक दिन वे और उनके मित्र चंदूलाल अपनी-अपनी मोटर साइकिलों पर शाम गुजारने के लिए निकले। नसरुद्दीन की मोटर साइकिल एकदम तीर की तरह चल रही थी और चंदूलाल बार-बार पीछे छूट जाते। अचानक सामने से एक ट्रक आता हुआ दिखाई दिया, जिसकी दो लाइटें चमक रही थीं। लेकिन दूर से उसे देख नसरुद्दीन ने चंदूलाल से कहा कि देखो, अब इन दो मोटर साइकिलों के बीच से किस तरह मैं अपनी मोटर साइकिल निकालता हूं! चंदूलाल ने उन्हें मना किया कि रहने भी दो, लेकिन वे न माने और तेजी से अपनी मोटर साइकिल ले गए। और वही हुआ जो होना था। भयंकर एक्सीडेंट हुआ। अस्पताल में मुल्ला को भरती किया गया। उनके शरीर पर

फ्रैक्चर ही फ्रैक्चर हो गए थे। पूरे सात दिन बात उन्हें होश आया। तो चंदूलाल उनसे मिलने गए और मुल्ला से हाल-चाल पूछा। मुल्ला से चंदूलाल ने कहा कि देखो, मैंने तुमसे पहले ही कहा था कि इस प्रकार मोटर साइकिल न चलाओ। मुल्ला नसरुद्दीन बोला, ऐसी की तैसी मोटर साइकिल की जी, पहले यह बताओ
कि उन दो मोटर साइकिलों के बीच वह बिना बत्ती की मोटर साइकिल वाला कौन था? कौन था वह हरामजादा जिसकी गाड़ी में लाइट नहीं थी?
मनुष्य को जब मैं कहता हूं प्रौढ़ है आज की सदी का, तो यह थोड़े से लोगों
के संबंध में लागू होता है। जो हिंदू है, वह कैसे आज की सदी का हो सकता है! जो मुसलमान है, वह कैसे आज की सदी का हो सकता है! जो ईसाई है, वह कैसे आज की सदी का हो सकता है! असंभव। जो कम्युनिस्ट है, वह भी आज की सदी का नहीं है। वह भी मार्क्स के इर्द-गिर्द भटक रहा है। मार्क्स को गए भी समय हो गया। जो फ्रायड को मानने वाला है, वह भी आज की सदी का नहीं है। फ्रायड को भी गए समय हो गया। सिर्फ ध्यानी ही समसामयिक होता है, क्योंकि वह प्रतिपल नया होता चलता है, वह अतीत को इकट्ठा नहीं करता। ऐसे थोड़े से लोगों की ही समझ में मेरी बात आ सकती है। बाकी लोग तो तरह-तरह की बेहोशियों में हैं। और वे अधिक हैं। उनकी संख्या बड़ी है।
कल ही मुझे स्विटजरलैंड से एक महिला का पत्र मिला। उसका बेटा संन्यासी था। महीने भर पहले वह कैंसर से मर गया। उसने पत्र में बड़ी नाराजगी जाहिर की है। उसने पत्र में लिखा है कि मेरे बेटे की मृत्यु की जिम्मेवारी आपकी है।
मैं भी थोड़ा चौंका। उसके बेटे को कैंसर हुआ, इसमें मेरी क्या जिम्मेवारी हो सकती है? लेकिन पत्र आगे पढ़ने से जाहिर हुआ कि उसका कहने का मतलब क्या है।
उसने लिखा है कि मेरा बेटा मरते समय तक आपकी तस्वीर अपनी आंखों के सामने रखे रहा। अगर उसने आपकी जगह जीसस को याद किया होता, तो क्यों मरता? इसका तो मतलब यह हुआ कि किसी ईसाई को कैंसर से नहीं मरना चाहिए। और जितने ईसाई कैंसर से मर रहे हैं, दुनिया में कोई नहीं मर रहा कैंसर से। क्योंकि कैंसर विकसित देशों की बीमारी है। गरीब देश कैंसर जैसी बीमारियों का लाभ नहीं ले सकते। उनकी बीमारियां भी गरीब होती हैं। ये अमीरों की बीमारियां हैं। ये शाही बीमारियां हैं। इसलिए तो आयुर्वेद में टी.बी. को राजरोग कहा, क्योंकि वह पहले सिर्फ राजाओं को होता था। गरीब आदमी को हो कैसे सकता है! गरीब आदमी के जीवन का ढंग ऐसा है--आठ घंटे मेहनत करेगा, टी.बी. होने की फुर्सत कहां, समय कहां! समय भी चाहिए न, इस तरह की बातों के लिए सुविधा भी चाहिए।
कैंसर के लिए तुम्हारे पास खर्च करने के उपाय चाहिए। कैंसर यूं ही नहीं हो जाता! टेलीविजन देखो पांच-छह घंटे; सिगरेट पीओ तीन-चार पाकेट दिन में; कोई श्रम न करो; शराब पीओ; मांसाहार करो; उलटी-सीधी चीजें खाओ; जिनका कोई पौष्टिक मूल्य नहीं है, इस तरह का कूड़ा-करकट भरते रहो, कभी आइसक्रीम के नाम से, कभी किसी और नाम से; जहां हवा बिल्कुल दूषित हो गई है--जैसे न्यूयार्क, लासएंजेल्स, सानफ्रांसिसको--ऐसे नगरों में रहो, जहां हवा जहर है। तो ईसाइयों को जितनी कैंसर की बीमारी होती है, उतनी तो किसी और को होती नहीं।
मगर उस महिला ने लिखा है कि अगर उसने आपकी तस्वीर की जगह जीसस की तस्वीर रखी होती, तो क्यों मरता? लाख उसे समझाया, नहीं माना। बस आपकी तस्वीर ही आंख के सामने रखे-रखे मर गया। और यही नहीं, मरते वक्त कह गया कि मुझे मेरी माला के साथ दफनाया जाए। हमारी बिल्कुल इच्छा नहीं थी कि आपकी माला के साथ उसे दफनाया जाए। कम से कम मरते वक्त तो उसकी छाती पर क्रॉस रख दिया जाए। मगर उसकी इच्छा को ध्यान में रख कर--मरते समय की इच्छा--हमें आपकी माला के साथ ही उसे दफनाना पड़ा है। दुखपूर्वक हमें लिखना पड़ रहा है यह। लेकिन जिम्मेवारी आपकी है।
अब यह जो महिला है, इसको तुम बीसवीं सदी का कहोगे? भला स्विटजरलैंड में रहती हो, मगर यह बीसवीं सदी की नहीं है। यह दो हजार साल पुरानी किसी दुनिया में रह रही है। इसको ख्याल है कि जीसस पानी पर चलते हैं, और मुर्दों को जिलाते हैं, और अंधों की आंखें छूकर ठीक कर देते हैं। यह सब कहानियों

में इसका भरोसा है। ये कहानियों में बच्चे भी भरोसा नहीं करते अब। जो आधुनिक बच्चे हैं, वे इन कहानियों में भरोसा नहीं करते। लेकिन जो आधुनिक नहीं हैं, वे इन कहानियों में ही जी रहे हैं। क्या-क्या कहानियां हैं!
मैं छोटा था। एक स्वामी जी प्रवचन दे रहे थे। उन्होंने कहा कि हनुमान
जी जब संजीवनी बूटी लेने गए, तो वे खोज नहीं पाए संजीवनी बूटी, सो पूरा पहाड़ ले आए उठा कर।
मैंने उनसे कहा कि क्या इतने बुद्धू थे कि संजीवनी बूटी न खोज पाए? आप
तो कहते हैं महाशक्तिशाली थे। राम की उन पर कृपा थी। राम की कृपा हो जिस पर, जो महाशक्तिशाली हो, जो पहाड़ उठा कर ले आए, वह संजीवनी बूटी न खोज सका? बस वे एकदम नाराज हो गए कि तुम नास्तिक हो।
मैंने कहा, मैं नास्तिक हूं या आस्तिक, इसकी चिंता आप छोड़ें। उससे मेरा नर्क या स्वर्ग तय होगा। मैं तो यह पूछता हूं कि हनुमान जी बेचारे इतना भी नहीं समझ पाए कि संजीवनी बूटी क्या है? और चिकित्सक ने समझा कर भेजा था कि संजीवनी बूटी कैसी होती है। सब लक्षण दे दिए थे। फिर पूरा पहाड़ उठा कर ला सकते हैं।...
और इस पर अभी भी भरोसा चलता है कि वे पूरा पहाड़ उठा कर ले आए। अब इस पर
जो आज भी भरोसा करने वाले लोग हैं कि पूरा पहाड़ उठा कर ले आए, उनको अंदाज नहीं है कि वे क्या भरोसा कर रहे हैं! और उनका भरोसा उन्हें समसामयिक नहीं होने दे रहा है।
ऐसे लोगों को मेरी बात समझ में नहीं आ सकती है। ऐसे लोग बेहोशी में हैं, नशे में हैं।
मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन शराबघर के सामने से गुजर रहा था कि उसे अंदर
से लड़ाई-झगड़े की आवाजें सुनाई दीं, और तभी भीतर से एक आदमी को उठा कर बाहर फेंक दिया गया। वह आदमी नसरुद्दीन के पास आकर गिरा। नसरुद्दीन ने उसे सांत्वना देते हुए कहा कि भाई, फिक्र मत करो। शराबघर में ऐसी मामूली मार-पीट तो चलती ही है।
वह व्यक्ति तो एकदम गरम हो गया और बोला कि ऐसी की तैसी उन हरामजादों की। तुम अभी यहीं रुको, मैं इनको एक-एक करके अभी यहां उठा-उठा कर फेंकता हूं। मैं उन्हें भीतर से बाहर फेंकूंगा, तुम जरा गिनती करना।
यह कह कर वह भीतर चला गया। थोड़ी देर बाद फिर धमाचौकड़ी होने लगी। मार-पीट, लात-घूंसे चलने की आवाजें आने लगीं। और धड़ाम से एक आदमी को अंदर से बाहर फेंका गया।
नसरुद्दीन जोर से चिल्लाया, एक।
वह आदमी उठा और बोला, माफ करना नसरुद्दीन, अभी तो मैं ही हूं।
बेहोश लोग तरह-तरह की बेहोशियों में हैं। उनको मेरी बात समझ में नहीं
आ सकती है। धर्म सरस्वती, लेकिन जो मैं कह रहा हूं उसमें जरा भी भूल-चूक नहीं है। यह सदी पहली दफा प्रौढ़ हुई है। कुछ ही लोग प्रौढ़ हुए हैं। मगर इतने लोग भी कभी प्रौढ़ नहीं थे।
आज इतने लोग मुझे चुपचाप बैठ कर शांति से सुन रहे हैं। एक आदमी उठ कर खड़ा हुआ, उपद्रव करने की आकांक्षा जगी होगी उसके भीतर। अगर आज से दो हजार साल पहले मैंने ये बातें कही होतीं, तो एक आदमी शायद सुनता और बाकी सब लोग उठ कर खड़े होते। इतना फर्क पड़ा है। अब एक आदमी उठता है और बाकी लोग चुपचाप बैठे सुन रहे हैं, समझने की कोशिश कर रहे हैं। वह एक आदमी होगा कोई ब्रह्मचारी, कोई वेदालंकार, कोई सिद्धांतालंकार, कोई गुरुकुल कांगड़ी का स्नातक, कोई आर्यसमाजी, उसके बरदाश्त के बाहर हो गया होगा, खून खौल गया होगा उसका।
इतना दमन किए लोग बैठे हैं, इतना ईंधन दबाए बैठे हैं कि उनका खून खौलता ही रहता है!
मुल्ला नसरुद्दीन मुझसे कह रहा था कि मेरी पत्नी सुबह से ही खौलने लगती है। इधर चाय का पानी गरम होता है, उधर मेरी पत्नी गरम होती है। बस साथ ही साथ गरम होती है। इधर मैं चाय पीता जाता हूं, उधर पत्नी की बकवास सुनता जाता हूं। और चाय पीकर जो भागता हूं घर से, सो फिर जितने दूर बन सकता है निकल जाता हूं; यही मेरे स्वास्थ्य का राज है, इसी की वजह से मैं स्वस्थ हूं।

जब सौ वर्ष का नसरुद्दीन हो गया, उससे पूछा पत्रकारों ने कि तुम सौ वर्ष के कैसे हुए?
उसने कहा, इसका राज है कि जब मेरा विवाह हुआ, मैंने और पत्नी ने यह तय
कर लिया था कि अगर मुझे गुस्सा आ जाए तो मैं बाहर जाकर घूमने निकल जाऊं; अगर उसको गुस्सा आ जाए तो वह बाहर जाकर घूमने चली जाए। सो मेरा जीवन बाहर ही घूमने में बीता है। शुद्ध हवा! उसका परिणाम है! पत्नियां तो मैं सात दफना चुका, मगर हर पत्नी से मैंने यही वायदा पहले ही कर लिया। इससे मैं सुरक्षित हूं। पत्नियां आईं और गईं। अरे यह तो लगा ही है संसार में आवागमन, मगर मैं सुरक्षित हूं। खुली हवा, ताजी हवा, और घूमना-फिरना, और दिन भर घूमना-फिरना--जूते जरूर घिस गए, मगर मैं नहीं घिसा।
कुछ लोग खौलने के लिए ही बैठे हैं। उनके भीतर जल रही है आग। दमन किए बैठे हैं--कोई कामवासना का, कोई क्रोध का, कोई लोभ का। और न मालूम क्या-क्या दबाए बैठे हैं! जरा सा उनको मौका मिल जाए। उनके भीतर तो जैसे बारूद पड़ी है, जरा सी चिनगारी पड़ जाए! और यहां तो मैं चिनगारियां ही फेंक रहा हूं।
यहां इतने लोग शांत बैठे हैं, यह तुम्हें प्रौढ़ता का लक्षण नहीं मालूम पड़ता? और जिस देश में जितने ज्यादा प्रौढ़ लोग होंगे, उस देश से उतने ही ज्यादा लोग मेरे पास आएंगे। जिस देश में जितने ज्यादा दकियानूसी लोग होंगे, उतने ही कम लोग मेरे पास आएंगे। जहां जितना ज्यादा पुराणपंथ होगा, उतनी ही मेरी बात नहीं समझी जा सकेगी। जहां जितनी मुक्त चेतना होगी, समझ के खुले द्वार होंगे, जहां कपाट खुले होंगे मस्तिष्क के--हवा के लिए, सूरज के लिए, वर्षा के लिए, फूलों की गंध के लिए, चांद-तारों के लिए--वहां मेरी बात समझी जा सकेगी।
यह देश पुराणपंथी देश है, दकियानूसी देश है। यहां मुझे गालियां पड़ रही हैं। दूर-दूर के देशों में प्रतिष्ठित विचारक, दार्शनिक, लेखक, कवि, चित्रकार, संगीतज्ञ प्रशंसा कर रहे हैं--जो मैं कह रहा हूं उसकी। उसके सम्मान में उदगार प्रकट कर रहे हैं। और यहां सिर्फ मुझे गालियां पड़ रही हैं! वे सिर्फ एक बात की सूचना देती हैं--यह देश अभी भी बीसवीं सदी में नहीं आया है!
इस देश में वे ही लोग मुझसे संयुक्त हो सकेंगे जो बीसवीं सदी में आ गए हैं। मुझसे जुड़ सकते हैं वही जिनकी बुद्धि में थोड़ा निखार है, और जिनमें थोड़ी प्रतिभा है, और जिनमें साहस है अपने सब कटघरों को तोड़ देने का, अपनी सारी जंजीरों को तोड़ देने का, अपने सारे कारागृहों को तोड़ कर बाहर निकल आने का।
मैं खुले आकाश का निमंत्रण हूं!
आज इतना ही।

पिय को खोजन मैं चली
सातवां प्रवचन

सत्य और सूली

पहला प्रश्नः ओशो! आप सत्य को जैसा है वैसा ही कह देते हैं--दो टूक। इसीलिए आपके शत्रु पैदा हो जाते हैं। जैसे आपने कल दयानंद के संबंध में कहा। बात सच है, पर चुभती है। क्या आप ऐसे संबंधों में चुप ही रहें तो ठीक न हो?

सत्यानंद! सत्यानंद तुम्हें नाम दिया मैंने और तुम मुझे असत्य में आनंद लेने की सलाह दे रहे हो! थोड़ा तो सोचा होता। मौनं सम्मति लक्षणम्--चुप रह जाना भी सम्मति का लक्षण है। फिर मैं कोई राजनेता नहीं हूं कि वह कहूं जो लोगों को पसंद पड़े; कि वह कहूं जो लोगों को भाए। मैं तो वही कह सकता हूं जैसा है, फिर चाहे जो परिणाम हो। मित्र बनें, शत्रु बनें--वह बात गौण है। जीसस के कितने मित्र थे? बहुत ज्यादा नहीं। ज्यादा होते तो जीसस को सूली देनी आसान न होती। सुकरात के कितने मित्र थे? ज्यादा नहीं।
लोग तो असत्य में जीते हैं, इसलिए जब भी सत्य कहा जाएगा--चुभन होगी, पीड़ा होगी, बौखलाहट होगी। यह स्वाभाविक है। इसमें उनका कुछ कसूर भी नहीं।
लेकिन मेरा भी कुछ कसूर नहीं है। मैं वही कह सकता हूं जैसा मुझे दिखाई पड़ता है।
और तुमने अब तक जो माना है, अगर मेरे वक्तव्य उसके विपरीत जाते हैं, तो तुम्हारी नाव डूबने लगती है, तुम्हारे ताश के घर गिरने लगते हैं। स्वभावतः, तुम्हारे न्यस्त स्वार्थों को चोट पहुंचती है। इतना तुममें सत्य के साथ चलने का साहस नहीं है कि तुम गिर जाने दो अतीत को, कि अगर गिरता हो तुम्हारा बनाया हुआ भवन, रेत का सिद्ध होता हो, तो तुम उसे रेत का सिद्ध हो जाने दो।
अगर तुममें थोड़ी समझ हो तो तुम धन्यवाद दोगे मुझे। तुम कहोगे, जब समझ में आ गया तभी जल्दी है। यह भी हो सकता था, कोई न मिलता कहने वाला और तुम ताश के घर बनाते-बनाते ही मिट जाते। तुम झूठी और व्यर्थ की धारणाओं में ही जीते और समाप्त हो जाते। उनमें ही रहते और वे ही तुम्हारी कब्रें बन जाते। जब जागे तब सबेरा।
फिर मुझे क्या फर्क पड़ता है कि कौन मित्र बना, कौन शत्रु बना! शत्रु बन
कर भी मेरा क्या बिगड़ जाने वाला है! जीसस का भी तुमने क्या बिगाड़ लिया? यूं भी तो आदमी को मर जाना होता है। मरने से तो कोई बच सकता नहीं। देह तो गिरेगी ही गिरेगी। चार दिन के लिए है। तो क्यों न सत्य का ही आनंद ले लिया जाए! क्यों न सत्य के ही फूल खिला लिए जाएं! क्यों झूठ के कांटे बोने! कोई तो सुनेगा। सभी तो बहरे नहीं हैं। सभी तो अंधे नहीं हैं। सभी तो कायर नहीं हैं।
वे जो थोड़े से लोग भी सुन लेंगे, वे जो थोड़े से लोग भी देख लेंगे, तो काफी है। इस पृथ्वी पर थोड़े से लोग भी सत्य की किरण को पकड़ कर चलते रहें, तो अंधेरा जीत नहीं पाएगा। सत्य की एक छोटी सी किरण भी गहन से गहन अंधेरे को पराजित करने में समर्थ है।
तुम जीसस को मार सकते हो, मगर जीसस के प्राणों को नहीं, जीसस की आत्मा
को नहीं, जीसस के सत्य को नहीं। तुम मुझे भी मार सकते हो। उसमें कुछ बहुत अड़चन नहीं है। लेकिन जो मैं कह रहा हूं, वह और भी प्रगाढ़ हो जाएगा, और भी बलशाली हो जाएगा। वह सत्य और भी बड़े अक्षरों में आकाश पर लिख जाएगा। फिर तुम उसे पोंछ भी न सकोगे।
इसलिए सत्य की एक खूबी है कि सत्य के साथ मर जाने में भी मजा है--असत्य
के साथ जीने में भी मजा नहीं है। सत्य के रास्ते पर पीड़ाएं भी मधुर हैं-- असत्य के रास्ते पर सुविधाएं भी जहर हैं। सत्य अमृत है--असत्य जहर है।
मत ऐसी बात सोचो, सत्यानंद।
तुम कहते होः "आप सत्य को जैसा है वैसा ही कह देते हैं।"

वैसा ही कहना चाहिए। जरूरत है ऐसे बहुत से लोगों की जो सत्य को वैसा
ही कह दें जैसा है। तो धीरे-धीरे लोग भी सत्य को झेलने के आदी हो जाएंगे, समर्थ हो जाएंगे। उनका भी बल बढ़ेगा। उनका भी आत्मबल जगेगा। उनके भीतर भी सत्य चोट करेगा, शुरू में पीड़ा होगी, लेकिन कब तक? अगर बार-बार यह चोट पड़े तो यही चोट एक दिन भीतर संगीत के झरने बन कर फूट पड़ती है।
और मैं तो दो टूक ही कहूंगा। मैं तो कहूंगाः दो और दो चार ही होते हैं। राजनेता और भाषा बोलता है। उसकी भाषा लचर-पचर होती है। वह इस ढंग से बोलता है कि ऐसा भी मतलब हो सके, वैसा भी मतलब हो सके। न उसके हां का मतलब हां होता है, न न का मतलब न होता है। उसके बोलने का ढंग ऐसा होता है कि कल जैसी हवा बहे, वैसे अर्थ निकाले जा सकें। राजनेता अगर साधु भी हो जाए, तो भी पुरानी आदतें नहीं छूटतीं। वह पुरानी आदतों से बाज नहीं आता।
विनोबा भावे के वक्तव्य तुम देखते हो?
आज एक बात छपेगी अखबारों में, चार दिन बाद वे उसका खंडन कर देंगे। वे बात इस ढंग से कहेंगे कि उसके दोनों अर्थ हो सकें। गोल-मोल बात कहेंगे। जब चिकमगलूर के चुनाव में इंदिरा जीती, और उन्हें खबर दी गई कि इंदिरा जीत गई, तो वे ताली बजा कर हंसे। अखबारों में खबरें छप गईं कि वे खुश हुए, वे प्रसन्न हुए जीत से। फिर सोचा-विचारा होगा कि यह मंहगा सौदा है। मोरारजी ताकत में थे। अभी इंदिरा की जीत से खुश होना, भूल-चूक हो गई। जल्दी ही वक्तव्य आ गया कि उनके हंसने और ताली बजाने का कोई संबंध इंदिरा की जीत से नहीं था। वे तो यूं ही मौज में कभी-कभी ताली बजाते हैं और कभी-कभी हंसते हैं। बात बदल दी।
अभी चार-छह दिन पहले, इन चुनावों के परिणाम के पहले, एक मंत्री महोदय
को उन्होंने कहा कि इंदिरा कांग्रेस की विजय होगी नौ ही प्रांतों में। मंत्री महोदय ने वक्तव्य दे दिया। अखबारों में छप गया। दो दिन बाद उनको लगा होगा कि अगर सब प्रांतों में विजय नहीं हुई, तो मेरी बात झूठी पड़ेगी। और जैसे ही दिखाई पड़ा कि तमिलनाडु में, एक प्रांत में तो हार होनी सुनिश्चित है, फौरन वक्तव्य दे दिया कि मैंने ऐसा कहा ही नहीं है।
अब या तो वह मंत्री झूठ बोला। अगर झूठ बोला था, तो तत्क्षण वक्तव्य देना था। ये दो-चार दिन प्रतीक्षा करने की जरूरत नहीं थी। लेकिन देख रहे होंगे कि हवा का रुख क्या होता है? अगर नौ ही प्रांतों में जीत जाए, तो कहने को हो जाएगा--भविष्यवाणी की, भविष्य के ज्ञाता हैं, द्रष्टा हैं। लेकिन जब देखा कि एक प्रांत में हार सुनिश्चित होती जा रही है, तो पीछे भद्द होगी, इसलिए बेहतर है कि अब कह दो कि ऐसा मैंने कहा ही नहीं है।
और ऐसा एक बार नहीं, ऐसा अनेक बार हो चुका है। इंदिरा और अर्स दोनों की मौजूदगी में उन्होंने वक्तव्य दिया था। और दो दिन बाद वक्तव्य बदल गए। या तो इंदिरा और अर्स झूठ बोले। मगर उनकी ही मौजूदगी में वक्तव्य दिया था इंदिरा और अर्स ने अखबार वालों को। तभी उनको मना कर देना था कि मेरा ऐसा मंतव्य नहीं है। तब वे चुपचाप बैठे रहे। और जब इंदिरा और अर्स चले गए वहां से, दो दिन बाद जब सोच-विचार किया होगा कि इसके दुष्परिणाम हो सकते हैं, अभी सत्ता औरों के हाथ में है, तो तत्क्षण वक्तव्य बदल दिया कि मैंने ऐसा कहा ही नहीं है। मैं तो चुप ही बैठा था। मैं तो कुछ बोला ही नहीं।
मैं कोई राजनेता नहीं हूं। मुझे तो जो ठीक लगेगा, वही कहूंगा। दयानंद मुझे कभी जंचे नहीं, मैं करूं क्या? ऐसा भी नहीं कि मैंने सब तरह से कोशिश नहीं की है। सब तरह से दयानंद को समझने की कोशिश की है। क्योंकि कोई भी निर्णय लेना पूरी परख के बाद ही उचित होता है। रामकृष्ण मुझे जंचे--दोनों समसामयिक थे--लेकिन दयानंद मुझे नहीं जंचे।
अब या तो मैं चुप रहूं। और तुम पहले नहीं हो सत्यानंद, जिसने मुझे यह सलाह दी हो, औरों ने भी, मुझे मित्रों ने सलाह दी है कि आर्यसमाजी रुष्ट होते हैं। वह सच है कि वे रुष्ट होते हैं। और मेरे संबंध में जो भी गालियां दे सकते हैं, देते हैं। और गाली देने में वे कुशल हैं।
लेकिन मेरी भी मजबूरी समझो। मैंने लाख उपाय किए कि इस आदमी में कुछ भी मिल सके, मगर मुझे कुछ इस आदमी में दिखा ही नहीं। यह आदमी मुझे हमेशा से गोबर-गणेश मालूम हुआ। शास्त्र छान डाले उनके लिखे हुए, उनमें मुझे कुछ नहीं दिखाई पड़ा।

और जो भी उन्होंने कहा है, वह भद्दा और बेहूदा है, अशोभन है। उन्होंने जिस ढंग से महावीर की और बुद्ध की, मोहम्मद की और जीसस की निंदा की है--वह आलोचना नहीं है, सीधी निंदा है--वह इतनी बेहूदी है और अभद्र है कि आश्चर्य होता है कि ऐसे अभद्र वक्तव्यों को हम सम्मान देते चले जा रहे हैं!
अब जिन मित्र ने कल प्रश्न पूछा था--वेदालंकार ने--उन्होंने चाहा था
कि मैं दयानंद की तुलना और गिनती जीसस के साथ करूं। और उनको पता होना चाहिए कि दयानंद खुद राजी नहीं होते इस बात से, क्योंकि दयानंद की दृष्टि में जीसस तो अज्ञानी हैं। दयानंद बहुत नाराज होते अगर उनको यह पता चले कि कोई वेदालंकार, ये गुरुकुल कांगड़ी से निकले हुए कचरे, ये उनकी तुलना और उनकी समानता और गणना जीसस के साथ करवा रहे हैं। जीसस को तो उन्होंने जी भर कर, पानी पी-पी कर कोसा है। जीसस तो बिल्कुल ही गलत आदमी हैं। जीसस के साथ तो उनकी तुलना करने का सवाल ही नहीं उठता--उनके ही हिसाब से नहीं उठता।
और मेरी दृष्टि में जीसस उन अमृत पुरुषों में से एक हैं, जिनके कारण
यह पृथ्वी धन्य हुई है। वे इस पृथ्वी के कमल हैं--जैसे बुद्ध, जैसे महावीर, जैसे कृष्ण, जैसे लाओत्सु, जैसे जरथुस्त्र, जैसे मूसा, जैसे मोहम्मद, जैसे बहाउद्दीन, जैसे जलालुद्दीन, जैसे अलहिल्लाज--इस अदभुत परंपरा के वे एक हिस्से हैं। इन्हीं चमचमाते तारों में से एक। उनसे पृथ्वी का आकाश ज्योतिर्मय हुआ है।
लेकिन इनमें से कोई दयानंद को पसंद नहीं है--न बुद्ध, न महावीर, न जीसस,
न मोहम्मद। और जलालुद्दीन, बहाउद्दीन, फरीद--इन सबकी तो बात ही छोड़ दो; इन सबकी तो कोई गिनती वे करेंगे नहीं। बहुत संकीर्ण बुद्धि के व्यक्ति हैं। उनका तो सारा जगत बस उन चार वेदों में सीमित है। उन वेदों के बाहर कुछ भी नहीं है। न वेदों के बाहर कुछ हो सकता है कभी। सब कुछ वेदों में आ गया है। मैंने वेद भी छान डाले। वेदों में सब कुछ नहीं आ गया है, नहीं तो उपनिषद पैदा नहीं होते। उपनिषदों का दूसरा नाम वेदांत है। वेदांत का अर्थ होता हैः जिनके कारण वेदों का अंत हो गया; जिनके कारण वेदों की समाप्ति हो गई; जिनके कारण वेदों का मूल्य खो गया।
और उपनिषदों में स्पष्ट घोषणा है कि वेद केवल सांसारिक लोगों के लिए हैं, जिनकी बुद्धि अति भौतिक है और अति सांसारिक है। वे ब्रह्मवादियों के लिए नहीं हैं। जिनको ऊंची उड़ान लेनी हो, जिनको आकाश छूना हो, उनके लिए उपनिषद हैं।
उपनिषद की मेरे मन में बड़ी श्रद्धा है। जहां कुछ श्रद्धा योग्य हो, वहां मैं श्रद्धा देने को हमेशा तैयार हूं; वहां सिर झुकाने को हमेशा राजी हूं। लेकिन वेदों के प्रति मेरे मन में कोई श्रद्धा नहीं है। हां, एक प्रतिशत वेदों के मंत्र छोड़ दिए जाएं, उनके प्रति मेरी श्रद्धा है। कुछ मंत्र हैं, जैसे कचरे में कुछ हीरे पड़े हों। लेकिन इस कारण मैं कचरे का सम्मान नहीं कर सकता।
दयानंद की दृष्टि ऐसी है कि वेद में जो है, चूंकि वेद में है इसलिए उसका सम्मान होना चाहिए। तोड़ो-मरोड़ो, लेकिन उसमें से कुछ अर्थ निकालने की कोशिश करो। उसको श्रेष्ठ सिद्ध करने की कोशिश करो। वेदों के साथ जगत में ज्ञान का अंत हो गया; बस उसके बाद फिर ज्ञान की कोई जरूरत नहीं रही।
सच यह है कि वेदों के साथ सिर्फ ज्ञान का प्रारंभ हुआ। प्राथमिक चरण हैं वेद। जैसे छोटा बच्चा चलता है, पहले कदम, लड़खड़ाते हुए। खुशी बहुत होती है मां को बच्चे के चलने से, लेकिन बच्चे के पहली दफा चलने को कोई बहुत मूल्य नहीं दिया जा सकता। इससे कोई मंजिलें तय नहीं होतीं। यह तो सीखने की शुरुआत है। वेद क ख ग है अध्यात्म का, इससे ज्यादा नहीं। उपनिषदों ने ऊंचाई ली। फिर ब्रह्मसूत्र है, जिसने और ऊंचाई ली। फिर बुद्ध और महावीर आए, जिन्होंने पराकाष्ठा पर पहुंचा दी बात को।
दयानंद के वचनों में मुझे ऐसा कुछ भी नहीं मिला जिसको मैं मूल्य दे सकूं। और ऐसा नहीं कि मैंने चाह कर उन्हें मूल्य नहीं दिया है। मेरी उनसे क्या दुश्मनी है? मेरी किसी से कोई दुश्मनी नहीं है। सत्य से मेरी प्रीति है। इसलिए सत्य के अनुकूल जो भी पड़ेगा, उससे मेरी प्रीति है।
मुझे दयानंद के व्यक्तित्व में भी कुछ नहीं दिखाई पड़ा। व्यक्तित्व को
तो छोड़ दें, दयानंद की तस्वीर भी देखता हूं मैं तो वे बिल्कुल सिद्ध भोंदू

मालूम होते हैं, इससे ज्यादा कुछ नहीं। न बुद्ध की गरिमा है, न जीसस की महिमा है, न कृष्ण का सौंदर्य है, न रामकृष्ण की मस्ती है--एक पोंगा पंडित, बस इससे ज्यादा कुछ भी नहीं।
सत्यानंद तुम कहते होः "बात सच है, पर चुभती है।"
सत्य सदा चुभता है, क्योंकि हम असत्य में जीते हैं। मगर मैं क्या करूं, तुम्हारी मवाद निकालनी है। और मवाद निकालनी हो तो पीड़ा तो होगी। मेरा काम ही सर्जरी का है। तुम्हें पीड़ा भी होगी, दर्द भी होगा, लेकिन मवाद से मुक्ति अगर चाहिए हो तो यह पीड़ा झेलनी पड़ेगी। इस पीड़ा से अगर गुजरे तो तुम्हारे जीवन में स्वास्थ्य का उदय हो सकता है।
तुम कहते होः "क्या आप ऐसे संबंधों में चुप ही रहें तो ठीक न हो?" तुम्हारे लिए ठीक हो, मेरे शिष्यों के लिए ठीक हो, क्योंकि उनको अड़चनें कम हों, उनको झंझटें कम हों, लेकिन मेरे लिए ठीक नहीं हो और सत्य के लिए ठीक नहीं हो। और इस बात को तुम ध्यान रखना--यहां मैं तुम्हारे लिए नहीं हूं, सत्य के लिए हूं। और तुम्हें भी अगर मेरे पास होना है तो सत्य के लिए होना है, किसी और कारण से नहीं। मेरे और तुम्हारे बीच अगर कोई भी सेतु है तो सत्य है।
और सत्य के लिए सब कुछ देने की, सब कुछ निछावर करने की तैयारी चाहिए ही, इससे कम में यह सौदा हो नहीं सकता। इससे कम में कभी कोई इस सौदे को कर नहीं पाया है। जीवन को भी निछावर करना पड़े तो ठीक है, यही सही, लेकिन सत्य को मत खोना। सब खो देना, सत्य को मत खोना। बहुत तुम्हें पीड़ाएं झेलनी पड़ेंगी। तुम्हारे लिए सूलियां दे रहा हूं। तुम्हें सिंहासन नहीं मिल जाएंगे। तुम्हें हजार तरह के अपमान झेलने पड़ेंगे। तुम्हें जगह-जगह से मुसीबतें झेलनी पड़ेंगी।
लेकिन सिवाय इसके, सत्य की अभिव्यक्ति का न तो कभी कोई उपाय रहा है, न
अब तक है। आशा करनी चाहिए कि भविष्य में स्थिति बदलेगी। मगर यह बड़ी दूर की आशा है। भीड़ कभी भी सत्य के लिए राजी होगी--यह संभव नहीं दिखाई पड़ता। आशा तो करनी चाहिए, मगर यह आशा कब यथार्थ बनेगी, कहना बहुत मुश्किल है। आशा तो बुद्ध ने भी की थी। आशा तो कृष्ण ने भी की थी। हजारों साल बीत गए, आशा आशा ही है; अभी भी यथार्थ नहीं बना। आशा मैं भी करता हूं, लेकिन शायद हजारों साल और बीतेंगे।
लेकिन आदमी प्रा.ैढ़ होना शुरू हुआ है। धीरे-धीरे होता है आदमी प्रौढ़।
एक आदमी की जिंदगी सत्तर साल की होती है, इसलिए हमको लगता है सत्तर साल बहुत बड़ा समय हो गया। मनुष्यता की जिंदगी तो बहुत लंबी है, लाखों साल की है, यहां हजारों साल की कोई गिनती नहीं होती। अगर दस-पच्चीस हजार साल में भी आदमी इस योग्य हो जाए कि सत्य को प्रीति से ग्रहण कर सके और सत्य को सुने और उसके भीतर मैत्री पैदा हो, तो भी समझना कि जल्दी घटना घट गई, पृथ्वी रूपांतरित हो गई। तो समझना कि रात कट गई अमावस की और सुबह हो गई है। लेकिन सबके जीवन में यह जब होगा तब होगा, तुम्हारे जीवन में तो आज हो सकता है। आज होना चाहिए। मेरे साथ होने का एक ही अर्थ हो सकता है कि तुमने यह तय किया है कि किसी भी मूल्य पर सत्य के साथ होना है। संन्यास का और कोई प्रयोजन नहीं है।
मत मुझे ऐसी सलाहें दो। क्योंकि तुम्हारी सलाह यह बताती है कि तुम अपने जीवन में क्या करोगे। तुम्हारी सलाह से मैं कुछ प्रभावित होने वाला नहीं हूं। मैंने अपने जीवन में किसी की सलाह कभी मानी ही नहीं। एक भी मौके पर मैंने किसी की सलाह कभी मानी नहीं। और मुझे कोई पछतावा नहीं है। मैं अपने ढंग से जीया हूं। मैंने कोई समझौता नहीं किया। और मैं अति आनंदित हूं। समझौता किया होता, तो मुझे ग्लानि होती, तो मेरे भीतर अपराध-भाव होता। मैंने कोई समझौता नहीं किया। मुझे जैसा जीना था, वैसा जीया हूं। जो करना था, वही किया है। जो कहना था, वही कहा है।
लेकिन तुम जब मुझे ऐसी सलाह देते हो, तो तुम्हारे जीवन में खतरा है। मैं तो मानूंगा नहीं, लेकिन तुम्हारे जीवन में खतरा है कि तुम यही करोगे जो तुम मुझसे कह रहे हो। तुम सत्य को छिपाने की कोशिश करोगे। तुम सत्य पर लीपापोती करोगे। तुम दूसरे को देख कर कहोगे कि उसे क्या प्रीतिकर लगेगा, क्या अप्रीतिकर लगेगा।

लेकिन इस तरह तो तुम मार्ग से च्युत हो जाओगे। तुम जो सत्य की खोज में निकले हो, जिस महान अन्वेषण पर चले हो, वह लक्ष्य चूक जाएगा। फिर भीतर से राजनीति आ जाएगी तुम्हारे। तुम्हें फिर इसकी चिंता ज्यादा हो जाएगी कि मित्र बनाएं। और अगर झूठ से मित्र बनते हैं, तो झूठ ठीक। अगर सत्य से शत्रु बन जाते हैं, तो सत्य खतरनाक है; ऐसे सत्य से क्या लेना-देना?
लेकिन मैं तुमसे कहता हूंः सत्य ही एकमात्र मित्र है। और मित्रता की कोई जरूरत नहीं है। वह एक मित्र मिल गया तो परम मित्र मिल गया, क्योंकि सत्य यानी परमात्मा।
मुझे तो सलाह ऐसी देना ही मत, अपने भीतर भी इस तरह के भाव बना कर मत रखना, क्योंकि इस तरह के अंतर्भाव बने रहें, तो खतरनाक हैं।

दूसरा प्रश्नः ओशो! आपने कहा कि आप भारत-रत्न होना पसंद नहीं करेंगे। कृपया बताएं कि क्या आप विश्व-रत्न होना पसंद करेंगे?

चैतन्य भारती! धत तेरे की! जीवन भर में एक तो तुमने प्रश्न पूछा... तुम
भी पूर्व-काल के आर्यसमाजी हो, क्या मामला है? क्या कचरा बात पूछी! ऐसा भी होता कि तुम बहुत पूछने वालों में होते, तो भी ठीक था। शायद पहला ही प्रश्न है तुम्हारा। और मुझसे जुड़े हो तुम वर्षों से--कोई पंद्रह वर्षों से। पंद्रह वर्षों में यह तुम्हें कुल सूझा प्रश्न! बड़ा आध्यात्मिक प्रश्न पूछा तुमने!
मुझे न तो भारत-रत्न होने में कोई रस है, न विश्व-रत्न होने में कोई रस है। मैं तो जो हूं, वह हूं। मैं तो साधारण व्यक्ति हूं। रत्न होने का कोई सवाल ही नहीं है।
रत्न होने से बचना, क्योंकि जो रत्न होते हैं अक्सर रतन सिद्ध होते हैं--पहुंचे हुए रतन!
मुझे कोई रस नहीं है रत्न होने में। और कंकड़-पत्थर ही हैं रत्न, और क्या हैं? चमकदार सही। कीमत भी आदमी की नजरों में है। आदमी को हटा लो जमीन से तो कंकड़-पत्थरों में और रत्नों में क्या फर्क रह जाएगा? सब बराबर हो जाएंगे। एकदम साम्यवाद आ जाएगा। न कंकड़-पत्थर कम मूल्य के होंगे, न हीरे- जवाहरात ज्यादा मूल्य के होंगे।
मुझे इन खिलौनों में रस नहीं है। मैं तो जो हूं, पर्याप्त हूं; जितना हूं, उससे तृप्त हूं; जैसा हूं, उससे परम आह्लादित हूं। इसमें न कुछ जोड़ा जा सकता है, न कुछ घटाया जा सकता है।
इस सत्य को जान लेने को ही तो मैं भगवत्ता की उपलब्धि कहता हूं--कि जब कुछ जोड़ा न जा सके, कुछ घटाया न जा सके; जब तुम्हारा होना परिपूर्ण तृप्तिदायी हो।
मुझे न कोई पदवी चाहिए, न कोई सम्मान चाहिए, न कोई सत्कार चाहिए, न कोई सिंहासन चाहिए, न कोई पुरस्कार चाहिए। मुझे तो मिल गए सब पुरस्कार! जिस दिन अपने को पाया, उस दिन सब पा लिया। मुझे तो मिल गईं सब पदवियां। मुझे तो परमपद उसी दिन मिल गया। जिस दिन अपने भीतर विराजमान हो गया, उससे बड़ा फिर कोई सिंहासन नहीं है। जिस दिन अपने भीतर बैठना आ गया, उस दिन बस सब सिंहासन छोटे पड़ गए, सब रत्न फीके हो गए। जब से अपने को देखा है, रत्नों की तो बात छोड़ो, चांद-तारे-सूरज भी फीके हो गए।
बच्चों जैसी बातें नहीं पूछा करो।

तीसरा प्रश्नः ओशो! आप किसी प्रश्न का उत्तर लंबा और किसी का अति संक्षिप्त क्यों देते हैं?

स्वरूपानंद! तुमने देखा अभी, चैतन्य भारती का उत्तर असल में "धत तेरे की", उतने में हो गया। बाकी तो जरा उनकी पीठ थपथपायी। जितनी जरूरत होती है, जिसकी जैसी जरूरत।
कल अखबार में एक कहानी पढ़ रहा था। एक विज्ञान के शिक्षक विद्यार्थियों को विज्ञान की सापेक्षवाद की धारणा समझा रहे थे। अल्बर्ट आइंस्टीन की सापेक्षवाद की धारणा तो दुरूह धारणा है, कठिन धारणा है। खुद

अल्बर्ट आइंस्टीन को समझाने में मुश्किल पड़ती थी। खुद आइंस्टीन कहता था कि शायद पृथ्वी पर एक दर्जन से ज्यादा लोग नहीं हैं, जो मेरी इस धारणा को ठीक से समझते हों। तो शिक्षक ने काफी विस्तार से समझाया।
विस्तार इतना था कि एक विद्यार्थी ने खड़े होकर पूछा कि महानुभाव, अगर प्रश्न पूछा जाए परीक्षा में तो इतना लंबा उत्तर हम कैसे लिखेंगे?
तो उन्होंने कहा, देखो, उत्तर दो प्रकार के होते हैं, एक अर्जुन-टाइप
और दूसरा हनुमान-टाइप।
विद्यार्थी ने पूछा, आपका मतलब?
तो उन्होंने कहा, अर्जुन-टाइप का मतलब, जब अर्जुन से कहा गया कि बेटा, तुझे क्या दिखाई पड़ता है? तीर मारना है उसे निशाने पर, चिड़िया की आंख में। तो उसे न वृक्ष दिखाई पड़े, न फूल दिखाई पड़े, न फल दिखाई पड़े। इतना ही नहीं, उसे पक्षी भी पूरा नहीं दिखाई पड़ा। इतना ही नहीं, उसे दो आंखें भी नहीं दिखाई पड़ीं। जिस आंख में तीर मारना था, बस वही आंख दिखाई पड़ी। तो जितना प्रश्न पूछा जाए! एक तो उत्तर होता है अर्जुन-टाइप, शिक्षक ने कहा, बस उतना ही उत्तर दे देना। और दूसरा होता है हनुमान-टाइप, कि गए थे संजीवनी बूटी लेने, वह मिली नहीं, सो पूरा पहाड़ ले आए। और रख दिया वैद्य जी के सामने कि लो अब आप ही निकाल लो, कौन सी संजीवनी बूटी है। अगर समझ में न आए कि क्या उत्तर देना, तो फिर पूरा का पूरा पहाड़ ही। फिर तुम पूरा का पूरा लिख देना उत्तर।
तो स्वरूपानंद, देखता हूं कौन कितने में समझेगा। अर्जुन जैसा व्यक्ति हो, तो थोड़े में उत्तर दे देता हूं! और हनुमान-छाप हो कोई, और अधिकतर तो हनुमान-छाप लोग हैं, उनको कुछ समझ में नहीं आएगा; छोटे में उत्तर दिया जाए तो वे चूक ही जाएंगे। हनुमान से तो जितना बच सको बचना।
मैंने सुना है, एक सहेली अपनी दूसरी सहेली को कह रही थी कि तुझे पता है? अभी-अभी तुझे गर्भ रहा है, जरा सोच-समझ कर चलना। क्योंकि मैंने सुना है--एक स्त्री को गर्भ रहा, वह हनुमान की भक्त थी और हनुमान चालीसा पढ़ती थी। फिर उसको बच्चा हुआ। पहला ही बच्चा। पति बाहर चहलकदमी कर रहा है, नर्सें भाग रही हैं, कंपाउंडर भाग रहे हैं, दवाइयां लाई जा रही हैं, ले जाई जा रही हैं। फिर डाक्टर भी बाहर भागता हुआ आया। उसकी हड़बड़ाहट ऐसी कि पति को भी घबड़ाहट हुई कि बात क्या है! बटन कोट की कहीं की कहीं लगी हैं, टाई उड़ कर पीछे की तरफ चली गई है, हैट भी उलटा लगा हुआ है, पैंट की बटनें भी खुली हुई हैं--मामला क्या है? इतनी हड़बड़ाहट! पसीना-पसीना हुआ जा रहा है! उसने कहा, डाक्टर साहब, डाक्टर साहब! मैं जिससे पूछता हूं, कोई उत्तर नहीं दे रहा। बात क्या है? बच्चा हुआ कि नहीं?
डाक्टर ने कहा, भई, बच्चा हो गया है, घबड़ाओ मत।
तो कहा कि लड़का हुआ कि लड़की?
उसने कहा, अब यह हम अभी नहीं बता सकते। जो भी हुआ है वह एकदम उचक कर और शेंडेलियर पर चढ़ गया है। वह जब उतरे शेंडेलियर से तब पता चले कि लड़का है कि लड़की।
हनुमान चालीसा पढ़ने का फल! अब जो पुत्र हुए हैं, वे हनुमान-छाप हो गए।
वे पहले ही से एकदम चढ़ गए हैं शेंडेलियर पर।
वह स्त्री तो बहुत घबड़ाई, जिससे यह बात हो रही थी। उसने कहा, ऐसा क्या, किताबों का ऐसा असर होता है?
उसने कहा, हां! एक महिला द्वैतवाद पर शास्त्र पढ़ रही थी, सो उसको दो बच्चे पैदा हुए। यह खबर फैल गई, तो दूसरी महिला को जिसको अभी-अभी गर्भ रहा था, उसने सोचा कि बेहतर है अद्वैतवाद पर किताब पढ़ी जाए! नहीं तो ये दो बच्चे पैदा हो गए, और उपद्रव हो गया। तो उसने अद्वैतवाद पर ग्रंथ पढ़ा। पढ़ती रही अद्वैतवाद पर ग्रंथ। और परिणाम जो हुआ, वह यह हुआ कि अद्वैतवादी पैदा हुआ। अद्वैतवादी अर्थात उनकी एक ही आंख थी, एक ही हाथ, एक ही टांग। अब तो वह जो सहेली सुन रही थी, वह एकदम घबड़ा कर खड़ी हो गई। उसने कहा, मैं तो मारी गई! हाय दैया!
उसने कहा, तू क्यों घबड़ा रही है?
उसने कहा कि मैं तो किताब पढ़ रही हूं--अलीबाबा, चालीस चोर। मेरा क्या होगा?

हनुमान-छाप न हो जाना। थोड़े सावधान रहना। मगर अधिकतर लोग हनुमान-छाप हैं। उनके लिए लंबा उत्तर देना पड़ता है। उनको मारे जाओ, मारे जाओ, बामुश्किल वे थोड़े-बहुत जगते हैं। थोड़े-बहुत आंख खोल कर देख लें तो ठीक है। और कई तो ऐसे हैं कि जगे हुए पड़े हैं, बहाना कर रहे हैं सोने का। उनको तो कितना ही मारो, वे आंख ही नहीं खोलते।
दोपहर थी, नसरुद्दीन और चंदूलाल ट्रेन में सफर कर रहे थे। एयरकंडीशंड कमरा, दोनों ही थे एक कमरे में। नसरुद्दीन पहले तो थोड़ा सा घुर्राया और फिर एकदम गालियां देने लगा कि ऐसी की तैसी तेरी चंदूलाल! अरे हरामजादे! वह चपत लगाऊंगा बेटा, छठी का दूध याद दिला दूंगा!
चंदूलाल ने एकदम हिलाया और कहा, नसरुद्दीन, तुम जब भी नींद में होते
हो तो अंट-शंट बकते हो।
नसरुद्दीन ने कहा, कौन कहता है कि मैं नींद में हूं? और होश में अंट-शंट बकूं तो झगड़ा-झांसा खड़ा होता है। सो नींद में बकता हूं। मतलब, जो मुझे कहना है वह तो मैं कहूंगा ही। अगर होश में कहने दोगे तो होश में कहूंगा, नहीं तो बेहोशी का बहाना करके कहूंगा।
जो लोग बहाना किए पड़े हैं, उनके साथ बहुत दिक्कत हो जाती है। उनको बहुत खींचातानी करनी पड़ती है। उनकी टांग खींचो, पानी के छींटे मारो, उठा कर बिठालो, बिस्तर से खींचो, बामुश्किल निकलते हैं। उनके लिए लंबा उत्तर देना पड़ता है, स्वरूपानंद। जो समझ सकते हैं, उनको बस एक चोट काफी होती है।

चौथा प्रश्नः ओशो! पंद्रह साल बीत चुके, पर आपका कोई शिष्य बुद्धत्व
को उपलब्ध नहीं हुआ! कृपा करके समझाइए।

पूछने वाले ने नाम नहीं लिखा है। भैया, ऐसी भी क्या कायरता! वेदालंकार हो? क्या, मामला क्या है? कल काफी कुटाई-पिटाई हो गई, इसलिए आज नाम ही नहीं लिखा! नाम तो लिख देते कम से कम। उससे मुझे सुविधा होती है।
किसने कहा कि बुद्धत्व को कोई उपलब्ध नहीं हुआ? लेकिन यह मेरी प्रक्रिया का अंग है कि जो उपलब्ध होते जाएंगे, उनको मैं कहूंगाः चुप रहो। चुपचाप काम में लगे रहो। घोषणा करने की आवश्यकता नहीं है। घोषणा से कुछ लाभ भी नहीं है। मैं भी चुप ही रह कर काम करता। मजबूरी थी, इसलिए घोषणा करनी पड़ी। घोषणा करनी पड़ी ताकि अनेक लोगों को आमंत्रित कर सकूं।
मेरे पास जो लोग बुद्धत्व को उपलब्ध हो रहे हैं, उनको घोषणा करने की कोई आवश्यकता नहीं है। जब मैं समझूंगा जरूरी, कि अब घोषणा करनी आवश्यक है, तब जरूर घोषणा करूंगा।
अनेकों के जीवन में क्रांति घट रही है, रोशनी फूट रही है। कल ही मैं फली भाई के संबंध में कह रहा था। हीरा पायो गांठ गठियायो; बाको बार-बार क्यों खोले! पा गए हैं हीरा, गांठ गठिया ली, अब बार-बार क्या खोलना! किसी को क्या कहना! चुपचाप आनंद ले रहे हैं।
सभी को घोषणा करने की जरूरत भी नहीं है, क्योंकि बुद्धत्व के बाद दो अवस्थाएं होती हैंः एक तो बोधिसत्व की और एक अर्हत की। जो अर्हत है, उसको तो घोषणा करनी ही नहीं है। क्योंकि वह किसी का शिक्षक नहीं होगा, वह सदगुरु नहीं होगा। उसने अपना पा लिया, पहुंच गया। वह दूसरे को सहारा नहीं दे सकता है। दूसरे को सहारा देने के लिए सिर्फ बुद्धत्व काफी नहीं है, कुछ और बातें जरूरी हैं--जो अगर पिछले जन्मों में अर्जित की हों तो ही हाथ में होंगी, अन्यथा उसे चुप ही रहना होगा।
तो आधे तो अर्हत होंगे। उनकी तो घोषणा करने की आवश्यकता ही नहीं है। उनकी तो मैं जरूरत समझूंगा तो घोषणा करूंगा। जरूर कभी उनकी मैं घोषणा करूंगा। एक खास परिमाण में जब मेरे पास अर्हत होंगे तब मैं उनकी घोषणा करूंगा।
मेरे काम की अपनी प्रक्रिया है। जैसे पंद्रह साल तक मैं देश के कोने- कोने में घूमता रहा, मैंने अपने बुद्धत्व की भी घोषणा नहीं की पंद्रह साल तक। जिनको अंदाज भी होने लगा उनको भी मैंने कहा--चुप रहना। मुझसे आकर भी जिन्होंने कहा कि हमें इस तरह का आभास होता है, उनसे भी मैंने कहा--चुप रहना, बोलना मत, कहना मत। अभी मुझे देश के कोने-कोने में घूमना है। अभी इस

बात की घोषणा कि मैं बुद्धत्व को उपलब्ध हो गया हूं, मेरे सारे काम को ही रोक देगी। जिस दिन मुझे यात्रा बंद कर देनी होगी, जिस दिन जरूरत नहीं रह जाएगी यात्रा की, जिस दिन लोग मेरे पास आने शुरू हो जाएंगे, उस दिन घोषणा कर दी जाएगी।
तो पंद्रह साल तक चुप रहा मैं। चुपचाप काम को जारी रखा। नहीं तो आज तुम मुझे जीवित नहीं पाते। आज मेरा होना असंभव होता। यह देह मुझसे कभी की छीन ली गई होती।
मेरे काम करने का अपना गणित है।
फिर मैंने उन पंद्रह वर्षों में किसी को संन्यास नहीं दिया। क्योंकि संन्यास देना, मतलब एक भयंकर आग से जूझना, एक आग पैदा करना। जब मैं बैठ गया एक जगह, तब मैंने संन्यास देना शुरू किया। जब उसकी घड़ी आई, जब ठीक वसंत का अवसर आया, तब फूल खिले।
जब जरूरत पड़ी, मैंने घोषणा की अपने बुद्धत्व की। जब जरूरत पड़ी, तब मैंने संन्यास देना शुरू किया। जिस दिन मुझे लगेगा कि अब एक ठीक मात्रा मेरे पास है अर्हतों की, तो उनकी घोषणा कर दूंगा। मगर वे किसी के काम के नहीं होंगे। दर्शनीय होंगे। तुम उनके पास बैठ सकोगे, मगर वे मौन में होंगे। वे कुछ बोलेंगे नहीं।
जब जरूरत समझूंगा कि अब बोधिसत्वों की घोषणा करनी है, तो बोधिसत्वों
की घोषणा कर दूंगा। लेकिन यह तभी संभव होगा, जब मैं देखूंगा कि मेरे पास संन्यासियों का इतना बड़ा वर्ग है सारी दुनिया में कि मेरे बोधिसत्वों की व्यवस्था कर सकेगा। नहीं तो उनको नाहक जगह-जगह पत्थर पड़ेंगे, और कुछ भी नहीं होगा।
मुझे कोई नाहक तुम पर पत्थर फिंकवाने का शौक नहीं है। मजबूरी में पत्थर फिंक जाएं, बात और, मगर कोई तुम्हें शहीद बनवाने की मेरी इच्छा नहीं है। चाहता नहीं कि तुम्हें नाहक सूली लगे। लगती हो और घड़ी ही आ जाए, तो यह भी नहीं कहूंगा कि बचना। मगर यह भी नहीं कहूंगा कि अपने हाथ से नाहक सूली चढ़ना। कोई तुम्हें शहीद बनाने का मेरा आयोजन नहीं है।
इसलिए मुझे प्रतीक्षा करनी होगी। जब मेरे पास सारी दुनिया में एक निश्चित वर्ग होगा... आई जाती है वह घड़ी। अब करीब डेढ़ लाख संन्यासी हैं सारी दुनिया में। जल्दी ही वह घड़ी आ जाएगी कि गांव-गांव संन्यासी होंगे। जब गांव-गांव संन्यासी होंगे, तब मैं घोषणा कर सकूंगा कि कौन-कौन बुद्धत्व को उपलब्ध हो गए हैं। क्योंकि फिर उन्हें जाना होगा। उन्हें गांव-गांव घूमना होगा। उन्हें गांव-गांव बैठना होगा और उन्हें झेलना होगा। अभी वे मेरी छत्रछाया में बैठ सकते हैं, फिर उन्हें अपने पैर पर खड़ा होना होगा। मगर उसकी तैयारी पूरी कर लूं।
जीसस ने अगर तैयारी से काम किया होता तो बात और हुई होती। जीसस का काम अव्यवस्थित था, इसलिए तैंतीस साल की उम्र में फांसी भी लग गई और कुछ काम भी ढंग से नहीं हो पाया, व्यवस्थित नहीं हो पाया। और जीसस के मरने के बाद जिनके हाथ में काम पड़ा, वे गलत लोग थे। गलत लोगों के हाथ में ही पड़ सकता था, क्योंकि ठीक लोग पैदा नहीं हो सके।
मैं समय आएगा तब बीज बोता हूं, और समय आएगा तब फसल काटूंगा। तुम्हारे कहने से नहीं, कि कितने लोग बुद्धत्व को उपलब्ध हो गए हैं, मैं कहूंगा कि कितने लोग हो गए हैं बुद्धत्व को उपलब्ध। यह तो मेरी अपनी दृष्टि में जब जरूरी होगा, इसकी घोषणा की जाएगी।
मगर इतना तुमसे कहता हूं कि बहुत उपलब्ध हो गए हैं, बहुत उपलब्ध हो रहे हैं, बहुत उपलब्ध हो जाएंगे। संभवतः पृथ्वी पर इतने बुद्ध एक साथ कभी उपलब्ध नहीं हुए हैं जितने कि उपलब्ध हो सकते हैं। इतनी बड़ी व्यवस्था से, इतने बड़े वैज्ञानिक ढंग से बुद्ध-ऊर्जा का क्षेत्र कभी निर्मित नहीं किया गया है। हो भी नहीं सकता था पहले, क्योंकि मेरे पास समस्त बुद्धों के अनुभव का निचोड़ है, जो उनके पास नहीं था। आखिर बुद्ध को वह अनुभव नहीं हो सकता जो पच्चीस सौ वर्ष का मुझे है। जीसस को वह अनुभव नहीं हो सकता जो इन दो हजार वर्षों का मुझे है।
स्वभावतः मेरे बाद जो बुद्ध आएंगे उनको और भी ज्यादा अनुभव होगा-- मुझसे ज्यादा होगा। बुद्धत्व तो एक ही घटना है, लेकिन जीवन का अनुभव,

लोगों का अनुभव, लोगों के साथ काम करने का अनुभव, वह तो बढ़ता जाएगा; वह तो समय के साथ गहरा होता जाता है।
मुझे अतीत के सारे बुद्धों की जीवन-प्रक्रिया का ख्याल है। और उस सबका निचोड़ मैं उपयोग कर रहा हूं। समय रहने पर घोषणा कर दी जाएगी। ठीक समय पर ही कोई काम होगा, कोई कदम उठाया जाएगा। मैं समय के पहले कोई काम करना न पसंद करता हूं, न करना उचित मानता हूं।

पांचवां प्रश्नः ओशो! मेरा मन कहता है कि संन्यास मत लो, पर भीतर और कुछ कह रहा है--यह मौका बार-बार नहीं आएगा।

यह भी जिन्होंने पूछा है, उन्होंने नाम नहीं लिखा। कैसे तुम संन्यास लोगे? नाम तक बताने से डर रहे हो! कि कहीं पत्नी को पता न चल जाए, घरवालों को पता न चल जाए कि तुमने यह प्रश्न पूछा, कि मेरे भीतर कुछ कह रहा है कि संन्यास ले लो! कहीं कोई झंझट, झगड़ा खड़ा न हो जाए!
संन्यास खतरनाक काम है। बड़े से बड़ा खतरा जीवन में अगर कोई है, तो संन्यास है। क्योंकि संन्यास का अर्थ होता हैः अहंकार की मृत्यु। अगर अहंकार को बचाना हो तो अपने मन की सुनो। और अगर अहंकार से थक गए हो, परेशान हो गए हो, अहंकार से संत्रस्त हो गए हो, अहंकार के नरक को अनुभव कर लिया है-- तो फिर जो भीतर से आवाज आ रही है उसे सुनो। वही असली आवाज है जो भीतर से आ रही है। मन तो बाहर की आवाजों को दोहराता है। मन तो प्रतिध्वनि करता है। मन तो पत्नी क्या कहेगी, पिता क्या कहेंगे, बच्चे क्या कहेंगे, भाई क्या कहेंगे, गांव के लोग क्या कहेंगे, इस सबकी बातें सोचता है। भीतर से जो आवाज आ रही है, वह तुम्हारे प्राणों की पुकार है।
मगर दो में से एक चुनोगे--एक ही चुन सकते हो--तो जो चुनोगे वह तो बचेगा,
जो छोड़ दोगे वह मरेगा। अगर भीतर की आवाज चुनी, तो वह जो मन है उसे मरना होगा। और मन है क्या? अहंकार का ही दूसरा नाम है।
एक युवक की गांव में शादी हुई। वह पहली बार दुल्हन को लेने ससुराल गया। ससुराल वालों ने बहुत अच्छा भोजन बनाया था। थाली देख कर ही युवक के मुंह में पानी आ गया। सभी चीजें बहुत पसंद थीं उसे, सिर्फ मूली की सब्जी नहीं भाती थी। उसने सोचा पहले मूली की सब्जी खत्म कर दूं, फिर सभी चीजें मस्ती से खाऊंगा। परंतु जैसे ही उसने मूली की सब्जी खत्म की, ससुराल वालों ने यह सोच कि दामाद जी को मूली की सब्जी बहुत पसंद आई है, फिर से कटोरे को सब्जी से भर दिया।
बेचारे युवक ने बामुश्किल उस सब्जी को भी खत्म किया। और ससुराल वालों
से बोला कि अब यह सब्जी मुझे बिल्कुल न देना। पर उन्होंने सोचा कि इन्हें यह सब्जी इतनी पसंद आई है और शायद संकोचवश मना कर रहे हैं, अतः उन्होंने बहुत मना करने के बावजूद कटोरी को मूली की सब्जी से भर दिया।
इतने में एक पड़ोसी जंवाई जी को आया जान कर मिलने आया और बातचीत के दौरान उनसे पूछा कि आप कितने भाई हैं? वह युवक बोला कि अभी तक तो चार भाई हैं, पर यदि मूली की सब्जी वाली कटोरी को फिर से भरा जाएगा तो निश्चित ही तीन ही बचने वाले हैं।
अब तुम सोच लो। दो में से एक ही बचेगा। या तो मन बच सकता है या भीतर की आवाज बच सकती है। अगर तुम्हें मन बचाने जैसा लगे, तो मैं नहीं कहूंगा कि संन्यास लो। अगर मन ने तुम्हें कुछ दिया हो, आनंद दिया हो, जीवन में रस की धार बहाई हो, तो क्यों छोड़ना मन को! उसकी सुनो। और अगर मन ने कुछ न दिया हो, सिर्फ कांटे ही कांटों से तुम्हारा रास्ता भर दिया हो; अहंकार ने सिर्फ विषाद ही दिया हो, घाव ही घाव दिए हों, तो अब क्या पूछ रहे हो! अब लो छलांग। अब मरने दो मन को। मैं तैयार हूं चौथी बार मूली की सब्जी से तुम्हारी कटोरी भरने को। तुम जरा इशारा तो करो। मगर तुम्हारे बिना इशारे के मैं कुछ नहीं कहूंगा।
मैं नहीं चाहता कि किसी के ऊपर कुछ भी आरोपित हो। यहां के प्रभाव में संन्यास मत ले लेना। यहां इतने लोगों को संन्यासी देख कर संन्यासी मत हो जाना। क्योंकि वह झूठ होगा। वह तो यहां से बाहर निकलोगे कि बह जाएगा, कच्चा रंग होगा। भीतर की आवाज को परखो, पहचानो और सही निर्णय जब उठ आए कि

मन की मृत्यु के लिए राजी हो... और जल्दी कुछ नहीं है। सोचो खूब। अगली बार आना। मैं अभी इतनी जल्दी विदा होने वाला नहीं हूं। लाख छुरे फेंके जाएं, कोई फिक्र मत करो। जब तक मुझे रहना है, कोई छुरा कुछ बिगाड़ सकता नहीं। जिस दिन मुझे जाना है, छुरे वगैरह फेंकने की कोई जरूरत न रहेगी, मैं तुमसे कह दूंगा कि अब जाता हूं। यूं ही बैठे-बैठे चला जाऊंगा। कहोगे तो बोलता-बोलता चला जाऊंगा; कहोगे तो चलता-चलता चला जाऊंगा--जैसा तुम कहोगे। कोई छुरा वगैरह फेंकने की जरूरत नहीं रहेगी, जिस दिन मुझे जाना है।
मगर मैं जाऊंगा उस दिन, जिस दिन कम से कम एक हजार बुद्धों की घोषणा कर जाऊं। उसके पहले नहीं जाने वाला हूं। उसके पहले कोई शक्ति मुझे यहां से अलग नहीं कर सकती।
इसलिए तुम दोबारा आ जाना, कोई जल्दी नहीं है। आश्वस्त करता हूं तुम्हें कि मैं यहां रहूंगा दोबारा भी। जल्दी मत करना, क्योंकि जल्दी में लिया संन्यास कहीं रास्ते में ही खत्म न हो जाए! और अगली बार जब पूछो, तो कम से कम नाम जरूर लिख देना। क्या डरना? किससे डरते हो? इतना भय अच्छा नहीं। भय मूर्च्छा का लक्षण है, मूढ़ता का लक्षण है। प्रतिभा निर्भय होती है। हालांकि अक्सर ऐसा होता है कि म.ूढ लोग निर्भय मालूम पड़ते हैं। कहते हैं कि जहां बुद्धिमान प्रवेश न करे, वहां मूरख घुस जाते। क्योंकि मूरख देखता ही नहीं कि ओखली में सिर दे रहा है। मगर उसकी बहादुरी बहादुरी नहीं होती, उसको तो अंधेपन की वजह से... ।
मैं नहीं चाहूंगा कि तुम किसी मूर्च्छा में संन्यास ले लो। मूर्च्छा में तुम्हारा संन्यास संन्यास ही नहीं होगा। मूर्च्छा ही तो संसार है। फिर संन्यास और संसार में फर्क क्या होगा? इतना ही तो फर्क हैः मूर्च्छा और जागृति का, मूढ़ता और बोध का। संसार में तो मूढ़ ही मूढ़ भरे हुए हैं, एक से एक पहुंचे हुए मूढ़। वहां मूढ़ता चल जाती है, संन्यास में नहीं चलेगी।
तीन भाई किसी मुकदमे के सिलसिले में कोर्ट गए। जज के सामने कुछ पूछने
पर पहला बहुत देर तक खड़ा रहा और जवाब ही न दे। इस पर जज ने पूछा, भई, क्या बात है? बोल क्यों नहीं रहे हो? क्या सोच रहे हो?
बहुत झिझकते हुए वह बोला, साहब, अगर आपकी गर्दन कट जाए तो क्या पकड़ कर उठाएंगे, क्योंकि आप तो गंजे हैं! यही समस्या मेरे चित्त को घेरे हुए है। इसका कोई समाधान नहीं मिल रहा।
जज ने तो उसे बहुत डांटा और उसे डांट कर भगा भी दिया कि निकल अदालत के बाहर! ऐसे मूढ़ आदमी से क्या गवाही मिलेगी, कौन सा अदालत में चल रहे मुकदमे में सहारा मिलेगा। तू इसी वक्त बाहर हो जा!
फिर दूसरे भाई को पूछा। दूसरे भाई को पूरी बात बताई कि तुम्हारा पहला भाई किस तरह की बातें करता है, कि अगर जज की गर्दन कट जाए तो क्या पकड़ कर उठाएं!
उस पर दूसरा बोला, साहब, वह तो पागल है। अरे उसकी बातों का ख्याल न करो। अगर गर्दन कट जाए तो नाक पकड़ कर उठा लेंगे। इसमें क्या सोचना! यह कौन बड़ी बात है! मगर वह मूरख है। हमसे पूछो। कटने तो दो गर्दन, उठा कर बता देंगे, नाक पकड़ कर।
जज तो बहुत ही भन्नाया। उसने कहा, तू उससे भी पहुंचा हुआ है। निकल बाहर! तुमसे क्या खाक गवाही लेनी! तुम क्या गवाही बनोगे!
फिर तीसरे भाई को बुला कर वही बात कही।
तीसरा बोला, दोनों ही पागल हैं जी। इनकी बातों में पड़ना ही मत। अरे एक डंडा लो, मुंह में घुसेड़ो, और जहां चाहो वहीं ले जाओ। क्या नाक-वाक लगा रखी है! मैं अभी उनको ठीक करता हूं जाकर।
संसार तो एक से एक पहुंचे हुए मूढ़ों से भरा हुआ है। वहां सब तरह की मूढ़ता चलती है, मगर संन्यास में नहीं चलेगी। संन्यास का तो प्रारंभ ही प्रतिभा है, तेजस्विता है।
मेरे कहने से संन्यास मत लेना। औरों को संन्यासी देख कर संन्यास मत लेना। किसी लोभ के कारण संन्यास मत लेना। किसी भय के कारण संन्यास मत लेना--न नर्क का भय, न स्वर्ग का लोभ। अगर संन्यास लेना हो, तो तुम्हारी अंतर्वाणी के कारण ही लेना। इसलिए सुनो अंतर्वाणी को। ध्यान करो, अंतर्वाणी को सुनो। धीरे-धीरे अंतर्वाणी स्पष्ट होती जाएगी। और जब

अंतर्वाणी तुम्हें इतने जोर से पकड़ ले कि तुम रुकना भी चाहो तो न रुक सको, तब चले आना। तब आने में सार्थकता होगी। तब आने में मूल्य होगा। तभी तुम आए।
नकलचियों को मैं संन्यास देने में उत्सुक नहीं हूं।

छठवां प्रश्नः ओशो! आपके प्रवचनों से यह लगता है कि आप ब्रह्मचारियों
के विरोध में हैं, नीति-नियमों और आदर्शों के विरोध में हैं। ऋषि-मुनियों और साधु-संतों की भी आलोचना आप निरंतर करते रहते हैं। शास्त्रों से भी मुक्त होने को आप कहते हैं। आखिर आपका अभिप्राय क्या है? आपका धर्म क्या है? समाज के लिए क्या कुछ नीति-नियमों का आप विधान करेंगे?

आत्मानंद ब्रह्मचारी! इस बार ऐसा लगता है पूरा गुरुकुल कांगड़ी यहां आ गया है! ब्रह्मचारियों ने क्यों इस तरफ दृष्टि की है, यही मेरी समझ में नहीं आता। इतना रस ब्रह्मचारियों को यहां क्या! कहां गुरुकुल कांगड़ी और कहां यह मधुशाला! कहां चले आ रहे हो!
मैं ब्रह्मचर्य के विरोध में नहीं हूं, ब्रह्मचारियों के जरूर विरोध में हूं। ब्रह्मचर्य तो वह है जो ध्यान से सहज फलित हो। ध्यान में जैसे ही गहरे उतरोगे, वैसे ही कामवासना का आकर्षण क्षीण होता चला जाएगा। क्योंकि कामवासना जो तुम्हें रस दे सकती है, वह कुछ भी नहीं--बूंद भी नहीं; ध्यान जो देगा, वह पूरा सागर का सागर है--गागर ही नहीं, सागर का सागर! स्वभावतः ध्यान की गहराई के बढ़ते-बढ़ते अपने आप कामवासना क्षीण होने लगती है। आखिर कोई पागल है कि जब उसी ऊर्जा से इतना महान आनंद पाया जा सकता हो, तो उसे गंवाता फिरे--क्षुद्र में, व्यर्थ में! दो कौड़ी में बेचता फिरे, लुटाता फिरे अपने को!
ध्यान से जो सहज घटित होता है उसका नाम ब्रह्मचर्य है। मैं ब्रह्मचर्य शब्द का ठीक शाब्दिक अर्थ करता हूंः ब्रह्म की चर्या, ब्रह्म जैसी चर्या, दिव्य चर्या, ईश्वरीय आचरण।
लेकिन ब्रह्मचारियों के मैं खिलाफ हूं, क्योंकि मैं जिस ब्रह्मचर्य
की बात कर रहा हूं, वैसे आदमी को कभी ब्रह्मचारी होने का सवाल ही नहीं उठता। वैसा आदमी तो ध्यान में डूबते-डूबते कामवासना से चुपचाप मुक्त हो जाता है। उसे मुक्त होने के लिए कोई चेष्टा नहीं करनी पड़ती। ब्रह्मचारी को तो चेष्टा करनी पड़ती है। उसे तो दमन करना होता है। उसे तो जबरदस्ती अपने ऊपर थोपना पड़ता है आग्रहपूर्वक एक नियम को, एक विधान को।
और जब तुम ऊपर से थोपोगे, तो भीतर आग जलेगी। और जब तुम ऊपर से जबरदस्ती दबाओगे, तो भीतर उपद्रव हो जाएगा। तुम विकृत हो जाओगे। तुम्हारे जीवन में स्वाभाविकता तो समाप्त हो जाएगी, तुम्हारी ऊर्जा जगह-जगह से विकृति के अनेक-अनेक रूप ले लेगी। तुमने जो दबाया है, वह फूट-फूट कर बहेगा। छुपे मार्गों से बहेगा, पीछे के दरवाजों से बहेगा।
दुनिया में जितनी कामवासना की विकृतियां हैं, वे तुम्हारे तथाकथित ब्रह्मचारियों के कारण पैदा हुई हैं। दुनिया में जितने उपद्रव और जितने मानसिक रोग ब्रह्मचर्य की झूठी शिक्षा के कारण हुए हैं, थोथी शिक्षा के कारण हुए हैं, किसी और चीज के कारण नहीं हुए। न मेरी बात पर भरोसा हो तो तुम मनोवैज्ञानिकों से पूछो। इन पचास सालों का मनोवैज्ञानिकों का अध्ययन अगर कोई एक नतीजे पर पहुंचता है तो वह यह कि दुनिया को, मनुष्य को विकृत करने में, अप्राकृतिक करने में, कृत्रिम करने में तुम्हारे तथाकथित ब्रह्मचर्य की धारणा ने जितना हाथ बंटाया है, किसी और चीज ने नहीं। इसके कारण न मालूम कितने-कितने मानसिक रोग पैदा हुए।
इसलिए मैं ब्रह्मचारियों के विरोध में हूं, ब्रह्मचर्य के विरोध में नहीं। मगर मेरे ब्रह्मचर्य की अपनी अलग धारणा है। मैं नहीं चाहता कि तुम ब्रह्मचर्य साधो। ब्रह्मचर्य तो परिणाम है ध्यान का। तुम ध्यान का वृक्ष लगाओ, ब्रह्मचर्य के फूल लगेंगे। तुम उनकी चिंता ही न करो। तुम तो वृक्ष को पानी दो, खाद दो। वह वृक्ष का नाम ध्यान है। फल लगेंगे, फूल लगेंगे-- ब्रह्मचर्य के, आनंद के। उनकी तुम्हें फिक्र करने की आवश्यकता नहीं है।

लेकिन तुमने अगर जबरदस्ती फल और फूल लगाना चाहे, तो तुम्हें फिर बाजार से नकली खरीद कर लाना पड़ेंगे। मिलते हैं बाजार में--कागज के फूल मिल जाते हैं, प्लास्टिक के फूल मिल जाते हैं। उनको तुम लटका लो लाकर अपने घर में। खुद को भ्रांति दे लो, औरों को भ्रांति दे लो।

मगर ऐसी भ्रांतियों के मैं पक्ष में नहीं हूं। इसी तरह के ब्रह्मचर्य
से सारे उपद्रव--अशोभन उपद्रव पैदा होते हैं।
अब कल जिन सज्जन ने--वेदालंकार ने--वेश्या को कुत्ती कहा, वे भी ब्रह्मचारी हैं। वेश्या को कुतिया कहने की ब्रह्मचारी को क्या जरूरत? जरूर भीतर कहीं कुत्ता होने की इच्छा होगी। और क्या, इसके सिवा कोई कारण नहीं। भीतर इच्छा होगी कि किसी कुतिया के पीछे सूंघते हुए घूमें। अन्यथा क्यों किसी वेश्या को कुतिया कहोगे? तुम्हारा क्या किसी वेश्या ने बिगाड़ा है? तुमसे क्या लेना-देना है?
मगर नहीं, लेना-देना है। वेश्याएं सबसे पहले धर्म-मंदिरों में पैदा हुईं। नाम अच्छे-अच्छे दिए थे हमने उनको। हम भारत में उनको कहते थेः देव-कन्याएं! देव-कन्या का अर्थ यह होता था कि वे मंदिर में रहती थीं; पुजारियों की वासनाओं का साधन थीं, माध्यम थीं--और मंदिर में आने वाले भक्तों की वासना का भी। वे देव-कन्याएं थीं। तब देव-कन्याएं थीं! अगर मंदिर में वेश्यागिरी चले तो देव-कन्याएं! और फिर वहीं से वेश्यागिरी फैली।
भारत में अंग्रेजों ने जो कुछ चीजें नष्ट कीं, जिनके लिए भारत को सदा उनका ऋणी रहना चाहिए और अनुगृहीत रहना चाहिए, उनमें एक देव-कन्याएं भी हैं। मगर मिटते-मिटते भी बची हैं। अभी भी दक्षिण के कुछ मंदिरों में देव-कन्याएं हैं! और यह भारत में ही नहीं था, यह दुनिया के करीब-करीब सारे देशों में था। हर मंदिर अड्डा था वेश्यागिरी का। लेकिन धर्म के नाम पर चल रही थी वेश्यागिरी। आखिर ब्रह्मचारियों के लिए भी तो कोई निकास चाहिए। पुजारियों के लिए भी तो कोई निकास चाहिए। ये अपनी वासनाओं का क्या करें? ये अपनी वासनाओं को कहां छिपाएं? तो ऊपर से वासनाएं छिपा ली गई हैं, भीतर का रास्ता खोज लिया गया है।
मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि समलैंगिकता--होमोसेक्सुअलिटी-- तुम्हारे तथाकथित आश्रमों, मोनेस्ट्रीज, भिक्षु-संघों में पैदा हुई। क्योंकि भिक्षु-संघ हों, कि आश्रम हों, कि तुम्हारी मोनेस्ट्रीज हों-- स्त्रियों की अलग थीं और पुरुषों की अलग थीं। जहां पुरुष ही पुरुष रहे, वहां स्वभावतः जब उनकी वासना बल पकड़ेगी, जोर पकड़ेगी, तो वे क्या करेंगे? वे पुरुषों के साथ ही काम-संबंध तय करने लगे। और स्त्रियां स्त्रियों के साथ काम-संबंध तय करने लगीं।
यह मेरा आश्रम पहला आश्रम है इस अर्थों में पृथ्वी पर, जहां कोई विकृति नहीं हो सकती, क्योंकि हम स्वभाव को स्वीकार करते हैं। जहां कोई पाखंड नहीं हो सकता, क्योंकि हम प्रकृति को अंगीकार करते हैं। यहां स्त्री और पुरुषों को अलग-अलग छांट कर रखने की जरूरत नहीं है।
मैं विश्वविद्यालय में शिक्षक था। मेरे ऊपर जो बहुत से आरोप थे, उनमें एक आरोप यह था कि मैं अपनी कक्षाओं में लड़कियों को और लड़कों को अलग नहीं बैठने देता था। मैंने उनको कह रखा था कि मेरी कक्षा में यह नहीं चलेगा। शिकायतें पहुंचनी शुरू हो गईं। मुझे उपकुलपति ने बुलवाया और कहा कि आप यह क्या कर रहे हैं?
मैंने कहा कि आप आकर मेरी कक्षा देखें और उन कक्षाओं को देखें जहां लड़कियां और लड़के अलग बैठे हुए हैं, फिर कुछ निर्णय लें। जहां लड़के और लड़कियों को अलग बिठाया गया है--एक तरफ लड़कियां बैठी हैं, एक तरफ लड़के बैठे हैं--वहां न लड़के सुनते हैं कि प्रोफेसर क्या कह रहा है, न लड़कियां सुनती हैं। उनका ध्यान एक-दूसरे में लगा है। चिट्ठियां फेंकी जा रही हैं, कंकड़ फेंके जा रहे हैं, सब कार्यक्रम हो रहे हैं वहां और वह मूरख प्रोफेसर ज्ञान की बकवास लगाए हुए है। किसी को लेना-देना नहीं है। मैंने कहा, मैं इतनी झंझट क्यों करूं?

तो मैं तो पहला काम यह करता था, कक्षा में गया और मैं उनको कहता कि चलो, मिश्रित हो जाओ, इकट्ठे हो जाओ। जिसको जिसके पास बैठना हो, बैठ जाओ। चिट्ठी-पत्री फेंकने की कोई जरूरत नहीं। पास ही पास बैठे हो, चिट्ठी-पत्री क्या लिखोगे? कंकड़-पत्थर क्या फेंकना?
कंकड़-पत्थर दूर से छूने का उपाय है, और क्या है? मगर यह कोई ढंग हुआ! आदमियों जैसा ढंग हुआ--कि किसी को छूना है तो दूर से कंकड़ मार कर छू रहे हैं! अब तुम और तरह से न छूने दोगे तो यूं छुएंगे। कंकड़ एजेंट हुआ। हमने भी छू लिया, तुमने भी छू लिया। यूं चलो माध्यम के द्वारा हो गया, चिट्ठी-पत्री हो गई। अब जब पास में ही लड़की बैठी है तो थोड़ी देर में भूल ही जाओगे, करोगे क्या? दूसरी कक्षाओं में धक्का-मुक्की होगी। कक्षा के शुरू में जब विद्यार्थी अंदर प्रवेश करेंगे तो बाहर खड़े रहेंगे, जब लड़कियां घुसेंगी तभी वे एकदम से घुसेंगे, क्योंकि उसी बीच जो कुछ धक्का-मुक्की हो जाए। फिर जब कक्षा छूटेगी तब भी वे खड़े रहेंगे, जब लड़कियां निकलेंगी तब वे एकदम से निकलेंगे।
मैं उनसे कहता कि ये सब करने की कोई आवश्यकता नहीं है। पांच मिनट पहले, पांच मिनट बाद--करो धक्का-मुक्की। पहले धक्का-मुक्की कर लो, फिर तुम शांति से एक साथ बैठ जाओ जिसको जहां बैठना हो, इसके बाद मैं अपना काम शुरू करूं।
मैंने उनको कहा कि आप आकर देखिए कि मेरी कक्षा अकेली कक्षा है जहां कोई धक्का-मुक्की नहीं होती। क्या धक्का-मुक्की करोगे? किसके साथ धक्का- मुक्की करोगे? किसलिए करोगे? कोई कंकड़-पत्थर नहीं फेंका जाता। कोई चिट्ठी-पत्री नहीं फेंकी जाती। कोई स्याही नहीं छिड़की जाती। नहीं तो दूर से बैठे लड़के फाउंटेन पेन की स्याही छिड़क रहे हैं। पिचकारियां भर कर लाते हैं रंग की, पिचकारी चला रहे हैं। तो मैंने कहा कि जब यह सब रासलीला वहां चल रही है, तो मैं क्या खाक पढ़ाऊं उनको? मैंने रासलीला खत्म ही कर दी। और मैंने उनको कहा हुआ है कि कोई दरवाजे पर धक्का-मुक्की करने की जरूरत नहीं, धक्का-मुक्की करनी है--पांच मिनट शुरू में पहले कर लो, पांच मिनट बाद में कर लो।
और मैंने लड़कियों से कहा कि तुम धक्के-धक्के ही खाती रहती हो, धक्के मारो भी! कब तक धक्के खाती रहोगी? आखिर यही-यही लड़के ही लड़के धक्के मारें, यह भी बात शोभा नहीं देती। आखिर ये बेचारे तुम्हारी सेवा करें, तुम भी इनकी सेवा करो। यही शोभाजनक भी है कि उत्तर-प्रत्युत्तर होना चाहिए। तुम भी दो धक्के, दिल खोल कर धक्के दो। डरना क्या है? भय क्या है इनसे?
और जब लड़कियों ने धक्के मारने शुरू किए लड़कों को, तो लड़कों ने मुझसे शिकायत की कि यह मामला क्या है, ये हमें पढ़ने ही नहीं देतीं! एक तो आप इनको पास बिठाल दिए और ये हुद्दा मारती हैं! मैंने कहा, ये मारेंगी। सदियों से तुम हुद्दे मार रहे हो, ये कब तक बरदाश्त करें?
कि हम तो अपनी पढ़ाई में लगे हैं, ये च्योंटियां लेती हैं।
लेंगी! मैंने इनको सब कहा हुआ है कि धक्के मारो, च्योंटियां लो, इनके बाल खींचो। जो तुम्हारे साथ ये व्यवहार करते हैं, तुम करो। अपने आप शांति हो जाएगी।
और जल्दी ही शांति हो जाती थी। दो-चार दिन में सब शांति हो जाती।
मगर मुझ पर यह एक एतराज था। अभिभावकों ने एतराज किया कि हमारी लड़कियों को आज्ञा देते हैं ये कि वे लड़कों के साथ बैठें।
मैंने कहा, मेरी कक्षा में लड़के-लड़की का भेद मैं नहीं चलने दूंगा। यह बीच की दीवाल मैं नहीं चलने दूंगा।
अब यहां तुम देख रहे हो, कोई किसी को धक्का मार रहा है? हां, कभी-कभी कोई ब्रह्मचारी आ जाते हैं, नहीं तो कोई किसी को धक्का नहीं मार रहा। किसी को कुछ लेना-देना नहीं है। यहां जितनी निश्चिंतता से स्त्रियां बैठ सकती हैं, भारत में किसी जगह नहीं बैठ सकतीं। हां, कुछ शुद्ध भारतीय संस्कृति के पोषक आ जाते हैं तब थोड़ी अड़चन होती है। वे थोड़ा उपद्रव करते हैं। तो उनको तुम देख रहे हो, दूर बिठाया हुआ है, बीच में जगह छोड़ दी है कि ब्रह्मचारियों को दूर, वेदांतियों को दूर, ब्रह्मज्ञानियों को दूर।

मैं ब्रह्मचर्य के विरोध में नहीं हूं। वह तो जीवन की परम उपलब्धि है। वह तो जीवन की सबसे बड़ी धन्यता है। मगर ब्रह्मचारियों के विरोध में हूं।
तुम कहते होः "आप नीति-नियमों और आदर्शों के विरोध में हैं।"
निश्चित। क्योंकि नीति-नियम दूसरे थोपते हैं। आदर्श दूसरे तय करते हैं। मैं तो जागरण के पक्ष में हूं। मैं चाहता हूं तुम्हारे भीतर बोध जगना चाहिए। तुम्हारा जीवन तुम्हारे बोध से ही अनुशासित होना चाहिए। तुम किसी के गुलाम नहीं हो। क्यों कोई दूसरा तुम्हारे लिए नीति-नियम आधारित करे? क्या हक है मनु महाराज को कि तीन हजार साल पहले वे नियम बना गए और मैं उनका पालन करूं? मैंने उनके लिए कोई नियम नहीं बनाए, वे मेरे लिए क्यों बनाएं? मेरा उनसे क्या लेना-देना है?
लेकिन मनु महाराज नियम बना गए कि शूद्र वेद न पढ़े। और राम जैसे व्यक्ति ने भी इस नियम का पालन किया! एक शूद्र ने वेद सुन लिया, तो उसके कान में गरम सीसा करवा कर, पिघलवा कर कान में भरवा दिया। उसके कान फूट गए। वह आदमी बचा भी हो, यह भी संदिग्ध है। वह जिंदा भी कैसे रहा होगा! कान में अगर कोई उबलता हुआ सीसा पिघला कर डाल दे... कभी गरम तेल डाल कर देखा है कान में? तो जरा सीसे की कल्पना करो फिर।
और राम मर्यादा-पुरुषोत्तम हैं तुम्हारे! क्योंकि वे नीति-नियम का पालन कर रहे हैं। और इसलिए भारत का सारा पुरोहित वर्ग राम की गुहार मचाए रखता है, क्योंकि वे बिल्कुल अंधे की तरह मनु के पीछे चल रहे हैं।
यह कोई नियम हुआ? यह कोई नीति हुई? यह अमानवीय कृत्य है।
मनु महाराज ने कहा है कि शूद्र को मार डालने में कोई खास पाप नहीं है, अगर वह वेद को सुनता हुआ पकड़ा जाए। सबसे बड़ा पाप है ब्राह्मण को मारने में।
अब ब्राह्मण और शूद्र के जीवन की कीमत तो बराबर है, जरा भी भेद नहीं। जितना ब्राह्मण जीना चाहता है, उतना ही शूद्र भी जीना चाहता है। लेकिन शूद्र को मारने में कोई पाप नहीं है और ब्राह्मण को मारने में महापाप है! गऊ को मारने में भी ज्यादा पाप है शूद्र को मारने की बजाय!
यह कौन तय करेगा? यह कौन तय करने का हकदार है? नीति कौन तय करता है?
मैं चाहता हूं कि तुम्हारी नीति, तुम्हारा जीवन-आचरण तुम्हारे अपने
ही बोध के प्रकाश में तय होना चाहिए। मैं व्यक्ति को उसकी निजता देना चाहता हूं। मैं समाज की गुलामी नहीं सिखाता। और तुम्हारे सब समाज गुलामी सिखाते हैं।
फिर इनमें से लोग तरकीबें निकालते हैं। जैनों के पर्युषण आते हैं, दस दिन उनको सब्जी नहीं खानी। साल भर सब्जी खाते हो, दस दिन सब्जी नहीं खाते और समझ लिया कि आचरण पूरा हो गया! और फिर इसमें से तरकीबें निकाल लेते हैं जैनी।
मैं ऐसे जैन घरों में ठहरा तो मैं चौंका। जब मैं श्वेतांबर घरों में पहली दफा ठहरा, तब मैं बहुत ही हैरान हुआ। क्योंकि केला वे खाएंगे, आलू वे खाएंगे। मैंने पूछा कि यह मामला क्या है? उन्होंने कहा कि शास्त्रों में लिखा है कि हरी चीज नहीं खाना।
देखी होशियारी? केला हरा तो है नहीं अंदर और न आलू हरा है, तो यह कोई हरी चीज तो है नहीं, इसको तो खा सकते हैं। सब्जी का अर्थ भी हरा होता है-- सब्ज। हरी चीज नहीं खाना, सो रंग का सवाल है। तरकीब निकाल ली।
होशियार आदमी तो नियमों में से तरकीबें निकाल लेंगे। उनके खिलाफ तुम क्या नियम बनाओगे? चालबाज आदमी तो तरकीबें निकाल लेंगे। जब तक कि उनका स्वयं का बोध ही निर्णायक न हो, तब तक वे बेईमानियां करते जाएंगे। एक से एक तरकीबें निकालते चले जाएंगे।
तो मैं कोई ऊपर से नीति-नियम थोपने के पक्ष में नहीं हूं। जरूर, इसका
यह अर्थ नहीं कि मैं चाहता हूं व्यक्ति स्वच्छंद हो जाएं। लेकिन जरूर मैं चाहता हूं कि व्यक्ति अपनी निजता के अनुकूल जीएं। तो उनको बोध देना चाहता हूं। नीति-नियम नहीं--बोध। उनको दीया देना चाहता हूं, रोशनी देना चाहता हूं कि वे अपनी रोशनी में देखें--कहां दरवाजा है, कहां दीवाल।

तुम दीये की फिक्र ही नहीं करते। तुम कहते हो कि बाएं दरवाजा है और दाएं दीवाल। फिर चाहे बाएं दरवाजा न मिले उनको, दीवाल भी मिले, तो उसी से सिर टकराते रहते हैं जिंदगी भर, क्योंकि शास्त्रों में लिखा हुआ है, क्योंकि और लोग कह गए। और यह हो सकता है, तब बाएं दरवाजा रहा हो जब शास्त्र लिखे गए थे। तब से सब बदल गया। अब बाएं दरवाजा नहीं है, अब दरवाजा दाएं चला गया है। चीजें बह रही हैं। चीजें परिवर्तित हो रही हैं। कुछ ठहरा हुआ नहीं है यहां; सब प्रवाहमान है। और नीति-नियम थिर हो जाते हैं, जड़ हो जाते हैं। तुम्हें एक प्रवाहमान चैतन्य चाहिए। उसकी ही मेरी चेष्टा है।
और तुम कहते हो कि आप ऋषि-मुनियों और साधु-संतों की भी आलोचना करते हैं।
इसीलिए आलोचना करता हूं कि मैं जिसको ऋषि कहता हूं, जब तक वह व्यक्ति ऋषि नहीं है, तब तक आलोचना। रमण महर्षि की आलोचना नहीं करता, लेकिन महर्षि दयानंद की करता हूं, क्योंकि मुझे वे ऋषि दिखाई पड़ते नहीं। रमण मुझे ऋषि दिखाई पड़ते हैं, उनकी मैंने कभी आलोचना नहीं की। जो मुझे साधु मालूम पड़ता है, उसकी मैंने कभी आलोचना नहीं की। लेकिन सौ साधुओं में एकाध साधु होता है, निन्यानबे तो सिर्फ पाखंडी हैं, धोखेबाज हैं, बेईमान हैं। उनकी आलोचना की ही जानी चाहिए। उनकी आलोचना मैं कर ही इसलिए रहा हूं कि मेरे हृदय में सम्मान है ऋषि का, साधु का। अगर तुम मेरी बात समझोगे तो तुम्हें समझ में आएगा कि मैं झूठे गुलाबों की आलोचना कर रहा हूं ताकि तुम्हें सच्चे गुलाब दिखाई पड़ सकें।
मैंने बुद्ध की आलोचना तो कभी की नहीं, लेकिन अगर तुम मुझसे कहो कि मैं दुर्वासा मुनि की प्रशंसा करूं, तो मैं नहीं कर सकता हूं। उनको मैं मुनि ही नहीं मान सकता। दुर्वासा और मुनि! तो फिर अमुनि कौन होगा? दुर्वासा और ऋषि? तो फिर कौन है जो ऋषि नहीं है?
दुर्वासा की मैं प्रशंसा नहीं कर सकता। बुद्ध को मैं कहता हूं ऋषि, महर्षि--तुम जो भी शब्द देना चाहो दो। लेकिन दुर्वासा को कैसे? जो छोटी- छोटी बात में क्रुद्ध हो जाएं, आगबबूला हो जाएं; और यही जनम न बिगाड़ें, आगे के जनम भी बिगाड़ दें--ऐसी दुष्ट प्रकृति के व्यक्ति को मैं कैसे मुनि कहूं? इसको क्या मौन अनुभव हुआ होगा? मुनि का अर्थ तो वह जिसने मौन जाना। अब जिसका क्रोध ही नहीं गया, उसको मौन कैसे पता चलेगा? मौन में कहां क्रोध? ऋषि कौन? जिसकी अंतर्दृष्टि खुली; जिसके भीतर का काव्य जगा; जिसके भीतर संगीत उठा; जिसके भीतर की वीणा बजी। मगर तुम्हारे अधिकतर ऋषि-मुनि इस अर्थों में ऋषि-मुनि नहीं हैं। जरा भी नहीं हैं। उनकी मैं आलोचना न करूं तो क्या करूं?
लेकिन मेरा आलोचना का कारण? मेरा कारण यही है कि मेरा सम्मान बहुत है। तुम आलोचना नहीं करते, क्योंकि तुम्हारे मन में कोई ऋषि-मुनियों का सम्मान नहीं है। तुम तो लेबल के पक्षपाती हो, जिस पर भी लेबल लगा है... शुद्ध घी लिखा होना चाहिए, फिर भीतर चाहे डालडा ही हो। आजकल तो डालडा भी शुद्ध कहां मिलता है! भीतर चाहे कुछ भी भरा हो, बस लेबल शुद्ध घी का होना चाहिए, फिर तुम सब कुछ करने को राजी हो।
मेरी दृष्टि साफ है। मुझे दिखाई पड़ता है कि ऋषि कौन है।
उपनिषदों में कथा है गाड़ीवाले रैक्व की। रैक्व को ऋषि कहा हुआ है। मैं नहीं कह सकता। रैक्व की पत्नियां थीं। मुझे कुछ एतराज नहीं पत्नियों पर। ऋषि की पत्नियां हों, कोई हर्जा नहीं। उप-पत्नियां भी थीं। चलो, पत्नियां चल सकती हैं तो उप-पत्नियां भी चल सकती हैं, कोई हर्जा नहीं।
यह जान कर तुम्हें हैरानी होगी कि वधू कहते थे उप-पत्नी को। बाजार से
जो खरीद लाते थे औरतें, उनको वधू कहते थे।
तो रैक्व की वधुएं थीं। सभी ऋषियों की, तुम्हारे तथाकथित ऋषियों की पत्नियां ही नहीं थीं, उनके साथ-साथ वधुएं भी थीं, जो उन्होंने बाजार से खरीदी थीं। और बाजार में भारत के, आदमी और स्त्रियां बिकते थे। रामराज्य जिसको तुम कहते हो, उसमें स्त्रियां बाजार में बिकती थीं! कैसे मैं इसको रामराज्य कहूं? किस आधार पर रामराज्य कहूं? आज बेहतर हालत है। सब कुछ बुरा हो रहा हो, लेकिन फिर भी कम से कम स्त्रियां बाजारों में तो नहीं बिक रही

हैं। कम से कम दुकानों पर तो नहीं सजी हैं। कम से कम दाम के लेबल तो नहीं लगे हैं कि इतने-इतने दाम में खरीद लो। नीलामी तो नहीं हो रही है।
एक सुंदरी स्त्री बिक रही थी बाजार में। रैक्व भी खरीदने गया। वह हमेशा अपनी एक प्रसिद्ध गाड़ी थी उसकी, उसी गाड़ी में चलता था, इसलिए गाड़ीवाला रैक्व उसका नाम हो गया था। वह भी खरीदने गया, उसने भी दाम लगाए। लेकिन सम्राट भी खरीदने आया था। तो गाड़ीवाला रैक्व, पैसा तो उस पर काफी था, लेकिन सम्राट से कैसे जीतता! दोनों में छिड़ गई।
अब ये ऋषि-मुनि हैं जो नीलामी में खरीदने गए हैं स्त्रियों को! और ऐसी छिड़ गई कि दाम बहुत बढ़ गए। रैक्व को हार जाना पड़ा। सम्राट स्त्री को खरीद कर ले गया।
फिर सम्राट पर कुछ मुसीबत आई, कोई परेशानी आई, कुछ बीमारी आई, कुछ दुश्मन के हमले का खतरा पैदा हुआ। तो लोगों ने कहा कि आपको जाकर गाड़ीवाले रैक्व से क्षमा मांगनी चाहिए, क्योंकि वह नाराज है।
ऋषि-मुनि नाराज होते हैं? और नाराजगी का कारण क्या था कि वह औरत सम्राट खरीद ले गया था। वह आपसे नाराज है। आप जाकर धन-संपत्ति चढ़ा कर उसको प्रसन्न करो। अगर वह प्रसन्न नहीं होगा तो आपको हानि होगी।
वह बेचारा गया। कहते हैं रथ भर कर ले गया स्वर्ण से, हीरे-जवाहरातों से। और उसने गाड़ीवाले रैक्व के सामने जाकर हीरे-जवाहरातों से भरा हुआ रथ उलटवा दिया, और कहा कि गुरुदेव, यह आपके चरणों में भेंट है मेरी तरफ से! गाड़ीवाले रैक्व ने कहा, अरे शूद्र, ले जा! मुझे धन में कोई रस नहीं।
इस कहानी को विनोबा भावे कहना अक्सर पसंद करते हैं, मगर यहीं तक। क्योंकि उसने कहा कि अरे शूद्र, ले जा! मुझे धन में कोई रस नहीं। मगर यह कहानी अधूरी है। अब तुम देखते हो कि कहानी भी अगर पूरी न कही जाए तो झूठ हो सकती है।
विनोबा इसमें से यह अर्थ निकालते हैं कि उसने धन के कारण, धन लाने के कारण सम्राट को शूद्र कहा कि जिसकी धन में श्रद्धा है वह शूद्र। जब वे भूदान यज्ञ के आंदोलन में लगे थे तो इस कहानी को बहुत बार उन्होंने जगह-जगह कहा है। और किसी ने एतराज नहीं उठाया। जब वे जबलपुर आए, मैं जबलपुर में था। मैंने कहा कि यह कहानी अधूरी है। कहानी पूरी कहिए।
उन्होंने कहा, कहानी पूरी? मैं इतनी ही कहानी सदा कहता रहा हूं।
मैंने कहा, आपके कहने से नहीं है सवाल, कहानी पूरी नहीं है यह। और पूरी कहिए तो पूरा अर्थ बदल जाता है। पूरी कहानी मैं कहता हूं आपसे। कि फिर सम्राट ने अपने वजीरों से पूछा कि अब मैं क्या करूं, वह तो धन-संपत्ति लेता नहीं। उसने तो कह दिया--अरे शूद्र, ले जा अपनी धन-संपत्ति! मुझे धन में भरोसा नहीं है। तो उन्होंने कहा कि धन-संपत्ति वह नहीं लेगा। आपको उसी स्त्री को, जो आपने बाजार से खरीदी थी, भेंट चढ़ाना पड़ेगा। फिर सम्राट उसी स्त्री को लेकर गया और जब उसने रैक्व के चरणों में वह स्त्री चढ़ाई तो उसने कहा, हां, अब बोल। वत्स, क्या चाहता है?
मैंने कहा, यह कहानी अब पूरी हुई। अब कहिए, शूद्र कौन था इसमें? वह औरत
के पीछे दीवाना था इसलिए धन को गाली दे रहा था। धन को गाली देने में उसको कोई और रस नहीं था। वह यह कह रहा था--तू मुझे धोखा देने आया है धन से? अरे हट सामने से, असली चीज ला! किसी और को धोखा देना।
अब तुम मुझसे कहो कि मैं इनको ऋषि-मुनि कहूं, नहीं कह सकूंगा। मुझे क्षमा करो। और कारण सिर्फ इतना है कि ऋषि शब्द का मेरी दृष्टि में बड़ा मूल्य है। ऋषि का अर्थ होता हैः द्रष्टा। ऋषि का अर्थ होता हैः कवि-- साधारण अर्थों में नहीं, जिसके जीवन में परमात्मा का काव्य उतरा है, अवतरित हुआ है।
निश्चित ही मैं शास्त्रों से भी मुक्त होने को कहता हूं। इसलिए नहीं
कि मेरी शास्त्रों से कोई दुश्मनी है, बल्कि इसलिए कि जब तक तुम शास्त्रों में ही भटके रहोगे, तब तक तुम यह जो परम शास्त्र चारों तरफ मौजूद है परमात्मा का, इसको नहीं पढ़ोगे। उलझे रहो शास्त्रों में। शास्त्रों में शब्द हैं। सुंदर होंगे, प्यारे होंगे, मगर शब्द ही हैं। और शब्द सब थोथे हैं। मैं भी जो शब्द बोल रहा हूं, अगर तुम उनमें ही उलझ जाओ तो वे थोथे हैं।

इशारा समझ लो और चल पड़ो यात्रा पर, तब तो सार्थक। लेकिन यात्रा पर चलो तो! शब्द को पकड़ लो तो व्यर्थ।
लोग शास्त्रों की पूजा कर रहे हैं! मैं उस पूजा के विरोध में हूं।
शास्त्रों से इशारे ले लो। अंगुलियां हैं चांद को दिखाती हुई। चांद को देखो, अंगुलियों को छोड़ो।
और चारों तरफ परमात्मा मौजूद है।
रामायण तो पढ़ते हो--सियाराम मैं सब जग जानी। बाबा तुलसीदास दोहरा रहे हैं, सियाराम मैं सब जग जानी। और तुम भी दोहरा रहे हो। और शूद्र आ जाता है तो फौरन भूल जाते हो कि अब सियाराम कहां गए! अब नहीं सियाराम दिखाई पड़ते। शूद्र के चरण नहीं छूते। उससे यह नहीं कहते कि आओ, रामजी विराजो, सीता मैया कहां है? सीता मैया को भी साथ ले आए होते। अब सियाराम नहीं दिखाई पड़ते सब जग में। मुसलमान आ जाए तो मलेच्छ। अब नहीं दिखाई पड़ते सियाराम। स्वयं तुलसीदास को नहीं दिखाई पड़ते थे, तुमको क्या खाक दिखाई पड़ेंगे!
और शूद्र की तो बात ही छोड़ दो, कहानी यह है, नाभादास ने लिखा है कि तुलसीदास को जब पहली दफा कृष्ण के मंदिर में ले जाया गया तो वे झुके नहीं। कृष्ण की मूर्ति के सामने वे कैसे झुकें! जो ले गया था, उसने कहा कि आप नमस्कार नहीं करेंगे? उन्होंने कहा कि कभी नहीं। मैं तो केवल धनुर्धारी राम के सामने ही झुकता हूं, हर किसी के सामने नहीं झुक सकता।
ये ही सज्जन कह रहे हैं--सियाराम मैं सब जग जानी! इनको कृष्ण तक में राम नहीं दिखाई पड़ रहे! ये कृष्ण के सामने भी झुकने को राजी नहीं हैं! अब तुम कहो मुझसे कि मैं तुलसीदास को स्वीकार करूं कि ये परम ज्ञानी थे। कैसे झूठ बोलूं? किस वजह से झूठ बोलूं?
नहीं, यह संभव नहीं है। कबीर को इनकार करना असंभव है मेरे लिए, स्वीकार करता हूं। नानक को इनकार करना असंभव है मेरे लिए, स्वीकार करता हूं। फरीद को स्वीकार करता हूं। लेकिन तुलसीदास को स्वीकार नहीं कर सकता। तुलसीदास मेरे लिए उसी कोटि में आते हैं, जहां दयानंद आते हैं। ये सब बातें हैं। इन बातों में कुछ अर्थ नहीं है।
शास्त्रों से जब मैं मुक्त होने को कहता हूं तो मेरा इतना ही अर्थ है
कि उलझ मत जाओ शब्दों में, खो मत जाओ शब्दों में।
एक स्कूल में अध्यापक ने कहा, देखा तुमने बच्चो, न्यूटन ने बाग में पेड़ से गिरते हुए सेब को देख कर पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति को खोज डाला।
एक छोटे से बच्चे ने कहा, जी बाग में खोज की थी न! यदि स्कूल में बैठा किताबों में अपना सिर खपाता तो शायद कभी भी खोज न पाता। हम कैसे खोजें? हमारी तो खोपड़ी आप खा रहे हो। न बगीचा है, न सेब है। हम तो जाना चाहते हैं बगीचे में, मगर आप जाने नहीं देते।
यह बात बच्चे ने पते की कही।
और तुम्हारे शास्त्रों में है क्या? निन्यानबे प्रतिशत तो झूठ, सरासर झूठ, गपशप, और कुछ भी नहीं है।
एक बार दो शिकारी लंबी हांक रहे थे। एक बोला कि अभी पिछले महीने की ही बात है कि मैं निकला था शिकार पर। भटकता रहा, भटकता रहा, लेकिन कोई भी शेर या चीता न मिला। लेकिन एक दिन जब मैं सबेरे उठ कर हाथ-मुंह धो रहा था कि अचानक सामने से एक शेर आ गया। उस समय न तो मेरे पास बंदूक ही थी, न कोई और हथियार, बस एक बाल्टी भर पानी था। बस जल्दी से मैंने वही उठाया और शेर के ऊपर दे मारा। और शेर ऐसा भागा कि बस कुछ न पूछो।
दूसरा शिकारी बोला, हां यार, बात तो तुम सच कह रहे हो। क्योंकि जब वह शेर मेरे पास से निकला था तो मैंने उसकी पीठ पर हाथ फेर कर देखा था। पीठ बिल्कुल तरबतर हो रही थी पानी से।
इस तरह की बकवास है। तुम चाहे शास्त्र कहो, मगर जरा गौर से देखोगे तो ऐसे-ऐसे झूठ पाओगे कि बड़े से बड़े झूठ बोलने वाले भी छोटे मालूम पड़ने लगें। एक गप्पी महोदय थे जिन्हें कि शिकार का बड़ा शौक था। वे जब-तब अपने मित्रों के बीच अपने शिकार के संस्मरण बढ़ा-चढ़ा कर सुनाया करते थे। उनके मित्र चंदूलाल ने उनसे कई दफे कहा कि देखो भाई, तुम गप्प हांको, उससे मुझे

कुछ एतराज नहीं, मगर थोड़ी कम हांका करो। तुम तो बिल्कुल ऐसी सुनाते हो कि बस।
शिकारी को बात जंची। बोला कि यार बात तो ठीक है। अच्छा ऐसा करो, जब तुम्हें लगे कि मैं कुछ ज्यादा ही हांक रहा हूं, तो तुम थोड़ा खांस-खकार दिया करो।
चंदूलाल ने कहा, यह ठीक रहा।
एक दिन शिकारी महोदय अपने मित्रों के बीच बैठे थे। बोले कि अभी पिछले
ही शुक्रवार को मैं शेर के शिकार को गया। अभी मैं चल ही रहा था कि अचानक एक शेर सामने से आ गया, रहा होगा कोई पचास फीट लंबा।
यह सुन चंदूलाल ने जोर से खांसा। गप्पी चौंका। बोला, लेकिन जब तक मैं सम्हलूं, मैंने देखा कि अरे शेर तो सिर्फ चालीस ही फीट लंबा है।
चंदूलाल फिर खांसा। गप्पी उसका इशारा समझ कर बोला, लेकिन आश्चर्य तो मुझे तब हुआ जब मैंने निशाना साधा और बंदूक का घोड़ा दबाने जा ही रहा था कि देखा कि अरे, शेर तो कुल तीस ही फीट लंबा है।
चंदूलाल फिर खांसा-खकारा। गप्पी समझ गया। लेकिन जब मैंने उसे गोली मारी और बिल्कुल उसके पास पहुंचा तो देखा कि वह तो कुल बीस फीट का ही है। अब तो चंदूलाल से न रहा गया। वह फिर खांसा-खकारा। गप्पी महोदय बोले, लेकिन आश्चर्य की बात तो यह है कि जब मैंने उसे टेप से नापा तो वह कुल पंद्रह फीट ही लंबा था।
चंदूलाल और भी जोर से खांसा-खकारा। गप्पी महोदय क्रोध से बोले कि चुप
रह बे चंदूलाल के बच्चे! पंद्रह फीट से अब मैं एक इंच भी कम नहीं करने वाला। साला खांसता ही जा रहा है, खांसता ही जा रहा है। आखिर शराफत भी कोई चीज है!
तुम जरा अपने शास्त्रों में देखो तो, किस बात के लिए तुम बात कर रहे हो! है क्या तुम्हारे शास्त्रों में? सौ में से निन्यानबे प्रतिशत तो व्यर्थ की बकवास है। कि हनुमान ने लंका जला दी, कि एक छलांग में समुद्र पार कर गए। क्या-क्या नहीं होता तुम्हारे शास्त्रों में!
साइकिल होती नहीं थी और रामचंद्र जी सीता मैया को पुष्पक विमान में बिठा कर लेकर चले आ रहे हैं! साइकिल का भी कोई उल्लेख नहीं है कि ऋषि-मुनि साइकिल पर चलते हों। रेलगाड़ी का भी कुछ पता नहीं है। हवाई जहाज एकदम से नहीं बनता। साइकिल से शुरू होती है बात। धीरे-धीरे, क्रमशः, हवाई जहाज अंतिम चरण में बनता है। प्राथमिक चरणों का कोई पता ही नहीं है--पुष्पक विमान! सब गप्प-सड़ाका है। इसमें न तो कुछ अध्यात्म है, न कुछ ब्रह्मज्ञान है, न ब्रह्मज्ञान को पाने की कोई इस तरह की चीजों से संभावना है। आत्मानंद ब्रह्मचारी, मेरा अभिप्राय बहुत सीधा-साफ है। मैं चाहता हूं कि तुम जानो कि सत्य तुम्हारे भीतर है, कहीं और नहीं।
तुम पूछते होः "आपका धर्म क्या है?"
मैं हिंदू नहीं हूं, मुसलमान नहीं हूं, जैन नहीं हूं, बौद्ध नहीं हूं। मेरा धर्म विशेषण-शून्य है। मैं सिर्फ धार्मिक हूं। मैं इस अस्तित्व को प्रेम करता हूं। इस अस्तित्व में मेरी श्रद्धा है--न किसी मंदिर में, न किसी मस्जिद में, न किसी गिरजे में, न किसी गुरुद्वारे में। शब्दों में मेरा रस नहीं है। बोल रहा हूं तुम्हारे कारण, अन्यथा मौन में मेरा आनंद है। बोल रहा हूं कि तुम्हें भी मौन की तरफ फुसला ले चलूं। और जिन्होंने मुझे सुना है वे मौन की तरफ सरकने शुरू हो गए हैं। जो मुझे समझ रहे हैं वे मौन होते जा रहे हैं। वे जब मुझे सुन रहे हैं तब भी मौन हैं।
और तुम पूछते होः "समाज के लिए क्या कुछ नीति-नियमों का आप विधान करेंगे?"
नहीं। बहुत हो चुका नीति-नियमों का विधान। समाज कहां पहुंचा उस विधान से? मैं तो व्यक्ति में भरोसा करता हूं, समाज में मेरा भरोसा नहीं है। मैं व्यक्ति को ज्योति देना चाहता हूं, ध्यान देना चाहता हूं, समाधि देना चाहता हूं। फिर उसी समाधि से जीवन का आचरण निकलना चाहिए। उसी प्रकाश में लोग चलें। उसी प्रकाश को लोग अपने बच्चों को सिखाएं--कैसे पाया जा सकता है। उसी प्रकाश को शिक्षक विद्यार्थियों को समझाएं--कैसे पाया जा सकता है। वही प्रकाश फैले।

लेकिन प्रत्येक व्यक्ति को अपने भीतर से जीने की स्वतंत्रता मिले-- यही मेरा अभिप्राय है, यही मेरा धर्म है, यही मेरी क्रांति है।
समाज नहीं--व्यक्ति मेरा लक्ष्य है। व्यक्ति के प्रति मेरी आत्यंतिक श्रद्धा है। समाज तो कोरा शब्द है, एक संज्ञा मात्र। समाज की कोई सत्ता नहीं है। सत्ता है व्यक्ति की। और व्यक्ति के भीतर ही आत्मा का वास है।
व्यक्ति है मंदिर परमात्मा का। वहीं खोजना है और वहीं से जीवन के सारे सूत्र पाने हैं।
आज इतना ही।

पिय को खोजन मैं चली
आठवां प्रवचन

धर्म है कला जीवन की

पहला प्रश्नः ओशो! मीरा मेरी प्रेरणा-स्रोत रही है और कृष्ण मेरे इष्टदेव। शांत क्षणों में मैंने भी मीरा जैसे भक्ति-भाव की कल्पना तथा चाह की है और उसी के अनुरूप कुछ प्रयास भी किया। मगर प्राणों में उतनी पुलक नहीं उठी कि मैं नाच सकूं। फिर मैं आपके संपर्क में आया; आपका शिष्य हुआ। मैं तरंगित हुआ; मैं रोया; मैं हंसा। मगर कृष्ण से अब कुछ लगाव नहीं रहा। अब तो उस छवि के पास आते और आंखें मिलाते भी संकोच लगता है, जिसे मैंने वर्षों पूजा, जिसकी अर्चना की। यह क्या है ओशो?

कृष्ण चैतन्य! कल्पना और सत्य में बड़ा भेद है। मीरा के लिए कृष्ण कल्पना नहीं हैं, कृष्ण बाहर भी नहीं हैं। मीरा के लिए कृष्ण उसके अंतर्तम में विराजमान हैं। वह जिस कृष्ण की बात कर रही है, कृष्ण की मूर्ति में तुम उस कृष्ण को नहीं पाओगे। उस कृष्ण का कोई रूप नहीं है, कोई आकार नहीं है। तुमने कल्पना की, वहीं चूक हो गई, वहीं भेद पड़ गया।
मीरा के लिए कृष्ण एक आंतरिक सत्य हैं और तुम्हारे लिए केवल कल्पना
की बात। कल्पना से कैसे तुम तरंगित होते, कैसे नाच उठता, कैसे पुलक जगती? यूं समझो कि जैसे भोजन की कोई कल्पना करे, उससे कैसे पेट भरे? प्यास लगी हो और पानी की कोई कल्पना करे, उससे कैसे तृप्ति हो? पानी चाहिए।
लेकिन यह तुम्हारी ही भ्रांति नहीं थी, यह करोड़ों-करोड़ों लोगों की भ्रांति है। कल्पना सस्ती होती है, सत्य मंहगा--सत्य बहुत मंहगा--प्राणों से दाम चुकाने पड़ते हैं। कल्पना के लिए तो कुछ करना ही नहीं होता, जब चाहो तब कर लो, मन की मौज है।
मीरा ने सब गंवाया। कल्पना के लिए कोई कुछ भी नहीं गंवा सकता। लेकिन मीरा को पढ़ोगे, उसके शब्द तुम्हें प्रभावित कर सकते हैं। उन शब्दों में रस है। उन शब्दों में अनुगूंज है मीरा की वीणा की, मीरा की पायल की झंकार, लेकिन उन शब्दों से तुम सत्य तक न जा सकोगे। उन शब्दों को तुम प्रेरणा- स्रोत बना लोगे, तो सपनों में खो जाओगे।
ऐसे ही सपने में तुम खो गए थे। मीरा ने तुम्हें प्रभावित किया। और स्वभावतः, मीरा ने प्रभावित किया तो कृष्ण तुम्हारे इष्टदेव हो गए।
अब यह दूर कोयल की आवाज सुनते हो! ऐसी आवाज तुम भी कर सकते हो, कुहू- कुहू करने में कोई कठिनाई तो नहीं। मगर वह होगी नकल। तुम्हारे प्राणों में कुछ भी न होगा, बस कंठ में ही होगी बात, ऊपर-ऊपर होगी। जीवन नहीं होगा। सत्य नहीं होगा। यथार्थ नहीं होगा। तुम दोहरा दोगे। और यह भी हो सकता है कि तुम कोयल से भी बाजी मार लो, क्योंकि नकलची नकल का अभ्यास कर सकता है, गहन अभ्यास कर सकता है। लेकिन अंतिम परिणामों में तो तुम हारोगे, बुरी तरह हारोगे, क्योंकि तुम्हारे हाथ में कुछ भी न होगा।
कृष्ण की मूर्ति पर तुमने अपनी सारी कल्पनाओं का प्रक्षेपण कर दिया। कृष्ण की मूर्ति तो केवल एक सहारा बन गई, एक खूंटी बन गई, जिस पर तुम कल्पनाओं और भावनाओं को टांगते चले गए।
मेरे पास तुम आए तो कृष्ण भूल गए। इसलिए भूल गए कि जो तुम चाहते थे सदा
से घटना, वह घटने लगा। अब क्यों कोई कल्पना करे! जब वस्तुतः जलधार मिल गई, तो क्यों कोई कल्पना और सपना देखे जल का! भूखे आदमी ही रात भोजन के सपने देखते हैं; जिनके पेट भरे हैं, वे नहीं। भिखमंगे ही सपने देखते हैं सम्राट होने के, सम्राट नहीं।
यहां तो वस्तुतः पुलक पैदा होने लगी। तुम्हारे भीतर की कोयल जाग उठी।
अब तुम्हें यहां कोई काल्पनिक कृष्ण के सहारे नहीं जीना है। यहां वस्तुतः जिसे तुम खोजते थे उसकी मौजूदगी है, उस ऊर्जा में तुम जी रहे हो, वह ऊर्जा तुम पर बरस रही है। मैं तुम्हें कल्पना नहीं सिखाता, मैं तुम्हें ध्यान सिखाता हूं। और ध्यान सीखने का अर्थ ही होता हैः कल्पनाओं से मुक्त हो जाना; मन से ही मुक्त हो जाना। फिर कैसी कल्पना, कैसी स्मृति, कैसा विचार!

इसलिए सब गया--तुम्हारी कल्पना गई, तुम्हारी भावना गई, तुम्हारी पूजा गई, तुम्हारी अर्चना गई।
और स्वभावतः अब उस खूंटी को देख कर तुम्हें शर्म आती होगी कि इस खूंटी
के सहारे तुमने कितना अपने को धोखा दिया! इसलिए आज कृष्ण की छवि को देखते भी तुम्हें संकोच होता है। आंखें मिलाते भी तुम्हें संकोच होता है।
उस संकोच में सिर्फ एक बात की घोषणा है कि तुम्हें अपनी ही नासमझी याद आती है। उस संकोच का कृष्ण से कोई संबंध नहीं है। वर्षों तक तुमने जो नासमझी की, कैसे कर सके इतनी नासमझी--यही याद आता है। यह याद आकर पीड़ा होती है, शर्म से सिर झुक जाता है। लेकिन कृष्ण पर कल्पना करने की जरूरत न रही; वास्तविक से तुम्हारा संबंध होना शुरू हो गया है।
इसलिए तुम कह रहे हो आज कि "मैं तरंगित हुआ; मैं रोया; मैं हंसा।"
यही तो तुम चाहते थे। जो तुम चाहते थे, वह हो गया है। अब क्यों तुम व्यर्थ के सहारे खोजोगे! कृष्ण तुम्हें मिल गए। तुम्हें मैंने नाम ही "कृष्ण चैतन्य" इसीलिए दिया था। यही देख कर दिया था कि कृष्ण से तुम्हारा गहरा लगाव है। लेकिन झूठे कृष्ण को तो छोड़ना पड़ेगा। वह तुम्हारी कल्पना थी। और तुम जब कल्पना छोड़ दोगे, तो सत्य का साक्षात हो सकता है। सच्चे कृष्ण में तो क्राइस्ट भी समाए हुए हैं, बुद्ध भी, महावीर भी, जीसस भी-- जिन्होंने भी जाना है सत्य को, वे सभी समाए हुए हैं।
कृष्ण शब्द बड़ा प्यारा है। कृष्ण का अर्थ होता हैः जो आकृष्ट कर ले,
जो खींच ले। जादू, कृष्ण का अर्थ होता है। उस जादू में तुम आ गए। किसी ने तुम्हें खींच लिया। उस गुरुत्वाकर्षण में तुम हो अब। अब तस्वीरों का क्या करोगे? जब मालिक मिल जाए तो तस्वीरों का क्या करना है? सब तस्वीरें फीकी पड़ जाती हैं। सब तस्वीरें झूठी हो जाती हैं।
एक महिला ने प्रसिद्ध चित्रकार पिकासो से कहा, कल तुम्हारी एक तस्वीर, तुम्हारी एक फोटो एक घर में टंगी देखी। बड़ी प्यारी थी। किसी बड़े महत्वपूर्ण छविकार ने, फोटोग्राफर ने उतारी होगी। मुझे तो इतनी प्यारी लगी कि मैं उसे बिना चूमे न रह सकी।
पिकासो ने कहा, फिर क्या हुआ? तस्वीर ने तुम्हें चुंबन का उत्तर दिया
या नहीं?
उस महिला ने बहुत चौंक कर पिकासो को देखा। उसने कहा, आप होश में हैं? तस्वीर कहीं चुंबन का उत्तर दे सकती है?
पिकासो ने कहा, तो फिर वह मैं नहीं था। मुझे चूमो, और तब तुम भेद पाओगी। वह सिर्फ कागज ही था, भ्रांति थी। अगर तस्वीर ने उत्तर न दिया, तेरी जैसी प्यारी स्त्री के चुंबन का कोई उत्तर न मिला, तस्वीर कुछ बोली भी न, धन्यवाद भी न दिया, तुझे गले से भी न लगाया, वह झूठी थी। वह मैं नहीं था, इतना मैं तुझसे कहता हूं।
पिकासो ठीक कह रहा है।
कृष्ण चैतन्य, तुम कृष्ण की तस्वीर से बंधे थे इतने दिन तक। यहां आकर तुमने कृष्ण के यथार्थ को पहचाना है, जाना है। अब क्यों तस्वीर तुम्हें बांधेगी? लेकिन प्रश्न उठना स्वाभाविक है।
तुम पूछते होः "यह क्या है भगवान? संकोच लगता है उस छवि के पास जाते, आंखें मिलाते भी, कि जिसे मैंने वर्षों पूजा, जिसकी अर्चना की!"
संकोच इसीलिए लगता है। यह सोच कर, यह विचार कर कि मैं भी कैसा पागल था! मैं क्या कर रहा था! मैं कैसे बचकानेपन में खोया था! मैं कैसी नासमझी कर रहा था!
लेकिन तुम सौभाग्यशाली हो, समय रहते जाग गए। बहुत हैं अभागे जो यूं ही
मर जाएंगे, यूं ही तस्वीरों में अटके मर जाएंगे।
शास्त्रों में जो अटका है, वह तस्वीरों में अटका है। मूर्तियों में
जो अटका है, वह झूठों में अटका है। सत्य के खोजी को जीवंत गुरु खोजना होता है, उसके सिवाय कोई उपाय न कभी था, न है, न होगा।
और जीवंत गुरु के साथ जुड़ना निश्चित ही साहस का काम है--दुस्साहस का काम है। क्योंकि जीवित गुरु के साथ जुड़ने का अर्थ हैः अहंकार की मृत्यु। जो मरने को राजी है, वही शिष्य हो सकता है। जो अपने को बचाए, वह शिष्य नहीं हो सकता। मूर्ति में यही तो सुविधा है--तुम जब चाहो कृष्ण को लिटा दो, जब

चाहो बिठा दो, जब चाहो भोग लगा दो, जब चाहो घंटी बजाओ, पूजा करो--जो तुम्हें करना हो करो--जब पट खोलने हों मंदिर के, खोल दो; जब बंद करने हों, बंद कर दो।
कृष्ण न हुए, तुम्हारे खिलौने हैं।
जीवित सदगुरु के साथ तो तुम ऐसा न कर सकोगे। जीवित सदगुरु पर तो तुम्हारा कोई वश न चलेगा। जीवित सदगुरु के साथ तो मामला उलटा ही हो जाएगा-- उसका वश तुम पर चलेगा, उसका जादू तुम पर चलेगा।
इसलिए तो लोग मुर्दों की पूजा करते हैं। जीसस मर जाते हैं, तब करोड़ों लोग ईसाई हो जाते हैं। जीसस जब जिंदा थे, तो सौ-पचास आदमी भी जीसस के साथ नहीं थे। जीसस को जिस दिन सूली लगी, उस दिन उनके शिष्य भी भाग गए थे। क्या खाक शिष्य रहे होंगे!
जिस रात जीसस पकड़े गए, जब दुश्मन उन्हें ले चले, तो उनका एक शिष्य पीछे
हो लिया। जीसस ने यूं कहा जैसे हवा में बोल रहे हों, जैसे आकाश से बात कर रहे हों। कहा कि लौट जा! क्योंकि सुबह होने के पहले, इसके पहले कि मुर्गा बांग दे, तू तीन बार मुझे इनकार करेगा।
निश्चित ही शिष्य समझ गया। और लोग तो जरा हैरान हुए! लेकिन लोग तो समझते ही थे कि यह आदमी पागल है। यह क्या कह रहा है, किससे कह रहा है-- मुर्गा बांग देगा उसके पहले तीन बार तू मुझे इनकार करेगा! लेकिन शिष्य समझ गया। उसने मन ही मन में कहा--इतनी भी हिम्मत नहीं थी कि जोर से कहता "कभी नहीं," क्योंकि तभी पकड़ लिया जाता--मन ही मन में कहा कि कभी नहीं। लेकिन जीसस ने कहा, मैं कहता हूं, तू तीन बार इनकार करेगा मुर्गे के बोलने के पहले।
और यही हुआ। थोड़ी ही देर बाद, जो दुश्मनों की भीड़ जीसस को पकड़ कर ले जा रही थी--रात थी, अंधेरी थी, मशालें जला रखी थीं--उन्होंने देखा कि एक अजनबी सा आदमी साथ में है, जो उनका परिचित नहीं है, जो उनका साथी तो निश्चित नहीं है। यह कौन है? उन्होंने पूछा उससे कि तुम कौन हो? क्या तुम जीसस के साथी हो?
उसने कहा कि नहीं। कौन जीसस? मैं तो पहचानता भी नहीं। मैं तो बाहर से आया हुआ एक यात्री हूं। मुझे भी शहर की तरफ जाना है, मशालों की रोशनी देख कर साथ हो लिया हूं।
जीसस हंसे और उन्होंने कहा, देखा, अभी मुर्गे ने बांग नहीं दी है। चौंका शिष्य कि एक दफे तो इनकार कर दिया, मगर अब नहीं करूंगा। जीसस ने कहा, तू देख तो। तू तीन बार इनकार करेगा।
और ऐसा हुआ बार-बार। फिर थोड़ी देर बाद किसी दूसरे ने पूछा कि तू है कौन? तेरा ढंग संदिग्ध मालूम पड़ता है। क्योंकि वह छिपा-छिपा सा, चोर-चोर सा मालूम हो रहा था। अपने को बचाने की कोशिश में लगा था। रोशनी में चेहरा न आ जाए, ऐसा-ऐसा चल रहा था, अंधेरे-अंधेरे में दब कर। तू है कौन?
उसने कहा, मैं एक अजनबी हूं। बाहर के गांव से आया हुआ हूं। इस गांव के रास्तों से परिचित नहीं हूं, इसलिए साथ हो लिया हूं।
उस आदमी ने पूछा, तू इस आदमी को पहचानता है जिसको हम पकड़ कर ले जा रहे हैं?
उसने कहा, कभी देखा नहीं।
जीसस ने कहा, देखा, अभी मुर्गे ने बांग नहीं दी और दो बार तू इनकार कर चुका!
उसने भीतर ही भीतर कसम खाई कि कसम खाता हूं अब, कसम तुम्हारी, कसम परमात्मा की, नहीं तीसरी बार इनकार करूंगा। मगर सुबह होने के पहले तीसरी बार भी इनकार करनी ही पड़ी। और बाकी तो भाग ही गए थे। यह एक गया भी था तो तीन बार इनकार कर दिया!
जब जीसस को सूली लगी और उन्होंने पानी मांगा।... क्योंकि यहूदियों का
जो सूली देने का ढंग था वह बहुत बेहूदा था, बहुत ही आदिम था। आदमी को हाथों में, पैरों में खीले ठोंक कर तख्ते पर जड़ देते थे। आदमी इतनी आसानी से नहीं मरता, उसके गले में फांसी भी नहीं लगाते थे, तो किसी को छह घंटे लगते मरने में, किसी को बारह घंटे लगते, किसी को अठारह घंटे लगते, किसी को चौबीस घंटे, किसी को अड़तालीस घंटे। कभी-कभी तो यूं होता कि आदमी को मरने में तीन दिन लग

जाते, क्योंकि खून धीरे-धीरे बहता, बहता--हाथ से, पैर से, बहते-बहते आदमी क्षीण होता और मरता।
जीसस को प्यास लगी और उन्होंने कहा, मुझे प्यास लगी है, कोई मुझे पानी पिला दो।
वह एक शिष्य मौजूद था। उसकी इतनी भी हिम्मत नहीं हो सकी कि जीसस को पानी पिला दे। वह भीड़ में चुपचाप ही खड़ा रहा।
जिंदा गुरु के साथ होना खतरनाक मामला है--बहुत खतरनाक सौदा है।
और वे जो ग्यारह भाग गए थे और यह बारहवां साथ था, ये ही बारह जीसस के गणधर हुए। इन्हीं बारह को अवसर मिला ईसाइयत को पैदा करने का। अब तुम समझ लो कि ईसाइयत शुरू से ही झूठ हो गई।
आज करोड़ों लोग ईसाई हैं। आज ईसाई होना बड़ी सुविधा की बात है। इसमें कुछ अड़चन नहीं है। इसमें कुछ उपद्रव नहीं है। आज कितने लोग ईसा के सामने आंसू बहाते हैं बैठ कर--तस्वीर के सामने। आज कितने घरों में सूली पर लटके हुए ईसा की तस्वीर या मूर्ति है! कितने लोग चर्चों में जाते हैं! आज रविवार का दिन है, सारी दुनिया में चर्च ईसाइयों से भरे होंगे। प्रवचन दिए जा रहे होंगे, पादरी समझा रहे होंगे। लेकिन अब कुछ खतरा नहीं है। अब मजे से बात सुनो, चर्चा करो। अब इसमें कुछ लेना-देना नहीं है। अब कुछ अड़चन नहीं है। लेकिन जीसस के साथ कितने लोग थे? बुद्ध के साथ कितने लोग थे? आज पूरा एशिया बौद्ध है, तब कितने लोग बुद्ध के साथ खड़े हुए? महावीर के साथ कितने लोग खड़े थे? नानक के साथ कितने लोग खड़े थे? कबीर के साथ कितने लोग खड़े थे? कारण साफ है--जिंदा गुरु के साथ होने में तलवार की धार पर चलना है। कल्पना करने में क्या कठिनाई है! बैठो और जो कल्पना करना हो करो--कृष्ण की करो, बुद्ध की करो, क्राइस्ट की करो--तुम्हारी मौज है। और जैसी करना हो, जैसा रंग भरना हो कल्पना में वैसा रंग भरो।
कृष्ण चैतन्य, तुम सौभाग्यशाली हो कि कल्पना की तूलिका से ही रंग नहीं भरते रहे। तुम सौभाग्यशाली हो कि जिस बात की तुम्हें अपेक्षा थी, जिसे तुमने चाहा था, वह घट सकी; जो तुम्हारी अभीप्सा थी, वह पूरी हो सकी। तुमने हिम्मत की तो पूरी हो सकी। तुमने साहस किया तो पूरी हो सकी। तुम चल पड़े। और जो चल पड़ा उसकी मंजिल दूर नहीं है।
संकोच तुम्हें इसलिए नहीं लगता कि कृष्ण से तुम्हें कुछ एतराज है। कृष्ण से क्या एतराज होगा! कृष्ण का तो मैं दीवाना हूं। कृष्ण को जितना प्रेम मैं कर रहा हूं, संभवतः मीरा ने भी नहीं किया होगा। कृष्ण की जैसी प्रतिष्ठा मेरे भीतर है, शायद ही किसी के भीतर रही होगी।
यह तुम्हारे भीतर जो संकोच उठ रहा है, वह कृष्ण के प्रति नहीं है, वह अपनी ही नासमझी के प्रति है। लेकिन अब उस खूंटी को देख कर तुम्हें अड़चन होती होगी कि अरे, मैं इसी खूंटी से बंधा था! यही खूंटी सबूत है मेरे बंधनों का। मेरी अर्चना, मेरी पूजा--सब झूठी थी। इतने दिन मैं कैसे धोखा खाया, कैसे अपने को धोखा दिया--इससे तुम्हें संकोच पैदा होता है।
लेकिन सच यह है कि तुम पहली बार कृष्ण के करीब आने शुरू हुए हो। और पहली बार तुम्हारे भीतर भी मीरा जैसी पुलक पैदा हुई है। पहली बार तुम्हारे पैरों में भी नृत्य की क्षमता आई है, तुम्हारा हृदय भी गीत गा रहा है। तुम्हारे जीवन में धन्यता का क्षण आ गया है।

दूसरा प्रश्नः ओशो! उज्जैन के सिंहस्थ मेले में उस स्थान पर काफी भीड़ होती थी जहां नागा साधु लैंगिक प्रदर्शन करते थे। जैसे लिंग से बांध कर जीप गाड़ी को खींचना, आदि। क्यों नग्न प्रदर्शन करने व नग्नता देखने में लोग उत्सुक होते हैं, और लोग उनकी तारीफ करते हैं? और जब आपके आश्रम में ऐसा कोई कृत्य नहीं होता, फिर भी लोग क्यों आप पर और आपके आश्रम पर नाराज हैं?

कृष्ण वेदांत! इस देश का मन बहुत कुंठित मन है। और इस देश की कुंठा का
जो मूल आधार है, वह है कामवासना का दमन। इस तरह दबाया है सदियों से कामवासना को कि वह अनेक विकृत रूपों में प्रकट होती है। ये विकृतियां हैं। वह जिन्हें तुमने देखा प्रदर्शन करते, वे भी विक्षिप्त लोग हैं।

अब यह क्या पागलपन है? इसका धर्म से क्या संबंध हो सकता है? परमात्मा
ने मनुष्य को जननेंद्रिय जीप गाड़ियां खींचने के लिए नहीं दी है। यह कौन सी धार्मिकता है? अगर यह धार्मिकता है तो फिर मूढ़ता किसको कहोगे? यह तो निपट गंवारी है। यह तो निपट शोषण है।
लेकिन वे नागा साधु एक बात से भलीभांति परिचित हैं कि भारत का मन नग्नता में बहुत उत्सुक है। जितनी निंदा करता है, उतना ही उत्सुक है। वह निंदा भी उत्सुकता के ही कारण है। वह निंदा भी गहरे में उत्सुकता को दबाए बैठी है। सदियों से दबाई गई है बात, उभर-उभर कर आती है।
और एक नियम समझ लेना कि जो प्राकृतिक है, उसे अगर दबाओगे तो वह अप्राकृतिक होकर प्रकट होगा। कुछ भी प्राकृतिक दबाया कि अप्राकृतिक ढंग से प्रकट होना निश्चित है। उससे बचना असंभव है, जब तक कि तुम्हारी प्रकृति रूपांतरित न हो। और प्रकृति के रूपांतरण में दमन का कभी कोई सहयोग नहीं होता। बाधा पड़ती है दमन से रूपांतरण में। तुम जिसे दबा लेते हो उसका कभी रूपांतरण न कर सकोगे। भारतीय मन जितना कामवासना से पीड़ित है उतना पृथ्वी पर कोई दूसरी जाति का मन, देश का मन नहीं है। और कारण? कारण कि भारत का धर्म बड़ा पुराना है, और सदियों से हमें एक ही बात सिखाई जा रही है कि कामवासना पाप है।
क्यों आखिर कामवासना के विरोध में इतना प्रचार किया गया है?
एक सीधे से कारण से। मनुष्य को अगर अपराध के भाव से भरना हो, तो सबसे सुगम उपाय यह है--उसकी किसी ऐसी नैसर्गिक वृत्ति को पाप घोषित कर दो, जिसको वह लाख चाहे तो भी बदल न सके। स्वभावतः उसके भीतर अपराध-भाव की वृत्ति पैदा हो जाएगी। और जैसे ही व्यक्ति में अपराध-भाव पैदा हो जाता है, पंडित और पुरोहित को उसका शोषण करने का मौका मिल जाता है।
अपराध-भाव से भरा हुआ व्यक्ति डरा हुआ व्यक्ति हो जाता है, घबड़ाया हुआ व्यक्ति हो जाता है। फिर उसे नर्क से डराओ तो वह डरता है, क्योंकि वह जानता है मैं पापी हूं। जो पापी नहीं है, वह क्यों नर्क से डरेगा? जो पापी नहीं है, उसे नर्क की धारणा में ही कुछ अर्थ नहीं मालूम होता।
कोई नर्क कहीं भी नहीं है। वह सिर्फ तुम्हारी अपराध-भावना के कारण ही तुम्हारे मन में पुरोहित पैदा करने में सफल हो पाए हैं। और उन्होंने उसके ही दूसरे अंग की तरह स्वर्ग का प्रलोभन दिया है। लोभ और भय के बीच में आदमी को पीस डाला है।
और पुरोहित का धंधा आदमी के शोषण का धंधा है। और जिस आदमी का भी शोषण करना हो, पहले उसे कमजोर बनाना जरूरी है। अगर वह शक्तिशाली है, अगर वह अपने निज के पैरों पर खड़ा है, खुद की बुद्धि पर उसे भरोसा है, तो तुम उसका शोषण न कर सकोगे। न तुम उसे गुलाम बना सकोगे। वह अपनी स्वतंत्रता की घोषणा करेगा। वह अपनी प्रतिभा से जीएगा। वह ये दो कौड़ी के पंडित और पुरोहितों के चरण छूने नहीं जाएगा। लेकिन एक बार उसको कंपा दो, डरा दो, घबड़ा दो; एक बार उसके भीतर भय की लहर दौड़ा दो और लोभ का बवंडर खड़ा कर दो, बस फिर ठीक। फिर वह किसी के भी हाथ में पड़ जाएगा। फिर कोई भी उसका शोषण कर सकता है। बुद्धिमान से बुद्धिमान आदमी भी बुद्धुओं के हाथ के नीचे पड़ गए हैं।
पश्चिम का बहुत बड़ा वैज्ञानिक नाइल्सबोर, नोबल प्राइज विजेता था, उससे एक अमरीकी गणितज्ञ मिलने आया था। वह देख कर हैरान हुआ कि नाइल्सबोर ने अपने बैठकखाने में अपनी टेबल के पीछे ही, घोड़े के पैर में जो लोहे का टुकड़ा हम ठोंक देते हैं, जिससे वह चलने में सीमेंट की रोड पर तकलीफ न पाए, तेजी से दौड़ सके--हॉर्स शू--उसको उसने उलटा लटका हुआ देखा।
पश्चिम में यह धारणा है कि हॉर्स-शू अगर उलटा लटका हुआ हो तो मंगलदायी है।
वह अमरीकी गणितज्ञ तो बड़ा हैरान हुआ कि नाइल्सबोर जैसा वैज्ञानिक इस तरह के अंधविश्वास में भरोसा करता होगा! उसने कहा, और बातें पीछे होंगी, पहले मैं यह पूछना चाहता हूं कि यह आपने अपनी कुर्सी के पीछे हॉर्स-शू को उलटा क्यों लटका रखा है? क्या आप भी अंधविश्वासी हैं? आप जैसा व्यक्ति! यह तो मैं कल्पना भी नहीं कर सकता था। क्या आप भी सोचते हैं कि इसको उलटा लटका रखने से मंगल होगा, शुभ होगा?

नाइल्सबोर हंसा और उसने कहा, कभी नहीं, मैं इस तरह के अंधविश्वासों में भरोसा करता ही नहीं। मेरी इसमें कोई श्रद्धा नहीं है।
तो फिर उसने कहा, फिर आप मुझे और हैरान करते हैं। फिर क्यों इसे लटका
कर रखा हुआ है अपने कमरे में?
नाइल्सबोर ने कहा, लेकिन जिस पुरोहित ने मुझे यह दिया है, उसने कहा है
कि श्रद्धा हो या न हो, विश्वास हो या न हो, मगर मंगल तो होता ही है। लटकाओ।
मुझे श्रद्धा नहीं है। मगर उसने कहा--श्रद्धा हो या न हो, लाभ तो होगा ही। सो मैंने सोचा हर्ज क्या है लटकाने में! अपना बिगड़ता क्या है लटकाने में। बड़े से बड़े वैज्ञानिक के भीतर भी वही मूढ़ता, वही भय--मंगल हो जाए, शुभ
हो जाए! कुछ भी बेवकूफी करवाना आसान है आदमी से, मगर पहले उसे डराओ, घबड़ाओ।
और सबसे आसान तरकीबें दो हैं और दोनों का धर्मों ने उपयोग किया है। एक तो है भोजन, क्योंकि आदमी बिना भोजन के जी नहीं सकता। इसलिए कुछ धर्मों ने भोजन पर हमला बोल दिया है--यह मत खाओ, वह मत खाओ। उन्होंने इतने नियम बना दिए हैं कि आदमी का जीना मुश्किल कर दिया है।
और स्वभावतः आदमी स्वादिष्ट भोजन करना चाहेगा। करेगा तो अपराध-भाव पैदा होता है। नहीं करेगा तो तड़फेगा, परेशान होगा, हैरान होगा, मुश्किल में पड़ेगा। अगर नियम मान कर चले तो मुसीबत। अगर तुम ठीक-ठीक सारे नियम मान कर चलो तो जिंदा रहना मुश्किल। शायद ही कोई चीज बचती है जो तुम खा सको। क्या खाओगे?
सिर्फ पके हुए फल, जो अपने आप गिरते हैं वृक्ष से, वे खाए जा सकते हैं।
वे भी तभी तक, जब तक बहुत मीठे न हो गए हों। क्योंकि जैसे ही बहुत मीठे हो जाते हैं, उनमें कीटाणु पैदा हो जाते हैं। उनकी मिठास कीटाणु ले आती है। तो हिंसा हो जाएगी।
अब यह समझना। जब तक वे बहुत न पक जाएं, अपने से गिरेंगे नहीं। बहुत पक जाएंगे, उनमें कीटाणु पैदा हो जाएंगे। असल में पकने की जो प्रक्रिया है वह बैक्टीरिया से ही होती है, कीटाणुओं से ही होती है। वह जो मिठास है, वह भी बैक्टीरिया की ही प्रक्रिया है, वह भी कीटाणुओं के द्वारा ही पैदा होती है। तो जब फल पूरा पकेगा, वह कीटाणुओं से भर जाएगा, तभी वह अपने आप गिरेगा। अगर फल कच्चा है, तो उसमें कीटाणु अभी कम हैं, इसलिए पका नहीं है। जब तक कच्चा है, अगर तुम तोड़ते हो तो वृक्ष को चोट पहुंचती है। और वृक्ष में जीवन है। फल तोड़ कर खा सकते नहीं। फल तोड़ कर खाना भी पाप है।
दूध पीते हो, वह भी पाप है। तुम शायद चौंकोगे, क्योंकि भारत के धर्म ऐसा नहीं मानते। लेकिन क्वेकर हैं ईसाइयों में, वे दूध पीने को पाप मानते हैं। और उनकी बात में भी बल है। वे कहते हैं कि दूध जो है वह एक तरह से मां का रक्त ही है, खून ही है। आखिर अंडा जैसे शरीर से आता है वैसे ही खून भी शरीर से आता है। इसीलिए तो दूध पीने से तुम्हारा खून बढ़ जाता है, चेहरे पर सुर्खी आ जाती है। खून बढ़ाने के लिए दूध से बढ़िया और कोई चीज नहीं है।
तो दूध पीना मत।
एक क्वेकर मेरे घर में मेहमान थे। मैंने उनसे सुबह पूछा, आप चाय लेंगे, काफी लेंगे, दूध लेंगे--क्या लेंगे?
वे ऐसे चौंके जैसे मैंने उनसे कोई बहुत गहन अपराध करने के लिए निवेदन किया हो। उन्होंने कहा, क्या कहते हैं आप? मैं और काफी, चाय और दूध? कभी नहीं! क्या आप दूध पीते हैं?
मैंने कहा कि आप तो इतने गर्म हुए जा रहे हैं, मामला क्या है?
उन्होंने कहा, मामला यह है कि दूध पीना तो पाप है। कोई क्वेकर दूध नहीं पी सकता।
हालांकि सब क्वेकर दूध पीते हैं, मगर तब पाप का भाव पैदा होता है, तब अपराध का भाव पैदा होता है।
काफी पी नहीं सकते, चाय पी नहीं सकते, उसमें दूध डालना पड़ेगा। और अगर दूध न भी डालो तो भी चाय में निकोटिन है। निकोटिन की वजह से चाय पी नहीं सकते। निकोटिन यानी नशा। काफी, कोको में भी नशा है। वही निकोटिन जो सिगरेट में होता है।

क्या खाओगे? क्या पीओगे? कैसे जीओगे? जीना असंभव कर दिया उन्होंने। अगर उनकी तुम बात मान कर चलो तो सिवाय भूखे मरने के कोई उपाय नहीं है। और स्वभावतः, भूखे मरोगे तो दिन-रात भोजन की सोचोगे।
तुम पूछ सकते हो, जो लोग पर्युषण में--जैनियों से--कि दस दिन का व्रत-उपवास करते हैं, दस दिन क्या सोचते हैं? आत्मा-परमात्मा की याद आती है? ऐसे कभी-कभी आ भी जाती हो आत्मा-परमात्मा की याद, मगर उन दस दिनों में कभी नहीं आती। उन दस दिनों में तो बस पकवानों की याद आती है। कहां का परमात्मा! एक से एक अदभुत चीजें दिखाई पड़ती हैं--रसगुल्ले तैरते हुए दिखाई मालूम होते हैं! पकौड़े उड़ रहे हैं, पंख लग गए हैं पकौड़ों को! रात क्या-क्या कल्पनाएं और सपने दिखाई पड़ते हैं!
और उससे भी पाप का भाव पैदा होता है, अपराध का भाव कि मैं कैसा पापी हूं! और वे मुनि महाराज हैं जो निरंतर गाली दे रहे हैं कि अपनी जीभ पर वश पाओ, काबू पाओ। तुम्हारी जीभ ही तुम्हें नर्क ले जाएगी। जिह्वा ही पाप का कारण है।
ध्यान रखना, एक तो भोजन का उपयोग किया है आदमी को पापी करार देने में
और दूसरा कामवासना का। और दोनों ही संयुक्त हैं। जैसे बिना भोजन के व्यक्ति नहीं जी सकता, वैसे ही बिना कामवासना के समूह नहीं जी सकता। अगर तुम्हारे मां-बाप कामवासना से भरे न होते तो तुम होते नहीं दुनिया में। अगर महावीर के मां-बाप कामवासना से भरे न होते तो महावीर न होते दुनिया में। अगर बुद्ध के मां-बाप कामवासना से न भरे होते तो बुद्ध न होते दुनिया में।
तुम जरा सोचो तो कि ये दस-पांच लोग अगर ब्रह्मचारी होते तो यह जमीन की क्या गति होती! महावीर, बुद्ध, जीसस, कृष्ण, जरथुस्त्र, लाओत्सु, कबीर, नानक--इनके मां-बाप अगर ब्रह्मचारी होते तो क्या हालत होती जमीन की! यहां रेगिस्तान ही रेगिस्तान होता। यहां आदमियत नाम को न मिलती। वह तो भला हो इनके मां-बापों का कि उन्होंने बकवास नहीं सुनी पंडित-पुरोहितों की। उनको ब्रह्मचर्य का भूत सवार नहीं हुआ। मगर भीतर कहीं न कहीं पाप का दंश तो रहा होगा, कि हम यह क्या कर रहे हैं--पाप कर रहे हैं!
समाज जीता है कामवासना से। वह समाज का भोजन है। इसलिए कामवासना और भोजन दोनों जुड़े हैं। अगर तुम्हें भोजन न दिया जाए तो तुम्हारी कामवासना भी मर जाएगी। इक्कीस दिन के उपवास के बाद कामवासना क्षीण हो जाती है। इसलिए जो लोग लंबा उपवास करते हैं, वे इस भ्रांति में पड़ जाते हैं कि उनकी कामवासना समाप्त हो गई। समाप्त वगैरह कुछ नहीं हुई, सिर्फ सूख गई। फिर से भोजन दो, फिर सजग हो जाएगी। कुछ बदला नहीं है।
जैन मुनियों को यह भ्रांति होती है कि कामवासना को उन्होंने विजय कर लिया है। क्योंकि भोजन इतना कम करते हैं कि वह उनकी जरूरतें ही न्यूनतम शरीर की पूरी नहीं कर पाता। कामवासना तो पैदा होती है जब तुम्हारे भीतर इतना भोजन जाए कि तुम्हारी जरूरतों से ज्यादा ऊर्जा पैदा हो--तब कामवासना पैदा होती है। कामवासना तो यूं समझो कि तुम्हारे जीवन का फूल है। जिस वृक्ष को ऊर्जा ही नहीं मिल रही, उसमें क्या खाक फूल लगेंगे! उसमें पत्ते ही नहीं लगते, फूल तो बहुत दूर। वह तो सूखा डंठल रह जाएगा।
सदियों तक मनुष्य को पापी करार दिया गया है। और पापी करार देने का परिणाम यह हुआ है कि प्रत्येक व्यक्ति बहुत गहरे में उन्हीं बातों में उत्सुक हो गया है, आतुर हो गया है, जिन बातों का निषेध किया गया है। निषेध का एक गुण होता हैः इनकार करो--रस पैदा होता है। जिस बात का इनकार करो, उसी में रस पैदा हो जाता है।
इसलिए कृष्ण वेदांत, तुम कहते होः "सिंहस्थ मेले में उस स्थान पर काफी भीड़ होती थी।"
होगी ही। भारत है यह। दुनिया में कोई और देश होता, तो इन नागा साधुओं
को पकड़ कर पागलखाने में रख दिया जाता। इनका इलाज किया जाता। इनको बिजली के शॉक दिए जाते। ये होश में नहीं हैं। ये क्या कर रहे हैं! ये विक्षिप्त हैं। मगर यहां ये महात्मा हैं! यहां पागल परमहंस समझे जाते हैं! यहां विक्षिप्त मुक्त समझे जाते हैं! और भीड़ तो वहां सबसे ज्यादा होगी, क्योंकि ऐसा मौका

क्यों चूकना! नग्न आदमी को देखने की आकांक्षा तो बड़ी प्रबल है। और फिर इस तरह के बेहूदे प्रदर्शन...
तुम्हारा प्रश्न ठीक है कि इस तरह के बेहूदे प्रदर्शनों को देखने लिए भीड़ इकट्ठी होती है और इसका कोई विरोध नहीं है।
विरोध क्यों होगा? यह सदियों पुरानी परंपरा है। यह परंपरावादी देश है। यह रूढ़िवादी देश है। यहां कोई भी मूर्खता पुरानी होनी चाहिए, बस फिर ठीक है। जितनी पुरानी हो उतनी ज्यादा ठीक है।
तुम पूछ रहे हो कि आपके आश्रम में ऐसा कोई कृत्य नहीं होता, फिर भी लोग
आप पर और आपके आश्रम पर नाराज हैं।
उनके नाराज होने का कारण ही यही है कि मैं रूढ़िवादी नहीं हूं, परंपरावादी नहीं हूं। मैं रूढ़ि-विरोधी हूं, परंपरा-विरोधी हूं। मैं अतीत-विरोधी हूं। मैं राष्ट्र-विरोधी हूं, जाति-विरोधी हूं, वर्ण-विरोधी हूं। मैं चाहता हूं कि तुम्हें सारी सीमाओं से मुक्त कर दूं, तुम पर कोई सीमा न रह जाए। तुम सिर्फ चैतन्य हो, इसका बोध पर्याप्त है। तुम साक्षी मात्र हो। तुम देह भी नहीं हो तो भारतीय कैसे हो सकते हो? हिंदू कैसे हो सकते हो? मुसलमान कैसे हो सकते हो? ये सब तो मन के खेल हैं, मन के जाल हैं।
तो मुझसे तो हिंदू भी नाराज होगा, मुसलमान भी नाराज होगा, ईसाई भी नाराज होगा। क्योंकि वे सभी परंपराओं में जी रहे हैं। उन सबका जीवन अतीत में है। और मैं चाहता हूं कि तुम अतीत से बिल्कुल मुक्त हो जाओ, तो ही तुम्हारे जीवन में वर्तमान से संस्पर्श होगा। और वर्तमान ही परमात्मा है। और वर्तमान से जुड़ जाओ, तो परमात्मा का तुम्हें स्वाद मिले।
इस तरह की मूर्खतापूर्ण चीजें, जैसे लिंग से बांध कर जीप गाड़ी को खींचना, बड़ी-बड़ी चट्टानों को उठाना--यह सदियों से चलता रहा है। मंदिर इसके अड्डे रहे हैं। आखिर खजुराहो, कोणार्क, पुरी के मंदिरों में सब तरह के लैंगिक प्रदर्शन हैं। उनकी दीवालों पर सब तरह की अश्लील से अश्लील मूर्तियां खोदी गई हैं। यूं भारतीय फिल्म में भी चुंबन पर बाधा डालेंगे, आलिंगन पर बाधा डालेंगे। चुंबन भी लो तो छह इंच की दूरी होनी चाहिए। और यही भारतीय मंदिरों में जाएंगे और इनको कोई अड़चन नहीं होगी।
मंदिर में कोई भी मूर्खता चलती हो, चूंकि परंपरा उसके साथ है, इसलिए कोई अड़चन नहीं है, कोई बाधा नहीं है, कोई विरोध नहीं है। तुम भूल ही गए हो, तुम अपने छोटे-छोटे बच्चों को भी ले जाते हो, क्योंकि साधु जो भी कर रहे हैं वह ठीक ही कर रहे हैं। यहां ठीक करने वाला साधु नहीं होता; यहां जो साधु है, वह जो करे वही ठीक है!
मैं साधु नहीं हूं। मैं किसी परंपरा का न ऋषि हूं, न मुनि हूं, न महात्मा हूं। मैं बगावती हूं। मेरा कौन साथ दे? मेरा विरोध बिल्कुल स्वाभाविक है। मैं उसे अंगीकार करता हूं। मैं स्वागत भी करता हूं। चलो कुछ चहल-पहल तो है। चलो कुछ आंधी तो उठी। चलो सदियों से जड़ बुद्धि में कुछ हलचल तो मची, कुछ तरंगें तो उठीं, कुछ जीवन का तो बोध हुआ।
तुम जाते हो शंकर जी के मंदिर में, वहां शिवलिंग है। तुम्हें कभी संकोच नहीं लगता, शर्म नहीं लगती, अपने बच्चों को भी ले जाओगे, अपनी लड़कियों को भी ले जाओगे! हालांकि फिल्म देखने जाओगे तो पहले पता कर लोगे कि फिल्म वयस्कों के लिए है कि बच्चों के लिए भी है। फिल्मों में लिखा होता हैः सिर्फ वयस्कों के लिए। तब तुम अपने बच्चों को नहीं ले जाते, क्योंकि फिल्म में कुछ दृश्य होंगे स्त्री-पुरुषों के प्रेम के और वे तुम अपने बच्चों को नहीं दिखाना चाहते।
लेकिन शंकर जी के मंदिर में क्या है? जिसको तुम शिवलिंग कहते हो, वह जननेंद्रिय का प्रतीक है। और सिर्फ पुरुष की जननेंद्रिय नहीं है वहां, उसी शिवलिंग के नीचे स्त्री की जननेंद्रिय भी है। पुरुष और स्त्री की जननेंद्रिय संभोग की अवस्था में हैं। मगर हम भूल ही गए हैं, क्योंकि परंपरागत है, स्वीकृत है, तो ठीक है।
जो भी परंपरागत है, वह ठीक है! फिर उसमें कोई एतराज नहीं उठा सकता। नहीं तो अभद्र है, बेहूदा है। चुंबन में क्या खराबी हो सकती है? जब शुद्ध जननेंद्रियों के प्रतीक मंदिरों में रखे जा सकते हैं, तो चुंबन में क्या

खराबी हो सकती है! दो स्त्री-पुरुषों के आलिंगन में क्या विरोध हो सकता है!
और बच्चों से कब तक छिपाओगे? और छिपाने की जरूरत क्या है? जो सत्य है, सत्य है। बच्चे आज नहीं कल जानेंगे। तुमसे नहीं जानेंगे तो गलत रास्तों से जानेंगे, गलत स्रोतों से जानेंगे। और बेहतर यह है कि ठीक स्रोतों से जानें।
मैं इस पक्ष में हूं कि फिल्मों में, जो-जो सत्य है, वैसा ही सत्य होना चाहिए, ताकि बच्चे सत्य से पहले से ही परिचित हों। नहीं तो एक दिन अड़चन खड़ी होती है--भारी अड़चन खड़ी होती है। बहुत दिनों तक हम बच्चों को अंधकार में रखते हैं, फिर एक दिन उनका विवाह कर देते हैं! फिर विवाहित युवक और युवती दोनों अपने को अपराधी अनुभव करते हैं। क्योंकि अब तक इस युवती को कहा गया था कि किसी पुरुष को छूना भी पाप है। अगर बीस वर्ष तक किसी युवती को कहा गया है कि किसी पुरुष को छूना भी पाप है, तो आज अचानक इस पुरुष के साथ सो जाना कैसे पुण्य हो सकता है! सो जाए भला, लेकिन प्राण सकुचाएंगे। भीतर पाप का बोध होगा।
इसलिए मेरे अनुभव में... हजारों स्त्रियों ने मुझे कहा है कि हमारे पति हमें पाप में घसीटते हैं। पाप में घसीटते हैं, प्रेम में नहीं! उसका नाम है पाप।
और उनका भी कोई कसूर नहीं है; उनको यही सिखाया गया था। बीस साल का संस्कार ऐसे छूट नहीं जा सकता। उनके प्राण पूरे के पूरे विषाक्त हो गए हैं। और फिर ऐसी स्त्रियां कैसे पति को पूरा का पूरा प्रेम दे सकती हैं? असंभव। वे मुर्दे की तरह पड़ी रहती हैं। फिर यह पति को इनसे कुछ रस नहीं मिलता। फिर यह दूसरी स्त्रियों में उत्सुक होता है। तब ईर्ष्या जगती है, वैमनस्य जगता है, क्रोध जगता है। और यही पुरुष फिर वेश्याओं को जन्म देता है। क्योंकि इसकी पत्नी तो बिल्कुल मुर्दे की तरह पड़ी रहती है, बिल्कुल ठंडी--उसमें जैसे कोई गर्मी नहीं, कोई जीवन नहीं। अगर वह गर्मी और जीवन बताए, तो यह भी एतराज उठाएगा कि यह अच्छा लक्षण नहीं है। अच्छी स्त्रियां रस नहीं लेतीं इन बातों में। ये तो बुरी स्त्रियां इन बातों में रस लेती हैं।
यह बड़ी अजीब हालत हो गई। बुरी स्त्रियां रस लेती हैं बुरी बातों में, मगर वे ही जीवंत मालूम होती हैं। और अच्छी स्त्रियां तो इस तरह की बातों में रस लेती नहीं!
एक पुलिसवाले ने, एक स्त्री डूब गई सागर में, उसको खींच कर निकाला। सांझ हो रही थी, उसे तट पर लिटाया, बहुत कोशिश की उसे जिलाने की, मगर वह मर ही चुकी थी, तो बेचारा उसे वहीं छोड़ कर भागा पुलिस स्टेशन खबर करने। जब लौट कर आया तो देखा कि एक आदमी उससे संभोग कर रहा है। उसने उस आदमी को हिलाया और कहा, अरे मूरख, उठ, यह स्त्री मुर्दा है! उसने कहा, मुझे क्या मालूम, मैं समझा कि भारतीय है।
भारतीय स्त्री को बिल्कुल मुर्दा-भाव से पड़े रहना चाहिए, हिलना-डुलना
भी नहीं चाहिए! हिली-डुली तो भी उसका मतलब हुआ कि वह कुछ रस ले रही है। उसको तो बिल्कुल आंख बंद करके पड़े रहना चाहिए, आंख भी नहीं खोलनी चाहिए। आंख खोली, मतलब यह कि वह रस ले रही है। आंख खोलना, मतलब खतरनाक है। प्रकाश भी बुझा देना चाहिए। तो रात के अंधेरे में, चुपचाप, बिना बोले... महाचोरी का कार्य हो रहा है!
और इसी महाचोरी से फिर बच्चे पैदा होंगे। वे बच्चे भी कैसे होंगे! उन बच्चों में भी क्या सौंदर्य होगा! उन बच्चों के पास भी क्या आत्मा होगी! मगर तुम शास्त्रों में एतराज नहीं उठाओगे। तुम्हारे पुराण बेहूदी कहानियों से भरे हैं। तुम्हारे मंदिर बेहूदे चित्रों से भरे हैं। ऐसी बेहूदी कहानियां कि तुम सोच कर भी चकित होओ, मगर शास्त्रों में हैं, तो सुंदर हैं। और मैं चूंकि उनका विरोध करता हूं, इसलिए स्वभावतः कौन मेरे पक्ष में खड़ा होगा!
एक मित्र ने मुझे यह किसी पुराण से कहानी भेजी है। मुझे पता नहीं किस पुराण में है। जरूर होगी किसी पुराण में।

एक बार पार्वती शिव से रूठ कर अपने मायके चली गईं और बहुत दिनों तक वापस नहीं लौटीं। शिवजी महाराज भी परेशान हो गए। उन्होंने नंदी से कहा, यार नंदी, मेरी प्रेम करने की बड़ी इच्छा हो रही है और पार्वती भी हैं कि अभी तक लौटी नहीं। ऐसा नहीं हो सकता कि भैया मैं तुझसे प्यार कर लूं? इस पर नंदी ने कहा, शिवजी महाराज, यह भी कोई बात है! क्या मैं आपके प्यार के लायक हूं?
बहुत मनाने पर नंदी इस बात पर मान गया कि बाद में मैं भी फिर आपसे प्यार करूंगा। शिवजी ने नंदी बाबा से जी भर कर प्यार किया और जब नंदी बाबा की बारी प्यार करने की आई तो उठाया अपना डंड-कमंडल और भागे। और बोले, अरे मूरख, तू बैल होकर और मुझसे प्यार करेगा? उल्लू के पट्ठे, अपनी स्थिति समझ! इस पर नंदी बाबा को भी बहुत गुस्सा आया और वे भी पीछे-पीछे भागे। पर शिवजी एक मंदिर में घुस गए और अंदर बैठ गए--नंगे ही। इसलिए शिव की प्रतिमा नग्न है। वह जो शिवलिंग है, वह नग्न प्रतिमा का प्रतीक है। इस पर नंदी मंदिर के सामने बैठ गया और बोला, शिवजी महाराज, आप जब बाहर निकलोगे तब आपसे प्यार करूंगा, छोडूंगा नहीं। और तब से नंदी महाराज वहीं बैठे हुए हैं। वे कहते हैं, कभी तो निकलोगे न!
मगर यह तो कुछ भी नहीं, शास्त्रों में ऐसी कहानियां हैं कि तुम चकित होओगे। मैंने पढ़ा है, एक पुराण कहता है कि ब्रह्मा और विष्णु किसी गहन समस्या में विवादग्रस्त हो गए, हल न होता था, तो शिवजी के पास गए। लेकिन जब वे पहुंचे तो जैसा कि द्वारपालों की अक्सर अवस्था होती है, जैसे संत महाराज हमारे द्वारपाल हैं, नंदी बाबा समझो, अक्सर सोए हुए मिलेंगे। गणेश जी द्वारपाल थे। अब गणेश जी, ज्यादा खा-पी गए होंगे, तोंद पर हाथ फेरते- फेरते सो गए होंगे। सूंड़ थोड़ी देर हिलाते रहे होंगे, फिर झपकी आ गई होगी। तो वे झपकी मार रहे थे।
ब्रह्मा और विष्णु ने भी सोचा कि क्यों बेचारों को जगाना, सोने दो। वे दोनों चुपचाप अंदर चले गए। शिवजी पार्वती से प्रेम करने में संलग्न थे। दोनों सज्जन शुद्ध भारतीय रहे--हटे ही नहीं। नागा बाबाओं का प्रदर्शन हो रहा था, वे हटते भी तो कैसे हटते! कोई और होता, कोई अंग्रेज होता, तो फौरन क्षमा मांग कर बाहर हो जाता कि माफ करना। लेकिन वे तो जमे रहे। देखते ही रहे।
और शिवजी को तो तुम जानते ही हो, ज्यादा भांग चढ़ा गए होंगे, उनको होश
ही नहीं था कि कौन आया, कौन गया, क्या हो रहा है! उनकी प्रेम-क्रीड़ा चलती ही रही--छह घंटे! और ये दोनों सज्जन भी गजब के थे--खड़े ही रहे। अरे जब लिंग में बांध कर जीप खींची जा रही हो, तो ब्रह्मा-विष्णु जाएं तो जाएं कहां। वहीं रुके रहे। मगर अपमानजनक भी अनुभव किया कि हम खड़े हैं, और इन लोगों को यह भी लापरवाही है कि इसकी भी फिक्र नहीं कर रहे हैं। यह तो फिक्र नहीं की कि हमको हट जाना चाहिए। वह भारतीय ढंग नहीं है। यह फिक्र की कि यह किस तरह का व्यवहार है? दुर्व्यवहार है! कि हम खड़े हैं, छह घंटे हो गए, और शिवजी को अंदाज ही नहीं है और ये अपने कार्य में संलग्न हैं।
जब शिवजी को होश आया थोड़ा, देखा कि कोई दो सज्जन खड़े हैं, उठे। मगर वे बहुत क्रुद्ध हो गए थे कि हमसे बैठने को नहीं कहा, छह घंटे से हम खड़े हैं! देखते हो मजा! एक तो खड़े ही नहीं होना ऐसी जगह... ।
लेकिन भारत में प्राइवेसी को तो कोई अंगीकार करता ही नहीं, मानता ही नहीं। वह तो हमारा लक्षण नहीं है। वह हमारी संस्कृति का हिस्सा नहीं है। मैं उदयपुर में सोया था एक दोपहर। मुझे कुछ ऊपर खपड़ों पर खड़र-बड़र की आवाज आई। तो मैंने ऊपर आंख खोल कर देखा--एक आदमी खपड़ा उघाड़ कर ऊपर से नीचे झांक रहा है। और कोई गैर पढ़ा-लिखा आदमी नहीं, हाईकोर्ट का वकील! मैंने पूछा कि भैया क्या कर रहे हो? कोई वर्षा वगैरह आ रही है, खपड़े ठीक कर रहे हो? उसने कहा कि जी नहीं, बस आपके दर्शन को चला आया।
मैंने कहा, और भी आएंगे इस तरह दर्शन को लोग कि तुम्हीं आए हो? यह कोई वक्त है दर्शन का कि मैं सोया हूं दोपहर... !
नहीं, उन्होंने कहा कि सतपुरुष को उसकी सभी अवस्थाओं में देखना चाहिए। आप कैसे सोते हैं--यह देखने में मैं उत्सुक था।

तो मैंने कहा, देखो। मैं अपना सो गया। मगर वे भी ब्रह्मा-विष्णु-महेश
से कुछ पीछे नहीं थे। जब दो घंटे बाद मैं उठा, वे बैठे थे अपने छप्पर पर।
मैंने कहा, भैया, अब उतर भी आओ, गिर-गिरा पड़ो, कुछ हो जाए।
ब्रह्मा-विष्णु हटे तो नहीं, मगर नाराज हुए कि हमारे साथ सम्मानजनक व्यवहार नहीं हुआ है। हम अभिशाप देते हैं कि तुम्हारी सदा लैंगिक प्रतीकों की तरह पूजा की जाएगी।
इसीलिए मंदिरों में शंकर की पूरी प्रतिमा नहीं होती, सिर्फ लैंगिक प्रतीक होता है। वह उस अभिशाप की वजह से। यह शिवलिंग के पीछे जो कथा है, वह यह है।
इन शास्त्रों को मैं कचरा कहता हूं। ये जला देने योग्य हैं। इनसे हमारा छुटकारा हो जाए तो अच्छा।
वेदांत तुम पूछते हो कि लोग आप पर और आपके आश्रम पर नाराज क्यों हैं? इसलिए नाराज हैं। धर्म का मैं इन सारी बातों से कोई संबंध नहीं देखता। धर्म का संबंध तो सिर्फ एक चीज से है--वह ध्यान है। और धर्म की एक ही खोज है, एक ही अन्वेषण है--वह समाधि है। ध्यान समाधि तक कैसे पहुंचे, इसका विज्ञान धर्म है। शेष सब बकवास है। शेष सबसे छुटकारा हो जाना चाहिए।
मगर उस शेष सबके जंगल में ही असली चीज खो गई है। मैं तो उतने भर को बचा लेना चाहता हूं, जितना मूल्यवान है--वस्तुतः मूल्यवान है, और बाकी कूड़ा- करकट को बिल्कुल आग लगा देना चाहता हूं। इसलिए लोग मुझसे नाराज हैं। उनका नाराज होना स्वाभाविक है।
मैं तुम्हारे भोजन पर जबरदस्ती नहीं करना चाहता। हां, मैं जरूर चाहता हूं कि तुम्हारे जीवन में सौंदर्य का एक बोध हो। स्वाद का भी एक बोध हो। क्योंकि परमात्मा ने तुम्हें जो भी इंद्रियां दी हैं, प्रत्येक इंद्रिय को निखार देना चाहिए। मैं चाहूंगा कि तुम्हारी आंखें सुंदरतम को देखें।
तुम्हारे कान, जो मधुरतम है, उसे सुनें। तुम्हारे स्वाद की क्षमता, जो अत्यंत स्वादिष्ट है, उससे परिचित हो। तुम्हारा जीवन संवेदनशील हो।
मैं संवेदना-विरोधी नहीं हूं, क्योंकि संवेदना-विरोधी जो हुआ उसका तो जीवन धीरे-धीरे जड़ हो जाता है। वह जीवित रह नहीं जाता, मुर्दा हो जाता है। मुर्दा और जिंदा आदमी में फर्क क्या है? यही तो फर्क है कि मुर्दे की कोई संवेदना नहीं होती। उसके पास से सुंदर स्त्री गुजर जाए, तो भी वह जरा आंख उठा कर नहीं देखेगा।
चंदूलाल मारवाड़ी मरे। सब तो रो रहे हैं, मगर उनकी पत्नी नहीं रो रही है। लोग समझे कि सदमे में नहीं रो रही है। पति के मरने का सदमा भारी है। और तभी एक भिखारी आया, और जोर-जोर से अपने डब्बे में पैसे पड़े थे उनको बजा-बजा कर चंदूलाल के पास खड़ा हो गया, और कहने लगा, मिल जाए सेठ जी कुछ! अंधा भिखारी। जब चंदूलाल कुछ नहीं बोले, तो एकदम पत्नी दहाड़ मार कर रोने लगी। लोगों ने पूछा, अभी तक तू चुप थी, एकदम से तुझे क्या हो गया?
उसने कहा, जब वे भिखारी को देख कर भी नहीं उठे और भागे नहीं, तो मैं समझ
गई कि मर गए। अब तक मुझे पक्का भरोसा नहीं था। डाक्टर भूल कर सकते हैं, हो सकता है बेहोश ही हों। कई दफे ऐसा हो गया है। पहले भी ऐसा हो चुका है दो दफे। चंदूलाल मरे, मगर मरे नहीं थे, सिर्फ डाक्टरों की गलती थी। तो मैं सोच रही थी कि पता नहीं फिर गलती न हो। लेकिन जब भिखारी ने अपना डब्बा भी बजाया और वे कुछ नहीं बोले, और भागे नहीं, और उन्होंने उठ कर कहा नहीं कि हट, आगे बढ़! मैं पक्का मानती हूं कि अब वे मर चुके। यह सबूत है उनकी मृत्यु का। मुर्दा आदमी और जिंदा आदमी में फर्क क्या है?
मैं धर्म को जीवन की कला कहता हूं। इसलिए मैं नहीं चाहूंगा कि तुम सूरदास की तरह अपनी आंखें फोड़ लो। मैं चाहूंगा कि तुम्हारी आंखें उज्ज्वल हों। मैं चाहूंगा कि तुम्हारी आंखें दूर-दृष्टि से भरी हों। मैं चाहूंगा कि तुम्हारी आंखें सौंदर्य की परख को सीखें। स्थूल से मुक्त हों, सूक्ष्म को पहचानें।
एक भारतीय पेरिस गया हुआ था। तो वह लुव्र म्यूजियम को देखने गया, जो
कि दुनिया का सबसे प्रसिद्ध म्यूजियम है, जहां श्रेष्ठतम कलाकृतियां संगृहीत की जाती हैं। वह एक चित्र के पास खड़ा हो गया और एकदम उसके मुंह में लार टपकने लगी।

संयोग की बात थी कि चित्र का बनाने वाला चित्रकार भी पास से गुजर रहा था। उसने इस आदमी को इतनी देर तक खड़े देखा तो सोचा कि है कोई पारखी, दूर देश से आया है। तो वह भी उत्सुक हो गया। उसने पूछा कि आपको चित्र बहुत पसंद पड़ा?
उसने कहा कि बहुत पसंद पड़ा। एकदम मेरे मुंह में लार आ गई।
चित्रकार भी थोड़ा हैरान हुआ कि मुंह में लार आ गई! क्या बात कर रहे हो? उसने कहा कि जिसने भी बनाई हैं, क्या जलेबियां बनाई हैं!
उस चित्रकार ने कहा, धत तेरे की! ये जलेबियां नहीं हैं, ये जीवन की जो उलझी समस्याएं हैं, उनका प्रतीकात्मक चित्र है। यह सिंबालिक आर्ट है। अरे मूरख, तू इनको जलेबियां कह रहा है!
उसने कहा, भई, बिल्कुल जलेबियां मालूम पड़ती हैं।
एक तो स्थूल--कि तुम्हें सुंदरतम चित्र भी दिखाया जाए, तो तुम्हें वही दिखाई पड़े, जो दिखाई पड़ सकता है। और एक--तुम्हारी इंद्रियां सूक्ष्मतर होने लगें।
सदियों से धर्म ने तुम्हें समझाया हैः अपनी इंद्रियों को जड़ करो। इसलिए कांटों पर कोई लेट जाए तो उसको हम सम्मान देते हैं। मैं नहीं दूंगा। कांटों पर लेटने का एक ही अर्थ हुआ कि उसकी जो स्पर्श की क्षमता थी, जड़ हो गई। उसने अपने शरीर को मार डाला। उसकी पीठ मुर्दा हो गई, असंवेदनशील हो गई। उतना वह मर गया। मैं उसको सम्मान नहीं दूंगा। मेरे मन में उसके लिए कोई सम्मान नहीं है। वह कोई महात्मा नहीं है, सिर्फ मूढ़ है।
जो आदमी अपनी आंख फोड़ ले, इस कारण कि आंखों के कारण वासना जगती है, वह निपट गंवार है। क्योंकि आंखों के कारण वासना नहीं जगती। आंखों से वासना का क्या लेना-देना? वासना तो मन की चीज है। अंधे के भीतर भी वासना होती है। सच पूछो तो आंख वाले से ज्यादा होती है--कुंठित होती है, दबी होती है, भीतर ही भीतर भनभनाती है; बाहर निकलने का रास्ता भी नहीं होता। नहीं तो अंधे तो धन्यभागी हैं फिर। वे जन्म से ही सूरदास। इसलिए तो हम अंधों को सूरदास कहते हैं। धन्य है उनका भाग्य।
परमात्मा ने बड़ी गलती की जो तुम्हें आंखें दीं। तुम्हें पीठ देनी थी कछुए जैसी कि तुम सब कांटों की सेज पर महात्मा बन कर लेटते। और आंखें तुम्हें देनी नहीं थीं, ताकि तुम जन्म से ही सूरदास होते। कान भी तुम्हें नहीं देने थे, क्योंकि पता नहीं कोई मधुर स्वर कान में पड़ जाए। तुम्हें बहरा बनाना था। असल में तुम्हें पैदा ही नहीं करना था। तुम्हारा पैदा होना ही गलती हो गई है।
हमारी धारणा ऐसी मालूम पड़ती है कि सबसे सौभाग्यशाली वे हैं जो पैदा
ही नहीं हुए। नंबर दो के सौभाग्यशाली वे हैं जो पैदा होते ही से मर गए। और नंबर तीन के सौभाग्यशाली वे हैं जो जिंदा तो हैं मगर नाममात्र को जिंदा हैं। उनके हम महात्मा कहते हैं।
मेरी दृष्टि बिल्कुल भिन्न है। इसलिए मेरी आलोचना होगी। लोग मुझ पर नाराज होंगे। मैं उनकी पूरी धार्मिक धारणा के खंडन के लिए खड़ा हूं। मैं कह रहा हूं कि उनकी पूरी धार्मिक धारणा गलत रही है। वे जीवन के पक्षपाती नहीं रहे, मृत्यु के पूजक रहे हैं। उन्होंने लाशें पूजी हैं, उन्होंने जीवन को सम्मान नहीं दिया। और मेरे लिए जीवन परमात्मा है। जीवन के अतिरिक्त और कोई परमात्मा नहीं है--न कहीं कोई ब्रह्मा हैं, न कोई विष्णु, न कोई महेश। जीवन परमात्मा है। और जीवन पक्षियों में गीत गा रहा है, वृक्षों में फूल बन कर खिला है, आदमियों में प्रेम बन कर जगा है, आंखों में ज्योति है, कानों में संगीत है, हृदय की धड़कन है। जीवन क्या नहीं है! जीवन समग्रता का नाम है।
मैं चाहता हूं कि तुम्हारा जीवन संवेदनशील हो, गहन संवेदना से भरा हो। और इसी सारी संवेदना के बीच में ध्यान की संवेदना पैदा होती है। ध्यान परम संवेदना का नाम है। जब तुम्हारी सारी इंद्रियां अपनी समग्रता में, अपनी परिपूर्णता में सक्रिय होती हैं, जागरूक होती हैं, तो उन्हीं सबके बीच में एक नया फूल खिलता है, जिसका तुम्हें अब तक कोई भी पता नहीं था। मगर उसी भूमिका में वह फूल खिलता है--वह है ध्यान।

ध्यान का अर्थ हैः जीवन के गहनतम की संवेदना। जीवन में जो रहस्यपूर्ण है, उसकी संवेदना। जो आंखों से नहीं दिखाई पड़ता, वह भी दिखाई पड़ने लगे--तो ध्यान। जो कान से नहीं सुनाई पड़ता, वह भी सुनाई पड़ने लगे--तो ध्यान। जो हाथ से नहीं छुआ जा सकता, उसका भी स्पर्श होने लगे--तो ध्यान। ध्यान तुम्हारी सारी संवेदनाओं का सार-निचोड़ है।
इसलिए मैं तुम्हें किसी भी चीज से वंचित नहीं करना चाहता। हां, प्रत्येक चीज को निखार देना चाहता हूं, धार देना चाहता हूं। मैं तुम्हारी प्रतिभा की तलवार पर धार रखना चाहता हूं। मैं तुम्हारे भीतर जो बुद्धिमत्ता है, उसको अंधविश्वासों में दबा कर मार नहीं डालना चाहता। मैं तुम्हें कोई अंधविश्वास नहीं देता। मैं कहता हूं, न मानना स्वर्ग में, न मानना नर्क में। क्योंकि न कोई नर्क है कहीं, न कोई स्वर्ग है कहीं। नर्क है तुम्हारा मूर्खतापूर्वक जीना; उससे तुम जो दुख पैदा कर लेते हो, वह नर्क है। स्वर्ग है तुम्हारा बोधपूर्वक जीना; उससे तुम जो आनंद पैदा कर लेते हो, वह स्वर्ग है। स्वर्ग और नर्क तुम्हारी अंतर-दशाएं हैं।
और परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है, जिसने जगत का निर्माण किया है। परमात्मा जीवन है। निर्माण करने वाला नहीं--जो है, जो सदा से है, कभी निर्मित नहीं हुआ और कभी विनष्ट भी नहीं होगा; जो शाश्वत है; रूप बदलते हैं जिसके, सागर में जैसे लहरें बदलती हैं।
और उस परमात्मा को जानने का जो उपाय है, वह है तुम्हारी संवेदनशीलता
का गहन होता जाना--गहन से गहन होता जाना, सूक्ष्म से सूक्ष्म होता जाना। इसलिए कृष्ण वेदांत, लोग मेरा विरोध करेंगे, मुझ पर नाराज होंगे। उनका कोई कसूर भी नहीं है। जब सदियों पुरानी धारणाओं पर चोट की जाती है, तो बेचैनी होती है, तिलमिलाहट होती है। यह स्वाभाविक है। मगर यह करना ही होगा, अन्यथा मनुष्य के लिए फिर कोई आशा नहीं है। तथाकथित धर्मों ने मनुष्य को मार डाला है।
मैं दमन-विरोधी हूं, रूपांतरण का पक्षपाती हूं। तुम जिसको दबाओगे, उसे दबाते ही रहना पड़ेगा बार-बार। और कितना ही दबाओ, वह उभर-उभर कर वापस आएगा। जो भी तुम्हें दिया है जीवन ने, उसमें कुछ भी पाप नहीं है और कुछ भी गलत नहीं है। जो भी तुम्हें दिया है जीवन ने, वह परम धन है--लेकिन ऐसा है जैसे अनगढ़ हीरे। उन पर चमक रखनी होगी, उनको पहलू देना होगा, उनको साफ करना होगा, तब वे कोहिनूर बनेंगे।
यह तो तुम्हें पता होगा कि कोहिनूर जब मिला, जिस व्यक्ति को मिला, उसके बच्चे उससे खेलते रहे तीन साल तक, यही समझ कर कि कोई चमकदार पत्थर है। वह तो संयोग की बात थी कि एक संन्यासी मेहमान हुआ, जो कि संन्यास लेने के पहले जौहरी रह चुका था। उसने बच्चों को उस पत्थर से खेलते देखा। उसने बच्चों के पिता को कहा कि तुम पागल तो नहीं हो! मैं जौहरी हूं--था, इससे बड़ा हीरा मैंने अपने जीवन में न देखा, न सुना। यह क्या कर रहे हो?
उन्होंने कहा, यह तो तीन साल से हमारे घर में है। मैं खेत पर था, वहां मुझे मिला। मेरे खेत में से एक छोटा सा झरना निकलता है, उसकी रेत में मुझे पड़ा मिल गया, मैंने सोचा बच्चे खेलेंगे। तो यह तो पड़ा रहता है यहीं आंगन में, बच्चे खेलते रहते हैं। कोई उठा भी ले जाता तीन साल में, मुझे क्या पता कि हीरा है।
तब उसे जौहरी के पास ले जाया गया।
आज कोहिनूर दुनिया का सबसे बड़ा हीरा है। करोड़ों उसकी कीमत है। उससे बड़ा कीमती कोई हीरा नहीं है। इंग्लैंड की महारानी के मुकुट में वह जड़ा है। जब मिला था तो उसका तीन गुना वजन था, अब सिर्फ एक तिहाई वजन है, लेकिन कीमत उसकी करोड़ों गुना ज्यादा है। क्या हुआ? दो तिहाई वजन कहां गया? दो तिहाई वजन छांटना पड़ा, काटना पड़ा। वह कट गया तो यह सौंदर्य प्रकट हुआ। वह छंट गया तो यह सौंदर्य प्रकट हुआ।
तुम्हारे भीतर जो भी है, अनगढ़ पत्थर है अभी। बहुत कुछ छांटना होगा, बहुत कुछ काटना होगा, धार रखनी होगी, चमकाना होगा। लेकिन हीरे हैं। सब हीरे हैं।
कामवासना ही तुम्हारे भीतर ब्रह्मचर्य बनती है। कामवासना ऐसा समझो
कि जैसे सिर के बल खड़ा हुआ आदमी, और ब्रह्मचर्य ऐसा समझो कि पैर के बल खड़ा

आदमी। बस इससे ज्यादा फर्क नहीं है। तुम्हारे भीतर जो क्रोध है, यही करुणा बनती है। जिसके भीतर क्रोध नहीं है, उसके भीतर करुणा पैदा नहीं हो सकती।
और तुम्हारे भीतर जो आसक्ति है, वही प्रेम में रूपांतरित होती है।
मैं रूपांतरण का पक्षपाती हूं। मैं रूपांतरण की कीमिया को ही धर्म कहता हूं। और तुम्हें सिखाया गया है दमन। और दमन से कभी रूपांतरण नहीं होता।
इसलिए सिंहस्थ मेले में नागा साधुओं को देखने के लिए भीड़ होगी। हर मेले में, हर कुंभ में नागा साधुओं को देखने के लिए जो भीड़ होती है, वह और कहीं नहीं होती। स्त्रियां, पुरुष, बच्चे, सब इकट्ठे होते हैं। क्योंकि यह मौका कौन चूके! धर्म के नाम पर यह अवसर चूकने जैसा नहीं है। और उन नागा साधुओं के चेहरे तुम देखो, तुम चकित हो जाओगे--साधुता जैसी कोई चीज दिखाई नहीं पड़ेगी।
मैं एक ही बार कुंभ गया हूं। सिर्फ देखने गया था कि किस-किस तरह की मूढ़ताएं वहां चलती हैं। उनमें सबसे बड़ी मूढ़ता नागा साधु हैं। और जो मैंने उनके चेहरे पर देखा, उसमें साधुता तो है ही नहीं; साधुता का नाममात्र नहीं है। जो हाव-भाव गुंडों के चेहरों पर होते हैं, वही हाव-भाव इन नागा साधुओं के चेहरों पर होते हैं। जरा भी भेद नहीं है। वही दुष्टता, वही दंभ, वही उपद्रव की वृत्ति। हर कुंभ के मेले में जो उपद्रव होते हैं, झगड़े होते हैं, खून-खराबे होते हैं, वे नागा साधुओं की वजह से हो जाते हैं।
मगर दमन ऐसी चीज है कि इसके ये परिणाम होने वाले हैं।
मैं भावनगर में था। भावनगर के टाउन हाल में बोल कर मैं निकला। बड़ी भीड़ थी। बाहर भी बहुत भीड़ थी। मुझे आयोजकों ने कहा कि मैं खुली हुई गाड़ी में खड़ा हो जाऊं, क्योंकि बाहर बहुत से, हजारों लोग थे जो हाल में अंदर प्रवेश नहीं पा सके, वे मुझे देख लें। तो मैं खुली गाड़ी में खड़ा हो गया। जो मैंने देखा, उसमें एक चीज मुझे कभी नहीं भूलती। जब भी खुली गाड़ी देखता हूं, वह चीज मुझे याद आ जाती है।
एक सर्वोदयी नेता, जिनको मैं जानता था, जो मुझसे मिलने आते थे, और जो बड़ी ब्रह्मज्ञान की बातें करते थे, बूढ़े आदमी, उम्र होगी कोई साठ के करीब, सब बाल सफेद... भीड़-भाड़ भारी थी, इतनी भीड़-भाड़ थी, इतनी कशमकश थी... मुझे अपनी आंखों पर भरोसा नहीं आया। मैंने अपनी आंखें मीड़ कर देखीं। मेरी आंखें बिल्कुल ठीक-ठाक हैं, चश्मे की मुझे कोई जरूरत नहीं है। जो मैंने देखा, मुझे भरोसा नहीं आया। वह सर्वोदयी नेता ने एक स्त्री के स्तन पकड़ रखे थे और वह स्त्री चिल्ला रही थी!
मैंने गाड़ी रुकवाई, घबड़ा कर उसने उस स्त्री के स्तन छोड़ दिए। नेताजी पीछे थे, स्त्री आगे थी। जवान स्त्री और उसको इस तरह लोंचे डाल रहा था वह बुड्ढा... ।
मैंने उससे पूछा कि ब्रह्मज्ञान का क्या हुआ? वेदांत का क्या हुआ? वह सिर झुका कर खड़ा हो गया। मैंने कहा कि जो मैं अभी भीतर बोल रहा था, ये उसके प्रमाण हैं।
फिर बहुत बार मैं भावनगर गया, फिर वे कभी नहीं दिखाई पड़े। फिर कभी उनका पता नहीं चला। जब भी जाता था, पूछता था कि भई, सर्वोदयी नेता कहां हैं? कुछ वेदांत, कुछ ब्रह्मचर्चा करने नहीं आना? तो लोगों ने बताया कि आप जब भावनगर आते हैं, वे भावनगर से चले जाते हैं। क्योंकि उनको पता है कि जब आप आते हैं, पहले उनको पूछते हैं कि वे कहां हैं। और जब से वह घटना घटी है, बड़ी मजबूरी हो गई उनकी, बड़ी मुश्किल हो गई--सबको पता चल गया। आपने गाड़ी रोक कर जो किया है काम, वह ठीक नहीं किया। उनकी भद्द हो गई। उनका सब सर्वोदयीपन खत्म हो गया है।
ये तुम्हारे तथाकथित साधु, तुम्हारे सर्वोदयी, तुम्हारे महात्मा, तुम्हारे सेवक! यह होने वाला है। इसमें मैं कुछ असंगति नहीं देखता। जिसको तुम दबा कर बैठे हो, वह कोई भी मौके की तलाश में है, वह प्रकट हो जाएगा। मैं पक्ष में हूं इसके कि दबाना कुछ भी मत। जीवन तुम्हारा है। जागो! जाग कर जीवन को अनुभव करो! सारी भावनाओं, सारी वृत्तियों से गुजरो, पहचानो! सिवाय जागरण के मुक्ति का और कोई उपाय नहीं है।

मुल्ला नसरुद्दीन अपने घर से निकल रहा था कि उसका एक मित्र जो कई वर्षों बाद मिलने आया था, वह घोड़े से उतरा। मुल्ला ने कहा कि वर्षों के बाद आए हो, मगर बड़े बेवक्त आए। मुझे दो-तीन जगह मिलने जाना है। तुम विश्राम करो, स्नान करो, भोजन लो; मैं लौट कर आता हूं; मैं जल्दी से निपटा कर आता हूं।
उस मित्र ने कहा कि इतने वर्षों बाद आया हूं; मैं क्षण भर नहीं खोना चाहता। मैं भी तुम्हारे साथ चलता हूं, राह में बातें भी होती चलेंगी। मगर मेरे कपड़े सब गंदे हो रहे हैं, अगर तुम्हारे पास ढंग के कपड़े हों तो मुझे दे दो।
मुल्ला को सम्राट ने एक सुंदर अंगरखा भेंट किया था--साफा, जूते, चूड़ीदार पजामा। उसने रख छोड़ा था कि कभी कोई ठीक अवसर पर पहनेगा। वह अवसर कभी आया ही नहीं। हमेशा टालता ही रहा कि कोई ठीक अवसर पर पहनूंगा। सोचा कि आज यह मित्र इतने वर्षों बाद आया है, यह भी क्या कहेगा, निकाल कर ले आया जोश-खरोश में।
पहना तो दिए, पहना कर फिर पछताया। जब दोनों चले रास्ते पर तो सबकी नजरें मित्र पर, नसरुद्दीन को कोई देखे ही नहीं। दिल ही दिल में दुख होने लगा कि मैं भी एक मूढ़ हूं, इतनी कीमती चीज, खुद तो मैंने कभी पहनी नहीं, इस मूरख को पहना दिया! अरे बहुत सालों बाद आया तो क्या हो गया! कुढ़ रहा था। पहले घर में पहुंचे। अंदर गए। जैसे ही पहुंचे अंदर, घर के मालिक, मालकिन, सबकी नजर मित्र पर पड़ी, नसरुद्दीन को कौन पूछे! वह तो उसके सामने नौकर मालूम हो रहा था। वह तो एकदम सम्राट मालूम हो रहा था उसका मित्र। उन्होंने पूछा नसरुद्दीन से, आप कौन हैं?
नसरुद्दीन ने कहा, आप कौन हैं! अरे मैं मिलने आया हूं कि ये मिलने आए हैं? मैं हूं नसरुद्दीन!
उन्होंने कहा, आपको तो हम जानते ही हैं, मगर आप कौन हैं?
उन्होंने कहा, ये हैं मेरे मित्र जमाल। और रहे कपड़े, सो कपड़े मेरे हैं।
मित्र को तो बहुत सदमा पहुंचा कि यह क्या भद्दी बात कही! बाहर निकल कर उसने कहा कि भई, यह क्या बात कही? कपड़ों की उन्होंने पूछी भी नहीं थी। और यह कहना शोभा देता है? अगर ऐसा ही करना था तो मुझे कपड़े पहनाए किसलिए? चार आदमियों में आकर बदनामी करवानी थी?
तब तक नसरुद्दीन भी पछताया। उसने कहा, क्षमा करो, मुझसे भूल हो गई। अब
यह भूल दोबारा दूसरे घर में नहीं होगी, बिल्कुल नहीं होगी। अब यह कहूंगा ही नहीं।
दूसरे घर में पहुंचे। मगर वही हुआ। घर की सुंदर गृहिणी ने द्वार पर ही स्वागत किया और पूछा, आप कौन हैं? नसरुद्दीन, आप कौन हैं?
नसरुद्दीन को तो तीर चुभ गया। भूल-भाल गया वह जो रास्ते में उसने कहा
था कि अब नहीं कहेंगे। कहा, आप कौन हैं! आप मेरे मित्र हैं, जमाल आपका नाम है। रहे कपड़े, सो कपड़े किसी के भी हों, तुम्हें क्या मतलब? क्यों कपड़ों के पीछे पड़ी हो?
बाहर निकलते ही से मित्र ने कहा कि भई, तेरे साथ आगे कदम बढ़ाना ठीक नहीं। यह कपड़े की बात तू छेड़ ही देता है। फिर तूने वही हरकत की! क्या कपड़ों की बात करनी है? वे मेरे संबंध में पूछते हैं, तू कपड़ों की क्यों बात करता है?
नसरुद्दीन ने कहा, क्षमा करो, मुझसे फिर भूल हो गई। एक मौका मुझे और दो।
तीसरे घर में गए। और वही सवाल--आप कौन हैं? तो कहा, आप हैं मेरे मित्र, जमाल। और जहां तक कपड़े की बात है, हम कपड़े की बात न ही करें तो अच्छा। यह बात छेड़नी ठीक ही नहीं है। यह तुम बात ही न उठाओ। मैं वचन दे चुका हूं कि यह बात छेड़ेंगे ही नहीं, बात ही नहीं करेंगे। किसी के हों जी! अरे मेरे हुए कि इनके हुए सब एक ही बात है। मेरे मित्र ही हैं, कई सालों बाद आए हैं। और कपड़ों में रखा क्या है? कपड़े कपड़े हैं। मित्र को देखो, कपड़ों पर क्या अटके हो?

वह जो तुम दबाओगे, इधर से दबाओगे, इधर से निकलेगा। इधर से दबाओगे, उधर
से निकलेगा। निकल-निकल कर बाहर आ जाएगा।
मैं दमन-विरोधी हूं। मैं पाखंड-विरोधी हूं। और तुमने पाखंड की इतनी पूजा की है। इसलिए यह स्वाभाविक है कि मुझे गालियां पड़ेंगी, लोग मुझ पर नाराज होंगे।
मुझसे तो केवल वे ही लोग राजी हो सकते हैं, जिनके पास थोड़ी प्रतिभा है, जिनके पास थोड़ी बौद्धिक क्षमता है, जिनके पास थोड़ा आत्मबल है, थोड़ा आत्मगौरव है, जो थोड़े आत्मवान हैं; जिनमें इतना साहस है कि छोड़ दें सारे अतीत को और चल पड़ें मेरे साथ अज्ञात की यात्रा पर--उनके अतिरिक्त, मेरे साथ भीड़ नहीं चल सकती है।

तीसरा प्रश्नः ओशो! मैं जल्दी से जल्दी दुख से मुक्ति चाहता हूं और मोक्ष का आनंद भी! कोई मार्ग बतावें।

पंडित तोताराम शास्त्री! गजब का नाम! आज समझ में आया कि कबीर ने क्यों कहा है कि दो पाटन के बीच में साबित बचा न कोय! मैं कई बार सोचता था--वे दो पाट कौन से हैं जिनके बीच में साबित नहीं बचता? आज पता चला--पंडित और शास्त्री! दो पाटन के बीच में और तोताराम की अगर राम-राम सत हो जाए तो कुछ आश्चर्य नहीं।
मगर एक लिहाज से नाम तुम्हारा बड़ा सार्थक है। सभी पंडितों का नाम तोताराम होना चाहिए। पोपटलाल, मियांमिट्ठू, ऐसे-ऐसे अच्छे-अच्छे नाम पंडितों के होने चाहिए। मौलवी हों तो मियांमिट्ठू, गुजराती हों तो पंडित पोपटलाल शास्त्री!
तोतों में भी लेकिन तुमसे ज्यादा अकल होती है; इसका ख्याल रखना।
मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी तोता खरीदने गई बाजार, क्योंकि सामने की औरत ने तोता खरीद लिया। और औरतें तो औरतें हैं! वे तो यह देख कर चलती हैं कि कौन ने क्या खरीदा। इससे उन्हें प्रयोजन ही नहीं कि हमको तोते की जरूरत है या नहीं। सामने की औरत ने तोता खरीदा तो उससे शानदार तोता खरीदना है। गई तोते की दुकान पर।
तोते के दुकानदार ने कहा, तोता तो है एक गजब का, बोलता भी है, मगर जरा संग-साथ इसका अच्छा नहीं रहा। एक वेश्याघर में था, सो थोड़ी अंट-शंट बातें बोल देता है। कभी-कभी गलत शब्द भी बोल देता है। अब इसका कसूर भी नहीं है, रहा ही ऐसे लोगों के साथ। तो मैं सलाह नहीं दूंगा कि इसको ले जाओ, लेकिन बोलने में बड़ा कुशल है। बोलता गजब का है।
अरे--उसने कहा--तुम फिक्र छोड़ो। इसकी जो खराब आदतें हैं, वे हम ठीक कर लेंगे। अगर मैं नसरुद्दीन की खराब आदतें ठीक कर सकी, तो यह तोता क्या है! कर लेंगे ठीक। जब आदमी को रास्ते पर लगा दिया, तो इसको भी लगा देंगे। तोता ही है न? गर्दन दबा दूंगी अगर गड़बड़ की ज्यादा तो। हम ठीक कर लेंगे, मगर चाहिए बोलने वाला।
उसने कहा, बोलने वाला तो क्या बिल्कुल बक्कार है। ऐसा बोलता है कि घंटों बोले चला जाता है। और क्या गजब फिल्मी गाने गाता है!
बस--उसने कहा--फिर ठीक है। सामने वाली औरत के तोते को हराना है।
ले आई तोते को। और तोता रास्ते में ही फिल्मी गाना गाने लगा--एक से एक गाने, कव्वालियां। नसरुद्दीन की पत्नी तो बड़ी खुश हुई कि चीज तो गजब की मिल गई। घर लाकर तोते को टांगा। जैसे ही घर में तोते को टांगा, तोते ने कहा कि वाह-वाह, नया घर, प्यारा घर!
नसरुद्दीन की पत्नी तो बहुत ही खुश हुई। तभी लड़कियां स्कूल से, कालेज
से लौटीं। उसने कहा, अरे वाह-वाह, गजब की लड़कियां, नयी-नयी लड़कियां! क्या कहने! एक से एक सुंदर, एक से एक बढ़-चढ़ कर!
नसरुद्दीन की पत्नी तो बोली कि गजब का तोता है। और तभी नसरुद्दीन दफ्तर से लौटा। तोता ने कहा, हलो नसरुद्दीन! नया घर, नयी मालकिन, नयी छोकरियां, मगर ग्राहक वही पुराने के पुराने।
तोतों में भी थोड़ी अकल होती है!

अब तुम भी क्या बात पूछते हो कि मैं जल्दी से जल्दी दुख से मुक्ति चाहता हूं और मोक्ष का आनंद भी! जैसे कोई तुम्हें दे सकता है ये चीजें--और जल्दी से जल्दी! पहली तो बात, कोई तुम्हें दे नहीं सकता। न कोई तुम्हारा दुख छीन सकता है, न तुम्हें कोई आनंद दे सकता है। दुख तुमने दिया है अपने को और आनंद भी तुम्हीं अपने को दे सकते हो। और दुख तुमने जल्दी-जल्दी नहीं दिया है, जन्मों-जन्मों में तुमने दुख की आदतें सीखी हैं; तो जल्दी-जल्दी तुम काट भी न सकोगे। और जितनी जल्दी करोगे, उतनी ही देर हो जाएगी। जल्दबाजी में अक्सर देर हो जाती है।
तुम्हें पता है, जब गाड़ी पकड़नी हो जल्दी-जल्दी, तो बटन ऊपर का नीचे लग जाता है, कोट का बटन पतलून में लग जाता है। सब गड़बड़ हो जाता है। भागते हो एकदम। जो सूटकेस ले जाना था वह घर ही रह जाता है, जो नहीं ले जाना था वह लेकर चल पड़े। कुछ का कुछ हो जाता है। जल्दी में सब गड़बड़ हो जाता है।
यह कार्य तो धैर्य से। इसके लिए बहुत धैर्य चाहिए--अनंत धैर्य चाहिए।
मगर पंडित हो, शास्त्र पढ़ते रहे होओगे कि दुख से छुटकारा चाहिए, मुक्ति चाहिए, मोक्ष चाहिए। शब्द तुम्हें याद हो गए हैं। मगर तुम्हें इस बात का कोई बोध नहीं है कि तुमने कितनी आयोजना की है दुख का जाल अपने चारों तरफ फैलाने की। तुमने किस तरह का जाल बुना है दुख का। उस सारे जाल को काटना पड़ेगा। जल्दी कैसे होगा? होश को जगाना पड़ेगा। सारी अचेतना को तुम्हारे भीतर से चेतना में रूपांतरित करना होगा। जल्दी कैसे होगा। लेकिन लोग समझते हैं जादू-टोना हो जाएगा कोई। कोई मंत्र दे देगा, कोई ताबीज दे देगा, बस सब जल्दी-जल्दी हो जाएगा काम।
लोग मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं, बस आप आशीष दे दें, सब ठीक हो जाएगा। जैसे मेरे आशीष न देने से वे अब तक नरक भोग रहे हैं! मेरा कोई हाथ ही नहीं उनके नरक में, तो मेरे आशीष से कैसे ठीक हो जाएगा? नरक तुम बनाओ और मेरा आशीष तुम्हारे नरक को कैसे काट सकेगा?
काश, बात इतनी आसान होती! मगर पंडितों ने, पुरोहितों ने यही समझाया है तुम्हें कि बात इतनी ही आसान है। तुम्हारे शास्त्र तुम्हें यही समझाते हैं कि अजामिल मर रहा था, मरते वक्त... पापी था, महापापी था, लुटेरा था, डाकू था... मरते वक्त उसने अपने बेटे को बुलाया--बेटे का नाम नारायण था--और ऊपर के नारायण धोखे में आ गए और उन्होंने समझा मुझे बुला रहा है। अजामिल मरा और एकदम स्वर्ग गया!
पंडित तोताराम शास्त्री, इसी तरह की बातों में लोगों को भरमाया गया है। ऐसे कहीं स्वर्ग नहीं मिलता। ये ऊपर के नारायण न हुए, पक्के कोई छंटे हुए बुद्धू हुए, जो यह भी न समझ सके कि अपने बेटे को बुला रहा है। कोई किसी को बुला रहा है, ये समझ गए कि हमको बुला रहा है! जिंदगी भर इनको नहीं बुलाया, मरते वक्त कैसे बुला लेगा! मरते वक्त आदमी के ओंठ पर तो जिंदगी भर का निचोड़ होता है। जिंदगी भर जो किया है, उसकी ही गंध मरते वक्त होती है। अगर जिंदगी भर फूल बोए हैं तो सुगंध होती है और अगर कांटे बोए हैं तो कैसे सुगंध हो सकती है!
और यह नारायण को किसलिए बुला रहा था, यह भी तो सोच लिया होता! यह शायद बुला रहा हो कि बेटा, धन कहां गड़ाया हुआ है, अब तेरे को बता दूं, अब मैं मर रहा हूं। या बुला रहा हो कि बेटा, चोरी की आखिरी तरकीब तुझे समझा दूं, डाके का आखिरी राज तुझे बता दूं, अब मैं तो चला, तू अपना काम सम्हालना। बाप-दादों से हम यही काम करते रहे हैं। रघुकुल रीति सदा चली आई--तू भी चलाना। हमारी प्रतिष्ठा है। वंश का नाम है। यूं ही डूब न जाए।
यह आदमी जो जिंदगी भर डकैत रहा, लुटेरा रहा, बेईमान रहा, चोर रहा--यह मरते वक्त क्या तुम सोचते हो बेटे को बुला रहा होगा कि आ बेटा, तुझे मैं गायत्री मंत्र सिखा दूं? इसकी जिंदगी भर का जो है, उसमें ही से कुछ यह अपने बेटे को कहना चाहता होगा।
मगर किन्होंने ये कहानियां गढ़ी हैं?
ये बेईमानों ने, धोखेबाजों ने कहानियां गढ़ी हैं। ये उन्होंने कहानियां गढ़ी हैं, जो लोगों को यह कहना चाहते हैंः तुम्हें कुछ कहने की जरूरत नहीं, मरते वक्त नाम ले लेना। नाम भी न ले पाओ, तो कोई किराए का पंडित तुम्हारे कान में नाम दोहरा देगा। अगर वह भी सुनाई न पड़े, क्योंकि मरते

वक्त पता नहीं होश रहे न रहे, तो एक चमची भर गंगाजल पिला देना। बोतल में भरा हुआ गंगाजल घर में रखो। वह सड़ा-सड़ाया गंगाजल, वह पिला देना। बस सब ठीक हो जाएगा। गायत्री मंत्र पढ़ कर सुना देना कि नमोकार मंत्र पढ़ कर सुना देना, कि सब ठीक हो जाएगा।
काश मामला इतना आसान होता, तब तो कहना ही क्या था!
नहीं, पंडित तोताराम शास्त्री, मामला इतना आसान नहीं है। मामला जटिल है, बहुत उलझा हुआ है। सुलझाने की चेष्टा करनी पड़ेगी। और चेष्टा के लिए श्रम करना होगा, साधना करनी होगी, ध्यान की गहराइयों में डुबकियां मारनी होंगी।
और सबसे पहले तो ये दो जो तुमने अपने गले में फांसी के फंदे लगा रखे हैं--पंडित और शास्त्री के--इनका त्याग करो।
मैंने सुना नहीं कभी कोई पंडित मुक्त हुआ हो। हो नहीं सकता। पहले तो पांडित्य से मुक्त होना पड़ता है। अगर ज्ञान चाहिए, तो थोथे ज्ञान से मुक्त होना पहला कदम है। अगर अपना अनुभव चाहिए, तो उधार अनुभव से छुटकारा करना होगा। और मैंने सुना नहीं कभी कोई शास्त्री वहां गया हो, उस परम लोक में। क्योंकि शास्त्री तो शास्त्रों में दबा-दबा मरता है, वह कहां उड़ेगा? उसके पंख कहां होते हैं? वह तो गधा है जो शास्त्रों को ढोता रहता है। हां, उसके कंठ में शास्त्र भरे होते हैं, प्राणों में नहीं। प्राणों से उसके शास्त्रों का कोई संबंध नहीं।
शास्त्र तो तुम्हारे भीतर पैदा होना चाहिए, तुम्हारे चैतन्य से आविर्भूत होना चाहिए। तुम्हारी गीता तुम्हारे भीतर जन्मे तो ही श्रीमद्भगवद्गीता है। यूं बाहर से सीख ली, तो बस तुम अपना नाम ही सार्थक कर रहे हो--तोताराम। ऐसे तो तोते भी राम-राम जप रहे हैं, मगर उनको क्या लेना है राम-राम से! क्या प्रयोजन है राम-राम से!
एक महिला एक तोते को खरीद कर लाई। वह तोता गालियां बके, मां-बहन की गालियां दे। महिला तो बहुत दुखी हुई--यह मैं कहां के जाल में पड़ गई! और खासकर जब भी पादरी घर में आए, तब तो वह बहुत बकवास करे कि ऐसी की तैसी इस पादरी की! इस हरामजादे को बाहर करो! फिर आ गया! न दिन देखे न रात, जब देखो तब चला आता है।
उसने कहा पादरी से कि अब आप ही कुछ करिए। अब मैं ले ही चुकी हूं, पैसा काफी खर्च किया है। बोलता तो है, मगर बस कभी-कभी अंट-शंट बातें बोल देता है।
अगर वह महिला अपने प्रेमी को घर में लाए, तो तोता एकदम खिलखिला कर हंसे कि हां, ले आई फिर! अब हो जाने दे रास! एक-एक पोल-पट्टी खोल दूंगा। सब उखाड़ कर रख दूंगा। मोहल्ले भर को बता दूंगा। आने दे पादरी को।
उस महिला ने कहा, यह तो बड़ी झंझट की बात है।
पादरी ने कहा कि मेरे पास एक तोता है, जो बड़ा धार्मिक है, बड़ा... यही समझो कि एक संतपुरुष। वह एकदम बैठा-बैठा बस प्रभु के ही गुणगान गाया करता है, स्तुति करता रहता है कि हम पतित, तुम पतितपावन। और क्या-क्या बातें कहता है! इसको तू वहीं ले आ। दोनों को एक ही पिंजरे में रख देंगे, सत्संग का तो असर होता ही है।
महिला ने कहा, यह बात तो ठीक है, सत्संग का असर होता है। आपके सत्संग में रहते-रहते मुझ पर ही कितना असर हो गया! ले जाइए।
वह ले आई पिंजरा। रख दिया पादरी के पिंजरे के भीतर अपने तोते को। पांच-सात दिन बाद पता लगाने आई कि कुछ बदलाहट हुई? सत्संग का कोई परिणाम हुआ? पादरी ने जैसे ही उसे देखा और कहा कि बाई, ले जा अपने तोते को, जल्दी कर!
उसने कहा, क्यों? सत्संग का कुछ असर नहीं हुआ?
अरे--उसने कहा--उलटा असर हो रहा है। उस हरामजादे तोते ने मेरे तोते को बिगाड़ दिया। मेरा तोता, जो हमेशा प्रार्थना में लीन रहता था, वह प्रार्थना ही नहीं करता। दोनों पता नहीं क्या गुटरगूं करते रहते हैं!
तो महिला पास गई, दोनों, पादरी भी पास गया। महिला ने पूछा कि बात क्या है? पादरी के तोते से पूछा कि तू तो सत्संगी तोता था, तू तो महापुरुष, तूने क्यों प्रार्थना करनी छोड़ दी?

उसने कहा, अरे हम जिसके लिए प्रार्थना करते थे, वह मिल गई। यह तोता नहीं है, यह तोती है। इसी के लिए तो प्रार्थना करते थे--हे प्रभु, भेज! एकाध तोती को भेज!
मगर पादरी ने कहा, इसने जरूर प्रार्थना छोड़ दी, मगर चमत्कार की बात यह
है कि यह बता रहा है कि तोती है, अपने को तो पहचान भी क्या कि कौन तोता कौन तोती, मगर तेरे तोते ने गाली-गलौज बंद कर दी।
उसने कहा, मैं गाली-गलौज अब क्यों दूं जब मैं खुद ही रासलीला कर रही हूं! जब यह हरामजादी रासलीला करती थी तो मैं तड़फती थी, कि ले आई, फिर ले आई।
और हम बंद हैं, और सदा के लिए बंद हैं। अब हम क्यों? ... हमको अलग मत करो।
इसने प्रार्थना छोड़ दी, मैंने गालियां छोड़ दीं, अब हम दोनों मजे में हैं।
बस अपना गुटरगूं चलती है। अब हम अलग नहीं होना चाहते।
तुम प्रार्थना भी करोगे तो तुम्हारी प्रार्थना में भी वासना ही छिपी होती है। और वासना जहां है, वहां कैसी प्रार्थना!
तुम कहते होः "जल्दी से जल्दी मुक्ति चाहता हूं।"
चाह? चाह ही तो बाधा है। चाह यानी वासना। चाहो मत। चाह को समझो, चाह को बूझो, चाह की प्रकृति को पहचानो--और चाह गिर जाएगी। लोग धन को चाहते हैं, कुछ लोग मोक्ष को चाहते हैं--मगर चाह तो वही की वही है, कोई फर्क नहीं पड़ता। किसी की जंजीरें लोहे की, किसी की सोने की--क्या फर्क पड़ता है? असल में सोने की जंजीरें लोहे की जंजीरों से ज्यादा खतरनाक! क्योंकि लोहे की जंजीरें तो छोड़ने का भी मन होता है, सोने की जंजीरें तो लोग समझते हैं आभूषण हैं, पकड़ लेने की इच्छा होती है।
चाह को समझो। चाह भटकाती है। चाह ही संसार है। जिस दिन चाह को समझ लोगे, उस दिन यह भी समझ में आ जाएगा कि चाह ने ही दुख पैदा किया है। तुमने चाहा और नहीं हुआ, जो चाहा वह नहीं हुआ, तो दुख। जिस दिन तुम्हारी कोई चाह नहीं रह जाएगी, उसी दिन सारे दुख भी विदा हो जाएंगे। न अपेक्षा होगी, न विषाद होगा। न जीत मांगोगे, न हार हो सकती है। जब सुख ही नहीं मांगोगे, तो दुख कैसे होगा? जब मांगोगे ही नहीं, तो तुम्हारी पराजय नहीं है फिर।
चाह को समझो, पंडित तोताराम शास्त्री। चाह के समझने में से मुक्ति का फूल खिलता है। चाह गिर जाती है और चाह में छिपी ऊर्जा मुक्ति बन जाती है। और आनंद कुछ अलग से नहीं आता। तुम्हारी ही ऊर्जा जो अभी दुख बन रही है चाह के कारण, चाह के हट जाने पर आनंद बन जाती है।
और जल्दबाजी भूल कर मत करना। यह रास्ता जल्दबाजी का नहीं है, धैर्य चाहिए--अनंत धैर्य चाहिए। परमात्मा को खोजने जो चले हैं उनके लिए बहुत प्रतीक्षा चाहिए। परमात्मा दूर नहीं है। परमात्मा तुम्हारे भीतर विराजमान है।
लेकिन तुम जितनी जल्दी करोगे, उतने ही चूकते रहोगे। जल्दी तनाव पैदा करती है, अधैर्य पैदा करती है। जहां कोई जल्दी नहीं है, वहां शांति आ जाती है, तनाव-मुक्ति आ जाती है, विश्राम आ जाता है। यूं समझो कि जब मिलेगा, मिलेगा, जल्दी क्या है!
अभी अपने दुख को पहचानो, दुख को गिर जाने दो। दुख के गिरते ही आनंद से
भर जाओगे। और आनंद आया कि वसंत आया। आनंद आया कि खिला फूल परमात्मा का। फिर एक क्षण की देर नहीं होती।
मगर तुम जल्दी मत करना; तुम जल्दी करोगे--देर हो जाएगी। अगर तुम राजी
हो अनंत प्रतीक्षा के लिए, तो अभी घट सकती है घटना, यहीं घट सकती है--इसी क्षण!
आज इतना ही।

पिय को खोजन मैं चली
नौवां प्रवचन

प्रेम सरिता है--सरोवर नहीं

पहला प्रश्नः ओशो! बेइरादा नजर तुमसे टकरा गई, जिंदगी में अचानक बहार
आ गई।
मौत क्या है जमाने को समझाऊं क्या, एक मुसाफिर को रस्ते में नींद आ गई।
रुख से परदा उठा, चांद शरमा गया, जुल्फ बिखरी तो काली घटा छा गई।
दिल में पहले सी अब वो हलचल नहीं, अब मुहब्बत में मिटने की घड़ी आ गई।

आनंद मोहम्मद! मनुष्य के इरादे कभी भी परमात्मा तक नहीं पहुंच पाते-- नहीं पहुंच सकते हैं। मनुष्य के इरादे मनुष्य की वासनाओं, इच्छाओं का ही विस्तार हैं। मनुष्य तो परमात्मा को भी चाहेगा, तो परमात्मा को चाहने के लिए नहीं, कुछ और चाहने के लिए--धन के लिए, पद के लिए, प्रतिष्ठा के लिए। मंदिर हैं, मस्जिद हैं, गिरजे हैं, गुरुद्वारे हैं। इतनी पूजा है, इतनी प्रार्थना, इतनी आराधना--और सब झूठी। इरादे ही नेक नहीं हैं, बुनियाद में ही भूल है। लोग प्रार्थनाएं कर रहे हैं, लेकिन प्रार्थनाएं दबी हुई वासनाओं के ही रूप हैं--कुछ मांग है।
और जहां मांग है, वहां कैसी प्रार्थना! प्रार्थना धन्यवाद है, अनुग्रह का भाव है। प्रार्थना इस बात का अहोभाव है कि इतना दिया है जिसके कि मैं योग्य नहीं था! मेरा पात्र छोटा है, मेरी गागर को सागर से भर दिया है! और चाहूं भी तो क्या चाहूं! और मांगूं भी तो क्या मांगूं! न मेरी योग्यता है, न मेरा कुछ अर्जन--फिर भी मुझ पर आकाश बरसा है! जीवन दिया है, जीवन को सौंदर्य दिया है, अनुभव की क्षमता दी है, चैतन्य दिया है, चैतन्य में संभावना दी है मुक्ति की--और कौन से मोती मांगने हैं!
लेकिन हमारी तो प्रार्थनाएं भी वासनाओं से भरी हैं। इसलिए हमारी प्रार्थनाएं उड़ नहीं पातीं; उनमें पंख नहीं हैं। उठ भी नहीं पातीं जमीन से। उठती भी नहीं और गिर जाती हैं। जमीन में ही गड़ी रह जाती हैं, आकाश तक उनकी गति नहीं है।
इसलिए परमात्मा से मिलन तो बेइरादा ही होता है।
तुम कहते होः "बेइरादा नजर तुमसे टकरा गई।"
यह तो कभी आकस्मिक क्षणों में ही घटना घटती है, सोच-विचार कर नहीं। यह झरोखा तो कब खुल जाता है... तुम अगर तैयारी करके बैठे हो, तो सब तैयारी समझ लेना चूकने की ही तैयारी है। दूर से आती कोयल की आवाज सुनते-सुनते झरोखा खुल जाए, प्रार्थना बन जाए। कि सुबह ऊगता हुआ सूरज, और क्षण भर को तुम स्तब्ध हो जाओ, और झरोखा खुल जाए। कि रात तारों से भरी हुई और तुम्हारे भीतर सोच-विचार ठहर जाए! सोचोगे भी तो क्या सोचोगे?
आकाश को देख कर भी जो सोचता है, उससे ज्यादा मूढ़ और कौन होगा? तारों से भरा आकाश अगर तुम्हें क्षण भर को निर्विचार नहीं कर जाता, तो तुम विक्षिप्त हो। वे अनंत-अनंत तारे भी अगर तुम्हारी विचार की तंद्रा नहीं तोड़ पाते, अगर तुम्हारे भीतर रहस्य की धारा को नहीं बहा पाते, अगर वृक्षों पर खिले हुए फूल तुम्हारे भीतर भी आश्चर्य-विमुग्धता के फूल नहीं बन जाते, तो फिर परमात्मा से मिलने का कोई उपाय नहीं है।
न गीता मिलाएगी, न कुरान, न बाइबिल। फूल मिला देते हैं। चांद-तारे मिला देते हैं। सूर्योदय-सूर्यास्त मिला देता है। पक्षियों का कलरव मिला देता है। पहाड़ से गिरता हुआ पानी का झरना मिला देता है। परमात्मा यूं लिखा पड़ा है तुम्हारे चारों तरफ!
और यह घटना अनायास घटती है। जब तुम मंदिर जाते हो, तब उसमें प्रयास है,
एक आयोजना है। हिंदू हिंदू के मंदिर जाता है, बस वहीं चूक हो गई। परमात्मा हिंदू का नहीं होता, और न मुसलमान का, और न ईसाई का, और न जैन का। मुसलमान मस्जिद जाता है। वहां भी उसने व्यवस्था कर रखी है अपने अहंकार की। ईसाई बाइबिल पढ़ेगा, गीता में उसे कुछ दिखाई नहीं पड़ता। जैन महावीर के सामने

झुकेगा, बुद्ध के सामने अकड़ा खड़ा रह जाता है। ये अंधे लोग, ये दिग्भ्रमित लोग, ये परमात्मा की तलाश को निकले हैं! इनकी तो यात्रा ही गलत शुरू होती है, ये तो पहला कदम ही चूक गए, अब मंजिल क्या खाक मिलेगी!
मेरी सारी चेष्टा, आनंद मोहम्मद, तुम्हें बेइरादा करने की है। तुम्हें उस घड़ी का स्वाद चखा देने की है, जब तुम्हारे भीतर कोई इरादों का तूफान नहीं होता; कोई मांग नहीं, कोई वासना नहीं, कोई आकांक्षा नहीं, कोई अभीप्सा नहीं--एक सन्नाटा, एक शून्य, एक चुप्पी; एक ऐसी गहन चुप्पी कि तूफान भी आए, आंधी भी आए, तो भी तुम्हारी चुप्पी हिलती नहीं, डुलती नहीं; एक ऐसी थिरता।
और ऐसी थिरता प्रकृति के सान्निध्य में अपने आप घटती है। और अनायास
ही घटती है।
जब भी परमात्मा किसी को उपलब्ध हुआ है तो बेइरादा उपलब्ध हुआ है। इरादे से जो चले थे, वे तो चूकते ही रहे। बेइरादे जो चले थे, पहुंच गए।
"बेइरादा नजर तुमसे टकरा गई,
जिंदगी में अचानक बहार आ गई।"
यूं ही बहार आती रही है। यूं ही बहार आएगी सदा। यही बहार के आने का ढंग है।
तुम कहते होः "दिल में पहले सी अब वह हलचल नहीं,
अब मुहब्बत में मिटने की घड़ी आ गई।"
मुहब्बत में मिटने की घड़ी ही तो नवजीवन है। और ऐसा जीवन, फिर जिसका कोई अंत नहीं। प्रेम में जो मिटा, वह धन्यभागी है।
यूं तो सभी को मिटना है, लेकिन यूं जो मिटते हैं, व्यर्थ ही मिटते हैं; व्यर्थ ही जीते, व्यर्थ ही मिटते हैं; कब्रों में ही जीते, कब्रों में ही गिर कर समाप्त होते हैं। प्रेम में जो मरा, वह मृत्यु के पार हो गया। उसने विजय पा ली मृत्यु पर। उसके लिए अमृत के द्वार खुल गए।
और निश्चित ही उसके पहले सब हलचल ठहर जाएगी। प्रेम की मृत्यु के पूर्व एक गहन मौन छा जाएगा, जैसे कुछ भी न बचा, कोई भी न बचा भीतर, सब खाली हो गया--रिक्त। उसी रिक्तता में एक तरफ मृत्यु मालूम होगी, क्योंकि अहंकार गया; और दूसरी तरफ एक नये जीवन का प्रारंभ, क्योंकि परमात्मा आया।
तुम मिटो तो परमात्मा अभी मिले, यहीं मिले, इसी क्षण, तत्क्षण। तुम जब
तक हो तब तक परमात्मा नहीं मिल सकता है।
आनंद मोहम्मद, शुभ घड़ी आ रही है। इसे आने देना, रोकना मत। मौत से डर कर ठिठक मत जाना, झिझक मत जाना। मौत से डर कर आगे कदम बढ़ाने से रुक न जाना। मौत से डर कर पीछे मत लौट पड़ना।
प्रेम मृत्यु है और प्रार्थना परम मृत्यु है। मगर मृत्यु के बाद ही
तो जाना जाता है वह, जिसका न कोई जन्म है, न कोई मृत्यु है।

दूसरा प्रश्नः ओशो! अगर एक पुरुष अपनी पत्नी से काम-तुष्टि नहीं पाता
है तो वह दूसरी स्त्रियों के पास जाता है। ऐसा करने से वह एक अपराध-भाव अनुभव करता है, क्योंकि उसे पत्नी से और सब सुविधाएं मिलती हैं और वह उन सब बातों के लिए उसे चाहता है। जब वह अपराध-भाव अनुभव करता है तो उसका मन तनाव से घिर आता है।
उसे क्या करना चाहिए कि उसका मन तनावग्रस्त न हो अथवा उसे अपनी काम-तृप्ति के लिए और कहीं जाना बंद कर देना चाहिए?

श्री मोदी! यह प्रश्न थोड़ा जटिल है। जटिल इसलिए कि दोष इसमें व्यक्ति
का न के बराबर है, और सारा दोष व्यक्ति के ऊपर ही थोपा जाता है। दोष है व्यवस्था का। सारी व्यवस्था अप्राकृतिक है। और अप्राकृतिक व्यवस्था हो, तो स्वभावतः ये सब विकृतियां पैदा होती हैं।
विवाह एक अप्राकृतिक व्यवस्था है। मनुष्य को छोड़ कर और तो किसी पशु- पक्षी में विवाह का आयोजन नहीं है। मनुष्य में भी विवाह सदा से नहीं रहा है, बहुत बाद की ईजाद है। और उस ईजाद के कुछ लाभ थे, जिनके कारण ईजाद की गई प्रथमतः, लेकिन हानियां भी थीं। लाभ तो कब के खो गए हैं, अब हानियां ही हानियां रह गई हैं।

लेकिन व्यवस्थाएं एक बार आदमी को जकड़ लेती हैं तो छोड़ती नहीं। और इतना साहस थोड़े ही व्यक्तियों में होता है कि वे समाज की मान्य धारणाओं के विपरीत जा सकें। विद्रोह की क्षमता थोड़े ही व्यक्तियों में होती है। और समाज विद्रोही को कुचल भी डालता है। क्योंकि विद्रोही खतरनाक है। वह संदेह पैदा कर रहा है व्यवस्था में। विद्रोही और विद्रोह के लिए हवा पैदा कर रहा है। और समाज भलीभांति जानता है, खासकर समाज के ठेकेदार--वे धर्मगुरु हों, राजनेता हों, या दूसरे हों--वे भलीभांति जानते हैं कि यह आग ऐसी है, अगर पैदा हो जाए विद्रोह की, तो फिर बुझाई न बुझेगी। इसे शुरू में ही कुचल देना उचित है। चिनगारी ही नहीं बचने देनी चाहिए। नहीं तो यह ऐसी भभकेगी कि सारे जंगल को घेर लेगी।
जब विवाह ईजाद हुआ शुरू-शुरू में तो उसके कारण थे। सबसे बड़ा कारण तो यही था कि जो शक्तिशाली पुरुष थे, जो ताकतवर लोग थे, जिनके हाथ में लाठी थी, वे स्त्रियों पर कब्जा कर लेते। और चीजों पर कब्जा करते थे, वैसे ही स्त्रियों पर कब्जा कर लेते। जमीन पर कब्जा करते। जिसके पास जितनी ताकत होती, उतनी बड़ी जमीन पर कब्जा करता, उतना बड़ा भूपति होता, उतना बड़ा सम्राट होता। उन्हीं लुटेरों की कहानियां हम इतिहास में पढ़ते रहते हैं। किसी को हम कहते हैं--महान सिकंदर! ये सब लुटेरे हैं। छोटे लुटेरे नहीं, बड़े लुटेरे हैं। इतने बड़े लुटेरे हैं कि इनको लुटेरे कहने में हमें संकोच होता है। छोटे लुटेरे तो जेलखानों में मरते हैं, बड़े लुटेरे इतिहास में जगह पाते हैं; स्वर्णाक्षरों में उनके नाम लिखे जाते हैं। ये लुटेरे जमीन पर कब्जा करते; ये लुटेरे धन पर कब्जा करते; ये लुटेरे स्त्रियों पर भी कब्जा कर लेते थे। और एक-दो स्त्रियों पर नहीं, जिसकी जितनी सामर्थ्य होती, उतनी स्त्रियों पर कब्जा कर लेते।
अभी, इस सदी के प्रारंभ तक निजाम हैदराबाद की पांच सौ पत्नियां थीं! अभी पचास साल पहले तक! यह कोई पांच हजार साल पहले की बात नहीं है। निजाम हैदराबाद की पांच सौ पत्नियां! शायद सबको पहचान भी न सके, शायद सबके नाम भी न जानता हो, शायद एक पत्नी का एकाध बार साल में नंबर लगे या दो साल में नंबर लगे!
कृष्ण के जीवन की कहानी है कि उनकी सोलह हजार रानियां थीं। कुछ हैरानी की बात नहीं। अगर पांच सौ पत्नियां बीसवीं सदी में निजाम हैदराबाद की हो सकती हैं, तो आज से पांच हजार साल पहले सोलह हजार पत्नियां कुछ ज्यादा नहीं--सिर्फ बत्तीस गुनी।
असल में पत्नियों के आधार पर तौला जाता था कि कौन आदमी कितना शक्तिशाली है। जैसे हम धन से तौलते हैं कि किसके पास कितना धन है, उतना शक्तिशाली है। पद से तौलते हैं कि किसके पास कितनी बड़ी प्रतिष्ठा है, कौन मंत्री है, कौन प्रधानमंत्री है, कौन राष्ट्रपति है--उससे उसकी क्षमता, उसके अहंकार का बल। वैसे ही एक जमाना था कि पत्नी तौल थी।
लोग कब्जा कर लेते थे पत्नियों पर जिनके पास ताकत थी। गरीब आदमी क्या करे? सामान्यजन क्या करे? उसके लिए तो स्त्रियां ही न बचेंगी। इसलिए विवाह को ईजाद करना पड़ा। विवाह को ईजाद करने का यह अर्थ था कि गरीब को भी स्त्री मिल सके। यह उसकी उपादेयता थी। नहीं तो गरीब को तो स्त्री ही नहीं मिलेगी।
आखिर स्त्री-पुरुष बराबर पैदा होते हैं प्रकृति में, यह ख्याल रखना। यूं जब पैदा होते हैं शुरू में, तो एक सौ पंद्रह बच्चे पैदा होते हैं--लड़के, और सौ लड़कियां पैदा होती हैं। क्योंकि प्रकृति को यह ख्याल है, अनुभव है कि पुरुष कमजोर प्राणी है, स्त्री की बजाय। उसकी प्रतिरोधक क्षमता कम है। इसलिए विवाह की उम्र के आते-आते पंद्रह लड़के मर जाएंगे। लड़कियां आसानी से नहीं मरतीं। तो एक सौ पंद्रह लड़के पैदा होते हैं, सौ लड़कियां पैदा होती हैं। लेकिन अठारह साल के करीब पहुंचते-पहुंचते सौ ही लड़के बचते हैं, सौ ही लड़कियां बचती हैं। पंद्रह लड़के तब तक खत्म हो गए होते हैं।
तो प्रकृति तो एक संतुलन रखती है। अगर कुछ लोग हजारों स्त्रियों पर कब्जा कर लें, तो बाकी लोगों का क्या होगा? तो समाज को कुछ व्यवस्था करनी पड़ी। और यह धारणा पैदा करनी पड़ी, और इस धारणा को धर्म का बल देना पड़ा, कि

किसी की विवाहिता स्त्री को छीनना पाप है। किसी दूसरे की स्त्री की, किसी और की स्त्री की तरफ देखना भी पाप है। इसकी उपादेयता थी।
और इसीलिए हम बाल-विवाह करते थे। नहीं तो दूसरे की स्त्री होने का मौका ही नहीं आएगा, इसके पहले ही जिनके हाथ में ताकत है, वे स्त्रियों को खदेड़ कर ले जाएंगे। इसलिए बिल्कुल बचपन में शादी कर देते थे। जब तक कि कोई राजा-महाराजा उन पर कब्जा करे, उनका विवाह हो जाता था। फिर विवाहित स्त्री पर कोई कब्जा न कर सके, इसके लिए समाज को एक नैतिक धारणा पैदा करनी पड़ी, एक संस्कार पैदा करना पड़ा--कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी स्त्री के प्रति ही निष्ठा रखनी चाहिए; और दूसरे की स्त्री की तरफ देखना भी पाप है। यह इतनी सदियों तक दोहराई गई बात है कि अब यह हमारा अंतःकरण बन गया। ऐसे ही अंतःकरण निर्मित होता है।
वह बात आज भी हमारे भीतर गहरी बैठी हुई है। लेकिन जो व्यवस्था की गई थी, उसका समय तो कभी का लद गया। अब किसी की हैसियत नहीं है, न किसी की ताकत है कि हजारों स्त्रियों पर कब्जा कर ले। लेकिन वह लकीर अभी भी खिंची है और हम उसके फकीर बने चल रहे हैं।
इसका यह तो लाभ हुआ कि गरीब से गरीब आदमी को भी स्त्री मिल सकी; नहीं
तो सिर्फ अमीरों को मिलती, शक्तिशालियों को मिलती। और यह अन्याय होता। गरीब की कामवासना का क्या होता! और गरीब बड़ी संख्या में हैं। उनका जीवन बड़ा दूभर हो जाता। उनके लिए भी आयोजन चाहिए। ठीक है, जो सुविधा-संपन्न थे, वे सुंदरतम स्त्रियों को कर लें इकट्ठा। लेकिन कम से कम गरीबों के लिए कुछ तो छोड़ दें। गरीब को जैसे भोजन चाहिए, वैसे ही स्त्री भी चाहिए। वह उसकी जरूरत है।
लेकिन इसका एक दुष्परिणाम भी हुआ। इसका एक दूसरा पहलू है। और वह पहलू
यह है कि फिर एक ही स्त्री के साथ एक पुरुष को जीवन जीना है। इंद्रियों का यह स्वभाव है कि एक ही चीज को बार-बार उपयोग करने से ऊब जाती हैं। अब जैसे तुम्हें रोज ही रोज एक ही सब्जी, एक ही सब्जी खानी पड़े, तो चाहे तुम्हें कितनी ही पसंद हो सब्जी, तुम ऊब जाओगे।
मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन लखनऊ के एक नवाब की सेवा में नियुक्त हुआ था। और नवाब उससे बड़ा खुश था। नसरुद्दीन होशियार आदमी है, चमचागिरी में उसकी बड़ी पहुंच है। और नवाबों के आस-पास और किस तरह के लोग चाहिए--चमचे ही चाहिए।
एक दिन नवाब और नसरुद्दीन साथ-साथ भोजन करने बैठ हैं। नवाब उसे सदा साथ रखता है। नयी-नयी भिंडियां आई हैं और बड़ी स्वादिष्ट सब्जी भिंडियों की बनी है। नवाब ने तारीफ की। रसोइए को बुला कर कहा कि सुंदर सब्जी बनी है। नसरुद्दीन ऐसा मौका चूकने वाला नहीं था। उसने कहा, सुंदर होगी ही! क्योंकि मैं वनस्पति-शास्त्र का ज्ञाता हूं, भिंडी तो अमृत है, भिंडी से श्रेष्ठ तो कोई सब्जी ही नहीं। इसीलिए तो लखनऊ में भिंडी का इतना समादर है, क्योंकि यहां पारखी लोग रहते हैं। नसरुद्दीन तो बढ़ता गया, कहता ही गया। जब चमचे कुछ कहते हैं तो फिर रुकते नहीं। और जब सम्राट, नवाब प्रसन्न हो रहा था, तो उसने कहा कि यूं समझो कि ये भिंडियां नहीं हैं, लैला की अंगुलियां हैं। अरे, इनका स्वाद! इनका रस! ...
रसोइए ने भी सुना। उसे यह पता नहीं था कि भिंडियां इतनी गजब की चीज हैं। उसने दूसरे दिन भी भिंडियां बनाईं। सुबह भी बनाईं, शाम भी बनाईं, तीसरे दिन भी बनाईं, और नसरुद्दीन रोज तारीफ के पुल बांधता रहा, बांधता रहा। छठवें दिन जब भिंडियां बनीं... नवाब तो ऊब गया था भिंडियां खाते-खाते, सुबह भी खाए, शाम भी खाए! छठवें दिन जब भिंडियां बनीं, तो उसने थाली उठा कर फेंक दी। उसने कहा, बुलाओ उस मूरख रसोइए को, क्या मुझे मार डालेगा?
नवाब का रुख बदला तो चमचे का रुख बदल गया। चमचे तो बड़े पारखी होते हैं,
वे तो हवा का रुख देख कर चलते हैं। नवाब तो गरम हुआ ही रसोइए पर, नसरुद्दीन ने तो उठ कर उसको दो हाथ जमा दिए। और कहा, हरामजादे, सम्राट को मारना है? अरे ये जहर हैं, भिंडियां नहीं हैं। भिंडियों की तो इतनी निंदा है कि इनको खाता ही कौन है! इनको तो गरीब-गुरबे, जिनको कुछ खाने को नहीं मिलता, वे भिंडियां खाते हैं। इनका नाम ही--भिंडियां! तू जान लेगा नवाब साहब की? तुझे कुछ होश है?

नवाब तो बहुत चौंका। उसने कहा, नसरुद्दीन, छह दिन पहले तो तुम कहते थे भिंडियां अमृत, और अब तुम कहते हो भिंडियां जहर?
नसरुद्दीन ने कहा, हुजूर, मेरे मालिक, मैं आपका सेवक हूं, भिंडियों का नहीं। मुझे तनख्वाह आप देते हैं, भिंडियां नहीं। अरे आप कहो तो अमृत हैं, आप कहो तो जहर। आप कहो तो स्वर्ग बता दूं, आप कहो तो नरक।
रोज अगर स्वादिष्ट से स्वादिष्ट भोजन भी करने को मिले, तो तुम्हारे स्वाद के जो सूक्ष्म तंतु हैं, वे मरने लगेंगे। तुम्हारी जिह्वा उनका स्वाद लेना बंद कर देगी। यह प्राकृतिक नियम है। इंद्रियों का यह स्वभाव है। जब तक तुम अतींद्रिय नहीं हो गए हो, जब तक तुम्हारे जीवन में इंद्रियों के पार जाने का कोई मार्ग नहीं खुल गया है--जिसका कि सिर्फ एक ही मार्ग है, ध्यान--तब तक यह मुसीबत होने वाली है। तुम्हें अगर रोज एक ही संगीत सुनना पड़े, तो भी तुम घबड़ा जाओगे, ऊब जाओगे, परेशान होने लगोगे, विक्षिप्त होने लगोगे।
मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन ने सितार खरीदा और एक ही तार को बस टुन-टुन, टुन-टुन करता रहे। एक दिन, दो दिन... ।
पत्नी ने कहा, यह तुम क्या कर रहे हो? हमारा दिमाग फिरा जा रहा है। हमने और भी सितार बजाने वाले देखे हैं--मगर और स्वर भी हैं, और तार भी हैं, सितार बजाने वाले हाथ तारों पर फिराते हैं। तुम तो एक ही तार को खींचते हो, टुन-टुन-टुन-टुन बजाए रखते हो। यह कोई सितार बजाना है? यह कोई ढंग है? नसरुद्दीन ने कहा, तू समझी नहीं। वे लोग तारों पर हाथ फेरते हैं, यहां
से वहां हाथ दौड़ाते हैं, इस स्वर को, उस स्वर को, क्योंकि वे अपने स्वर की तलाश कर रहे हैं। मुझे मेरा स्वर मिल गया, अब मैं क्यों खोज करूं? जो मुझे चाहिए था, मुझे मिल गया। अब तो मैं यही बजाऊंगा।
पत्नी तो मायके चली गई। चली ही जाएगी और क्या करेगी! बच्चों ने कहा, हमें हॉस्टल में भरती करवा दो। जो बच्चे कभी हॉस्टल जाने को राजी नहीं थे, वे सब हॉस्टल चले गए। नसरुद्दीन अकेला रह गया तो और दिल खोल कर टुन-टुन करने लगा। दिन हो कि रात... ।
मोहल्ले के लोग परेशान हो गए। आखिर बरदाश्त की एक सीमा होती है। सामने वाले आदमी ने एक रात दो बजे उठ कर कहा कि नसरुद्दीन, अगर अब एक मिनट भी और तुमने यह टुन-टुन मचाई, तो मैं पागल हो जाऊंगा।
नसरुद्दीन ने कहा, भैया, देर हो गई। मैं दो घंटे पहले सितार बंद कर चुका हूं।
आदमी पागल हो ही जाएगा अगर एक ही स्वर... । मगर जो कान के संबंध में सच है, जो जबान के संबंध में सच है, वही सच है यौन के संबंध में, क्योंकि वह भी इंद्रिय है। वही स्त्री, वही पुरुष--ऊब स्वाभाविक है, इसमें कुछ अस्वाभाविक नहीं है। जब तक कि तुम ध्यानी नहीं हो गए हो, तब तक यह बिल्कुल स्वाभाविक है कि तुम ऊब जाओ। वही शरीर, वही शरीर का ढांचा, वही शरीर का अनुपात, वही शरीर का भूगोल--उसमें कुछ भी अन्वेषण करने को नहीं बचा।
जब एक पुरुष एक स्त्री में उत्सुक होता है, तो उत्सुकता में बहुत सी बातें होती हैं। एक तो जो छिपा है, जो राज है, उसे उघाड़ने की आकांक्षा होती है।
इसलिए स्त्रियां अपने को छिपा-छिपा कर रखती हैं। जिस देश में स्त्रियां अपने को जितना छिपा कर रखती हैं, उस देश में स्त्रियां उतना ही पुरुषों को आकर्षित करती हैं। तुम यह मत सोचना कि छिपाना लज्जा के कारण हो रहा है, इस गलती में मत पड़ना। छिपाना आकर्षित करने की विधि है; क्योंकि जो चीज जितनी छिपी हो उतना ही ज्यादा बुलावा है उसमें।
पश्चिम की स्त्रियां उतनी आकर्षक नहीं मालूम होतीं--सुंदर से सुंदर भी, क्योंकि वे करीब-करीब अर्धनग्न हैं। और समुद्र-तट पर तुम उनको पूरा नग्न देख सकते हो। पश्चिम के समुद्र-तटों पर स्त्रियां नग्न धूप-स्नान ले रही हैं। पुरुष निकलते चले जाते हैं, कोई ध्यान नहीं देता।
भारत की स्त्रियां ज्यादा आकर्षक मालूम होती हैं। और कारण? वे ऐसी साड़ियों में लिपटी हुई छिपी हुई बैठी हैं कि राज बन गई हैं, रहस्य बन गई हैं। इससे तुम यह मत सोचना कि यह कोई बड़ी आध्यात्मिकता और धार्मिकता के कारण हो रहा है। यह होशियारी है। यह भारत का अनुभव है--सदियों का अनुभव

है--कि चीजें उघाड़ो तो उनमें से रस खो जाता है। चीजों को छिपा कर रखो, ढांक कर रखो, तो उनमें रस देर तक बना रहता है।
और चूंकि भारत विवाह की परंपरा को अक्षुण्ण रखना चाहता रहा है, इसलिए स्त्रियों को खूब छिपा कर रखता है। शायद पति भी अपनी पत्नी को कभी नग्न नहीं देखता। पत्नी से जब प्रेम भी करता है, तब भी अंधेरे में, चुपचाप, किसी को पता न चल जाए, चोरी-चोरी।
और निश्चित ही, चुराए गए चुंबन ज्यादा मीठे होते हैं। पक्का पता ही नहीं चलता कि अपनी पत्नी है कि किसी और की है। अंधेरे में क्या खाक पता चलेगा!
होशियार लोग थे जो यह व्यवस्था दे गए कि अंधेरे में प्रेम करना। पश्चिम के लोग पागल हैं; दिन दहाड़े प्रेम करते हैं। आमतौर से प्रेम का समय रात से बदल कर सुबह हो गया है--खासकर अमरीका में। इसका दुष्परिणाम होने वाला है। दुष्परिणाम यह होने वाला है कि जल्दी ही तुम ऊब जाओगे; तुम पत्नी की देह से परिचित हो गए।
पत्नियां ज्यादा होशियार हैं, वे जब भी प्रेम करती हैं, आंख बंद कर लेती हैं। इसलिए पत्नियां पुरुषों से कम ऊबती हैं, ख्याल रखना, पुरुष पत्नियों से जल्दी ऊब जाते हैं। वे देखती ही नहीं कि कौन सज्जन हैं, वे तो आंख ही बंद किए हुए हैं।
उनकी आंख बंद करने के कई कारण हैं। जानकार कहते हैं कि बड़ा कारण तो यह
है कि वे अपने पति को प्रसन्न हालत में नहीं देख सकतीं, इसलिए आंख बंद करती हैं--कि ले ले मजा जो लेना हो, मगर मुझे दिखाई नहीं पड़ना चाहिए। यह बरदाश्त के बाहर है।
लेकिन इसके पीछे एक ज्यादा मनोवैज्ञानिक राज है। आंख बंद करते ही फर्क पड़ जाता है--दिन भी हो तो रात हो जाती है। स्त्रियां कभी पसंद नहीं करतीं कि प्रकाश हो और तुम उन्हें प्रेम करो। क्योंकि अगर स्त्री उघड़ी हुई दिखाई पड़े तो जल्दी ही तुम्हारा आकर्षण उसमें समाप्त हो जाएगा। तुमने कभी यह ख्याल किया कि नग्न स्त्री में तुम उतने उत्सुक नहीं होओगे, जितनी कपड़े उतारती हुई स्त्री में उत्सुक होओगे। चाहे वह भद्दी और बेहूदी औरत ही क्यों न हो, मगर उसका कपड़े उतारना तुम्हें ज्यादा आकर्षित करेगा--बजाय नग्न सुंदरतम स्त्री को देख कर भी। नग्न ही है तो तुम्हारी कल्पना के लिए कोई उपाय नहीं बचता। लेकिन एक स्त्री आहिस्ता-आहिस्ता कपड़े उतार रही है... स्ट्रिपटी.ज जो सारी दुनिया में प्रचलित हुआ है, कैबरे नृत्य और इस तरह की जो चीजें प्रचलित हुई हैं, उन सबका ढंग है एक--आहिस्ता- आहिस्ता वे एक-एक कपड़े उतार कर फेंकती जाती हैं, और तुम्हारी उत्सुकता गहन होती चली जाती है। तुम चाहते हो बस एक और उतारे, एक और उतारे, एक और उतारे... ।
मुल्ला नसरुद्दीन की प्रेयसी मिनी स्कर्ट खरीद लाई। आधुनिक, लेकिन जरा संकोच में भी भरी थी। उसने नसरुद्दीन से कहा कि देखो नसरुद्दीन, यह स्कर्ट तो बहुत छोटा है, कहीं ऐसा न हो कि इससे मेरा नीचे का अंडरवियर दिखाई पड़े। तो तुम जरा देखो तो, अंडरवियर तो दिखाई नहीं पड़ता? नहीं तो मैं जाऊं यह पहन कर और लोगों को अंडरवियर दिखाई पड़े तो भद्दा लगे।
नसरुद्दीन ने देखा और कहा कि नहीं दिखाई पड़ता।
वह और थोड़ी झुकी। उसने कहा, अब देखो। अब तो दिखाई नहीं पड़ता?
नहीं दिखाई पड़ता।
वह और झुकी।
नसरुद्दीन ने कहा, कुछ नहीं दिखाई पड़ता।
उसने कहा, कुछ नहीं दिखाई पड़ता! वह और झुकी।
नसरुद्दीन ने कहा, बिल्कुल कुछ नहीं दिखाई पड़ता। हो तो कुछ दिखाई पड़े, अंडरवियर तूने पहना ही नहीं है। तू मुझे मूरख बना रही है।
स्त्रियां कपड़ों की पर्तों में पर्तों में पर्तों में छिपी हैं।
आकर्षक लगती हैं। फिर झूठ भी चल जाता है।
मेरी एक संन्यासिनी है--माधुरी। उसकी मां भी संन्यासिनी है। उसकी मां
ने मुझे कहा कि उसके तो आपरेशन में दोनों स्तन उसे गंवाने पड़े। लेकिन डाक्टरों ने कहा, चिंता न करो, अब तुम्हें कोई नया विवाह तो करना भी नहीं

है, उम्र भी तुम्हारी ज्यादा हो गई। और झूठे रबर के स्तन मिलते हैं, वे तुम अंदर पहन लो, बाहर से तो वैसे ही दिखाई पड़ेंगे। रबर के हों कि चमड़ी के हों, क्या फर्क पड़ता है? बाहर से तो वैसे ही दिखाई पड़ेंगे। सच तो यह है कि रबर के ज्यादा सुडौल होंगे।
तो वह रबर के स्तन पहनने लगी। मेक्सिको में रहती थी। कार से कहीं यात्रा पर जा रही थी। रास्ते में ट्रैफिक जाम हो गया तो रुकी। पुलिस का इंसपेक्टर पास आया। खुद ही कार ड्राइव कर रही थी। वह एकटक उसके स्तन की तरफ देखता रह गया। उसे मजाक सूझा। बड़ी हिम्मतवर औरत है। उसने कहा, पसंद हैं?
एक क्षण को तो वह इंसपेक्टर डरा कि कोई झंझट खड़ी न हो।
मगर उसने कहा, नहीं, चिंता न करो, पसंद हैं?
उसने कहा कि सुंदर हैं। क्यों न पसंद होंगे? सुडौल हैं।
तो उसने कहा, यह लो, तुम्हीं ले लो। उसने दोनों स्तन निकाल कर दे दिए।
अब जो उस पर गुजरी होगी बेचारे पर, जिंदगी भर न भूलेगा। अब असली स्तन वाली स्त्री को भी देख कर एकटक अब नहीं देखेगा। अब कौन जाने असलियत क्या हो? रखे होगा वह रबर के स्तन अब, अपनी खोपड़ी से मारता होगा कि अच्छे बुद्धू बने।
मुझे उसकी घटना पसंद आई। मैंने कहा, तूने ठीक किया। तू तो और खरीद ले
और बांटती चल। जो मिले उसको बांट दिए। जितनों का छुटकारा हो जाए उतना अच्छा। मूढ़ हैं, बचकाने हैं--छुटकारा करो। जगह-जगह मिलेंगे इस तरह के लोग। अपनी पत्नी से तो तुम स्वभावतः ऊब जाओगे। पत्नियां भी ऊब जाती हैं। लेकिन पत्नियों को हमने इतना दबाया है सदियों में कि वे यह कह भी नहीं सकतीं कि ऊब गई हैं। हमने उन्हें कहा है, पति परमात्मा है। हमने उन्हें कहा है कि एक पति को ही सब कुछ मानना है। पति-व्रत की हमने उन्हें खूब शिक्षा दी है। सदियों की धारणाओं ने उनको एक तरह से कुंठित कर दिया है। उनका रस ही खो गया है। उनका सच में पूछो तो किसी पुरुष में कोई रस नहीं रहा है। मुझसे हजारों स्त्रियों ने कहा है कि उनका किसी पुरुष में कोई रस नहीं रहा है। पुरुषों ने ही रस मार डाला है।
यह बात तुम ख्याल रखना कि अगर एक पुरुष में रस है, स्त्री का, तो और पुरुषों में भी रस होगा। क्योंकि पुरुष में रस होने का अर्थ पुरुष में रस होना होता है, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता कि किस में! अगर एक पुरुष में रस है, तो और पुरुषों में भी रस होगा। अगर एक पुरुष आकर्षित करता है, तो उससे सुंदर व्यक्ति को देख कर वह क्यों आकर्षित न होगी?
हमने सदियों से उसे समझाया है कि किसी दूसरे पुरुष में आकर्षण मत रखना, यह महापाप है। और स्त्रियां निश्चित ही ज्यादा भावुक हैं, हार्दिक हैं, उन्होंने इसको हृदय में ले लिया है। पुरुषों के संस्कार तो खोपड़ी में हैं, लेकिन स्त्रियों के संस्कार हृदय तक पहुंच गए हैं, ज्यादा गहरे पहुंच गए हैं। चूंकि उन्हें किसी पुरुष में कोई रस नहीं लेना है, इसका अंतिम परिणाम यह हुआ कि उन्हें अपने पुरुष में भी कोई रस नहीं है।
इस गणित को तुम ठीक से समझ लो। अगर सारे पुरुषों से रस हटा दोगे तो स्वयं के पुरुष से भी रस नहीं रह जाएगा। और तब वह स्त्री बोझ की तरह पुरुष के साथ संभोग करेगी। पुरुष को तृप्ति नहीं मिलेगी, यह अड़चन है। उसको तृप्ति कैसे मिले? वह स्त्री कोई रस ही नहीं ले रही है। वह यूं टाल रही है कि ठीक है--यंत्रवत। क्योंकि मैं पत्नी हूं, तुम्हारी दासी हूं, तुम्हारी सेवा के लिए ही मेरा जीवन है, जो करना हो करो, यह देह तुम्हारी है--लाश की तरह।... जैसे लाश से तुम प्रेम करोगे, तो क्या रस मिलेगा? उसकी तरफ से कोई प्रत्युत्तर नहीं है--न वह नाचती, न वह गाती, न वह गुनगुनाती, न वह मस्त होकर डोलती, न वह तुम्हें धन्यवाद देती।
हालत तो उलटी है, हालत तो यह है कि जब भी तुम उससे कहते हो कि क्या विचार है आज? तो वह कहती है, सिर में दर्द है। कभी कमर में दर्द है। कि आज मैं थक गई हूं, आज क्षमा करो। कि आज मुन्ना के दांत निकल आए हैं, और वह दिन भर से रो रहा है। और बड़ा बेटा अभी तक नहीं लौटा है, पता नहीं कहां गया, आधी रात हो रही है। और तुम्हें यह सूझी है! कि रसोइया घर छोड़ कर चला गया है; कि

नौकर ने चोरी कर ली है; कि दिन भर से मैं मरी जा रही हूं काम कर-करके, घर में मेहमान ठहरे हुए हैं--और तुम्हें यह सूझी है!
मैंने सुना, एक बूढ़े ने जिसकी उम्र अस्सी साल थी, एक बुढ़िया से जिसकी उम्र पचहत्तर साल थी, शादी कर ली। अमरीका में घटना घटी, यहां तो कैसे घटेगी! यह समय तो संन्यास का है--पचहत्तर साल। पचहत्तर साल में कोई विवाह करे, तो उस पर तो जूतियों की वर्षा हो जाए। उस पर तो लानत-मलानत इतनी हो उसकी, इतना कुटे-पिटे जहां जाए वहीं, ऐसा स्वागत-सत्कार हो उसका कि वह भी जिंदगी भर याद रखे। अमरीका में संभव है।
दोनों की शादी हो गई। शादी में बहुत लोग सम्मिलित हुए, क्योंकि सब लोगों को आनंद आया कि यह बढ़िया बात है--पचहत्तर साल की बहू, अस्सी साल का दूल्हा। जो नहीं भी संबंधित थे, वे भी देखने आए थे शादी। चर्च खचाखच भरा था। और सबने फूल भी भेंट किए, सबने उपहार भी भेंट किए--अपरिचितों ने भी--कि आपका दांपत्य जीवन सुखमय हो। हिम्मतवर लोग हो, गजब की हिम्मत है! अरे आदमी तीस-पैंतीस-चालीस साल तक पहुंचते-पहुंचते टूटने लगता है, घबड़ाने लगता है; मगर गजब के जुझारू हो, रिटायर होने का नाम ही नहीं ले रहे।
मगर अब करते क्या दोनों बेचारे। शादी तो हो गई, सुहागरात मनाने भी गए मियामी बीच, जहां जाना चाहिए। जो भी औपचारिक था, सब पूरा किया। शानदार से शानदार होटल में ठहरे, जहां सुहागरात मनाने वाले जोड़े ठहरते हैं। सुंदर से सुंदर कमरा लिया। बहू पचहत्तर साल की तैयार होकर बिस्तर पर लेटी। दूल्हा राजा तैयार होकर... दांत वगैरह निकाल कर उन्होंने सब साफ किए; सिर पर जो बालों का विग वगैरह पहन रखा था, उसको ठीक से जमाया; मूंछें, जिनको काला रंग लिया था, उन पर ताव दिया। वे भी आकर बिस्तर पर लेटे। बुढ़िया का हाथ हाथ में लिया, बड़े प्रेम से दबाया, थोड़ी देर दबाए रहे दो-तीन मिनट, फिर कहा कि अब सो जाएं। तो दोनों सो गए। ऐसी सुहागरात की पहली रात बीती। दूसरी रात भी हाथ दबाया, उतनी देर नहीं। जब तीसरी रात बूढ़ा हाथ दबाने लगा, तो बुढ़िया ने करवट ली और कहा, आज मेरे सिर में दर्द है।
स्त्रियां, इस देश में तो कम से कम, कह भी नहीं सकतीं यह बात; कहना भी हमने उनसे छीन लिया, उनकी जबान भी छीन ली है। इसलिए तो पुरुषों ने वेश्याएं ईजाद कर लीं, लेकिन स्त्रियों ने वेश्य ईजाद नहीं किए। हालांकि लंदन में, न्यूयार्क में अब पुरुष वेश्याएं उपलब्ध हैं। उनको वेश्या नहीं कहना चाहिए, वेश्य कहना चाहिए। यह स्त्री आजादी के आंदोलन का परिणाम है वहां, कि जब पुरुष वेश्याओं के पास जा सकते हैं, तो स्त्रियां क्यों न वेश्यों के पास जाएं!
मेरा मतलब वेश्यों से वह नहीं है जो कि हमारे यहां ब्राह्मण, वैश्य, क्षत्रिय, शूद्र से होता है। जो अपने शरीर को बेचते हैं, वे वेश्य; जैसे वेश्या, जो अपने शरीर को बेचती है। पुरुष वेश्य उपलब्ध हैं लंदन में। जैसे स्त्रियां खड़ी होती हैं सज-धज कर खास रास्तों पर--उनके रास्ते हैं, उनके मोहल्ले हैं, रेड-लाइट इलाके--वैसे ही पुरुष भी खड़े होते हैं सज-धज कर। स्त्रियां अपनी कारें रोक कर उनको देखती हैं, पसंद करती हैं, दाम तय करती हैं, हिसाब-किताब होता है।
मगर भारत में तो यह कल्पना के बाहर है बात। स्त्रियां तो सोच ही नहीं सकती हैं। हमने उनका सोचना भी मार डाला है। लेकिन पुरुष का सोचना नहीं मरा है! और स्त्रियों का सोचना पुरुषों ने ही मारा है, इसलिए वे अपना सोचना तो क्यों मारेंगे? वे मालिक हैं। उन्होंने अपने को तो मुक्त रखा है। इससे एक दुविधा और एक अड़चन पैदा हुई है।
इसलिए मैंने कहा कि श्री मोदी का प्रश्न थोड़ा जटिल है। दुविधा यह है
कि सब पुरुष अपनी पत्नियों से ऊब जाते हैं। कोई कहता है, कोई नहीं कहता। कोई झेल लेता है, कोई नहीं झेल पाता। कोई इधर-उधर से रास्ते निकाल लेता है पीछे के दरवाजे से, कोई नहीं निकाल पाता।
लेकिन जब तुम पीछे का रास्ता निकालोगे तो अपराध-भाव पैदा होगा, गिल्ट पैदा होगा, क्योंकि वह पंडित-पुरोहितों की आवाज तुम्हारे भीतर भरी हुई है। वे कहेंगे कि तुम पाप कर रहे हो। तब घबराहट पैदा होगी, बेचैनी पैदा होगी। पत्नियां तो सोच ही नहीं सकतीं। अगर सोचेंगी भी, तो भी अपराध-भाव पैदा हो जाएगा। करना तो दूर, अगर दूसरा पुरुष उन्हें सुंदर भी मालूम

पड़ेगा, तो भी उनके भीतर बेचैनी पैदा हो जाएगी कि यह कैसे हुआ! इसलिए उन्होंने तो अपने को बिल्कुल जड़ कर लिया है, संवेदना को ही मार डाला है। इसलिए भारत की स्त्रियां एक अर्थ में आत्महीन हो गई हैं। आत्महीन उन्हें होना पड़ा है, नहीं तो अपराधी होना पड़े। अपराधी होने से आत्महीन होना अच्छा है; बिल्कुल जड़ हो जाना अच्छा है। और पुरुष आत्महीन तो नहीं हुए, लेकिन तब अपराध की भावना पकड़ती है।
दोष व्यवस्था का है, व्यक्ति का नहीं है। हमें व्यवस्था बदलनी होगी। हमें एक व्यवस्था देनी चाहिए जिसमें पुरुष और स्त्रियां साथ रहें, लेकिन इतने बंधन में नहीं जितने बंधन में हम उन्हें रख रहे हैं।
और मनोवैज्ञानिकों का यह अनुभव है पिछले पचास वर्षों का, मेरा यह अनुभव है मेरे अपने आश्रम का, जहां सैकड़ों जोड़े रह रहे हैं, कि अगर कभी-कभी कोई पुरुष किसी स्त्री के साथ दिन, दो दिन के लिए बिता दे, या कोई स्त्री किसी पुरुष के साथ दिन, दो दिन के लिए बिता दे, तो इससे उनके आपसी संबंध खराब नहीं होते--गहरे होते हैं।
यह बात उलटी लगेगी और रूढ़िग्रस्त लोगों के लिए तो महापाप की लगेगी; मगर मैं तो सत्य ही कहने को मजबूर हूं। लगे जिसको जैसा लगना हो। मैंने तो कसम खाई है कि जो सत्य है, उसे वैसा ही कहूंगा जैसा है; नग्न ही कहूंगा, उस पर वस्त्र भी नहीं डालूंगा। सत्य यह है कि अगर पति-पत्नी का संबंध गहरा करना हो, अगर सिर्फ औपचारिक न रखना हो, तो हमें इतनी स्वतंत्रता देनी चाहिए कि पुरुष कभी किसी और स्त्री के साथ जाए, तो इससे पत्नी बेचैन न हो, परेशान न हो। और अगर पत्नी कभी किसी पुरुष के साथ चली जाए, तो पति बेचैन न हो, परेशान न हो। इससे उनका दांपत्य नष्ट नहीं होगा, इससे उनके दांपत्य में पुनर्जीवन आ जाएगा।
अगर उस नवाब को दो-चार दिन दूसरी सब्जी खाने को मिली होती, और फिर भिंडी मिलती, तो फिर भिंडी में रस आता, फिर भिंडी अच्छी लगती। इससे कुछ गहराई में बाधा नहीं आएगी, इससे गहराई बढ़ेगी। इसमें अपराध-भाव की कोई भी आवश्यकता नहीं है।
श्री मोदी, मैं यह कहना चाहूंगा कि छोड़ो अपराध-भाव। अगर तुम्हें लगता
है कि तुम्हारी पत्नी तुम्हारी कामवासना को तृप्त नहीं कर पाती, तो किसकी पत्नी कर पाती है? किसका पति कर पाता है? और अगर तुम्हें कभी किसी दूसरी स्त्री में रस मालूम होता है, तो अपराध-भाव से मत भरो, अन्यथा दोहरी मुश्किलें होंगी।
अगर अपराध-भाव से भरे तुमने किसी स्त्री से कोई संबंध भी बनाया, तो उससे भी तुम्हें तृप्ति नहीं मिलेगी, क्योंकि वह अपराध-भाव बीच में खड़ा रहेगा, वह दीवाल बनी रहेगी। तुम उसको प्रेम करते समय भी जानोगे कि सिर्फ पाप कर रहे हो, गुनाह कर रहे हो, नरक में जा रहे हो; तुम अपनी पत्नी के साथ धोखा कर रहे हो।
कोई अपराध-भाव की जरूरत नहीं है। लेकिन यह अपराध-भाव तब तक तुम्हारा पीछा करेगा, जब तक तुम पत्नी को भी इतनी ही स्वतंत्रता न दोगे। इतनी ही स्वतंत्रता पत्नी को भी देनी चाहिए। वह भी मनुष्य है, जैसे तुम मनुष्य हो। न तुम समाधिस्थ हो, न वह समाधिस्थ है। न तुम बुद्ध हो, न वह बुद्ध है। न तुमने ध्यान जाना, न उसने ध्यान जाना। हां, ध्यान जान लो तो कामवासना से मुक्ति हो जाती है। जब तक ध्यान नहीं जाना है, तब तक तुम भी स्वतंत्रता से अपनी इंद्रियों को तृप्ति दो और अपनी पत्नी को भी तृप्ति देने दो।
लेकिन पुरुष को यह बात अखरती है। वह सोचता है कि मैं तो स्वतंत्रता अनुभव करूं, लेकिन पत्नी! यह बरदाश्त के बाहर है कि कोई मुझसे कह दे कि तुम्हारी पत्नी किसी और पुरुष के साथ देखी गई। तो उसके अहंकार को चोट लगती है।
अगर अहंकार को चोट लगेगी, तो फिर अपराध-भाव भी रहेगा, क्योंकि फिर तुम धोखा दे रहे हो। फिर तुम अपनी पत्नी के साथ बेईमानी कर रहे हो। फिर तुम्हें दिखावा करना होगा। फिर तुम्हें एक चेहरा पत्नी के सामने ओढ़ कर रखना पड़ेगा कि प्रेम मैं तुझे करता हूं, सिर्फ तुझे करता हूं, और किसी को नहीं। और पीछे तुम्हें दूसरा चेहरा! तुम दो चेहरे वाले आदमी हो जाओगे। दो

चेहरों के बीच में तुम कशमकश में रहोगे, दुविधा में रहोगे। तुम्हारे जीवन में द्वंद्व हो जाएगा।
और दो ही चेहरे होते तो ठीक थे, बड़ी मुश्किलें हैं, कई चेहरे हो जाएंगे।
मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी उससे कह रही थी कि देखो, जब तक मैं बरदाश्त
कर सकती हूं करती हूं, लेकिन अगर किसी दिन बात पकड़ में आ गई तो ठीक नहीं होगा। यह औरत कौन थी जो अभी रास्ते पर हमको मिली और एकदम मुस्कुरा कर तुम्हारी तरफ देखा, और तुम एकदम डर गए और तुम नीचे देखने लगे--यह औरत कौन थी?
नसरुद्दीन ने कहा कि बाई, तू मुझसे कह रही है कि वह औरत कौन थी! मैं उससे डरा हुआ हूं कि वह मुझे मिलेगी तो पूछेगी कि वह औरत कौन थी जो तुम्हारे साथ थी?
झंझट तो होने वाली है।
मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी एक दिन अपनी नौकरानी से बोली कि सुनती हो, मुझे इस बात के पक्के प्रमाण मिलने शुरू हो रहे हैं कि नसरुद्दीन अपनी टाइपिस्ट के साथ गलत संबंध बनाए हुए है।
वह नौकरानी बोली, रहने दो, रहने दो! मत कहो ये बकवास की बातें! यह सिर्फ तुम मुझसे इसलिए कह रही हो ताकि मेरे मन में ईर्ष्या पैदा हो, जलन पैदा हो।
मैं ऐसी जलने-भुनने वाली नहीं हूं। मैं ऐसी बातों में पड़ने वाली नहीं हूं।
नसरुद्दीन का प्रेम मुझसे बिल्कुल शाश्वत है। उसने खुद ही मुझसे कहा है कि मेरा प्रेम अमर है।
यह पत्नी को पता ही नहीं था।
दो ही चेहरे से काम नहीं चलेगा, बहुत चेहरे लगाने पड़ेंगे। और तब झंझटें होने वाली हैं। जितने झूठ बोलोगे, उतने उपद्रव में पड़ जाओगे। मेरी सलाह हैः जीवन को सहजता से जीओ, प्राकृतिक ढंग से जीओ। व्यवस्था भला अप्राकृतिक हो, तुम्हें कुछ अप्राकृतिक होने की जरूरत नहीं है। लेकिन अपनी पत्नी के साथ भी ईमानदारी बरतो। उसको भी कहो कि तू भी स्वतंत्र है। और इससे यह अर्थ नहीं होता कि तुम अपनी पत्नी को प्रेम नहीं करते। यह
भी भ्रांति पैदा की गई है कि अगर प्रेम है, तो एक से ही होगा। यह बात बिल्कुल फिजूल है। इस बात का कोई मूल्य नहीं है। अगर प्रेम है, तो निश्चित ही अनेक से होगा--यह मैं तुमसे कहता हूं। क्योंकि प्रेम कोई ऐसी चीज नहीं जो एक पर चुक जाए। जिसको फूलों से प्रेम है वह सिर्फ गुलाब के फूलों से ही प्रेम करेगा? चंपा के फूल उसे प्रीतिकर नहीं लगेंगे? चमेली के फूल उसे प्रीतिकर नहीं लगेंगे? कमल उसे प्रीतिकर नहीं लगेगा? अगर कोई ऐसा कहता हो, तो या तो वह विक्षिप्त है या फिर झूठ बोल रहा है। जिसे फूलों से प्रेम है, उसे बहुत तरह के फूल प्रीतिकर लगेंगे। बेले का भी अपना आनंद है और गुलाब का भी अपना आनंद है। और दोनों की अपनी खूबियां हैं।
यह हो सकता है, एक स्त्री की देह तुम्हें पसंद आए और इससे ज्यादा कुछ
भी पसंद न आए। और यह भी हो सकता है, एक स्त्री का भाव तुम्हें पसंद आए, लेकिन देह पसंद न आए। और यह भी हो सकता है, एक स्त्री की बुद्धिमत्ता पसंद आए--न भाव पसंद आएं, न देह पसंद आए। किसी स्त्री से तुम्हारा लगाव बौद्धिक हो सकता है, तात्विक हो सकता है। तुम उससे चर्चा कर सकते हो गहराइयों की। तुम उससे कला की, धर्म की, अध्यात्म की चर्चा कर सकते हो। और एक स्त्री के साथ तुम्हारा संबंध केवल दैहिक हो सकता है, क्योंकि उसकी देह सुंदर है, सानुपाती है। और एक स्त्री के साथ तुम्हारा संबंध बड़ा रहस्यपूर्ण हो सकता है कि तुम तय ही न कर पाओ कि किस कारण से है, लेकिन कुछ है, कुछ रहस्यपूर्ण जो तुम्हें जोड़े हुए है। और यही बात पुरुषों के संबंध में सही है।
जिस दिन मनुष्य प्राकृतिक होगा, जिस दिन समाज इन अतीत की व्यर्थ वर्जनाओं से मुक्त हो जाएगा, अंधविश्वासों से, जड़शृंखलाओं से--उस दिन हम इन सारे सत्यों को स्वीकार करेंगे।
अब यह हो सकता है कि तुम्हारी पत्नी तुम्हारे जीवन में एक अनिवार्यता हो। उसने तुम्हें जैसी सुविधा दी हो, तुम्हारे जीवन को जैसी व्यवस्था दी हो, तुम्हारे जीवन को जैसा स्वास्थ्य दिया हो, तुम्हारी उसने जितनी चिंता की हो, फिक्र की हो--उतना कोई न करे। लेकिन इससे यह तय नहीं होता कि इससे

तुम्हारी कामवासना को वह तृप्त कर पाए। और यह हो सकता है, जो स्त्री तुम्हारी कामवासना को तृप्त करे, उससे तुम्हें यह कुछ भी न मिल सके। हो सकता है, सुबह उठ कर तुमको ही चाय बना कर उसको पिलानी पड़े। ज्यादा संभावना यही है। हो सकता है, बर्तन वह तुमसे धुलवाए, कपड़े तुमसे धुलवाए।
व्यक्ति के बहुआयाम हैं, और उसके सब आयाम तृप्ति मांगते हैं। अपराध
का भाव जबरदस्ती थोपा गया भाव है। अपराध के भाव से बिल्कुल मुक्त हो जाओ। वह व्यवस्था-जन्य है। लेकिन उससे मुक्त होने में सबसे जरूरी कदम यह है कि अपनी पत्नी को भी मुक्ति दो। तुम्हारा जिसके साथ इतना निकट संबंध है, तुम मुक्त रहो और उसे मुक्त न करो, तो कैसे तुम अपराध से मुक्त हो सकोगे? उसे भी मुक्ति दो। उसे भी कहो कि तू भी मुक्त है।
और झूठ न बोलो, चेहरे मत ओढ़ो, मुखौटे मत लगाओ--सचाइयां प्रकट करो। और मैं तुमसे यह कहता हूं कि सचाइयां भला एकदम से तूफान खड़ा कर दें, लेकिन वे तूफान आते हैं और चले जाते हैं। और सचाइयों से आए हुए तूफान नुकसान नहीं करते, जड़ों को और मजबूत कर जाते हैं। यह हो सकता है कि झूठ बड़ा सुविधापूर्ण मालूम पड़े। पत्नी को कभी कहो ही मत कि तुम्हारा किसी और स्त्री से कोई नाता-संबंध है। लेकिन कभी न कभी पता चल जाएगा। और जिस दिन पता चलेगा, उस दिन सारी चीजें टूट जाएंगी। बजाय इसके कि पता चले, यह बेहतर है कि तुम कहो। जिसको तुमने प्रेम किया है, यह उचित है कि तुम उसके प्रति कम से कम अपने सत्य को स्वीकार करो। और तुम जितना सत्य अपने लिए चाहते हो, जितनी स्वतंत्रता अपने लिए चाहते हो, उसे भी दो। फिर कोई अपराध-भाव पैदा नहीं होगा।
और स्मरण रखो कि अगर तुम दोनों एक-दूसरे को सत्य दे सको, और दोनों एक-दूसरे को स्वतंत्रता दे सको, तो तुम्हारा संबंध निरंतर गहरा होगा, निरंतर उसमें नये-नये फूल खिलेंगे। और तुम चकित होओगे यह जान कर कि सारी अतीत की धारणाएं कितनी भ्रांत हैं, जो यह कहती हैं कि एक के साथ ही संबंध रखना, अगर एक के साथ संबंध नहीं रखा तो संबंध विकृत हो जाएगा, नष्ट हो जाएगा, खराब हो जाएगा; फिर जोड़ा नहीं जा सकता। तुम्हें यही समझाया गया है।
यह बात बिल्कुल ही गलत है। मनोवैज्ञानिक सत्य कुछ और है। मनोवैज्ञानिक सत्य यह है कि मनुष्य को विभिन्न स्वादों की रुचि है। इसमें कुछ बुरा भी नहीं है। यह केवल मनुष्य की बुद्धिमत्ता का लक्षण है। लेकिन इस बुद्धिमत्ता को हम मौका नहीं देते। हमारी छाती पर पंडित-पुरोहित बैठे हुए हैं। जमाने भर की मूढ़ताएं हम ढो रहे हैं।
लेकिन यह मैं तुम्हें अंततः कह देना चाहूंगा कि दूसरी स्त्री जो तुम्हें आज कामवासना तृप्त करती मालूम हो रही है, कल वह भी नहीं मालूम होगी; परसों तीसरी स्त्री की जरूरत पड़ेगी; फिर चौथी स्त्री की जरूरत पड़ेगी; फिर पांचवीं स्त्री की जरूरत पड़ेगी--क्योंकि कामवासना तृप्त होना जानती ही नहीं। कोई वासना तृप्त होना नहीं जानती। वासना दुष्पूर है। बुद्ध का यह वचन सदा स्मरण रखने योग्य हैः वासना दुष्पूर है। वासना भरती ही नहीं कभी। लाख भरो, खाली की खाली रह जाती है।
एक सूफी कहानी है। एक फकीर ने एक सम्राट के द्वार पर भिक्षापात्र किया। संयोग की बात थी, सम्राट दरवाजे से निकल रहा था, सुबह अपने बगीचे में घूमने को। उस भिखारी ने कहा, मालिक, क्या मैं कुछ मांग सकता हूं?
सम्राट ने कहा, हां, क्या मांगना चाहते हो?
उसने कहा, लेकिन मेरी एक शर्त है। जो मेरी शर्त पूरी करे, उससे ही मैं अपनी मांग कर सकता हूं।
सम्राट ने कहा, क्या शर्त है? भिखारी मैंने बहुत देखे, लेकिन सशर्त भिखारी तुम पहली बार हो। क्या तुम्हारी शर्त है?
सम्राट भी उत्सुक हुआ।
उस भिखारी ने कहा, मेरी शर्त यह है कि अगर कुछ भी आप मुझे देना चाहें,
तो मैं लेने को राजी हूं, लेकिन मेरा भिक्षापात्र पूरा भरना पड़ेगा। सम्राट भी हंसने लगा। उसने कहा, तूने मुझे भिखारी समझा है क्या?
सिर्फ उस भिखारी को दिखाने के लिए कि मैं कौन हूं, उसने अपने वजीर को कहा, जो पीछे आ रहा था, कि इसके भिक्षापात्र को स्वर्ण अशर्फियों से भर दो!

उस फकीर ने कहा, एक बार पुनः सोच लें। मेरी शर्त याद रखें। फिर मैं शर्त पूरी हुए बिना हटूंगा नहीं यहां से। मेरा भिक्षापात्र भरना चाहिए। सम्राट ने कहा, पागल, चुप रह! तेरा भिक्षापात्र, जरा सा भिक्षापात्र लिए खड़ा है, इसको हम नहीं भर सकेंगे?
स्वर्ण अशर्फियां डाली गईं, और सम्राट हैरान हुआ कि यह तो झंझट हो गई। जैसे ही स्वर्ण अशर्फियां उसमें गिरें, वे न मालूम कहां खो जाएं! भिक्षापात्र खाली का खाली!
मगर सम्राट भी जिद्दी था, और एक भिखारी से हारे! सम्राटों से नहीं हारा था। हार उसने जानी नहीं थी जिंदगी में। जीत और जीत ही उसका एकमात्र अनुभव था। उसने कहा, आज मैं हूं और यह भिखारी है। सारा खजाना डाल दो! खजाने अकूत थे, मगर सांझ होते-होते खाली हो गए। हीरे-जवाहरात डाले गए, मोती डाले गए, स्वर्ण-मुद्राएं डाली गईं, चांदी की मुद्राएं डाली गईं। सब खत्म होता चला गया, सब खत्म होता चला गया। सांझ होते-होते सम्राट की हालत भिखारी की हो गई, और सारी राजधानी इकट्ठी हो गई यह देखने को। खबर आग की तरह फैल गई कि एक भिखारी, पता नहीं क्या, कैसा जादू है उसके भिक्षापात्र में... ! आखिर सम्राट सांझ को उसके पैरों पर गिर पड़ा और उसने कहा, मुझे क्षमा करो। मैं तुम्हें पहचान नहीं पाया। मैं तुम्हारे इस जादू से भरे पात्र को भी नहीं पहचान पाया। मेरे अहंकार को माफी दे दो। मुझ पर दया करो। मुझे यह शर्त स्वीकार नहीं करनी थी। शर्त सुन कर ही समझ लेना था कि कुछ गड़बड़ होगी। क्या मैं पूछ सकता हूं... मैं हार गया, मैं शर्मिंदा हूं अपनी अकड़ के लिए, लेकिन क्या मैं इतना जान सकता हूं--क्योंकि यह जीवन भर मेरे मन में जिज्ञासा रहेगी--इस भिक्षापात्र का जादू क्या है?
उस भिखारी ने कहा, इसमें कोई जादू नहीं है। इसे मैंने आदमी की वासनाओं
से निर्मित किया है। इसमें ताने-बाने आदमी की वासनाओं के बुने हैं। यह आदमी का हृदय है, यह आदमी का मन है। इसमें भिक्षापात्र में कुछ खूबी नहीं है। यह भिक्षापात्र साधारण है। बस इसके ताने-बाने विशिष्ट हैं। वे ही ताने-बाने जिनसे तुम्हारा हृदय बना है। तुम्हारा भिक्षापात्र भरा?
जैसे बिजली कौंध गई! सम्राट को दिखाई पड़ा कि निश्चय ही उसका भिक्षापात्र भी खाली रह गया है। जीवन तो हो गया, अभी भी दौड़ जारी है। मौत करीब आने लगी, दौड़ जारी है। हाथ खाली के खाली हैं। इतना बड़ा साम्राज्य है, मगर तृप्ति कहां!
तो श्री मोदी स्मरण रखना, कोई स्त्री तुम्हारी कामवासना को तृप्त नहीं कर पाएगी। वासनाएं तृप्त होतीं ही नहीं। इसलिए इस भ्रांति में मत रहना कि मैं यह कह रहा हूं कि इस तरह तुम्हारी वासना तृप्त हो जाएगी। इतना ही होगा कि इससे तुम्हें एक सजगता मिलेगी कि कोई स्त्री तुम्हारी वासना को तृप्त नहीं कर सकती।
इस विवाह ने एक धोखा पैदा कर दिया है। विवाह का सबसे बड़ा धोखा जो है...
।
मैं दुनिया से विवाह को विदा कर देना चाहता हूं। और उसका कारण तुम जान
कर चकित होओगे। उसका कारण यह है कि अगर दुनिया से विवाह विदा हो जाए, तो इस दुनिया को धार्मिक होने के लिए रास्ता खुल जाए। विवाह के कारण यह भ्रांति बनी रहती है कि इस स्त्री में मैं उलझा हूं, इससे फंसा हूं, इसलिए वासना तृप्त नहीं हो रही! काश मुझे मौका होता, इतनी सुंदर स्त्रियां चारों तरफ घूम रही हैं, तो कब की वासना तृप्त हो गई होती।
वह भ्रांति है। मगर वह भ्रांति बनी रहती है विवाह के कारण। दूसरे की स्त्री सुंदर मालूम पड़ती है। दूसरे के बगीचे की घास हरी मालूम पड़ती है। और दूसरे की स्त्री जब घर से बाहर निकलती है, तो बन-ठन कर निकलती है, तुम्हें तो उसका बाहरी आवरण दिखाई पड़ता है। तुम्हारी स्त्री भी दूसरे को सुंदर मालूम पड़ती है।
मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन घर आया और उसने देखा कि चंदूलाल मारवाड़ी उसकी पत्नी को आलिंगन कर रहा है। वह एकदम ठिठका खड़ा रह गया। चंदूलाल बहुत घबड़ाया। चंदूलाल ने समझा कि मुल्ला एकदम गुस्से में आ जाएगा, बंदूक उठा लेगा!

लेकिन न उसने बंदूक उठाई, न गुस्से में आया। चंदूलाल के कंधे पर धीरे
से हाथ मारा और कहा, जरा मेरे पास आओ। बगल के कमरे में ले गया और बोला, मेरे भाई, मुझे तो करना पड़ता है, तुम क्यों कर रहे हो? तुम्हें क्या हो गया? तुम्हारी बुद्धि मारी गई है? मेरी तो मजबूरी है, क्योंकि मेरी पत्नी है। सो रोज मुझे आलिंगन भी करना पड़ता है और रोज कहना भी पड़ता है कि मैं तुझे बहुत प्रेम करता हूं। बस तुझे ही चाहता हूं, जी-जान से तुझे चाहता हूं मेरी जान, जनम-जनम तुझे चाहूंगा। मगर तुझे क्या हो गया मूरख? और हमने तो सुना था कि मारवाड़ी बड़े होशियार होते हैं। मगर नहीं, तू निपट गधा है। और तेरी जैसी सुंदर पत्नी को छोड़ कर तू यहां क्या कर रहा है? अरे मूरख, मैं तेरी पत्नी के पास से चला आ रहा हूं।
चंदूलाल ने कहा कि भैया, तूने मुझे भी मात कर दिया। उस औरत के डर से मैं कहां-कहां नहीं भागा फिरता हूं! शराब पीता हूं, फालतू दफ्तर में बैठा रहता हूं, फिजूल ताश खेलता हूं, शतरंज बिछाए रखता हूं कि जितनी देर बच जाऊं उस चुड़ैल से उतना अच्छा! तू उसके पास से चला आ रहा है! कहते क्या हो नसरुद्दीन? मैं तो सदा सोचता था कि तुम एक बुद्धिमान आदमी हो। तुमने उसमें क्या देखा? उस मोटी थुलथुल औरत में तुमको क्या दिखाई पड़ता है? एक दिन स्टेशन पर वजन तुलने की मशीन पर चढ़ी थी, तो मशीन में से आवाज आईः एक बार में एक, दो नहीं। तुम्हें उसमें क्या दिखाई पड़ रहा है?
मगर यही होता है। विवाह ने एक भ्रांति पैदा कर दी है। विवाह ने खूब धोखा पैदा कर दिया है। विवाह से ज्यादा अधार्मिक कृत्य दूसरा नहीं है, मगर धर्म के नाम पर चल रहा है! अगर लोग मुक्त हों, तो जल्दी ही यह बात उनकी समझ में आ जाए कि न तो कोई पुरुष किसी स्त्री की वासना तृप्त कर सकता है, न कोई स्त्री किसी पुरुष की वासना तृप्त कर सकती है। लेकिन यह अनुभव से ही समझ में आ सकता है। जब एक से ही बंधे रहोगे तो यह कैसे समझ में आएगा?
और जिस दिन यह समझ में आ जाता है, उसी दिन जीवन में ध्यान की शुरुआत है। उसी दिन जीवन में क्रांति है। उसी दिन तुम वासना के पार उठना शुरू होते हो। ध्यान है क्या? ध्यान यही है कि मन सिर्फ दौड़ाता है, भरमाता है, भटकाता है मृग-मरीचिकाओं में--और आगे, और आगे... । क्षितिज की तरह, ऐसा लगता है--अब तृप्ति, अब तृप्ति, जरा और चलना है; थोड़े और! और क्षितिज कभी आता नहीं, मौत आ जाती है। तृप्ति आती नहीं, कब्र आ जाती है। ध्यान इस बात की सूझ है कि इस दौड़ से कुछ भी नहीं होगा। ठहरना है, मन के पार जाना है, मन के साक्षी बनना है।
श्री मोदी, अगर सच में ही चाहते हो कि वासना से तृप्ति, मुक्ति, वासना
के जाल से छुटकारा हो जाए, तो न तुम्हारी पत्नी दे सकी है, न किसी और की पत्नी दे सकेगी, न कोई वेश्या दे सकेगी, कोई भी नहीं दे सकता है। यह कृत्य तो तुम्हारे भीतर घटेगा। यह महान अनुभव तो तुम्हारे भीतर शांत, मौन, शून्य होने में ही संभव हो पाता है।
मगर जब तक यह न हो, तब तक मैं दमन के पक्ष में नहीं हूं। मैं कहता हूं,
तब तक जीवन को जीओ, भोगो। उसके कष्ट भी हैं, उसके क्षणभंगुर सुख भी हैं; कांटे भी हैं, फूल भी हैं वहां; दिन भी हैं और रातें भी हैं वहां--उन सबको भोगो। उसी भोग से आदमी पकता है। और उसी पकने से, उसी प्रौढ़ता से, एक दिन छलांग लगती है ध्यान में।
अपनी पत्नी को भी कहो कि सचाई क्या है। उससे भी पूछो कि उसकी सचाई क्या है। जिनसे हम जुड़े हैं, कम से कम उनके प्रति हमें प्रामाणिक होना चाहिए, आथेंटिक होना चाहिए। और उनको भी मौका देना चाहिए कि वे प्रामाणिक हों। प्रेम का पहला लक्षण यह है कि जिससे हमारा प्रेम का नाता है, उसके साथ हमारी प्रामाणिकता होगी; हम उससे सत्य कहेंगे। और सत्य शुरू में चाहे कितना ही कड़वा मालूम पड़े, पीछे सदा मीठा है।
बुद्ध ने कहा हैः झूठ पहले मीठा, पीछे जहर। और सत्य पहले कड़वा, फिर पीछे अमृत।
सत्य से मत डिगना, किसी कीमत पर मत डिगना, कोई समझौता सत्य के संबंध में मत करना। और अपने सत्य को जीना, क्योंकि यह जीवन तुम्हारा है, तुम्हारी पत्नी का नहीं। और पत्नी का जीवन उसका है, तुम्हारा नहीं। दोनों जीओ। दोनों अनुभव करो। दोनों पहचानो। दोनों परखो। और धीरे-धीरे तुम पाओगे

कि जब तक वासना है, तब तक हम बचकाने हैं, तब तक हमारे जीवन में प्रौढ़ता नहीं है।
मगर हम बचकाने रह जाते हैं। उसका कारण है। हमको अनुभव ही नहीं करने दिया जाता। अनुभव के बिना कोई कभी प्रौढ़ नहीं होता। उम्र तो बढ़ जाती है, मगर मन बचकाना रह जाता है। पहले महायुद्ध में पहली बार मनोवैज्ञानिकों को यह पता चला कि आदमी की औसत उम्र बारह साल है। पहली दफा बड़े पैमाने पर इस बात की जांच-पड़ताल की गई कि लोगों की मानसिक उम्र क्या है? तो बहुत हैरानी की बात थी, चकित हो जाने वाली बात थी--अस्सी साल के बूढ़े की भी उम्र बारह साल है! मानसिक उम्र इससे ज्यादा नहीं बढ़ पाती।
यह बड़ी दुर्घटना है। तो फिर खेल-खिलौनों में हमारा रस रहता है। और इसको हम दमन करते जाएं, तो फिर वह रस हमारा जाएगा नहीं, वह बना ही रहेगा। फिर हम क्या-क्या तरकीबें नहीं निकालते! फिर अश्लील साहित्य है, पोर्नोग्राफी की किताबें हैं, पत्रिकाएं हैं--गंदी, बेहूदी। गीता में और बाइबिल में छिपा कर लोग प्लेबॉय देख रहे हैं। किसी को पता भी न चल जाए! अश्लील फिल्में हैं। घरों में छिप-छिप कर लोग, मित्रों को इकट्ठा कर-कर के अश्लील और नंगी फिल्में देख रहे हैं। यात्राओं पर लोग जाते हैं, नाम होता है व्यवसाय का, लेकिन मामला होता है केवल वेश्याओं का। काम नहीं भी होता, तो भी टिके रहते हैं व्यवसाय के लिए।
एक व्यक्ति कलकत्ता से बंबई आया। आया था तीन दिन के लिए, तीन सप्ताह बीत गए। तार भेजता रहे कि खरीद कर रहा हूं, खरीद कर रहा हूं, अभी खरीद जारी है।
जब तीन महीने बीतने लगे... शंकित तो पत्नी पहले ही से हो गई थी। पत्नी शंकित तो पहले ही से होती हैं। कोई शंकित होने के लिए कारण की जरूरत नहीं होती। विवाह पर्याप्त है शंका के लिए। विवाह इतना अप्राकृतिक है, इसलिए शंका बिल्कुल स्वाभाविक है। इसलिए पत्नियों को कारण खोजने की जरूरत नहीं पड़ती, शंका तो रहती ही है, कारण तो फिर अपने आप मिल जाते हैं। कारण तो मिल ही जाएंगे। मिलने ही चाहिए। कारणों के संबंध में पत्नियां निश्चिंत रहती हैं कि वे तो खोज लिए जाएंगे, उसमें कोई अड़चन नहीं है, देर-अबेर की बात है। क्योंकि विवाह की संस्था इतनी अप्राकृतिक है।
शंकित तो थी ही, तीन महीने बाद उसने भी तार किया कि अब ठीक है, तुम खरीद जारी रखो। तुम जो वहां खरीद रहे हो, मैंने यहां बेचना शुरू कर दिया है।
वह आदमी भागा हुआ घर आया। क्योंकि वह जो खरीद रहा था, अगर वही बेचना शुरू कर दिया है, तो मारे गए।
पत्नी ने कहा, कैसे जल्दी से आ गए अब? खरीद नहीं करनी? कब तक खरीदोगे तुम, फिर मैं बेचूंगी भी यहां। वही, जो तुम खरीदोगे, वही यहां बेचूंगी। खरीद-खरीद कर इकट्ठा करते रहोगे, बेचना भी चाहिए न!
शंका स्वाभाविक है। संदेह स्वाभाविक है। यह तथाकथित हमारा प्रेम बड़े संदेहों से भरा हुआ है।
मुल्ला नसरुद्दीन रात सपने में बड़बड़ा गयाः कमला! कमला! और पत्नियां
तो जागती ही रहती हैं। रात तो बिल्कुल बैठी ही रहती हैं कि क्या बकता है रात, देख लें। उसी वक्त हिलाया, कहा, यह कमला कौन है?
मगर पति भी होशियार हैं, नींद में भी इतनी होशियारी रखते हैं। उसने कहा, कोई नहीं, घबड़ा न तू। यह एक घोड़ी का नाम है। रेसकोर्स की एक घोड़ी है। उस पर मैं दांव लगाने की सोच रहा हूं, वही मेरे दिमाग में चल रही है।
मगर पत्नी को इतनी आसानी से भरोसा तो नहीं आता। उसने कहा, ठीक है।
शाम को मुल्ला के दफ्तर उसने फोन किया कि वह रेसकोर्स की घोड़ी कमला ने फोन किया है, आपको पूछ रही है कि कहां हैं? क्या पता दे दूं?
कब तक छिपाओगे? कहां तक छिपाओगे? बेहतर है, कह दो। बेहतर है, साफ-साफ करो। और इतनी प्रीति तो दिखलाओ, इतना स्नेह तो जतलाओ, इतना भरोसा तो दिखलाओ। और स्मरण रखो कि दूसरे को भी इतनी ही स्वतंत्रता दो। स्वतंत्रता के फल मीठे हैं, सत्य के फल मीठे हैं। लेकिन अंत में। शुरू में कड़वे हैं। शुरू की कड़वाहट से मत डर जाना। और अंततः तुम्हारे ये सारे अनुभव तुम्हें ध्यान में ले आएंगे।

यहां मैंने अपने आश्रम में सारी तरह की चिकित्साओं की व्यवस्था की है। यहां कोई सौ चिकित्सा के समूह काम कर रहे हैं। सौ चिकित्सा पद्धतियां काम कर रही हैं। उनमें सब है चिकित्सा पद्धतियों में, जिसका जो रोग हो, जिसका जहां मन अटका हो... । जैसे अगर किसी का मन कामवासना में अटका है, तो उसे मैं तंत्र की चिकित्सा पद्धति में भेजता हूं। तंत्र से गुजर कर ही फिर वह ध्यान कर पाता है। उसके पहले नहीं कर पाता। क्योंकि वह ध्यान करे क्या? ध्यान करे कैसे?
यहां भारतीय मित्र आते हैं, वे मुझे लिखते हैं कि आप कहते हैं ध्यान करो, हम ध्यान करने बैठते हैं, पास में कोई सुंदर स्त्री ध्यान कर रही है, हमारा दिल वहीं-वहीं जाता है।
जाएगा ही। भारतीय शुद्ध संस्कृति का यह लक्षण है। और जाएगा कहां? सदियों से दबाया है, तो और जाएगा कहां? तुम्हारे पास में ही बैठा हुआ जो पाश्चात्य है, उसका कोई मन उस स्त्री में नहीं जा रहा है; क्योंकि स्त्री का काफी अनुभव हो चुका।
यह जान कर तुम चकित होओगे कि यहां जो मेरे संन्यासी हैं पश्चिम से आए हुए, उनका कोई रस स्त्री-पुरुष में नहीं है--वैसा रस जैसा कि भारतीयों का है, कतई नहीं है। सहज, सामान्य... । जैसे कोई चौबीस घंटे भोजन के संबंध में सोचे तो पागल है; और दिन में दो बार भोजन करे तो पागल नहीं है। किसी से तुम्हारा स्नेह नाता हो, प्रेम का संबंध हो, तो इसमें कोई विक्षिप्तता नहीं है। लेकिन कोई चौबीस घंटे बस यही-यही सोचता रहे, स्त्रियों की ही कतार लगी रहे, तो फिर रुग्णता है।
मगर तथाकथित संस्कृति और तथाकथित धर्म और तथाकथित महात्माओं ने तुम्हें जो दिया है, वह यही उनकी वसीयत है। इस वसीयत में तुम सड़ रहे हो। इस सड़ांध से तुम्हें मुक्त करना चाहता हूं, इसलिए मैं दुश्मन मालूम पड़ता हूं। मेरे पास लोग आते हैं, निजी तौर से स्वीकार करते हैं कि आप जो कहते हैं ठीक है, आप जो कहते हैं शत प्रतिशत ठीक है; लेकिन उनमें से एक भी सामूहिक वक्तव्य नहीं देता मेरे पक्ष में।
मेरे विपक्ष में लिखने वाले हजारों लोग हैं। मेरे पक्ष में लिखने वाले मुश्किल से कोई। मामला क्या है? और जो भी मेरे पक्ष में लिखते हैं, वे मेरे संन्यासी हैं। दूसरा कोई मेरे पक्ष में नहीं लिखता। दूसरे मुझे पत्र लिखते हैं कि आप जो कहते हैं, बिल्कुल ठीक है; उचित कहते हैं; लेकिन हम इसको सार्वजनिक रूप से स्वीकार नहीं कर सकते; क्योंकि हम इसको सार्वजनिक रूप से स्वीकार करें, तो हमारी प्रतिमा धूमिल होती है।
यहां आने की हिम्मत नहीं पड़ती। यहां लोग आते हैं, छिप कर आते हैं। श्री मोदी को तो मैं हिम्मतवर कहूंगा। वे प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं। मोदी मिल्स के मालिक हैं। मैं उनके साहस का धन्यवाद करता हूं कि उन्होंने हिम्मतपूर्वक यह प्रश्न पूछा। अब और थोड़ी हिम्मत जुटाओ, अपनी पत्नी को भी साफ करो। अपनी पत्नी को भी यहां ले आओ। अगर तुम साफ न कर सको तो मैं साफ करूंगा। दोनों मुक्ति में जीओ। और तुम पाओगे, तुम्हारा प्रेम इस मुक्ति में बढ़ेगा, फलेगा, गहरा होगा। और जल्दी ही तुम दोनों ही ध्यान की तरफ अपने आप आकर्षित हो जाओगे।
अगर व्यक्ति सहज-स्वाभाविक जीए, तो ध्यान अनिवार्य परिणति है, अपरिहार्य। जीवन की प्रत्येक नदी जैसे सागर की तरफ ले जाती है, ऐसे जीवन की प्रत्येक वासना ध्यान की तरफ ले जाती है, अगर हम वासना को कहीं रोक न दें। रोक दें तो तालाब बन जाती है। तालाब बना तो सागर से संबंध टूट गया। फिर सड़ना है। फिर कीचड़ है। फिर गंदगी है। फिर गति नहीं। फिर प्रवाह नहीं। मैं चाहता हूं तुम सरिताओं की तरह होओ, सरोवरों की तरह नहीं; ताकि सागर को पाया जा सके। सागर को पाने में ही जीवन की धन्यता है, सौभाग्य है।

तीसरा प्रश्नः ओशो! आपके विवाह-संबंधी विचार सुन-समझ कर विवाह करने
की इच्छा ही उड़ गई; परंतु ऐसे महत्वपूर्ण अनुभव से गुजरे बगैर रहा भी नहीं जा सकता। मुझ त्रिशंकु का मार्ग-दर्शन करें!

कृष्ण वेदांत! मेरी बातों में पड़ना मत। विवाह करो! क्योंकि कुछ लोग बिना कांटों से गुजरे फूलों का अनुभव नहीं कर पाते। दूसरे के अनुभव से समझ लेना, उसके लिए बड़ी गहन प्रतिभा चाहिए, जो कि बहुत ही दुर्लभ है। अपने ही अनुभव से लोग नहीं समझ पाते, तो दूसरे के अनुभव से क्या समझेंगे!
ययाति की कथा है उपनिषदों में। ययाति सौ वर्ष का हुआ--सम्राट था--मौत आई। प्यारी कहानी है। कितनी ही बार मैंने कही, फिर भी मैं थकता नहीं। उस कहानी में बड़ा रस और बड़ा अर्थ है। ययाति सौ साल का बूढ़ा है। उसकी सौ पत्नियां हैं, सौ बेटे हैं। वह एकदम पैरों पर गिर पड़ा मौत के--महा सम्राट है--और गिड़गिड़ाने लगा कि इतने जल्दी मुझे मत ले जाओ। अभी तो मेरी कोई भी इच्छा पूरी नहीं हुई। सौ पत्नियां, सौ बेटे, बड़ा साम्राज्य, सब जो चाहिए आदमी को, जो आदमी मांगे, कल्पना करे, सब उसके पास; मगर गिड़गिड़ाने लगा मौत के सामने कि अभी नहीं, अभी जल्दी है! मैंने तो सोचा ही नहीं कि तुम आती होओगी। मुझ पर दया करो।
मौत ने कहा कि मजबूरी है। मुझे किसी को तो ले ही जाना पड़ेगा। तो तुम एक काम करो, तुम्हें गिड़गिड़ाता देख कर मुझे दया आती है; तुम्हारा कोई बेटा राजी हो जाने को, तो मैं उसे ले जाऊं तुम्हारी जगह। मगर किसी को तो मुझे ले जाना ही पड़ेगा।
ययाति ने अपने सौ बेटे इकट्ठे किए, और उनसे कहा, मेरे बेटो, तुमने सदा मुझसे कहा है कि आपके लिए हम अपनी जान निछावर कर सकते हैं, आज मौका आ गया। मौत कहती है कि मैं बच सकता हूं अभी, अगर मेरा कोई बेटा साथ जाने को तैयार हो। तुममें से कोई भी साथ जाने को खड़ा हो जाए।
सब एक-दूसरे की तरफ देखने लगे। बेटे भी कुछ कम उम्र के नहीं थे--कोई अस्सी साल का था, कोई सत्तर साल का था, कोई पचहत्तर साल का था, कोई पैंसठ साल का था। वे सब एक-दूसरे की तरफ देखने लगे कि भई, तुम बड़ी हांकते थे कि जान दे दूंगा! अरे, पिता के लिए सब कुर्बान कर दूंगा! अब मौका आ गया, अब उठो। मगर सब एक-दूसरे की ताका-झांकी कर रहे हैं। कोई नीचे देख रहा है, कोई इधर-उधर देख रहा है, मगर कोई उठता नहीं। सबसे छोटा बेटा, जिसकी उम्र केवल बीस साल थी, वह उठ कर खड़ा हो गया। उसने मृत्यु से कहा, मुझे ले चलो।
मृत्यु ने कहा कि मुझे जितनी दया तेरे पिता पर आती है, उससे ज्यादा दया तुझ पर आ रही है। तू तो अभी बीस ही साल का है। अरे पागल, तुझे यह दिखाई नहीं पड़ता कि तेरे पिता सौ साल के होकर भी गिड़गिड़ा रहे हैं कि मुझे कुछ दिन और जिंदा रहने दो? और तू तो अभी बीस साल का है--न जीवन जाना, न पहचाना। अरे अबोध, नासमझ, तू मरने को तैयार है! तुझे होश है तू क्या कर रहा है? फिर से सोच! पुनः विचार कर!
उसने कहा, मुझे कोई विचार नहीं करना है। मैं इसलिए नहीं जा रहा हूं कि मेरे पिता बच जाएं; मैं तो यह देख कर जा रहा हूं कि अगर सौ साल की उम्र तक भी पिता को अभी भी कुछ तृप्ति नहीं मिली, तो मुझे क्या खाक मिलेगा! मैं तो यह देख कर जा रहा हूं कि मेरे और निन्यानबे भाई हैं, इनमें से किसी को तृप्ति नहीं मिली--कोई अस्सी साल का है, कोई पचहत्तर साल का है, कोई सत्तर साल का है--तो मुझे क्या मिल जाएगा! मैं तो इनका अनुभव देख कर ही समझ गया कि यहां आपाधापी व्यर्थ है। मुझे ले चलो। मैं तैयार हूं।
कहानी कहती है, वह बेटा उसी क्षण मोक्ष को उपलब्ध हो गया, मुक्ति को-- नहीं किसी साधना से, बल्कि सिर्फ इस बोध से। मृत्यु मोक्ष बन गई, सिर्फ इस बोध से!
और ययाति का क्या हुआ पता है? सौ साल बाद फिर जब मौत आई, तो वह फिर गिड़गिड़ाने लगा, फिर पैर पर गिर पड़ा कि अभी तो मेरी कोई इच्छा पूरी नहीं हुई। फिर मेरे एक बेटे को ले जाओ। अब तो उसे तरकीब भी हाथ लग गई थी।
ऐसे, कहते हैं, मौत दस बार आई, और हर बार एक बेटे को लेकर गई। मौत ने भी जिद कर ली थी कि देखें कब तक यह चलता है। एक हजार साल बीतने पर ययाति ने कहा कि हां, अब मैं चलने को राजी हूं। मैं पागल था। मेरा पहला बेटा, जो बीस साल में जाने को राजी हुआ, अदभुत उसकी प्रतिभा थी, अदभुत उसकी क्षमता थी। मैं हजार साल धक्के खाकर समझ पाया। वह बिना धक्के खाए सम्हल गया। वह हमें देख कर समझ गया।

प्रतिभा का अर्थ यह होता है कि तुम दूसरे को भी देख कर बोध से भर जाते हो। यही बुद्ध को हुआ। रास्ते पर उन्होंने देखा एक आदमी को बीमार--वे खुद बीमार न पड़े थे तब तक--उन्होंने पूछा, यह आदमी को क्या हुआ? यह क्यों खांस रहा है, क्यों खकार रहा है?
किसी ने कहा, यह बीमार है।
बुद्ध ने कहा, क्या मैं भी बीमार पड़ सकता हूं?
सारथी ने कहा कि पड़ तो सकते हैं। कोई भी बीमार पड़ सकता है। देह है तो बीमारी है।
बुद्ध उदास हो गए।
उसने कहा, आपको उदास होने की कोई जरूरत नहीं। आप बीमार नहीं हैं।
उन्होंने कहा, नहीं हूं, लेकिन अगर हो सकता हूं तो हो ही गया।
इसे कहते हैं प्रतिभा।
और तब बुद्ध ने एक बूढ़े को देखा और पूछा कि यह कौन है? इसको क्या हो गया? यह क्यों लाठी टेक कर चल रहा है? इसकी कमर क्यों झुक गई है?
उन्होंने कहा, यह बूढ़ा हो गया। हर आदमी को बूढ़ा होना होता है।
उन्होंने पूछा, क्या मैं भी बूढ़ा हो जाऊंगा?
सारथी ने कहा, निश्चित ही। जो भी जन्मा है, उसे बूढ़ा होना होगा।
तो बुद्ध ने कहा, वापस करो रथ घर! वे जा रहे थे युवक महोत्सव में भाग लेने। उन्होंने कहा, अब मैं युवक महोत्सव में क्या खाक भाग लूं! जहां सबको बूढ़ा होना है, वहां कैसा युवक महोत्सव? मैं बूढ़ा हो गया।
सारथी ने कहा, आप बातें कैसी करते हैं? कैसी उलटी-सीधी बातें करते हैं? आप बूढ़े कैसे हो गए? अभी-अभी जवान थे, अभी-अभी बूढ़े हो गए?
बुद्ध ने कहा, इसको बूढ़ा देखा, और जब सभी को बूढ़ा होना है तो देर-अबेर
की बात है।
और तभी एक मुर्दा देखा। और बुद्ध ने पूछा, इसको क्या हुआ?
सारथी ने कहा, यह बुढ़ापे के बाद की अवस्था है। यह आदमी मर गया।
तो बुद्ध ने कहा, जल्दी करो, मुझे घर पहुंचाओ। इसके पहले मैं मर न जाऊं, मुझे कुछ करना है। मुझे उसे जानना है, जो नहीं मरता। इसके पहले कि मौत आए, अमृत से परिचित हो जाना है।
उसी रात उन्होंने घर छोड़ दिया। इसको प्रतिभा कहते हैं।
वेदांत, अगर प्रतिभा हो, तब तो मेरी बातें तुम समझ कर रूपांतरित हो जाओगे। मगर ऐसी प्रतिभा जरा मुश्किल मामला है। लोग अनुभव से ही सीख लें, तो भी काफी बुद्धिमान समझो उन्हें। जड़ता ऐसी घनी है कि लोग अपने अनुभव से भी कहां समझ पाते हैं। अनुभव कर-कर के फिर-फिर उन्हीं-उन्हीं गड्ढों में गिरते हैं--वही गड्ढे!
अरबी में कहावत है कि गधे भी उसी गड्ढे में दोबारा नहीं गिरते, सिवाय आदमी को छोड़ कर। आदमी अजीब गधा है। कल भी उस गड्ढे में गिरा था, परसों भी गिरा था!
तुम खुद ही अपनी तरफ देखो। तुमने कितनी दफे क्रोध किया है, और कितनी बार उस गड्ढे में गिरे हो! और हर बार पछताए हो, और हर बार कहा है कि अब नहीं, अब नहीं करूंगा क्रोध। क्या सार है! आग जलाना अपने भीतर। अपने को जलाना, दूसरे को जलाना। हाथ तो कुछ लगता नहीं। व्यर्थ पीड़ा होती है, और व्यर्थ पीड़ा दी जाती है।
मगर फिर आज अगर कोई जरा सा अपमान कर देगा, जरा सी चोट पहुंचा देगा... दूर अपमान की बात, चोट की बात, रास्ते पर कोई गुजर जाएगा बिना जयरामजी किए, तो भी क्रोध भीतर भनभना उठेगाः अच्छा, इसकी यह हैसियत कि मुझे और बिना जयरामजी किए निकल गया! वह मजा चखाऊंगा कि जीवन भर याद रहेगा! यह अकड़ कहां से आ गई इसमें! इसने अपने को समझा क्या है! भीतर तूफान उठने लगेगा।
लोग अपने अनुभव से भी नहीं सीखते। तुम अपने अनुभव से भी सीख लो, तो समझ
लो पर्याप्त बुद्धि है।
मुल्ला नसरुद्दीन मुझसे हमेशा कहता था कि भगवान, आप सच कहते हैं कि अगर विवाह न करता, तो जीवन में आनंद ही आनंद होता। विवाह ने तो सारे जीवन को जंजीरों में जकड़ दिया है। इस पत्नी से छुटकारा हो जाए। मगर कैसे हो छुटकारा? छोड़ भी नहीं सकता, क्योंकि खुद ही मैं इसके पीछे चलता रहा हूं।

खुद ही मैंने इसको मनाया, समझाया-बुझाया; यह तो बामुश्किल राजी हुई। जब भी इससे मैं कुछ कहता हूं तो यह कहती हैः तुम्हीं मेरे पीछे पड़े थे। तुम्हीं नाक रगड़ते थे। मैंने तुमसे कहा नहीं था। वर्षों मेरे पिता मना करते रहे, मेरी मां मना करती रही--तुम्हीं हाथ जोड़े खड़े रहे। और तलाक देते भी नहीं बनता, प्रतिष्ठा की भी बात है। फिर बच्चे भी हैं।
फिर यूं हुआ, जैसा कि आमतौर से होता नहीं, कि पत्नी मर गई। अक्सर तो पति मरते हैं। इसलिए विधवाएं दिखाई पड़ती हैं, विधुर बहुत कम दिखाई पड़ते हैं। स्त्रियां मजबूत होती हैं। ज्यादा जीती हैं--पांच साल ज्यादा जीती हैं पुरुषों से। एक तो पांच साल ज्यादा जीती हैं और हम पांच साल कम उम्र की लड़की से शादी करते हैं--सो दस साल! दस साल पत्नी तुमसे ज्यादा जीएगी, यह पक्का समझ लेना। तुम्हें ठिकाने लगा कर जीएगी। और ठीक भी है, आखिरी इंतजाम कर दिया, तुमको लिटा दिया कब्र में। रोज-रोज बिस्तर पर सुलाती थी, कब्र में लिटा कर आखिरी इंतजाम करके, ताकि तुमको फिर पीछे झंझट न हो--नहीं तो कौन तुम्हारी कब्र बनाएगा, कौन ढंग से पत्थर लगवाएगा!
मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी मर गई। वह रो रहा था छाती पीट-पीट कर। तो मैंने कहा, नसरुद्दीन, अब क्यों रो रहे हो? अब रोने में क्या रखा है? तुम तो चाहते ही यह थे, तुम्हारी भीतरी मंशा यही थी, परमात्मा ने तुम्हारी प्रार्थना सुन ली। तुम्हारी सब नमाजें सफल हो गईं। अब पत्नी से छुटकारा हो गया। अब तो प्रसन्न होओ, उत्सव मनाओ।
मगर वह माने ही नहीं। वह तो छाती ही पीटे जाए, वह तो रोए ही चला जाए। जब मैंने देखा वह मानेगा ही नहीं, तो मैंने कहा, अगर तुझे ऐसा ही अखर रहा है अकेलापन, तो मत घबड़ा, अभी कुछ बिगड़ा नहीं है। अभी दूसरी शादी हो जाएगी। एक दो-चार महीने में दूसरी पत्नी खोज लेना।
उसने मेरी तरफ गुस्से से देखा और रोते ही रोते बोला कि बात तो आपकी ठीक है, मगर मैं इसलिए रो रहा हूं कि आज की रात कैसे गुजारूंगा? और किसके साथ गुजारूंगा?
क्या खाक आदमी अपने अनुभव से सीखता है! अपने अनुभव से भी नहीं सीखता। अपने अनुभव से भी सीख ले तो बुद्धिमान। दूसरे के अनुभवों से सीख ले तो प्रतिभावान। और जो दोनों से न सीखे, वह महामूढ़।
तुम कहते हो कि बिना इस अनुभव से गुजरे कैसे रह सकता हूं! नहीं रहा जाता।
मत रहो, गुजरो। क्योंकि अगर मेरी बात मान कर जबरदस्ती रुक गए, तो जीवन
भर मुझको गाली दोगे। और मैं किसी के जीवन में बाधा नहीं डालना चाहता। तुम अनुभव से गुजरो। कम से कम मुझे धन्यवाद तो दोगे। अनुभव से गुजरोगे तो मेरी याद तो करोगे कि भगवान, ठीक कहा था! कि काश सुन लेते!
बेटी की शादी सिर पर आ गई और तुमने अभी घर के द्वार पर चौखट भी नहीं लगवाई! पत्नी की बार-बार की इस शिकायत से परेशान होकर पति ने पूछा, तुम्हें सबसे पहले दरवाजे की चौखट की क्यों पड़ी है? क्या इसके बिना शादी रुक जाएगी?
पत्नी ने झल्ला कर कहा, समझते क्यों नहीं जी! हमारी बेटी अवसर पड़ने पर पति से कह तो दिया करेगी कि तुम्हीं तो गए थे मेरे बाप की चौखट पर नाक रगड़ने। अब बिना चौखट के कैसे विवाह हो! पहला काम है कि चौखट लगनी चाहिए! झुम्मनलाल के दुखते पांव की जांच करने के बाद डाक्टर बोले, कितने दिनों से आपको यह तकलीफ है?
झुम्मनलाल ने कहा, लगभग दो माह से।
जनाब, आपके पैर में तीन-तीन फ्रैक्चर हैं, और आप दो माह तक चुप बैठे रहे--कमाल है!
झुम्मनलाल बोले, बात यह है कि मुझे जब भी कुछ होता है--सिर में दर्द हो,
कि कमर में दर्द हो, कि हाथ में दर्द हो, बुखार आए--कुछ भी हो जाए, तभी मेरी पत्नी मुझसे फौरन सिगरेट छोड़ने को कहती है। सो मैं चुपचाप झेलता रहा यह दर्द, कि मैंने कहा कि पैर में तकलीफ है, वह कहेगी--छोड़ो सिगरेट! कितनी दफे नहीं कहा कि सिगरेट छोड़ो!
इसलिए दो महीने वे तीन-तीन फ्रैक्चर सहते रहे।
तुम्हारी मर्जी!

एक बाप अपने बेटे को शादी करने से रोकना चाहता था। स्वभावतः, अपना अनुभव ही काफी था बेचारे को। सोचता था बेटा बच जाए, तो वही बात बहुत। बहुत कम इतने समझदार बाप दुनिया में होते हैं। समझाते हुए बोला, बेटा, जो लोग शादी करते हैं, वे अच्छे हैं; और जो शादी नहीं करते, वे उनसे भी बेहतर होते हैं।
ठीक है--बेटे ने कहा--मैं अच्छा ही भला, दूसरों को बेहतर होने दीजिए।
अब तुम्हारी मर्जी! तुम अगर यही चाहते हो, तो यही करो। अनुभव से ही सीख लेना। उसी तरह शायद समझ तुम्हें आए। इतनी ही प्रार्थना कर सकता हूं परमात्मा से कि कम से कम उस तरह भी समझ आ जाए तो बहुत है!

आखिरी प्रश्नः ओशो! आप दलबदल करने वाले राजनीतिज्ञों के संबंध में क्या कहते हैं?

सरलादेवी! मुझे पता है कि तुम्हारे पति भी दलबदलू हैं, आयाराम गयाराम हैं। इसीलिए प्रश्न तुम्हारे मन में उठा होगा। वे तो यहां आते नहीं। मैं क्या कहता हूं, उनके कानों तक पहुंचेगा भी नहीं। राजनीतिज्ञ करीब-करीब बहरे होते हैं, अंधे होते हैं। अंधे और बहरे न हों, तो राजनीति में क्यों हों? मगर तुम चाहो तो कुछ कर सकती हो।
यह कविता मैं पढ़ रहा था। इससे कुछ सार तुम निकाल सको तो अच्छा है।
एक नेता दलबदल कर घर लौटे,
उन्हें पत्नी का पत्र मिला,
जो कई महीनों से मैके गई हुई थी,
लिखा थाः
रम्मो के चाचा, तुम्हारे साथ रहते-रहते
बोर हो गए,
अब हमने राधेलालजी से
दाम्पत्य समझौता कर लिया है।
यह समझौता समान विचारों के
आधार पर किया है।
कहा-सुना माफ करना,
हमारे पति-बदल कार्य को उसी प्रकार
लाइटली लेना,
जैसे हम तुम्हारे दलबदल कार्य को लेती रही हैं। भविष्य में दल बदलो तो सूचित करना,
हम भी पति-बदल प्रक्रिया से आपको अवगत कराएंगे।
तिजोरी की चाबी बगल वाले कमरे के आले में रक्खी है, सेहत का ख्याल रखना, मंत्री बनते ही तार देना।
हम हनीमून मनाने शिमला जा रहे हैं।
नेता जी ने पत्र पढ़ा।
माथा ठनका,
सोचने लगे,
दलबदल का एक दिन ऐसा सुफल मिलेगा,
कभी नहीं सोचा था।
उन्होंने उत्तर भेजा--
प्राणप्यारी जी, तुमसे ऐसी आशा नहीं थी, दलबदल को इतना सीरियसली
नहीं लेना था।
तुम अब घर लौट आओ,
मैं भी पुराने दल में वापस जा रहा हूं। पत्नी ने चार पंक्तियों का उत्तर भेजा-- पल-पल में दलबदल करते रहे हो,
एक दल में कुछ समय रह कर सूचित करना, सहानुभूतिपूर्ण विचार करूंगी।
आम का अचार घड़े में रक्खा है,

उसे कभी-कभी पलटते रहना।
हम तो इस चेंज से काफी खुश हैं,
बड़े मौज से जिंदगी कट रही है।
सेहत का ख्याल रखना।
आपकी भूतपूर्व पत्नी--
अब मिसेज राधेलाल।
कुछ ऐसा करो तो शायद पति को कुछ अकल आए तो आए सरलादेवी, अन्यथा आने वाली नहीं है। राजनीतिज्ञ की कोई आत्मा होती है? कोई निष्ठा होती है? ये तो चलते-फिरते मुर्दे हैं। इनको तो जहां पद मिले, वहीं पूंछ हिलाने लगते हैं। इनका कोई मूल्य नहीं है। इनकी चिंता भी मत लो, ये चिंता के योग्य भी नहीं हैं। तुम अपनी फिक्र करो। इनकी उलझन में पड़े-पड़े अपना जीवन नष्ट न करो। इनको करने दो दलबदल, तुम अपना जीवन बदलो।
मत समझ लेना कि मैं कह रहा हूं मिसेज राधेलाल हो जाओ। मैं कह रहा हूं-- जीवन बदलो। मैं कह रहा हूं--मन से अमन की तरफ चलो; विचार से ध्यान की तरफ चलो; समस्याओं से समाधि की तरफ। बहुत दिन जी लिया इस तरह, अब इस जीवन के ऊपर उठो, पार, अतिक्रमण करो।
और परमात्मा दूर नहीं है, बहुत पास है। हम एक कदम उठाएं तो परमात्मा हजार कदम हमारी तरफ उठाता है।
आज इतना ही।

पिय को खोजन मैं चली
दसवां प्रवचन

संन्यास यानी परम स्वास्थ्य

पहला प्रश्नः ओशो! पिय को खोजन मैं चली, पिया मिलन कैसे हो?

योग नीलम! पिया दूर नहीं है। इतना भी दूर नहीं कि मिलन की भी जरूरत हो। सिर्फ विस्मरण हुआ है, विछोह नहीं। विछोह हो ही नहीं सकता। पिया तो भीतर विराजमान है। वही तो हमारी श्वासों की श्वास है। वही तो हमारे हृदय की धड़कन है। उसके बिना तो हमारा कोई होना नहीं है। वह है तो हम हैं। जैसे सागर है तो लहरें हैं। सागर तो बिना लहरों के हो सकता है, मगर लहरें बिना सागर के नहीं हो सकतीं।
लेकिन लहर को एक भ्रांति हो सकती है--इस बात की भ्रांति कि मैं सागर से पृथक हूं। बस उसी भ्रांति में विस्मरण हो जाता है। विस्मरण ही होता है, विछोह तो हो सकता नहीं।
उस प्यारे की सारी खोज स्मरण के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है-- पुनर्स्मरण। इसलिए संतों ने उसकी खोज का नाम दियाः सुरति।
सुरति का अर्थ होता है स्मरण, स्मृति। सुरति शब्द स्मृति का ही लोक-प्रचलित रूप है। बुद्ध ने जिसे स्मृति कहा है, वही आते-आते कबीर और नानक तक, सुरति हो गया। प्यारा हो गया, स्मृति से भी प्यारा हो गया। लोगों के हाथों में शब्द सौंदर्य ले लेते हैं। उनका इरछा-तिरछापन चला जाता है। उनकी व्याकरण खो जाती है। उनका काव्य प्रकट हो जाता है। स्मृति में व्याकरण है, भाषा की शुद्धि है; लेकिन वह गोलाई नहीं, वह सौंदर्य नहीं, जो सुरति में है। स्मृति में थोड़ी परुषता है, थोड़ी कठोरता है। सुरति में कोमलता है। लेकिन अर्थ वही है। उसका स्मरण भर करना है।
स्मरण में कौन सी चीज बाधा बन रही है?
सिवाय हमारे और कोई बाधा नहीं है। यह मैं-भाव एकमात्र बाधा है। एक क्षण को भी मैं को छोड़ कर देखो--और पिया मिला ही हुआ है! खोजने कहीं जाना नहीं है, इंच भर यात्रा नहीं करनी है। पलक नहीं झपनी है। एक क्षण गंवाने की जरूरत नहीं है। लेकिन एक चीज तो गंवानी ही होगी और वह है--मैं। और मैं को गंवाने में हर्ज कुछ भी नहीं है, क्योंकि मैं एक भ्रांति है, एक झूठ है। इस जगत का सबसे बड़ा झूठ अहंकार है। और उसी झूठ में, उसी झूठ के धुएं में हम अपने सत्य को विस्मृत कर गए हैं। लोग खोजना तो चाहते हैं परमात्मा को, लोग प्रेम में भी डूबना चाहते हैं, मगर एक शर्त है उनकी और वह शर्त कोई भी पूरी नहीं कर सकता। वह शर्त यह है कि मैं मैं भी रहूं और पिया भी मिले। मैं भी रहूं और तू भी मिले।
और उनका तर्क भी मुझे समझ में आता है। बहुत बार बुद्ध से लोगों ने आकर यही प्रश्न पूछा है। स्वभावतः, क्योंकि बुद्ध कहते थे, तुम नहीं हो। बुद्ध ने जितनी प्रगाढ़ता से, जितनी सघनता से अहंकार पर चोट की है, मनुष्य-जाति के इतिहास में किसी ने भी नहीं की--न महावीर ने, न मोहम्मद ने, न मूसा ने, न क्राइस्ट ने, न कृष्ण ने, न कनफ्यूशियस ने। इन सबने कहा है अहंकार छोड़ना है, लेकिन इन सबने एक बात और कही कि तुम्हारे भीतर आत्मा है। और वहीं चूक हो गई। लोगों ने अहंकार छोड़ा ही नहीं, आत्मा के बहाने फिर बचा लिया। आत्मा का अर्थ भी तो यही होता हैः मैं। बुद्ध ने चोट पूरी-पूरी की, रत्ती भर गुंजाइश नहीं छोड़ी। कहा, अहंकार छोड़ना है, क्योंकि अहंकार है ही नहीं। लोग पूछते थे, आत्मा तो है न?
बुद्ध कहते, आत्मा भी नहीं है। क्योंकि मैं जानता हूं तुम्हारी चालबाजियां। मैं जानता हूं तुम्हारी चालाकियां। मैं जानता हूं तुम्हारी बेईमानियां। तुम धोखा देने में कुशल हो। आत्मा भी नहीं है। तुम हो ही नहीं--किसी अर्थ में नहीं, किसी आयाम में नहीं, किसी पहलू से नहीं। भीतर अनस्तित्व है, अनात्मा है, अनत्ता है।

लोग झिझकते, कंधे बिचकाते। वे कहते, तो फिर जब हम हैं ही नहीं, आत्मा
भी नहीं है, तो सत्य को खोजें ही क्यों? उनका कहना यह था, जब मैं ही नहीं हूं तो फिर तू को खोजें क्यों? खोजेगा कौन? मिलेगा कौन? सार क्या है? उनका तर्क भी समझने जैसा है। वही तर्क तुम्हारे सबके भीतर बैठा है। चेतन हो या अचेतन, स्पष्ट हो न हो स्पष्ट, साफ-साफ हो कि धुंधला-धुंधला हो, मगर सबके भीतर वह तर्क बैठा हुआ है। मन का वह तर्क मन को बचाने के लिए अपरिहार्य है--कि अगर मुझे ही मिट जाना है तो फिर प्यारे को पाकर भी क्या करूंगा? मन कहता है, तुम भी बचो और प्यारे को भी पाओ, तब मजा है। तभी तो मिलन का मजा है। यह क्या सुहागरात हुई कि या तो हम थे तो प्यारा न था और प्यारा था तो हम न थे!
मगर अस्तित्व तर्कों से नहीं चलता। अस्तित्व बड़ा अतर्क्य है, तर्कातीत है। और अस्तित्व जैसा है वैसा ही तुम्हें समझना होगा। तुम्हारे तर्कों की अपेक्षाएं पूरा करने के लिए अस्तित्व न कभी राजी हुआ है, न कभी राजी होगा। तुम्हें अपने तर्क ही छोड़ने पड़ेंगे। और तुम्हें अपने तर्क की बुनियादी भूल देखनी पड़ेगी। तुम्हारा तर्क तर्क नहीं है, तर्काभास है। लहर कहे कि जब तक मैं हूं तभी तक तो सागर से मिलने का मजा है--ऐसे ही तुम कह रहे हो। लहर जब तक अपने को अलग मानती है, पृथक मानती है, जब तक मैं-भाव है, तब तक सागर से मिलना हो नहीं सकता। मैं-भाव गिरे तो लहर सागर से मिली ही हुई है। मिलना भी नहीं होता, सदा से ही मिलन था।
बुद्ध को जब पहली बार ज्ञान हुआ तो वे हंसे और उन्होंने कहा, आश्चर्यों का आश्चर्य कि मैं जिसे खोजता था वह तो मुझे सदा से मिला हुआ था! एक क्षण को भी मैंने उसे गंवाया नहीं था! कैसा आश्चर्य कि जिसे मैंने कभी गंवाया नहीं था, जन्म-जन्म गंवाए उसे खोजने में! कभी भी लौट कर भीतर देख लेता, जरा पलट लेता अपनी नजरों को, तो तत्क्षण उसे पा लेता। दौड़ता रहा, दौड़ता रहा। कहां-कहां नहीं दौड़ा! क्या-क्या विधियां, क्या-क्या योग, क्या- क्या साधनाएं नहीं कीं!
योग नीलम, तू पूछती हैः "पिया मिलन कैसे हो?"
कैसे का अर्थ हैः विधि बताओ, मार्ग बताओ, साधना बताओ, पद्धति बताओ। विधि पूछने का अर्थ है कि कोई प्रक्रिया बताओ, कि उससे हम टूट गए हैं, कैसे जुड़ें!
और मैं कहना चाहता हूं कि तू टूटी ही नहीं। कोई भी नहीं टूटा है उससे। जैसे पत्ता टूट जाए वृक्ष से, बस मरना शुरू हो गया, सूखना शुरू हो गया; उसकी हरियाली गई, उसमें से रसधार खो गई। पत्ता वृक्ष से जुड़ा रहे तो अस्तित्व से जुड़ा है; शाखाओं से जुड़ा है नहीं, पृथ्वी से भी जुड़ा है, चांद-तारों से भी जुड़ा है, सूरज से भी जुड़ा है। यहां सब चीजें जुड़ी हुई हैं। यह सारा अस्तित्व एक है--एक महासागर, जिसकी हम सब लहरें हैं।
मगर मनुष्य के साथ यह दुर्भाग्य घटित होना ही था। यह होना भी जरूरी था। शायद मनुष्य के विकास की प्रक्रिया का यह अनिवार्य चरण है कि उसको यह भ्रांति हो कि मैं टूटा हूं, कि उसको यह भ्रांति हो कि विछोह हो गया है। और फिर वह एक दिन इस भ्रांति को छोड़े। यह उसके विकास की प्रक्रिया का अंग है। जीसस ने कहा है, संत फिर छोटे बच्चों की भांति हो जाते हैं।
कोई पूछे, पूछना चाहिए ही। जिससे जीसस ने यह कहा था--निकोडेमस से--वह
एक बहुत प्रसिद्ध पंडित था, धर्मगुरु था। उसने तत्क्षण पूछा था कि अगर बच्चे जैसे होने से ही ईश्वर का मिलन है तो फिर सभी बच्चों को ईश्वर क्यों नहीं मिल जाता?
जीसस ने कहा, तुमने मेरी बात पर ध्यान नहीं दिया। मैंने कहा--जो बच्चों जैसा है। मैंने यह नहीं कहा कि जो बच्चा है। बच्चों जैसा--अर्थात जो बच्चा नहीं भी है और बच्चा है भी। यूं तो बच्चा नहीं है। यूं तो बचपन पार कर आया। बचकाना नहीं है।
लेकिन बचकाने न होने के लिए किस प्रक्रिया से गुजरना होता है? बच्चे
को बचपन छोड़ना पड़ता है, बचपन का सारा आश्चर्य-बोध, सरलता, निर्दोषता, पवित्रता, सब छोड़ देनी पड़ती है। वह निश्छलता, वह शुभ्रता, सब खो जाती है। सब तरह की चालबाजियां, सब तरह की राजनीतियां, सब तरह की कूटनीतियां उसे सीखनी पड़ती हैं। खूब दूर निकल जाता है अपने से।

लेकिन जितने दूर जाता है उतनी पीड़ा पाता है। जितने दूर जाता है उतना कुम्हलाता है। जितने दूर जाता है उतने फूल नहीं खिलते। जितने दूर जाता है उतना जीवन निष्फल, निरर्थक मालूम होता है। तब एक दिन इस बात की स्मृति सघन होनी शुरू होती है कि यह मैंने क्या कर लिया! यह मैंने कैसा आत्मघात किया! यह कैसे मैंने अपने को अपने हाथों से नष्ट किया! अब लौट चलूं। अब अपने घर लौट चलूं। अब वापस लौट चलूं उस दुनिया में, जहां मैं पहले ही से था। वही बचपन, जब समुद्र के तट पर शंख और सीपियां बीनता था, रंगीन पत्थर बीनता था-- और लगता था यूं कि हीरे-जवाहरात बीन लिए! वही बचपन, जब कि फूलों को बटोरता था--और लगता था यूं कि अपनी झोली में तारे भर लिए! वही बचपन, वही सरलता के दिन। न कोई उलझन थी, न सुलझाने का कोई सवाल था। न कोई समस्या थी, न समाधान की कोई आकांक्षा थी। आश्चर्य-विमुग्ध कर देती थी हर चीज। छोटी से छोटी चीज अवाक कर देती थी, रहस्य से भर देती थी। लौट चलूं!
और यह वापसी की यात्रा शुरू होती है। फिर से बचपन मिलता है संत को। संत वही है जिसने दुबारा बचपन को पा लिया। मगर दुबारा--याद रखना, उसे भूलना मत।
पहला बचपन तो गंवाना ही होगा, क्योंकि पहला बचपन अचेतन है। पहला बचपन अबोध है। यह तो खोकर ही पता चलता है कि क्या खो दिया। और पुनः पाओगे तो आनंद का अनुभव होगा। जैसे मछली को कोई सागर से खींच ले। फेंके जाल, फांस ले। डाल दे रेत पर, तपती हुई रेत पर, आग बरसती हुई हो दुपहरी की, सूरज आग का गोला हो और रेत यूं जलती हो कि मछली तड़पे--तब जानेगी पहली बार कि सागर का आनंद क्या था! तब पहचानेगी पहली बार कि अरे जिसमें मैं थी वही मेरा घर था, वही मेरा सागर था!
सागर में थी तो सोचा होगा बहुत बार कि सागर कहां है? सुना तो बहुत है। बुजुर्गों से सुना है, कहानियां सुनी हैं, शास्त्रों में लिखा है। सागर की बड़ी चर्चा है। सागर के आनंद के बड़े उल्लेख हैं। सागर के संबंध में महाकाव्य लिखे गए हैं। जिन्होंने सागर को जान लिया उन्हें बुद्ध कहा गया है, जिन कहा गया है। वह सागर कहां है?
मछली को पता नहीं चल सकता, क्योंकि मछली सागर में ही पैदा हुई। पता चलने के लिए थोड़ी सी दूरी चाहिए, थोड़ा फासला चाहिए।
तुम्हें दर्पण में अपनी तस्वीर देखनी हो तो थोड़ा फासला चाहिए। अगर बिल्कुल दर्पण से मुंह लगा कर खड़े हो जाओ तो कुछ भी दिखाई न पड़ेगा, अपनी तस्वीर भी न दिखाई पड़ेगी।
मछली जब रेत पर तड़पेगी तब उसे दिखाई पड़ जाएगा, अनुभव में आ जाएगा। अब अगर सरक कर वह किसी तरह वापस सागर में गिर जाए तो एक अर्थ में तो यह वही मछली है और दूसरे अर्थ में वही नहीं। पहली मछली अबोध थी, दूसरी मछली बुद्धत्व को उपलब्ध हो गई।
बस इतना ही भेद है तुममें और बुद्धों में। तुम भी वहीं हो जहां बुद्ध हैं।
योग नीलम, तू भी वहीं है जहां मैं हूं। तू भी वहीं है जहां कृष्ण हैं।
तू भी वहीं है जहां बुद्ध हैं। जरा भी भेद नहीं है। मगर तुझे विस्मरण है, उन्हें स्मरण आ गया है। प्रत्येक बच्चा वहीं है जहां जगत के श्रेष्ठतम ऋषियों ने प्रवेश पाया है। मगर बच्चों को खोना होगा। यह मंदिर उन्हें खोना होगा। उन्हें भटकना होगा बाजारों में। उन्हें झेलनी होगी धूप-ताप जीवन की--कष्ट, पीड़ाएं, कंटकाकीर्ण मार्ग--और तब उन्हें याद आएगी। और तब उन्हें पीड़ा सताएगी। और तब वापसी संभव हो पाएगी। जब दुबारा ये वापस अपने मंदिर में आएंगे तो पहली बार अनुभव होगा कि हम कितनी बड़ी संपदा के मालिक थे और उसको यूं ही छोड़ कर चल दिए थे! पीछे लौट कर भी नहीं देखा था।
तू पूछती हैः "पिय को खोजन मैं चली... ।"
खोजने हम सब चले हैं, मगर खोजने के पहले अपने को खोने की तैयारी करनी होगी। अपने को हमने पा लिया है; अपने को बना लिया है कहना चाहिए। एक अपनी कल्पना बना ली है। हम हैं क्या--सिवाय एक कल्पना के, एक आभास के? नाम भी झूठ है; रूप भी झूठ है। प्रतिपल सब बदल रहा है, बहाव है। तुम्हारे भीतर सच क्या है?

पहले क्षण, जब मां के पेट में गर्भ रहता है, अगर उसकी तस्वीर तुम्हें दिखाई जाए तो तुम पहचान भी न सकोगे कि यह दशा कभी तुम्हारी थी। खाली नंगी आंखों से तो उसे देखा भी नहीं जा सकता। उसके लिए खुर्दबीन चाहिए पड़ेगी। खुर्दबीन से देखोगे तो जरा सा एक बिंदु, एक जीवकोष्ठ। तुमसे उसकी शक्ल मिलेगी नहीं, जरा भी नहीं मिलेगी। न नाक है, न नक्शा है, कुछ भी नहीं है। मगर तुम थे वही। फिर रोज-रोज तुम बड़े हुए।
वैज्ञानिक कहते हैं कि नौ महीने में मां के पेट में बच्चा, मनुष्य-जाति ने जो अनंत काल में विकास किया है, उन सारी सीढ़ियों को पार करता है। जीवन सबसे पहले सागर में पैदा हुआ होगा, तो बच्चा पहले मछली की तरह होता है। अगर वह तस्वीर तुम्हारे सामने हो--तुम्हारी ही तस्वीर--तो तुम पहचान न सकोगे कि यह मैं हूं। तुम कहोगे, है किसी मछली की तस्वीर। मेरी? असंभव! मुझसे न नाक-नक्शा मिलता है, न रूप-रंग मिलता है।
फिर धीरे-धीरे बच्चा विकसित होता है। वह सारी सीढ़ियों से गुजरता है, तेजी से गुजरता है। जो मनुष्य-जाति ने हजारों साल में पूरी की है यात्रा, वह बच्चा नौ महीने में पूरी करता है। एक दिन तुम बिल्कुल लंगूर की तरह मालूम पड़ोगे, बंदर की तरह। पहचान में ही न आओगे। अपने को ही पहचान में न आओगे। मगर तुम एक दिन वही थे।
अगर तुम जिस दिन पैदा हुए थे, उस दिन की तस्वीर तुम्हारे सामने रख दी जाए, क्या तुम अपने को पहचान सकोगे? असंभव! बिल्कुल असंभव!
रोज बदलाहट हो रही है। यह शरीर तो रोज पानी के बहाव की तरह बह रहा है।
यह तुम नहीं हो। और मन तो और भी तेजी से बहता है। शरीर को बहने में तो थोड़ी देर भी लगती है, मन तो बिल्कुल ही हवा की गति से बहता है। शायद और भी तेज उसकी गति है। इन सबके भीतर थिर क्या है? उस थिर को समझ लो, तो पिया मिल गया। इन सबके भीतर शाश्वत क्या है? अमृत क्या है? उस अमृत को पहचान लो, पी लो, तो पिया मिल गया। इन सबके भीतर सिर्फ साक्षी-भाव, सिर्फ द्रष्टा-भाव मात्र शाश्वत है, शेष सब बदल जाता है। शेष सबका कोई मूल्य नहीं है।
ध्यान उसी साक्षी-भाव की तुम्हें स्मृति दिलाता है। ध्यान तुम्हें नया कुछ भी नहीं देता, तुम्हारा पुराना बचपन तुम्हें वापस लौटा देता है। जो तुमने कभी खोया नहीं वही तुम्हें दे देता है।
इसलिए मैं कहता हूं कि मैं तुम्हें वही दूंगा जो तुम्हारे पास है ही;
और तुमसे वही छीन लूंगा जो तुम्हारे पास कभी था ही नहीं। मेरी बात तुम्हें बड़ी उलटबांसी जैसी लगेगी। मगर जरा भी उलटबांसी नहीं है; सीधी-साफ है; दो और दो चार जैसी साफ है। मैं फिर दोहरा दूंः मैं तुमसे वही छीन लूंगा जो तुम्हारे पास है ही नहीं--तुम्हारा अहंकार, जो कि सरासर झूठ है। और तुम्हें वही दे दूंगा जो तुमने कभी खोया ही नहीं, एक क्षण को नहीं खोया-- तुम्हारा पिया, तुम्हारा परमात्मा।
ध्यान तो केवल स्मरण की एक प्रक्रिया है। जिसे हम भूल गए हैं उसको याद
कर लेना है। यह जैसे भी याद आ जाए, जिस विधि से याद आ जाए, वे सब विधियां बहाने हैं। किसको किस ढंग से याद आएगा, कहना कठिन है।
एक मनोवैज्ञानिक के पास एक आदमी गया। दर्शनशास्त्र का बड़ा प्रसिद्ध प्रोफेसर था। उसने जाकर मनोवैज्ञानिक को कहा कि मेरी एक अड़चन है, मैं हर बात भूल जाता हूं। यहां तक कि कभी-कभी मैं अपना नाम भी भूल जाता हूं। मुझे लोगों से पूछना पड़ता है कि मैं कौन हूं? तो लोग हंसते हैं। सच तो यह है कि मैं अपने खीसे में सदा अपने नाम का कार्ड रखता हूं जिसको निकाल कर मैं देख लेता हूं कि मैं कौन हूं। फिर कार्ड वापस रख लेता हूं। एक दिन भूल से किसी और का कार्ड मेरे खीसे में पड़ गया तो मैं बड़ी मुश्किल में पड़ा, बड़ी झंझटों में आया। कहीं-कहीं मुझे याद भी पड़े कि यह मैं नहीं हूं, मगर वह कार्ड साफ कह रहा है कि यही मैं हूं। आज मेरी पत्नी ने मुझे बहुत समझा-बुझा कर भेजा है। आज बात जरा बहुत ही बिगड़ गई, क्योंकि जब मैं घर से विदा हो रहा था तो पत्नी की जगह मैंने नौकरानी का तो चुंबन ले लिया और पत्नी से पूछा कि सब ठीक-ठाक है न? तनख्वाह से तो प्रसन्न है न? पत्नी ने कहा, अब बात बहुत हो गई, अब बहुत बिगड़ गई बात। अब तुम्हें मनोवैज्ञानिक के यहां जाना ही पड़ेगा, इलाज करवाना ही पड़ेगा। सो मैं आया हूं।
मनोवैज्ञानिक ने पूछा, यह बीमारी आपको कब से है?

उसे प्रोफेसर ने चौंक कर देखा, बोला, कौन सी बीमारी? कैसी बीमारी? क्या बातें कर रहे हो जी? होश में आओ!
तब मनोवैज्ञानिक समझा कि मामला तो बहुत बिगड़ा हुआ है, हद से ज्यादा बिगड़ा हुआ है। यह अभी-अभी अपनी बीमारी बता रहा है, वह भी भूल गया! थोड़ी देर सन्नाटा रहा, न मनोवैज्ञानिक को सूझे कि अब क्या कहना। फिर प्रोफेसर को थोड़ी सी याद आई, किसलिए आया था। अपना कार्ड निकाल कर देखा, तब याद आया, कार्ड पर पत्नी ने लिख दिया था कि तुम इसलिए जा रहे हो। तो उसने कहा, अब याद आया कि मैं भूल-भूल जाता हूं चीजों को, तो मैं क्या करूं?
मनोवैज्ञानिक ने कहा, और कुछ करना न करना, पहले मेरी फीस चुका दो। तुम आदमी भरोसे के नहीं हो। जब तुम अपनी बीमारी भूल जाते हो, कल तुम मुझे ही नहीं पहचानोगे। कल तुम कहने लगोगे--कैसी फीस! काहे की फीस! पहले फीस चुका दो, फिर आगे इलाज।
अक्सर यूं हो जाता है। दार्शनिकों के संबंध में बहुत कथाएं हैं भूल जाने की। आकस्मिक नहीं हो सकती हैं, कारण वहां हैं। दार्शनिक बड़ी ऊंची बातों में उलझे रहते हैं, मन का बड़ा जाल बुनते हैं। जैसे कि मकड़ी जाला बुनती है, ऐसा दार्शनिक विचारों के जाल बुनते हैं। सुंदर-सुंदर जाल! मकड़ी के जाले भी सुंदर होते हैं। मगर मकड़ियां तो मक्खियों को पकड़ती हैं जालों में, मच्छरों को पकड़ती हैं। दार्शनिक खुद फंस जाते हैं। ऐसे जाल बुन लेते हैं कि भूल ही जाते हैं--अब निकलना कहां से। व्यूह तो रच लेते हैं, लेकिन निकलने का रास्ता भूल जाते हैं।
बहुत बड़े विचारक इमेनुअल कांट के संबंध में तो बहुत कहानियां हैं। एक दिन रात घर लौटा घूम कर, सो अपने हाथ की छड़ी को तो बिस्तर पर लिटा दिया और खुद, जहां छड़ी को टिकाना था कमरे के कोने में, वहां टिक कर खड़ा हो गया। थोड़ा-थोड़ा सोच में भी आए कि कुछ न कुछ गड़बड़ मालूम होती है। मतलब आराम नहीं मालूम हो रहा, जैसा रोज मालूम होता था। बात क्या है! यूं सब ठीक-ठाक हुआ है। और बिजली भी जल रही है! तभी नौकर ने देखा कि बिजली जली हुई है, तो उसने झांक कर खिड़की से देखा। तो देखा कि मालिक तो कोने में खड़े हैं टिके हुए और उनकी छड़ी बिस्तर पर आराम कर रही है--कंबल ओढ़े हुए, तकिए पर सिर है! उसने कहा, मालिक, भूल-चूक हो रही है। आपने चीजें गलत जगह रख दी हैं। अपने को बिस्तर पर रखिए और छड़ी को कोने में रखिए। उसने कहा, ठीक याद दिलाया। वही मैं सोच रहा हूं थोड़ी देर से कि कुछ न कुछ गड़बड़ जरूर है। यूं सब मैंने व्यवस्थित किया है, मगर कहीं चूक हुई है।
यह जो इमेनुअल कांट है, नौकर के साथ ही जीया। क्योंकि एक महिला ने इससे प्रार्थना की थी शादी की, वह भूल ही गया। तीन साल बाद उसे याद आई, जब अपनी नोट-बुक देख रहा था, जिसमें उसने नोट कर रखा था कि इस महिला ने शादी की प्रार्थना की है। अरे उसने कहा कि... ! भागा हुआ उसके घर पहुंचा, दरवाजा खटखटाया।
उसके पिता ने द्वार खोला और पूछा, कहिए महानुभाव, कैसे आगमन हुआ?
तो उसने कहा कि आपकी लड़की ने मुझसे विवाह का निवेदन किया था। मैं कहने आया हूं कि मैं राजी हूं।
उन्होंने कहा, जरा देर हो गई। अब तो लड़की के दो बच्चे भी हैं, उसकी शादी भी हो गई। कब कहा था उसने आपसे?
उसने जल्दी से अपनी नोट-बुक निकाली, तारीख बताई। तीन साल बीत चुके थे। फिर शादी कभी हुई नहीं। अच्छा ही हुआ कि एक महिला उपद्रव से बची।
यह नौकर पर इतना निर्भर हो गया था इमेनुअल कांट, क्योंकि नौकर को ही
सब याद रखना पड़ता था--कब चाय पीनी, कब भोजन करना, कब सोना, कब युनिवर्सिटी जाना, कब युनिवर्सिटी से घर आना। नौकर चौबीस घंटे छाया की तरह उसके पीछे लगा रहता था। इस पर यह इतना निर्भर हो गया था कि नौकर जितनी तनख्वाह मांगता उतनी देनी पड़ती। नहीं तो वह धमकी देता कि मैं जा रहा हूं। उसके बिना तो एक दिन नहीं रह सकता था। उसके बिना तो एक इंच नहीं चल सकता था। उसके बिना तो कोई उपाय ही नहीं था।
और ऐसा इमेनुअल कांट के संबंध में ही नहीं है, ऐसी स्थिति बहुत से दार्शनिकों के संबंध में रही है। उसका कारण? विचारों में खो गए, बहुत विचारों में खो गए। इतने ज्यादा विचारों में खो गए कि द्रष्टा का ख्याल ही

न रहा। दर्शन में इतने खो गए कि द्रष्टा का ख्याल ही न रहा। अपने को भूल ही गए।
हम सब भी छोटे-मोटे दार्शनिक हैं। इमेनुअल कांट जैसे बड़े न भी हों, उतने बड़े जाले बनाना न भी जानते हों; मगर हम सबके भी छोटे-छोटे जाले हैं। हम सबने भी अपने जाले बुन रखे हैं। हम सबके भी छोटे-छोटे शास्त्र हैं। हम सबकी भी धारणाएं हैं। ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है, जिसकी अपनी कोई दार्शनिक धारणा न हो। सही हो, गलत हो, यह और बात है। यूं तो यह है कि सभी धारणाएं गलत होती हैं, और सभी दर्शनशास्त्र गलत होते हैं। द्रष्टा होना एकमात्र सत्य है, बाकी तो सब सपने का जाल है। तुम्हारे भीतर न तो शरीर सत्य है, न मन सत्य है। तुम्हारे भीतर इन दोनों को देखने वाला सत्य है। उसकी जिस विधि से याद आ जाए... ।
अलग-अलग विधियां उपयोग की गई हैं, वे सब विधियां मात्र स्मृति के कृत्रिम उपाय हैं। कैसे यह घटना घटेगी, कहा नहीं जा सकता। क्योंकि अलग-अलग लोगों को अलग-अलग तरह से घटी है। मगर इतना जरूर कहा जा सकता है कि जब भी यह घटना घटी है तब किसी न किसी बहाने द्रष्टा में ठहरना हो गया है। चाहे सुबह सूरज को ऊगते देख कर तुम्हारे भीतर विचार शांत हो जाएं। जरूर किसी को कभी न कभी सूरज को ऊगते देख कर विचार शांत हो गए होंगे और तभी से सूर्य-नमस्कार चला होगा। तभी से हजारों लोग सूरज को जलधार अर्पण करते हैं। मगर वह उपचार कृत्रिम है। उनको कुछ पता नहीं--क्यों ऐसा कर रहे हैं। सूरज को झुक कर नमस्कार करते हैं। जरूर किसी को चांद को देख कर भीतर सन्नाटा छा गया होगा। तो इसलाम चांद से ही अपने महीनों की गणना करता है। जरूर पीछे खोदने पर कोई व्यक्ति मिलेगा, जिसने चांद को देख कर ही जीवन की संपदा पा ली। मगर ये सब बहाने मात्र हैं।
बुद्ध को तो ज्ञान हुआ था सुबह का आखिरी तारा डूबते देख कर। अब भी चीन, कोरिया, जापान और बौद्ध देशों में सुबह का आखिरी तारा डूबते देखने की धारणा प्रचलित है। लाखों लोग देखते हैं और सोचते हैं कुछ हो जाएगा। मगर कुछ होता नहीं। ये कोई विधियां नहीं हैं। यह कोई विज्ञान नहीं है। ये सांयोगिक घटनाएं हैं। बुद्ध शांत थे, मौन थे। आकाश को देखते थे। आकाश और उनके बीच में कोई विचारों का जाल नहीं था। यह तो संयोग की बात थी कि उस समय आखिरी तारा डूब रहा था। उस आखिरी तारे के डूबने से कोई कार्य-कारण का संबंध नहीं है। इसलिए हजारों विधियां हो सकती हैं ध्यान की, क्योंकि अलग-अलग लोगों को अलग-अलग तरह से... ।
जैसे तुमने सुना होगा बाल्मीकि के संबंध में, कि नारद ने तो कहा था बाल्मीकि को कि तू राम-राम जपना; मगर बाल्मीकि था अपढ़, वह भूल गया। और यूं भी अगर तुम तेजी से राम-राम, राम-राम, राम-राम जपोगे, तो थोड़ी देर बाद तय करना मुश्किल हो जाएगा कि तुम राम-राम जप रहे हो कि मरा-मरा जप रहे हो। अगर दो राम के बीच में जगह नहीं छोड़ी, जैसे कि कोई एक ही लकीर में राम-राम राम-राम लिखता रहे, तो फिर कोई उसको मरा-मरा भी पढ़ सकता है और राम-राम भी पढ़ सकता है। वैसी ही घटना बाल्मीकि को घट गई। बेपढ़ा-लिखा आदमी था, वह भूल ही गया राम-राम। वह धीरे-धीरे मरा-मरा-मरा-मरा जपने लगा। मगर यूं ही उसे परम प्राप्ति हो गई।
अब कुछ मरा शब्द में मंत्र नहीं है, न राम शब्द में मंत्र है, ख्याल रखना। अगर राम शब्द में ही मंत्र होता तो बाल्मीकि को उपलब्धि नहीं हो सकती थी। बाल्मीकि को तो मरा जपते-जपते उपलब्धि हो गई। मगर वह तन्मयता, वह तल्लीनता, वह समग्रता किस तरह हो जाए, यह सवाल है।
अंग्रेजी का प्रसिद्ध कवि टेनिसन कहता था, मैं तो अपना ही नाम पांच बार दोहरा देता हूं और एकदम सन्नाटा छा जाता है।
बचपन में टेनिसन के पिता ने उसको कहा था कि कभी क्रोध नहीं करना मेरे सामने। मैं नहीं चाहता कि तुम जीवन में क्रोध सीखो। मैं बहुत क्रोध में जला हूं और मैंने बहुत दुख पाया है। तो उसने पूछा कि मैं क्या करूं अगर क्रोध आ जाए? तो टेनिसन के पिता ने कहा कि स्मरण रखना।
कैसे स्मरण रखूंगा?

तो उसके पिता ने कहा कि तू यूं स्मरण रखना कि अगर क्रोध की कोई स्थिति
आ जाए तो अपने भीतर ही कहनाः टेनिसन, सावधान! टेनिसन, सावधान! इससे तुझे स्मृति आ जाएगी।
तो यह उसे अभ्यास हो गया। पिता के साथ ही नहीं, जब भी पिता कुछ कहता उसको, उसको क्रोध आ जाता, तो वह कहताः टेनिसन, सावधान! मन में ही कहता। फिर तो उसे आनंद आने लगा। आनंद इसलिए आने लगा कि जब भी वह यह कहता--"टेनिसन, सावधान!" क्रोध तिरोहित हो जाता। जैसे आया ही नहीं, पता ही नहीं चला कहां गया! फिर तो दूसरों के साथ भी प्रयोग करने लगा। छोटे बच्चों में एक अन्वेषण की वृत्ति होती है। किसी ने गाली दी, और वह भीतर कहता, टेनिसन, सावधान! और गाली यूं जैसे आई, नहीं आई; दी, नहीं दी। उसे तो बड़ा सुख अनुभव होता कि मेरे हाथ में एक कुंजी लग गई। फिर तो सावधान कहने की भी जरूरत न रही, बस इतना ही कहना काफी था--टेनिसन! फिर तो उसे एक सूत्र और हाथ लग गया कि जब भी वह टेनिसन कहता है अपने भीतर तो एक अपूर्व शांति अनुभव होती है। तो रात अगर कभी नींद न आए तो वह तीन-चार बार कहे--टेनिसन, टेनिसन, टेनिसन! और एकदम नींद आ जाए। कितना ही मन तनावग्रस्त हो, वह टेनिसन कहे और मन का तनाव खो जाए। सूत्र हाथ लग गया। जीवन भर वह इसका अभ्यास करता रहा। यही उसका महामंत्र था। अपना ही नाम, राम का नाम भी नहीं, परमात्मा का भी नाम नहीं, कोई हरिभजन भी नहीं किया--और यूं ही उसने अपने द्रष्टा को धीरे- धीरे-धीरे-धीरे उघाड़ लिया।
तू पूछती हैः "पिया मिलन कैसे हो?"
मैं सिर्फ इशारे दे सकता हूं। कोई बंधी हुई विधि देना ठीक भी नहीं है, क्योंकि पता नहीं विधि तेरे काम पड़े न पड़े, तुझे रास आए न आए। व्यक्ति- व्यक्ति अलग हैं। लेकिन इशारे काम पड़ जाएंगे। फिर विधि तू खोज लेना। मीरा को तो कृष्ण पर ही टकटकी बंध गई और उसी से उपलब्धि हो गई। महावीर हंसते। मान ही नहीं सकते थे कि यह हो सकता है, क्योंकि महावीर को ऐसी कोई घटना नहीं घटी थी। महावीर को तो समस्त विचार छोड़ कर निर्विचार होने से घटना घटी थी। और कृष्ण तो एक विचार है। कितनी ही प्यारी प्रतिमा हो-- बांसुरी बजाती हो, मोर-मुकुट बंधा हो, बड़ी सुंदर हो, मनभावन हो, लुभावनी हो--पर इससे क्या फर्क पड़ता है? महावीर का मार्ग तो पुरुष का मार्ग है। इसलिए महावीर की परंपरा में यह कहा जाता है कि स्त्री-पर्याय से मोक्ष हो ही नहीं सकता। और इस बात में थोड़ा बल है। महावीर की परंपरा से नहीं हो सकता, क्योंकि महावीर की पूरी परंपरा प्रेम-शून्य है। लेकिन स्त्री पर्याय से मोक्ष ही नहीं हो सकता, यह बात गलत है। क्योंकि और परंपराएं हैं, और मार्ग हैं।
मीरा को निर्विचार होना उतना नहीं जमेगा। मीरा परिपूर्ण स्त्री है। अगर महावीर परिपूर्ण पुरुष हैं, तो मीरा परिपूर्ण स्त्री है। उनमें भेद उतना ही है जितना जमीन और आसमान में। होना स्वाभाविक भी है। साधारण स्त्री और पुरुष में कितने भेद होते हैं! फिर परिपूर्ण स्त्री और परिपूर्ण पुरुष में तो भेद बहुत होंगे। व्यक्तित्व के भेद बहुत होंगे। स्त्री निर्विचार की धारणा में नहीं जा सकती, लेकिन उसका प्रेम इतना गहन हो सकता है, इतना गहन कि उसके प्रेम का परिणाम ही निर्विचार हो जाए। उसकी प्रेम की तल्लीनता ऐसी हो सकती है, ऐसी डुबकी लगे कि निकलने की बात ही न उठे। ऐसी ही डुबकी लगी मीरा को।
नीलम, ऐसी ही डुबकी तुझे लगेगी। मैं तुझे जानता हूं, निकट से जानता हूं। जिन लोगों को मैं बहुत निकट से जानता हूं, उनमें तू एक है। जिनके हृदय में मैंने झांक कर गौर से देखा है, उन सौभाग्यशाली लोगों में से तू एक है। तुझे यूं ही डुबकी लगेगी, प्रेम से ही लगेगी। सच तो यह है, तेरी डुबकी लग ही रही है। तू रोज-रोज पिया के करीब आ ही रही है।
प्रेम में डूब! प्रेम में रो! प्रेम में गा! प्रेम में नाच! प्रेम में आह्लादित हो! प्रेम जो करवाए, कर! प्रेम में मतवाली हो, दीवानी हो, पागल हो। यही तेरी पूजा, यही तेरी अर्चना, यही तेरा मार्ग। प्रेम में अहंकार अपने आप खो जाता है। प्रेम में अहंकार बचता नहीं। प्रेम जहर है अहंकार के लिए और अमृत है परमात्म-अनुभव के लिए। प्रेम यूं है जैसे प्रकाश; अंधेरा तत्क्षण विलीन हो जाता है।

प्रेम के रास्ते से ही तेरी गति होगी। गति हो ही रही है। मैं तेरे कदमों को रोज प्रभु-मंदिर की ओर बढ़ते देख रहा हूं। आह्लादित हूं।
लेकिन अक्सर ऐसा होता है, जितने-जितने हम परमात्मा के करीब आने लगें, उतना ही उतना खिंचाव तीव्रता से मालूम होता है। उतना ही उतना लगता है और जल्दी हो जाए, और जल्दी हो जाए।
इसीलिए तूने पूछा हैः "पिय को खोजन मैं चली, पिया मिलन कैसे हो?"
स्वाद लगने लगा है। बूंदा-बांदी होने लगी है।
लेकिन जब बूंदा-बांदी होती है तो मन करता है कि अब बूंदा-बांदी ही क्यों? अब फूट पड़े आसमान! अब टूट पड़े आसमान! अब क्यों न पूरा सागर उतर आए? अब क्यों एकाध-दो किरणें आएं, क्यों न पूरा सूरज आ जाए?
यह स्वाभाविक है। जिनको एक भी बूंद जीवन में नहीं मिली, उनको यह बात पैदा नहीं होती। उनको यह सवाल ही नहीं उठता। वे पूछते ही नहींः पिय को खोजन मैं चली... ! यह बात ही उनकी नहीं है। कोई धन को खोज रहा है। कोई पद को खोज रहा है, प्यारे को खोज कौन रहा है?
तू चल पड़ी है। तेरे पैर ठीक रास्ते पर चल पड़े हैं। तुझमें रोज प्रीति घनी हो रही है, मौन घना हो रहा है। तेरी प्रार्थना सघन हो रही है। तेरा समर्पण रोज-रोज त्वरा को और तीव्रता को उपलब्ध हो रहा है। लेकिन जैसे-जैसे यह होगा, वैसे-वैसे लगेगा--और जल्दी हो जाए, और जल्दी हो जाए। जैसे-जैसे वह मंदिर करीब आएगा, उसकी धूप की गंध तेरे करीब आने लगेगी, मंदिर में जलते हुए दीये तुझे दिखाई पड़ने लगेंगे, वैसे-वैसे दौड़ने का मन होने लगेगा। वैसे- वैसे तेजी बढ़ेगी। वैसे-वैसे तू परवाना बनेगी। जैसे शमा के पास परवाना जैसे-जैसे करीब आता है वैसे-वैसे उसकी तड़प बढ़ती जाती है। और तड़प आखिर कहां ले जाती है? परवाना मिटता है, शमा में जल जाता है। वही पिया का मिलन है। वही प्यारे का मिलन है। उस मिटने में ही मिलन की घड़ी आ जाती है। हालांकि जो मिटता है वह झूठ था और जो पाया जाता है वह परम सत्य है।

दूसरा प्रश्नः ओशो! कुछ दिनों से आप आंखों से पिलाते हैं, लेकिन मदहोश आंखें ढल जाती हैं। तत्क्षण अहोभाव में डूब जाता हूं और हृदय से पुकार उठती हैः
गुरु बिन ज्ञान कहां से पाऊं?
दीजो ध्यान हरिगुन गाऊं!
मन तड़पत हरि-दर्शन को आज!

चितरंजन! जैसे-जैसे तुम मधुशाला के अंदाज सीखोगे, वैसे-वैसे पीने और पिलाने के नये-नये ढंग भी तुम्हें ख्याल में आएंगे।
जो सबसे पहले यहां आता है वह तो मेरे शब्दों से ही परिचित होता है। शब्दों से भी परिचित हो जाए तो बहुत। क्योंकि शब्द भी वह वही सुनता है जो सुन सकता है--जो उसकी धारणाओं, मान्यताओं के अनुकूल पड़ते हैं। जो प्रतिकूल पड़ते हैं उनके लिए तो बहरा हो जाता है वह। या फिर उन शब्दों को तोड़-मरोड़ लेता है। ऐसा कुछ सुन लेता है जो मैंने कहा नहीं, जो मेरा कभी अभिप्राय नहीं था, हो नहीं सकता था।
लेकिन जो प्रथमतः आता है, उसे तो शब्दों की प्यालियों में ही शराब भेंट की जा सकती है। वह और किसी तरह की प्यालियों से तो परिचित नहीं है। फिर जैसे-जैसे तुम मेरे करीब आने लगते हो वैसे-वैसे मयकदे के नये-नये रिवाज, मयकदे की गहराइयां तुम्हारे ख्याल में आनी शुरू हो जाती हैं। यह मंदिर नहीं है, ध्यान रखना। जब तक मैं जिंदा हूं तब तक तो यह मधुशाला है। छोटी-मोटी घटनाएं अगर मंदिर जैसी लगती भी हों तो उन पर ध्यान मत देना। संत महाराज ने कल ही पूछा था कि एक सज्जन अपने मित्र से बुद्धकक्ष से निकलते हुए कहते जा रहे थे कि अब यह स्थान भी एक मंदिर होता जा रहा है। संत से न रहा गया तो उन्होंने पूछा कि आपका अर्थ? तो उन्होंने कहा कि मेरे जूते चोरी चले गए।
ऐसी छोटी-मोटी घटनाएं यहां घटेंगी, इससे इसको मंदिर मत समझ लेना।
जूते कभी-कभी मधुशाला से भी चले जाते हैं। चोरी नहीं जाते, यह तो पक्का है।
मधुशाला में कहां चोर! मगर कोई ज्यादा पी गया, किसी और के पहन कर चला गया।

और चोरी-वोरी नहीं। पियक्कड़ों का क्या, किसी और के जूते पहन कर चले जाएं! यह तो रिंदों की दुनिया है।
नसरुद्दीन एक दिन मुझे दिखाई पड़ा। एक पैर में लाल मोजा पहने हुए, एक पैर में पीला मोजा पहने हुए। मैंने कहा कि नसरुद्दीन, यह कोई नयी फैशन निकली क्या? ये किस ढंग के मोजे खरीद लाए?
उसने कहा, यही तो मैं चकित हूं। और एक ही जोड़ी नहीं है, मेरे घर में दो जोड़ी हैं। इसी तरह की एक और जोड़ी है मेरे घर में! यही मैं सोचता हूं कि माजरा क्या है? यह कंपनियों ने क्या फैशन निकाला है!
पियक्कड़ों का क्या भरोसा! जूते कोई चोरी नहीं ले जाएगा। अन्यथा कोई भूल से यहां आ गया हो, जूते चुराने को ही आ गया हो। वैसे लोग भी आ जाते हैं। कई को भ्रांति है कि यह भी मंदिर है, वे आ जाते हैं भूल से। तो वे फिर वैसा ही व्यवहार करते हैं जैसा मंदिर में करना होता है।
मंदिरों में अक्सर ऐसा होता है कि लोग हाथ जोड़ कर परमात्मा को नमस्कार कर रहे होते हैं, लेकिन लौट-लौट कर जूते देखते रहते हैं। अब इनका नमस्कार परमात्मा को पहुंचे तो कैसे पहुंचे? परमात्मा को नहीं, जूतों को पहुंच रहा है नमस्कार! क्योंकि जहां नजर है वहां नमस्कार है।
लोग मंदिर में तो बिल्कुल सड़े-गले जूते पहन कर जाते हैं--यूं कि चोरी
भी चले जाएं तो समझो अच्छा ही है, झंझट मिटी। कहने को भी रह जाएगा कि जूते भी चोरी चले गए, अब दूसरे खरीदने पड़ेंगे; या मौका लगा तो वहीं से बदल कर आ जाएंगे।
चंदूलाल मारवाड़ी के पास मैंने एक दिन एक छाता देखा--बिल्कुल नया छाता, जैसे आज ही खरीदा हो! मैंने पूछा कि चंदूलाल, बड़ा नया छाता खरीद लाए हो! उन्होंने कहा, नया छाता नहीं है, सत्रह साल पुराना!
सत्रह साल पुराना! और इसकी यह हालत! भारत में ही बना है? यहां सत्रह दिन छाता नहीं टिकता और सत्रह साल कैसे टिक गया?
उन्होंने कहा, भारत में ही बना है, मगर बड़ा मजबूत छाता है। अरे इसके टिकने की क्या कहें! कम से कम पचास दफे तो बदल चुका है और कम से कम पचास दफे मैं सुधरवा चुका हूं। और अब आपने बात ही पूछ ली, तो आज सुबह मंदिर गया था वहां फिर बदल गया। मगर है गजब का मजबूत छाता! सत्रह साल हो गए, मगर वही ताजगी, वही नयापन।
मंदिर लोग जाते अपने-अपने कारणों से हैं--कोई छाता बदलने जाता है, कोई जूते बदलने जाता है। उनकी बात छोड़ दो। यहां कुछ लोग आते हैं सिर्फ शब्दों को सुनने। जो शब्दों को ही सुनने आए हैं, उनको मैं कुछ और पिलाना भी चाहूं तो नहीं पी सकेंगे।
चितरंजन, लेकिन जो पीने लगे हैं, फिर उनको आंखों से ही पिलाना है। असली चीज तो आंखों और आंखों में ही घट सकती है। वह तो आंखों और आंखों के बीच ही घटती है। उसके लिए शब्द आवश्यक नहीं हैं, मौन काफी है। जिनकी आंखों का और मेरी आंखों का तार जुड़ गया है, वे मेरे शब्दों को और ढंग से ही सुनते हैं फिर। पीते हैं, सुनते नहीं। फिर उनके भीतर न तर्क है, न विवाद है। और जब तर्क और विवाद सब शांत हो जाते हैं तब संवाद पैदा होता है। और संवाद के बिना सत्य की कोई अनुभूति नहीं होती।
यह अच्छा हो रहा है। तुम कहते होः "कुछ दिनों से आप आंखों से पिलाते हैं।"
कुछ दिनों से तुम करीब आ गए हो। कुछ दिनों से तुम निकट हो गए हो। रोज निकट होते जा रहे हो।
और तुम कहते होः "लेकिन मदहोश आंखें ढल जाती हैं।"
वह भी ठीक है, कि जब आंखों से पीओगे तो आंखें बंद हो जाएंगी। जब आंखों
से पीओगे तो आंखें ढल जाएंगी, मदमस्त हो जाएंगी।
घबड़ाओ न। चिंता न लेना। जबरदस्ती आंखों को खोल कर भी मत रखना। क्योंकि कभी-कभी यूं होता हैः खुली आंखें जो नहीं पी पातीं, वे बंद आंखें ही पी पाती हैं। जितना खुली आंखें पी सकती हैं उतना पीएंगी और फिर बंद हो जाएंगी, फिर बंद आंखें पीएंगी। उसकी चिंता मत लेना। एक बार आंखों का संबंध बनना शुरू हुआ, एक बार नजर लड़ी, तो फिर खुली हों आंख कि बंद हों आंख, कोई भेद

नहीं पड़ता, पीना जारी रहेगा। मैं बोलूं तो, मैं न बोलूं तो। मैं यह कहूं तो, मैं वह कहूं तो।
कल ही एक मित्र ने पूछा है कि जब आप पिछले वर्ष संतों पर बोल रहे थे, तब मेरे आंसू बहते थे। अब आप लोगों के प्रश्नों के उत्तर दे रहे हैं तो आंसू नहीं बहते। इसका अर्थ क्या हुआ?
इसका अर्थ हुआः मुझसे नाता नहीं है। वे आंसू वगैरह जो बह रहे थे, मेरे कारण नहीं बह रहे थे। वे तुम्हारी धारणाओं के कारण, क्योंकि तुम्हारे संतों पर बोल रहा था। जब नानक पर बोल रहा था तो यहां सिक्खों की संख्या दिखाई पड़ने लगी थी, और गदगद होते थे वे। उनका कुछ मुझसे लेना-देना नहीं। नानक के खिलाफ एक शब्द कह देता, और वे कृपाण फड़काने लगते। उनको कुछ मुझसे लेना-देना नहीं। वह जो खुश हो रहे थे, वह जो गदगद हो रहे थे, वह गदगद होना सब झूठ है। वह तो उनकी धारणा की मैं पुष्टि कर रहा था, सो उनकी आंखें गीली हो रही थीं, आंसू झर रहे थे। क्योंकि वे कह रहे थे, अहा--दिल ही दिल में--कि हम जो मानते थे, बिल्कुल ठीक है। तो आप भी यही कहते हैं! तो आप भी समर्थन करते हैं हमारा!
तो तुम्हें आंसू बहते होंगे। क्योंकि जब मैं सुंदरदास पर बोल रहा था
तो कोई सुंदरदास को मानने वाला होगा। जब मैं कबीर पर बोल रहा था तो कोई कबीर को मानने वाला होगा। और जब मैं मीरा पर बोल रहा था तो कोई मीरा को मानने वाला होगा। उन सब मानने वालों के हृदय गदगद होते होंगे। और एक बात यह कि कम से कम वे सब पुराने थे। और पुराने से हमारा ऐसा आग्रह है कि जिसका कोई हिसाब नहीं। उनके शब्दों में चाहे कुछ हो या न हो, लेकिन पुराने से हमें बहुत आग्रह है। और मैं तो उनके शब्दों को केवल खूंटियों से ज्यादा नहीं मानता हूं। टांगना तो मुझे वही है जो मुझे टांगना है। वे सुंदरदास हों, कि कबीरदास हों, कि नानक हों, कि रैदास हों, कुछ भेद नहीं पड़ता--मेरे लिए खूंटियां हैं। मगर तुम खूंटियों से बंधे हुए लोग हो। तुम्हारी खूंटी की मैं प्रशंसा कर दूं तो तुम्हारा हृदय गदगद हो जाता है।
अब जिन सज्जन ने यह पूछा है, उनसे मैं कहूंगा, भैया, तुम घर ही रो लिया करो। पढ़ लिए सुंदरदास को और जी भर कर वहीं रो लिए। यहां आने की क्या जरूरत है?
लेकिन जो मुझे समझते हैं, जिनका मुझसे प्रेम है--सीधा, जिन्हें मेरा पता है, जो यहां केयर ऑफ नहीं आए हैं, उनको कुछ फर्क नहीं पड़ता कि मैं लोगों के प्रश्नों के उत्तर दे रहा हूं... क्योंकि मैं तो वही हूं। और तुम क्या सोचते हो, अगर योग नीलम के प्रश्न का उत्तर दिया तो तुम्हें नहीं जंचेगा, कि ठीक है, योग नीलम क्या पूछेगी! और अगर मीरा के बिल्कुल सड़े-गले किसी वचन पर भी मैं बोल दूं तो वह जंचेगा, क्योंकि वह मीरा का वचन है। और नीलम में मुझे कोई कमी नहीं दिखाई पड़ती। एकाध-दो कदम और कि हो जाएगी मीरा--और जीवित मीरा होगी!
चितरंजन के प्रश्न का उत्तर दे रहा हूं, तो तुम्हारी आंखों में आंसू नहीं आएंगे कि अरे यह चितरंजन! वही बड़ौदा वासी चितरंजन! लेकिन अगर मैं यूं ही झूठे भी कोई संत गढ़ लूं... और तुम मेरा भरोसा मत करना, मैं बुद्धुओं के लिए कई काम करता हूं। उल्लू मर जाते हैं, औलाद छोड़ जाते हैं। तो उनकी औलाद की भी तो फिक्र करनी पड़ती है। तो उनके लिए मैं उल्लुओं के वचनों पर बोल देता हूं। अब उल्लू के वचनों में कुछ भी नहीं है--उल्लू ही है! मगर मैं उसमें ऐसे-ऐसे अर्थ बता दूंगा कि औलाद की आंखों में से आंसू बहें! उल्लुओं की औलाद कहे कि वाह, क्या आपने बाप-दादों की याद दिलवा दी! थे पहुंचे हुए, यह तो हम पहले ही जानते थे, मगर हमको पता नहीं था, ठीक-ठीक पता नहीं था कि अपने बाप-दादे कितने पहुंचे हुए थे!
अतीत से, पुरातन से, सड़े-गले से, मुर्दा से, मरघटों से तुम्हारा ऐसा लगाव है, लाशों की तुम ऐसी पूजा करते हो कि जिसका कोई हिसाब नहीं।
जिनका मुझसे संबंध है, उन्हें कुछ भेद नहीं पड़ता।
एक मित्र ने पूछा है कि अगर किसी दिन कोई भी प्रश्न न आए तो आप क्या करेंगे?
तो मैं दिल खोल कर बोलूंगा। प्रश्न की भी बाधा न रही। नहीं तो थोड़ा प्रश्न का ख्याल रखना पड़ता है। बोलता तो मैं यूं दिल खोल कर ही हूं, मगर

थोड़ा-थोड़ा प्रसंग प्रश्न का मुझे लेना पड़ता है, ताकि तुम्हें ऐसा न लगे कि मैं बहुत दूर निकल गया प्रश्न से। लौट-लौट कर याद दिला देता हूं, कि पिय को खोजन मैं चली! फिर मुझे जहां जाना है मैं वहीं जाता हूं और जहां तुम्हें ले जाना है वहीं ले जाता हूं। फिर महीने, दो महीने में एकाध दफे याद दिला देता हूं--पिय को खोजन मैं चली। तुमको लगता है कि ठीक, विषय पर ही बात चल रही है। और विषय वगैरह से मुझे क्या लेना है? जब तुमको निर्विषय करना है तो विषय से मुझे क्या लेना-देना है? नहीं कोई प्रश्न आएंगे, तुम चिंता मत करो, उस दिन दिल खोल कर बोलूंगा। मगर उस दिन सिर्फ वही मुझे समझ सकेंगे जिन्होंने मेरी आंखों से पीना सीख लिया है। जो आंखों से पीएगा उसकी आंखें मदमस्त होंगी, नशा छाएगा। और यह नशा ऐसा है, जो बेहोश नहीं करता, होश में लाता है।
तुम पूछते हो चितरंजनः "गुरु बिन ज्ञान कहां से पाऊं?
दीजो ध्यान हरिगुन गाऊं!"
उसी गुरु की तो तुम्हें याद दिला रहा हूं। वह गुरु तुम्हारे भीतर बैठा हुआ है। नाम उसका जो भी रख लो, चाहे उसे कहो प्यारा, पिया, परमात्मा, चैतन्य, साक्षी, चाहे कहो गुरु।
मगर थोथे गुरुओं ने इस तरह के वचनों का बहुत लाभ उठाया। वे यही समझाने लगे लोगों को कि गुरु बिन ज्ञान कहां! वे समझाने लगे कि हमारे बिना ज्ञान नहीं होगा। यह अर्थ नहीं है उसका।
तुम्हारे भीतर ही तुम्हारा गुरु छिपा है। बाहर का गुरु सदगुरु है, अगर तुम्हें भीतर के गुरु की याद दिला दे। और बाहर का गुरु मिथ्या गुरु है, अगर बाहर ही तुम्हें उलझा ले और भीतर के गुरु तक न जाने दे, बाधा बन जाए। सौ में निन्यानबे मौकों पर बाहर के गुरु तुम्हारे भीतर के गुरु और तुम्हारे बीच बाधा बन जाते हैं। असल में वे तुम्हारे भीतर के गुरु से डरते हैं, वे नहीं चाहते कि तुम मुक्त हो जाओ। वे नहीं चाहते कि तुम अपने पैरों पर खड़े हो जाओ। वे नहीं चाहते कि तुम स्वतंत्र हो जाओ। वे तुम्हें सब तरह से निर्भर बनाना चाहते हैं। निर्भरता का अर्थ है गुलामी। वे मजा लेते हैं तुम्हारी गुलामी का। और जैसे और तरह की गुलामियां होती हैं, ऐसे मानसिक गुलामी होती है।
और इस देश में तो बड़ी मानसिक गुलामी है। गांव-गांव गुरु हैं, मोहल्ले- मोहल्ले गुरु हैं। और हर गुरु समझा रहा है लोगों कोः गुरु बिन ज्ञान नहीं! और यह इतने दिनों से कहा जा रहा है, सदियों से, कि लोगों को कंठस्थ हो गई है यह बात। लोग कहते हैं होनी चाहिए ठीक। पहले भी गुरु यही कह गए हैं कि गुरु बिन ज्ञान नहीं। तो चरण गहो किसी गुरु के, पकड़ो किसी गुरु को।
मैं उन गुरुओं में से नहीं हूं। सच पूछो तो मैं तुम्हारा गुरु नहीं हूं। मैं तुम्हारा मित्र हूं। मैं आनंदित होऊंगा तुम्हारा मित्र रह कर। मैं तुम्हें साथ देना चाहता हूं--साथी हूं, गुरु नहीं। मैं तुम्हें गुलाम नहीं बनाना चाहता। मैं तुम्हें आंखें देना चाहता हूं, तुम्हारी बैसाखी नहीं बनना चाहता।
बैसाखी कभी नहीं चाहेगी कि तुम्हें आंखें मिलें। क्योंकि बैसाखी कैसे चाहेगी कि तुम्हें आंखें मिलें, कैसे चाहेगी कि तुम्हारा लंगड़ापन दूर हो जाए! अगर तुम लंगड़े न रहे, तुम्हें आंखें मिल गईं, तो तुम बैसाखी को फेंक दोगे। तो बैसाखी तो चाहेगी कि तुम सदा लंगड़े रहो, सदा अंधे रहो, तुम सदा पंगु रहो। पंगु होने में ही तो बैसाखी का बल है तुम्हारे ऊपर। तुम्हारे तथाकथित गुरुओं की जो भीड़ है, उसका पूरा धंधा इस बात पर निर्भर है कि वे तुम्हें परतंत्र बना कर रखें--एक दिमागी गुलामी, एक आध्यात्मिक गुलामी।
भारत आध्यात्मिक रूप से पहले गुलाम हुआ और इसीलिए फिर राजनैतिक रूप
से गुलाम होना पड़ा। जिनकी आत्माएं गुलाम हो गईं, वे कितने दिन तक राजनैतिक रूप से स्वतंत्र रह सकते थे? असंभव था। जो अपनी आत्माओं को भी न बचा सके, वे अपने शरीरों को क्या बचाते! जो अपनी आत्माओं को बेचने को तैयार हो गए, फिर शरीर को बेच देने में उन्हें कोई अड़चन न आई। दो हजार साल तक भारत गुलाम रहा।

क्यों? इतना बड़ा देश, इतनी बड़ी संख्या, इतने लोग, दुनिया का छठवां हिस्सा--और छोटे-छोटे लोग, छोटी-छोटी संख्या वाले लोग, छोटे-छोटे देश, जो इसके जिलों में समा जाएं, वे इस पर हुकूमत करते रहे! हूण आए, मुगल आए, तुर्क आए, अंग्रेज आए, पुर्तगाली आए--जो आया, भारत गुलाम होने को उसने हमेशा तैयार पाया। जैसे हम हाथ ही जोड़े खड़े थे कि आओ और हमें गुलाम बनाओ! जैसे हम भीख मांग रहे थे कि कोई आए और हमें गुलाम बनाए! इसके पीछे क्या कारण होगा? मेरे देखे, इसके पीछे कारण हैं तुम्हारे गुरु। पहले उन्होंने तुम्हें आध्यात्मिक रूप से गुलाम बनाया। जब तुम आत्मिक रूप से गुलाम हो गए, जब तुम्हारी मन और बुद्धि खो गई, फिर क्या कमी रही! तुम निर्वीर्य हो गए। और उन्हीं गुरुओं का जाल अभी भी फैला हुआ है। और अगर मैं उनके खिलाफ कुछ कह देता हूं तो मेरे पास पत्र आते हैं कि आप जैसे आध्यात्मिक व्यक्ति को किसी के विरोध में नहीं बोलना चाहिए।
भाड़ में जाए तुम्हारा अध्यात्म! मुझे कोई रस नहीं है आध्यात्मिक व्यक्ति होने में और इत्यादि में। मैं तो जैसा है वही कहूंगा। ये तुम्हारे जो तरह-तरह के गुरु खड़े हैं, ये तुम्हें गुलाम बना रहे हैं। ये तुम्हें राख तो बांट रहे हैं विभूति कह कर और तुम्हारी आत्माओं को सड़ा रहे हैं। इनसे जब तक तुम जागोगे नहीं, तब तक तुम कभी भी ज्ञान को उपलब्ध न हो सकोगे।
चितरंजन, यह वचन महत्वपूर्ण है। लेकिन इसका अर्थ हमेशा गलत किया गया है। इसका अर्थ इतना गलत किया गया है कि कृष्णमूर्ति जैसे व्यक्ति को गुरु को ही इनकार करना पड़ा, कि गुरु से ज्ञान हो ही नहीं सकता। यह दूसरी अति हो गई। और मैं इस अति का अर्थ समझ सकता हूं। यह परिपूरक अति है। सदियों से तुम्हें समझाया गया है कि गुरु से ही ज्ञान होगा, गुरु से ही ज्ञान होगा, गुरु के चरण गहो। कृष्णमूर्ति ने देखा कि यह गुलामी का कारण बना, तो इसको पूरा का पूरा जड़ से काट दो। गुरु से ज्ञान हो ही नहीं सकता।
मगर मैं तुमसे कहना चाहता हूं, दोनों अतियां गलत हैं। कृष्णमूर्ति की अति... अगर चुननी ही हो तो कृष्णमूर्ति की अति चुन लेना। कम से कम उससे तुम किसी के गुलाम नहीं बनोगे। मगर सत्य दोनों के बिल्कुल मध्य में है। अतियों में कभी सत्य नहीं होता। सत्य बिल्कुल मध्य में है। ज्ञान तो गुरु से ही होता है, मगर गुरु तुम्हारे भीतर है। यह मध्य सत्य है। बाहर के गुरु से ज्ञान नहीं होता। और बाहर के गुरु से जो लोग दावा करते हैं ज्ञान देने का, वे झूठा दावा करते हैं। ज्ञान कोई तुम्हें नहीं दे सकता। प्यास दे सकता है, तुम्हारे भीतर एक अहर्निश लपट पैदा की जा सकती है।
वही बाहर के गुरु का काम है कि तुम्हें झकझोर दे, जैसे तूफान झकझोर जाए। एक आंधी की तरह आए और तुम्हें हिला डाले, जड़ों से हिला डाले, ताकि तुम्हारी नींद टूटे! और उसका दूसरा काम है कि तुम्हें फेंक दे तुम्हारे ऊपर। तुम्हें अपने कंधे पर लेकर न ढोता फिरे, न तुम्हारे कंधे पर बैठे। तुम्हें तुम्हारे ऊपर फेंक दे। तुम्हें सजग करे कि तुम्हारी अंतरात्मा में ही तुम्हारा वस्तुतः जीवन-सूत्र छिपा है। वहीं दीया जल रहा है, जो कभी बुझा नहीं है। उसी दीये में ज्ञान है और वही गुरु है।
गुरु शब्द का अर्थ बड़ा प्यारा है। इसका अर्थ होता है--जिससे अंधकार मिटे। गुरु शब्द का अर्थ होता हैः दीया, रोशनी। प्यारा शब्द है। मगर प्यारे से प्यारे शब्द गलत लोगों के हाथों में पड़ कर घातक हो जाते हैं। कितना प्यारा शब्द है! लेकिन उसके क्या-क्या अर्थ हो गए! गुरुडम पैदा हो गई इस प्यारे अर्थ से। गुरुघंटाल पैदा हो गए इस प्यारे शब्द से।
देश के कई हिस्सों में तो गुरु का मतलब होता हैः गुंडा। पहुंचे हुए गुंडों को लोग कहते हैंः वाह गुरु, क्या बात कही! जैसे बंबई में गुंडा के लिए अच्छा शब्द उपयोग करना पड़ता है, क्योंकि गुंडे से गुंडा कहो तो खोपड़ी खोल दे। तो बंबई में उसको कहते हैंः दादा! गजब की बात है--दादा और गुंडा! ऐसे ही जबलपुर में जहां मैं रहता था, वहां गुंडे को कहते हैंः गुरु। कहना ही पड़ेगा, कुछ न कुछ अच्छा शब्द खोजना पड़ेगा। गुंडे को गुंडा तो नहीं कह सकते।

बहुत गुंडे गुरु शब्द के पीछे छिपे खड़े हैं। और बहुत सी दुकानें गुरु
के पीछे छिपी खड़ी हैं। सबसे बड़ी भ्रांति तो यह है कि ज्ञान बाहर से मिल सकता है।
ज्ञान बाहर से मिल ही नहीं सकता। ज्ञान तुम्हारा अंतर-भाव है, तुम्हारे भीतर के सूरज का ऊगना है। फिर बाहर के गुरु का क्या प्रयोजन है? बाहर के गुरु का प्रयोजन वही है जो बाहर के संगीत का होता है। जब कोई तबले पर ताल देता है, तो तुमने अनुभव किया, तुम्हारे पैर नाचने को उत्सुक हो उठते हैं! क्या हुआ? क्या हो गया? इधर तबले पर ताल पड़ी, किसी ने मृदंग बजाई, उधर तुम्हारे पैरों में क्या होने लगा? कैसी हलचल? तुम नाचने को उत्सुक होने लगे।
पश्चिम के बहुत बड़े मनोवैज्ञानिक कार्ल गुस्ताव जुंग ने इस प्रक्रिया के लिए एक नया ही नाम खोजा हैः सिनक्रानिसिटी, समस्वरता। बाहर कोई चीज घट रही है तो ठीक उसके समांतर कोई चीज भीतर घटनी शुरू हो जाती है। बाहर संगीत बजा, और तुम्हारे भीतर भी कोई धुन बजने लगती है। बाहर संगीत बजा, और तुम्हारा सिर हिला, तुम्हारे पैर नाचे। वह संगीत तुम्हारे भीतर था। वह पहले भी था जब संगीत नहीं बज रहा था, लेकिन अब संगीत ने उसे जगा दिया।
यही काम है बाहर के गुरु का, कि वह बाहर की मृदंग बजा दे, कि बाहर की बांसुरी बजा दे, कि बाहर की वीणा छेड़ दे, कि उसके समस्वर तुम्हारे भीतर जो सोए पड़े हैं, उन पर टंकार पड़ जाए। तुम्हें याद आ जाए अपने भीतर की। चितरंजन, "गुरु बिन ज्ञान कहां से पाऊं"--तब इस वचन का अर्थ तुम्हें समझ में आ जाएगा। निश्चित ही फिर गुरु के बिना कहीं से ज्ञान नहीं मिलता। लेकिन गुरु मेरे अर्थों में, वह केवल समस्वर पैदा करता है। वह केवल एक संगीतज्ञ है; एक नर्तक है, जो अपने पैरों में घुंघरू बांध कर नाचता है; और तुम्हारे भी पैरों में घुंघरू बांधने की इच्छा होने लगती है। चाहे तुम्हें नाच न भी आता हो, तो भी तुम्हारे पैर थिरकने लगते हैं। संगीत चाहे तुम्हें न भी आता हो, मगर सिर हिलने लगता है।
"दीजो ध्यान हरिगुन गाऊं।"
इस वचन का भी एक गलत अर्थ है और एक सही। हर वचन का गलत और सही अर्थ ध्यान में रखना जरूरी है। इसका गलत अर्थ पहले बता दूं। गलत अर्थ तो यह है कि लोग सोचते हैं कि हम मांगेंगे ध्यान और मिलेगा। परमात्मा से मांगना है, गुरु से मांगना है, तो मिलेगा।
मांगने से कुछ भी नहीं मिलता। भिखमंगों को कुछ भी नहीं मिलता। इस दुनिया का बड़ा अजीब नियम है--एस धम्मो सनंतनो, यही शाश्वत धर्म है, यही शाश्वत नियम है--कि यहां बादशाहों को मिलता है, भिखमंगों को नहीं मिलता। जिसने मांगा, वह चूका। जिसने झोली फैलाई, वह सदा के लिए खाली रह जाएगा। बिन मांगे मोती मिलें, मांगे मिले न चून। मांगो मत।
इसका गलत अर्थ तो हो जाता है मांगना, कि दीजो ध्यान हरिगुन गाऊं! कि हे प्रभु, मैं तुम्हारे गुण गाऊंगा, तुम मुझे ध्यान देना! इसका गलत अर्थ तो हो जाता हैः हे प्रभु, मैं तुम्हारी स्तुति करूंगा! स्तुति यानी खुशामद। गुणगान करूंगा, बढ़ा-चढ़ा कर तुम्हारे संबंध में बातें कहूंगा, कि तुम ऐसे हो, कि तुम वैसे हो, कि तुम पतितपावन हो, कि तुम रहीम हो, रहमान हो, कि तुम करुणा के सागर हो! और फिर रास्ता देखूंगा कि देखो, मैंने इतना बढ़ा-चढ़ा कर तुम्हारी प्रशंसा की, अब देखें तुम क्या देते हो!
यही खुशामद की वृत्ति इस भारत में गहरी घुस गई है। इसलिए यहां स्तुति तुम देखो तो चकित हो जाओगे। टुटपुंजिया राजनेता आ जाए, जिसकी दो कौड़ी भी कीमत नहीं है, तुम भी भलीभांति जानते हो, मगर उसकी प्रशंसा देखो-- फूलमालाएं पहनाई जा रही हैं! अभी कल यही आदमी तुम्हारे दरवाजे पर वोट मांगने खड़ा था और तुमने इससे बैठने को भी नहीं कहा था; यह भी नहीं कहा था कि आइए, पधारिए, विराजिए! ऐसे देखा था कि यह दुष्ट कहां से आ गया! इस ढंग से देखा था कि चलो आगे बढ़ो, जैसे लोग भिखारियों को देखते हैं। और आज यह पद पर है तो फूलमालाएं! फूलों की वर्षा हो रही है! मखमली कालीन बिछाए जा रहे हैं! और आज इसकी प्रशंसा सुनो तुम। तुम चकित हो जाओगे।

चंदूलाल चुनाव जीत गए। और स्वभावतः फिर उनका बड़ा स्वागत हुआ, जुलूस निकला, उनकी बड़ी प्रशंसा हुई। उनकी पत्नी गुलाबो भी अपने बच्चों के साथ समारोह में सुनने आई। बड़ी प्रशंसाएं चंदूलाल की की जा रही थीं। पत्नी ने अपने बेटे से कहा, बेटा, मुझे इतने दूर से साफ-साफ दिखाई भी नहीं पड़ता, तू जरा जाकर पास से तो देख, तेरे बाप ही हैं कि कोई और? क्योंकि ऐसी प्रशंसा हो रही है, यह तेरे बाप की तो नहीं हो सकती। तेरे बाप को तो मैं भलीभांति जानती हूं। जरा गौर से तो देख, कोई और तो नहीं बैठा है वहां!
उसको क्या गरीब को पता कि वह जिसको जानती है और जिसकी प्रशंसा हो रही
है, यह एक ही आदमी नहीं है अब, ये दो आदमी हैं, ये दो चेहरे हैं, ये दो मुखौटे हैं। वह असली चेहरा है जो वह जानती है; यह नकली चेहरा है जो अब नेता का है। इस देश में इसीलिए रिश्वत हटानी बहुत मुश्किल है; कोई उपाय नहीं है। क्योंकि हम भगवान तक को रिश्वत देने में शर्म नहीं खाते, तो बेचारे तहसीलदार को, थानेदार को, इन गरीबों को रिश्वत देने में कौन शर्म खाएगा! क्या हर्जा है? लोग हनुमान जी पर चढ़ा आते हैं नारियल और कह आते हैं कि अब ज्यादा नहीं है, ख्याल रखना। अरे फूल नहीं तो फूल की पांखुड़ी, इसको ही बहुत समझना। गरीब आदमी हूं, यह नारियल चढ़ाए जा रहा हूं, लड़के की नौकरी लगवा देना!
ऐसे ही वे राजनेताओं के पास पहुंच जाते हैं कि अब जो भी मुझसे बन सके, गरीब आदमी हूं, फूल नहीं तो फूल की पांखुड़ी! थानेदार को दे आते हैं, स्टेशन मास्टर को दे आते हैं, क्लर्क को दे आते हैं। जहां देखो वहां दे आते हैं। और कोई संकोच नहीं है, न देने में कोई संकोच है, न लेने में कोई संकोच है। जब भगवान तक रिश्वत लेता है और संकोच नहीं करता और सदियों से ले रहा है, शर्म नहीं खाई, नहीं तो चुल्लू भर पानी में कभी का डूब मरता! और देने वाले देते रहे और लेने वाला लेता रहा, तो हम तो छोटे-छोटे आदमी हैं, हमें क्या हर्ज है!
भारत से रिश्वत मिटाना मुश्किल है। यह इसका गलत अर्थ है कि हरिगुन गाऊं, दीजो ध्यान!
पर इसका एक सही अर्थ भी है। और सही अर्थ यह है कि ध्यान प्रसाद है। वह तुम्हारे प्रयास से नहीं मिलता, तुम्हारी चेष्टा से नहीं मिलता। तुम जितनी चेष्टा करोगे उतना ही पाना मुश्किल हो जाएगा। तुम्हारी चेष्टा से तनाव पैदा होगा। तनाव से ध्यान दूर हो जाएगा। ध्यान मिलता है विश्राम में। ध्यान मिलता है जब तुम बिल्कुल निश्चेष्ट होते हो; जब तुम बिल्कुल ही प्रयत्न-शून्य होते हो; जब कोई प्रयास नहीं होता; जब तुम्हारे भीतर कोई साधना नहीं चल रही होती। क्योंकि साधना का अर्थ हैः लक्ष्य, पाने की कोई चेष्टा, आकांक्षा, अभीप्सा। जब तुम्हारे भीतर यह कोई आपा-धापी नहीं है, जब तुम बिल्कुल चुपचाप हो--न कुछ मांगना है, न कुछ पाना है, न कहीं जाना है--तब अचानक वर्षा हो जाती है। यूं कि पता ही नहीं चलता कि किस अज्ञात द्वार से यह सूरज फूट पड़ा! कहां से ऊग आया यह सूरज! रोशनी ही रोशनी हो जाती है। इसलिए जिन्होंने जाना है ध्यान को, वे कहेंगे--प्रसाद है यह। फिर प्रसाद यानी परमात्मा का, और तो किसका होगा! परमात्मा से अर्थ किसी व्यक्ति का नहीं है। परमात्मा से अर्थ है--इस पूरे जीवन में जो छाई हुई ऊर्जा है, व्याप्त जो ऊर्जा है--इस जीवन की परम ऊर्जा का नाम परमात्मा है। निश्चित ही जब तुम बिल्कुल विश्राम में होते हो, वह ऊर्जा तुम्हारे भीतर प्रविष्ट हो जाती है, लहराने लगती है। जब तुम परम विश्राम में होते हो, तुम होते ही नहीं। जब तुम चेष्टा में होते हो तभी तुम होते हो। जब तुम प्रयत्न में होते हो तभी तुम होते हो। अहंकार हमेशा प्रयास से जीता है। और जहां प्रयास गया वहां अहंकार गया।
इस अर्थ में यह वचन बहुत अदभुत है। और तब स्वभावतः, ध्यान प्रसाद की तरह मिले, तो फिर हमारे पास और क्या है सिवाय इसके कि हम परमात्मा का अनुग्रह मानें, कि हम उसका गुण गाएं! यह तो इसका सम्यक अर्थ है। सम्यक अर्थ ध्यान रखना; असम्यक अर्थ से बचना। क्योंकि वह जो असम्यक अर्थ है वही तुम्हें समझाया गया है।
चितरंजन, अगर मेरी बात तुम्हें समझ में आ गई तो यह वचन प्यारा है, बहुमूल्य है। नहीं तो दो कौड़ी का है और खतरनाक है। समझ-समझ की बात है।

समझदार के हाथ में जहर भी औषधि हो जाती है और नासमझ के हाथ में औषधि भी जहर।
"गुरु बिन ज्ञान कहां से पाऊं?
दीजो ध्यान हरिगुन गाऊं।
मन तड़पत हरि-दर्शन को आज!"
तड़प तो होनी चाहिए, मगर तनाव नहीं। तड़प तो जितनी गहरी हो सके होने दो, मगर तनाव मत ले आना। और वहीं सारी कला है धर्म की। वहीं सारा राज है, रहस्य है। नहीं तो क्या फर्क पड़ेगा? एक आदमी धन के लिए तड़प रहा है और एक आदमी ध्यान के लिए तड़प रहा है; कोई फर्क नहीं रह जाएगा। दोनों तड़प रहे हैं। दोनों के भीतर वासना की अग्नि जल रही है। दोनों उद्विग्न हैं। दोनों विक्षिप्त हैं। दोनों के भीतर तनाव है। दोनों के भीतर खिंचाव है। फर्क कहां होगा?
फर्क यहां होगा कि जो ध्यान के लिए तड़प रहा है उसमें कोई तनाव नहीं होगा। वह प्यासा तो पूरा होगा, लेकिन कहेगा--जब तेरी मर्जी! जब हो तभी जल्दी है। अनंत प्रतीक्षा के लिए राजी हूं! अनंत रूप से प्यासा हूं, मगर अनंत प्रतीक्षा के लिए राजी हूं।
जिस दिन यह विरोधाभास तुम्हारे भीतर एक साथ उपस्थित होता है, उस दिन धर्म का तुमने गहनतम सूत्र समझा। अनंत प्रतीक्षा और अनंत प्यास--एक साथ। प्रतीक्षा तो अनंत होनी ही चाहिए और प्यास भी अनंत होनी चाहिए। बस इन दो से मिल कर ही प्रार्थना बनती है।

अंतिम प्रश्नः ओशो! क्या मारवाड़ियों में कुछ भी प्रशंसा-योग्य नहीं होता है?

सत्य प्रिया! तू फिक्र छोड़, पागल! तू अब मारवाड़ी नहीं है। कितनी बार तुझे कहूं? कोई मारवाड़ में पैदा होने से थोड़े ही मारवाड़ी होता है। मारवाड़ी होना बड़ी साधना की बात है। यह कोई सरल मामला नहीं है कि हो गए मारवाड़ में पैदा और मारवाड़ी हो गए।
तू तो बिल्कुल मारवाड़ी नहीं है--न तेरे पिता मारवाड़ी हैं, न तेरी मां मारवाड़ी हैं। होते मारवाड़ी तो मेरे संन्यासी नहीं हो सकते थे। मारवाड़ी और मेरा संन्यासी--असंभव! मारवाड़ी तो पहले शर्तबंदी करता है; वह तो सौदा करता है। और संन्यास तो जुआ है, सौदा नहीं है।
एक सज्जन ने पत्र लिखा है कि आपकी शर्त है संन्यास में कि गैरिक वस्त्र पहनूं, तो मेरी भी शर्त है कि जब तक मुझे समाधि नहीं दिलवाएंगे तब तक संन्यास नहीं लूंगा।
ये हैं मारवाड़ी! अब ये कहीं भी पैदा हुए हों, इससे क्या फर्क पड़ता है? मारवाड़ी दुनिया के हर कोने में पैदा होते हैं। मारवाड़ी बड़ी घटना है, कुछ मारवाड़ में ही सीमित नहीं है। मारवाड़ और मारवाड़ी का संबंध तू तोड़ दे। यह भौगोलिक मामला नहीं है। मारवाड़ी होना एक मनोवैज्ञानिक घटना है। अब यह आदमी मारवाड़ी है। अब यह कहता हैः पहले मुझे समाधि मिलनी चाहिए, तब मैं गैरिक वस्त्र पहनूंगा!
फिर किसलिए गैरिक वस्त्र पहनोगे? मुझे सताने को? फिर क्या कारण है गैरिक वस्त्र पहनने का? जब समाधि ही मिल गई तुम्हें, तो गैरिक वस्त्र किसलिए पहनोगे? फिर तो जैसा दिल चाहे, चाहे महावीर जैसे नंग-धड़ंग घूमना, तो भी कोई अड़चन नहीं है। बुद्ध जैसे पीले वस्त्र पहनना, तो पीले वस्त्र पहनना। और कृष्ण जैसे अगरशृंगार करना हो तोशृंगार करके, बाल इत्यादि संवार कर स्त्रियों जैसे, मोर-मुकुट बांध कर घूमना। जब समाधि ही मिल गई तो अब क्या गैरिक वस्त्र पहनना है और किसलिए पहनना है?
संन्यास इसलिए है कि तुम समाधि की तरफ यात्रा कर सको। और यह आदमी मारवाड़ी है; यह कहता है--पहले समाधि, तब मैं गैरिक वस्त्र पहनूंगा! जैसे गैरिक वस्त्र पहनाने में मेरा रस हो। तो उसके लिए समाधि तक इन्हें देनी पड़ेगी पहले! जैसे मेरा कुल काम और मेरा कुल रस और कुल लक्ष्य इतना है कि लोग गैरिक वस्त्र पहनें। समाधि नहीं, गैरिक वस्त्र अंतिम लक्ष्य है जीवन का! ये समाधि को तो दो कौड़ी की बात समझते हैं। ये तो समाधि को भी शर्त बना

रहे हैं गैरिक वस्त्र पहनने की। ये हैं मारवाड़ी, सत्य प्रिया! तू नहीं है मारवाड़ी।
और मारवाड़ियों में किसने कहा कि कुछ भी प्रशंसा-योग्य नहीं होता? बड़ी गजब की चीजें होती हैं।
चंदूलाल मारवाड़ी और ढब्बूजी एक होटल में खाना खा रहे थे। जब खाना खा चुके तो बैरे ने उनके हाथ धुलाए और खूंटी से कोट उतार कर खुद अपने हाथों से चंदूलाल मारवाड़ी को पहनाया। चंदूलाल बैरे पर बहुत खुश हुए और उसे ईनाम के रूप में नगद अठन्नी भेंट दी।
ढब्बूजी तो यह देख कर आश्चर्यचकित रह गए, बोले कि चंदूलाल, मारवाड़ी होकर यह क्या करते हो? मित्र भी मारवाड़ी थे। कहा, क्या बाप-दादों की कमाई इस तरह बर्बाद कर दोगे? ये कोई ढंग हैं? आखिर बैरे को आठ आना ईनाम देने की क्या जरूरत थी? अरे बहुत से बहुत दस पैसे से काम चल जाता। उसकी भी आदत बिगाड़ी, अपने बाप-दादों के धन को भी खराब किया। और मुझको भी शर्मिंदा होना पड़ रहा है तुम्हारी वजह से; अब मैं दस पैसे दूं तो लगता है कंजूस हूं। तुम्हें शर्म नहीं आती?
चंदूलाल मारवाड़ी ने मुस्कुरा कर ढब्बूजी से कहा, नाहक नाराज हो रहे हो, अरे आठ आने में यह कोट क्या मंहगा है? कोट तो मैं घर से लाया ही नहीं था। और ये आठ आने भी इसी कोट में से निकाल कर दिए हैं। अपने बाप का इसमें कुछ भी नहीं है।
गजब की चीजें होती हैं मारवाड़ियों में!
चंदूलाल मारवाड़ी कार से अपने घर वापस लौट रहे थे। रास्ते में एक सभ्य
से दिखने वाले व्यक्ति ने उनसे लिफ्ट मांगी, उन्होंने लिफ्ट दे दी। देना तो नहीं चाहते थे, क्योंकि मारवाड़ी इतनी आसानी से किसी को लिफ्ट दे दे! अरे बैठेगा तो सीट भी घिसेगी न! मगर संकोचवश न न कर सके, इनकार न कर सके। टैक्सियों की हड़ताल थी, इसलिए संकोच खाना पड़ा।
कुछ दूर आगे बढ़ने पर चंदूलाल ने समय देखने के लिए घड़ी देखी--यह देखने
के लिए कि यह दुष्ट कितनी देर बैठेगा? कितना बजा है और कितनी देर बैठ कर कितनी सीट खराब करेगा? न केवल वह सीट खराब कर रहा था, बल्कि चंदूलाल का अखबार भी पढ़ रहा था। उससे भी उनके प्राणों पर बहुत मुसीबत आ रही थी। दिल ही दिल में कह रहे थे कि अगर बड़े पढ़क्कड़ हो तो अपना अखबार खरीदा करो। मगर कह भी नहीं सकते थे कि अब कहना क्या है! अब इतनी की है उदारता, तो इतनी सी बात में अब क्या कंजूसी दिखाना, पढ़ लेने दो! ऐसे भी मैं पढ़ चुका हूं, अपना क्या बिगड़ता है!
घड़ी देखने के लिए कलाई टटोली, लेकिन कलाई पर घड़ी न थी। चंदूलाल तो एकदम कड़क कर बोले--गुस्सा तो हो ही रहे थे, एकदम कड़क गए, एकदम चिल्ला कर बोले--चल बे, घड़ी निकाल! हरामजादे कहीं के!
उस सीधे-सादे आदमी ने जल्दी से घड़ी निकाल कर दे दी। चंदूलाल ने उस बदमाश को वहीं गाड़ी से नीचे उतार दिया।
घर पहुंचे तो गुलाबो बोली कि आज तो आपको दफ्तर में बड़ी तकलीफ हुई होगी, क्योंकि घड़ी तो आप घर पर ही भूल गए थे।
होती हैं, खूबी की चीजें होती हैं!
चंदूलाल मारवाड़ी अपने मुनीम की योग्यताओं से बड़े प्रभावित थे। जब मुनीम को कार्य करते हुए पूरे बीस साल हो गए तो उन्होंने उसे बुलवाया और कहा कि श्यामलाल जी, आज आपको हमारे यहां काम करते-करते बीस साल हो गए। यह मेरी जिंदगी में पहला मौका है कि इतनी कम तनख्वाह में किसी ने इतने समय तक किसी के यहां नौकरी की हो। हम सोचते हैं कि आपके लिए कुछ किया जाए। हम सोचते हैं क्यों न आज से आपको स्वामीभक्ति के उपहार की बतौर श्याम की बजाय श्यामबाबू कह कर बुलाया जाए!
नसरुद्दीन पूरे पंद्रह वर्ष के बाद अपने मित्र चंदूलाल से मिलने के लिए आया। दरवाजे पर दस्तक दी, दरवाजा खुला और चंदूलाल मारवाड़ी की पत्नी गुलाबो बाहर आई। नसरुद्दीन ने नमस्ते की और कहा, क्या चंदूलाल जी घर पर हैं?
गुलाबो आंखों में आंसू भर कर बोली कि क्या आपको पता नहीं कि आज से तीन साल पहले उनका स्वर्गवास हो गया? हुआ यह कि घर में कुछ मेहमान आए हुए थे और

उनमें से किसी ने हरी मिर्च की मांग की थी। हरी मिर्च लेने के लिए बगीचे में गए तो गए ही गए। वहीं उनका हार्टफेल हो गया। सच बात यह है कि हरी मिर्च उन्होंने खुद ही बगीचे में लगाई थी और अपनी आंखों से वे यह नहीं देख सकते थे कि उनकी हरी मिर्च इस तरह ये मेहमान बर्बाद करें।
नसरुद्दीन की आंखों में भी आंसू आ गए और वह सहानुभूति प्रकट करते हुए बोला कि बड़ा दुख हुआ यह सुन कर। मगर क्या आप बताएंगी कि फिर इसके बाद क्या हुआ?
गुलाबो बोली, हूं, होता क्या? यही हुआ कि फिर हम लोगों ने हरी मिर्च की बजाय लाल मिर्च से ही काम चलाया।
होते हैं गजब के लोग मारवाड़ी! सिद्ध पुरुष समझो! मगर तू सत्य प्रिया, चिंता छोड़ दे। तुझे ये गजब की चीजें नहीं सीखनी हैं। तू तो अब मेरे हाथों में पड़ गई है, जहां कुछ भूल-चूक से भी मारवाड़ की छाप रह गई होगी तो धुल जाएगी। मारवाड़ियों को तो मैं धोने में लगा ही रहता हूं। क्योंकि कितना ही इनको धोओ, पर्त पर पर्त धूल की निकलती चली आती है।
मैं तो मारवाड़ में बहुत भ्रमण किया हूं। एक से एक गजब के लोग! कहानियां ही सुनी थीं पहले, फिर आंखों से दर्शन करके बड़ी तृप्ति हुई। सच में ही पहुंचे हुए लोग हैं। झूठी ही बातें नहीं हैं उनके बाबत जो प्रचलित हैं। अतिशयोक्ति उनके संबंध में की ही नहीं जा सकती, वे हमेशा अतिशयोक्ति से एक कदम आगे रहते हैं। मेरा भी अनुभव यही है कि महा कंजूस! हद दर्जे के कंजूस! धन को यूं पकड़ते हैं जैसे कोई परमात्मा को भी न पकड़े।
धन को पकड़ना एक ही बात की सूचना देता है कि भीतर गहन दुख है, पीड़ा है। आनंदित व्यक्ति न धन को पकड़ता है, न पद को पकड़ता है। आनंदित व्यक्ति को जो मिल जाए उसको भोगता है; जो मिल जाए उसका आनंद लेता है। आनंदित व्यक्ति धन का दुश्मन नहीं होता, न धन को पकड़ता है, न धन को छोड़ कर भागता है।
मारवाड़ी या तो धन को पकड़ेगा या धन को छोड़ेगा। धन को पकड़ेगा तो यूं पकड़ेगा कि वही सब कुछ है। और किसी दिन भयभीत हो जाएगा। और हो ही जाएगा किसी दिन भयभीत, क्योंकि जब मौत करीब आने लगेगी तो दिखाई पड़ेगा--मैंने जीवन अपना यूं ही गंवा दिया। तो फिर धन को छोड़ेगा, फिर ऐसा भागेगा छोड़ कर... । वह भागता भी इसी डर से है कि अगर नहीं भागा तो फिर पकड़ लेगा।
इसलिए मारवाड़ में जैन मुनि का सम्मान है। मारवाड़ अड्डा है जैन मुनियों का। और जैन मुनियों का अड्डा होने का कारण है, क्योंकि मारवाड़ी सिर्फ जैन मुनि से प्रभावित होता है। वह कहता है, वाह, क्या गजब का त्याग है! क्योंकि वह दस पैसे नहीं छोड़ सकता और इन्होंने सब छोड़ दिया। स्वभावतः इनके प्रति उसके मन में बड़ा आदर भाव पैदा होता है।
यह हैरानी की बात है कि इस दुनिया में जितने लोभी लोग हैं, वे हमेशा त्यागियों का सम्मान करते हैं। इस अर्थों में इस पूरे देश में कुछ न कुछ मारवाड़ीपन है। इस देश में त्यागियों का इतना सम्मान इस बात का सबूत है कि हमारी धन के प्रति बड़ी लालसा है, बड़ा लोभ है। उस लोभ के कारण ही, जो उसको छोड़ने में समर्थ हो जाता है, हम कहते हैं कि इसने गजब का काम कर दिया! चमत्कार कर दिखाया, जादू कर दिया!
और वह सिर्फ इसलिए भाग रहा है कि अगर रुका तो फिर पकड़ लेगा। वह सब तरह
की बागुड़ लगा रहा है अपने चारों तरफ, ताकि धन को फिर से न पकड़ ले। और यह सम्मान भी बागुड़ का हिस्सा बन जाता है। ये जो सम्मान देने वाले लोग हैं, ये भी कहते हैं कि अब हम इतना सम्मान दे रहे हैं, अगर फिर से पकड़ा धन को तो इतना ही अपमान देंगे।
इस देश को छुटकारा चाहिए--लोभ से भी और त्याग से भी। मेरी पूरी चेष्टा यही है। इसलिए मेरे खिलाफ भोगी भी होंगे और योगी भी होंगे। मुझे संसारी लोग भी गाली देंगे और मुझे तुम्हारे तथाकथित महात्मागण भी गाली देंगे, क्योंकि वे दोनों ही मारवाड़ीपन के दो छोर हैं। मेरा कहना यह है कि न तो भोग के लिए दीवाना होने की जरूरत है, न त्याग के लिए दीवाना होने की जरूरत है। हो हाथ में कुछ तो उसका आनंद लो, न हो तो न होने का आनंद लो। महल हो तो महल सही। क्यों छोड़ना! और न हो महल, वृक्ष के नीचे सोना पड़े, तो खुली हवा का मजा लो! खुले आकाश का मजा लो! खुले तारों का!

लेकिन लोग अजीब पागल हैं! महल में रहेंगे तो उनके मन में यह वासना बनी रहती है कि कब इसको छोड़ें, ताकि जाकर खुले आकाश के नीचे सोएं! और खुले आकाश के नीचे सोएंगे तो उनके भीतर आकांक्षा बनी रहती है कि कब महल में रहें! कब, कैसे महल में प्रवेश हो जाए!
मैं इस देश की--और इस देश की ही क्यों, सारी दुनिया की--इन दोनों अतियों
से मुक्ति चाहता हूं। मैं चाहता हूंः व्यक्ति सम्यक हो, स्वस्थ हो। और स्वस्थ व्यक्ति ही मेरी दृष्टि में संन्यासी है। संन्यास अर्थात परम स्वास्थ्य--स्वयं में स्थिर हो जाना। कोई अति नहीं--न लोभ की, न त्याग की; न वासना की, न ब्रह्मचर्य की; न संसार की, न महात्मापन की। ऐसा अति सामान्य हो जाना, जैसे हूं ही नहीं। उस न होने में ही प्रभु-मिलन है, प्यारे का मिलन है।
पिय को खोजन मैं चली, आपुई गई हिराय!
जो भी उसे खोजने चला है, उसे अपने को खो देना पड़ता है। और यह ढंग है खोने काः मध्य में हो जाना अपने को खो देना है। अति पर गए कि अहंकार बच जाएगा। भोगी का भी अहंकार नहीं मरता, त्यागी का भी नहीं मरता है। सच तो यह है, भोगी से भी ज्यादा अहंकार त्यागी का होता है। अहंकार की मृत्यु परमात्मा का अनुभव है। धन्यभागी हैं वे जिनका अहंकार मर जाता है, और जो अपने अहंकार को मर जाने देते हैं। उससे बड़ा कोई सौभाग्य नहीं है।
आज इतना ही।